आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी का समीक्षात्मक सम्पादन तथा अध्ययन



प्रो. पुरुषोत्तम शर्मा

APEX

APEX BOOKS PUBLISHER & DISTRIBUTOR
DELHI-110 009 (INDIA)

आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी का समीक्षात्मक सम्पादन तथा अध्ययन

प्रो. पुरुषोत्तम शर्मा

APEX

Apex Books Publisher & Distributor

Delhi-110 009 (INDIA)

नवदेहलीस्थ केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य आर्थिकानुदानेन
प्रकाशितं पुस्तकमिदम्।

प्रकाशक :
एपेक्स बुक्स पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
5/21-ए, विजय नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 9810588908

प्रथम संस्करण 2021

ISBN : 978-81-87324-43-0

मूल्यम् : ₹ 522.00

मुद्रक :
डी.वी. प्रिंटर्स
97-यू.बी., जवाहर नगर, दिल्ली-110007

पुरोवाक्

सर्वदेवमयी देवीं, सर्वदेवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपा त्वां नमामि परमेश्वरीम्।।

वैष्णवीं मातरं वन्दे कटड़ा शैल वासिनीम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण जडो वाचस्पतीयते।।

आचार्य भीमविरचित "परिभाषार्थ मञ्जरी" नामक 'परिभाषेन्दुशेखर' की टीका तथा परिशिष्ट से विभूषित यह आठ पाण्डुलिपियों के आधार पर किया गया सम्पादन कार्य विद्वानों की सेवा में समर्पित करते हुए मुझे अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। पुस्तक का प्रकाशन राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय), नई दिल्ली के आर्थिक अनुदान से सम्भव हो सका। अतः मैं केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

संस्कृत वाङ्मय में व्याकरणशास्त्र का अतीव गौरवपूर्ण स्थान है। "मुखं व्याकरणं स्मृतम्" इस उक्ति के माध्यम से इस बात की सम्पुष्टि होती है। व्याकरण शास्त्रों का वैविध्य होने पर भी महर्षि पाणिनि की सूक्ष्मेक्षिका जो अष्टाध्यायी रूपेण विश्व प्रसिद्ध है, की गम्भीर एवं विस्तृत अभिव्यक्ति पतञ्जलि के महाभाष्य में तथा कात्यायन के वार्तिकों में समुपलब्ध होती है। पातञ्जल महाभाष्य के भी प्रौढ़ एवं व्याख्यासापेक्ष होने के कारण वैयाकरण कैयट और नागेशभट्ट ने उसके सूक्ष्म रहस्यों का जो उद्घाटन किया है, उसके लिए वैयाकरण जगत् उनका चिरऋणी रहेगा। अतः पाणिनि व्याकरण के विकास की परम्परा में वैयाकरणधुरीण श्रीनागेशभट्ट का अमूल्य योगदान है।

नागेशभट्ट के ग्रन्थों में प्रौढ़ता एवं उपयोगिता के कारण परिभाषेन्दुशेखर एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न है। इसीलिए आज भी यह ग्रन्थ

अध्ययनाध्यापन में सर्वत्र प्रचलित है। व्याकरण शास्त्र की परिभाषाओं का यह सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। व्याकरण शास्त्र में परिभाषाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं। एक तो पाणिनि के द्वारा उच्चारित सूत्रात्मक परिभाषाएँ, यथा- 'तस्मिन्निितिनिर्दिष्टे पूर्वस्य' आदि, तथा द्वितीय प्रकार की परिभाषाएँ वे हैं जो पाणिनि सूत्रों से बोधित (ज्ञापित) वाचनिक या लोकन्याय सिद्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में सूत्रात्मक परिभाषाओं का व्याख्यान नहीं है। अर्थात् परिभाषेन्दुशेखर में अष्टाध्यायी की परिभाषाओं की व्याख्या नहीं है।

नागेश के आशय को समझने में क्रमशः गदा और भैरवी नव्यव्याकरण की शैली में निबद्ध भूति एवं विजया वर्तमानकाल में सर्वाधिक उपयोगी एवं प्रचलित हैं, क्योकि इनमें परिष्कार का बाहुल्य है।

परिभाषाओं के प्राचीनाचार्यों ने विभिन्न लक्षण दिये हैं। महाभाष्यकार एकदेश में विद्यमान होकर भी प्रदीप की तरह समस्त शास्त्र को प्रकाशित करने वाले 'शास्त्रवचन' को परिभाषा कहते हैं। स्पष्ट है कि परिभाषा के अभाव में शास्त्र के प्रवृत्ति या निवृत्ति की व्यवस्था नहीं हो पाती। इसी कारण 'काशिका' आदि के वक्तव्यों के आधार पर "अनियमे नियमकारिणी परिभाषा" यह लक्षण सम्प्रदाय प्रसिद्ध है।

यद्यपि परिभाषेन्दुशेखर की अनेक टीकाएँ सुनी जाती हैं तथापि अप्रकाशित टीका आचार्य भीमविरचित परिभाषार्थमञ्जरी अतीव महत्त्वपूर्ण है। जिसका मैंने आठ पाण्डुलिपियों के आधार पर सम्पादन कार्य किया है। सम्पादनकार्य का गुणदोष निरुपण तटस्थ विद्वानों के कार्यक्षेत्र में आता है। अतः मेरे लिए मौनाबलम्बन ही उचित है।

बाल्यकाल से ही मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि मैं व्याकरण के क्षेत्र में किसी महनीय ग्रन्थ पर सम्पादनरूप शोध कार्य करुँ। मैंने अपनी इस इच्छा को परमादरनीया प्रो. वेद कुमारी घई जी के सामने रखा। उन्होंने सम्यक् प्रकारेण मेरा पथ-प्रदर्शन करते हुए "आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी" का समीक्षात्मक सम्पादन तथा अध्ययन इस

विषय पर सम्पादनरूप अनुसन्धान कार्य करने का सुझाव दिया।

मैंने श्री रणवीर संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, श्री रघुनाथ मन्दिर जम्मू में उपलब्ध दो हस्तलेखों का निरीक्षण कर इसी विषय का शोध कार्य हेतु चयन कर लिया। छः अन्य हस्तलेख देश के विभिन्न पुस्तकालयों से प्राप्त किये। इस शोधकार्य को सहजरूपेण पूर्ण करने में राष्ट्रपति पुरस्कार से पुरस्कृत परमादरनीया "प्रो. वेदकुमारी घई" जी का मार्गदर्शन मुझे सतत् प्राप्त होता रहा। उनकी स्नेहसिक्त प्रेरणा ने मुझे कभी भी अपने मार्ग से विचलित नहीं होने दिया। इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना तो मात्र औपचारिकता ही होगी, क्योंकि इनके विद्वत्तापूर्ण मार्गदर्शन के कारण ही मैं इस सम्पादनरूपी गम्भीर जलधि से पार हो सका हूँ। इनके वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से मुझे सतत् सम्बल प्राप्त होता रहा है। मैं इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित प्रो. रामप्रताप वेदालङ्कार पूर्वाध्यक्ष संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय के प्रति मैं श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ, जिन्होंने कतिपय कठिन स्थलों को सुलझाने में मेरी सहायता की है। पूर्व विभागाध्यक्षा प्रो. कौशल्यावल्ली, प्रो. महेशशर्मा, प्रो. रमणीका जलाली, प्रो. केदारनाथ, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय के अन्य सहयोगी अध्यापकों का भी मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने समय-समय पर अपने उपयोगी सुझाव देकर मेरे सम्पादन कार्य में मेरी सहायता की है।

आचार्य मूलराजशास्त्री, पूर्व-प्राध्यापक श्री रणवीर परिसर जम्मू तथा प्रो. केवलकृष्णशास्त्री प्राध्यापक-व्याकरण, सदाशिव केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, पुरी (उड़ीसा) के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जिनसे प्रस्तुत सम्पादन-कार्य को पूरा करने में समय-समय पर प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में सहायता तथा बहुमूल्य सुझाव मिलते रहे हैं। प्रो. श्रीमती सरोजाभाटे, पूर्वाध्यक्षा, संस्कृतविभाग, पूना विश्वविद्यालय के प्रति भी मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। जिन्होंने पूना से हस्तलिखित ग्रन्थ मुझे उपलब्ध करवाया। श्री वेणीमाधव शास्त्री, अध्यक्ष राजस्थान

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महल चौक अलवर अध्यक्ष भण्डारकर ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट्, पूना, अध्यक्ष ढैक्कन कॉलेज पूना, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रणवीर संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने मातृकाओं (पाण्डुलिपियों) की उपलब्धि में मेरी सहायता की है। इस अवसर पर सहधर्मचारिणी सुनीता शर्मा तथा बच्चों (अभिषेक शर्मा, अभिमन्यु शर्मा, अभिनव शर्मा) पुत्रवधुओं (विदु कौल, साक्षी शर्मा) की मूर्त्तियाँ भी मेरे स्मृतिपटल पर उभर कर आ रही हैं, क्योंकि कार्य में निमग्न होने के कारण मैं बच्चों (पोतियों वाण्या एवं मान्या) की ओर भी अधिक ध्यान नहीं दे सका हूँ। अतः मैं इनका भी आभारी हूँ।

मैं उन मनीषियों को स्मरण करता हूँ जिनके ग्रन्थों का स्वाध्याय सम्पादनरूप अनुसन्धान कार्य में सहायक सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त उन सभी विद्वानों के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। जिनसे प्रस्तुत सम्पादनकार्य को पूरा करने में समय-समय पर मुझे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुमूल्य सुझाव तथा सहायता उपलब्ध हुई है।

अन्त में मैं स्वर्गीया ममतामयी माँ श्रीमती उमादेवी जी तथा स्वर्गीय पिताश्री पं. देवदत्त शर्मा जी दैवज्ञभूषण (राजज्योतिषी) को प्रणाम करते हुए स्मरण करता हूँ। जिनकी स्मृति ही अब मेरे जीवन की प्रेरणा है। अन्त में मैं प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ सुधी-समालोचकों के हाथों इस आशा से अर्पित करता हूँ कि वे इसकी त्रुटियों को संवारने की अनुकम्पा करेंगे।

विद्वज्जन कृपाभिलाषी

-प्रोफेसर (डॉ०) पुरुषोत्तम शर्मा शास्त्री

प्रोफेसर एमरिट्स् एवं पूर्वविभागाध्यक्ष

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

हाउस नं. 54, लेन-12, स्वर्ण विहार

पो. आ. मुट्ठी, जम्मू-181205 (जे.एण्ड.के.)

विषयानुक्रमणिका

(ख) परिभाषा पाठ के व्याख्याकारों का कालक्रम से वर्णन-

आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमंजरी के उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ और उनके संकेत[1] चिह्न-

1- ज-1 मातृका श्रीरघुनाथ संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू, गृहीत मूल पुस्तक शाखा- (Sub- Archetypus)

2- ज-2 मातृका- श्री रघुनाथ संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू, गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा- (Recension)

3- अ-1 मातृका- राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान महल चौक शाखा अलवर, गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा- (Recension)

4- अ-2 मातृका- राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महल चौक शाखा अलवर, गृहीतमूलपुस्तक प्रशाखा- (Sub- Recension)

5- अ-3 मातृका- राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महल चौक शाखा- अलवर, गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा- (Recension)

6- अ-4 मातृका- राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महल चौक, शाखा- अलवर- गृहीतमूलपुस्तक प्रशाखा- (Sub-Recension)

7- प-1 मातृका- डैक्कन कालेज पूना- गृहीतमूल पुस्तकोपशाखा- (Recension)

8- प-2 मातृका- भण्डारकर प्राच्य विद्या अनुसन्धान संस्थान, पूना, गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा- (Recension)

आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी

"वंशवृक्षालेख"

(Stemma codicum)

---

1. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए- आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमंजरी की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का वर्णन पृष्ठ 1-35

ऊर्ध्वमूलमधः शाखं वंशवृक्षं विदुर्बुधाः।
लेख-पुस्तक-शाखोप-प्र-शाखाद्यति विस्तृतम्।।

गृहीतमूललेख हस्तलिखितग्रन्थ- क* ग्रन्थकार भीमभट्ट प्रायः ख्रिस्ताब्द 1676 से 1800 ईस्वी.

Autograph

ज-1 गृहीतमूलपुस्तकशाखा

अ Hyparchetypus गृहीतमूलपुस्तकशाखा

Sub-Archetypus ग गृहीतमूलपुस्तकशाखा

(ख) अ-1 (Recension) (गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा) प्रायः विक्रमसम्वत् 1889.

(ख) ज-2 (Recension) (गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा) प्रायः ख्रिस्ताब्द (अनुपलब्ध)

(ग) प-1 (Recension) (गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा) प्रायः शकसम्वत् 1773

प-2 (Recension) उपशाखा प्रायः ख्रिस्ताब्द (अनुपलब्ध)

अ-3 (Recension) उपशाखा प्रायः विक्रमसम्वत् 1913

(घ) गृहीतमूलपुस्तकोपशाखा

अ-2 गृहीतमूलपुस्तकप्रशाखा प्रायः ख्रिस्ताब्दः 20वीं शताब्दी

अ-4 (Sub-Recension) गृहीतमूलपुस्तक प्रशाखा प्रायः ख्रिस्ताब्द 20वीं शताब्दी

---

* इस चिह्न से चिह्नित मूललेखहस्तलिखितग्रन्थ वंशपरम्परा निर्धारणार्थ मेरे द्वारा कल्पित- गृहीत किए गए हैं। साक्षादुपलब्ध नहीं हैं।

"वंशवृक्षालेखविवरण"

ज–1, ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 मुझे भीमविरचित परिभाषार्थमंजरी की ये आठ हस्तलिखित प्रतियाँ समुपलब्ध हुई हैं। इन प्रतियों में 'ज–1' मातृका की प्रति अपनी विशेषताओं के कारण अन्य सात मातृकाओं से सर्वतोभोवेन भिन्न है। यथा-

1- कागज सभी मातृकाओं से पुराना है।

2- ज–1 मातृका के प्रारम्भिक पृष्ठ पर ही "श्रीसाम्ब सदाशिवाय नमः, श्रीगुरुभ्यो नमः, श्रीमदिष्ट देवता जयति" यह पाठ उपलब्ध होता है, जो कि अन्य किसी भी मातृका में उपलब्ध नहीं होता है[1]।

3- ज–1 मातृका में 'आर्य्या' उपलब्ध होता है जबकि अन्य मातृकाओं में 'आर्या' शब्द का प्रयोग है[2]।

प्रजां वर्धयति ज–1 ; अन्य मातृकाओं में प्रजाः वर्धयति प–1, प्रजा वर्द्धयति अ–4, अ–1, अ–2, अ–3 है[3]।

ग्रन्थकृदाकृतम् ज–1; ग्रन्थकृदाकूतम् प–1, अ–1, अ–4; कदाकूतम् अ–3; कृवाकूतम्[4] अ–2

यस्य ज–1; मातृका में विद्यमान है पर अन्य किसी भी मातृका में 'यस्य' शब्द नहीं है।

वुञ्छण्केन दोष (12–2–80 अष्टा.) ज–1; वुछणकेन ज–2, अ–1; वुञ्छणकेन अ–2, अ–4; नुछणकेन[5] अ–3.

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोधप्रबन्ध पृ. 1–35
2. वही, पृ.–29
3. वही, पृ.–30,35
4. वही, पृ– 30,35
5. वही, पृ.–30,35

ल्युट् च (3/3/115 अष्टा.) ज–1; त्युर्ल्युठ ज–2, अ–1; ल्युलुट[1] अ–2, अ–4.

हुझल्भ्यो इति ज–1; हुसलभ्य[2] इति ज–2, अ–1; हुसलभ्य इति अ–2, अ–4, अ–3.

[3]अल्लोपोऽन (6/4/134 अष्टा.) अल्लोपो न ज–1; अलोपो न ज–2, अ–1; अलोप न अ–2, अ–4.

क्ते च (6/2/42 अष्टा.) ज–1; क्तेवेति ज–2, अ–1; क्तेति[4] अ–2, अ–4.

कपटानुयायिन ज–1; कैयटानुयायिनः[5] ज–2, अ–1, प–1, प–2, अ–4, अ–3.

पूर्णत्वमर्थप्रकाशकत्वं च ज–1; पुर्णत्वम् प–1; पूर्णत्वर्थमर्थ[6] अ–1, अ–3 पूर्वत्वमर्थ अ–2, अ–4.

आशयमजानत अग्रे ज–1; अजानत्त अग्रे ज–2, अ–1; आशयमाजानत अग्रे ख–3; आशयमजानता[7] अ–2, अ–4.

प्रतिलिपिकार ने 'प' के स्थान पर 'य'; 'च' के स्थान पर 'व' 'ग्र' के स्थान पर 'आ'; 'कृ' के स्थान पर 'व' का अधिकतर प्रयोग किया है[8]।

---

1. वही, पृ.–87
2. वही, पृ.–125
3. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोधप्रबन्ध
4. वही, पृ.–141
5. वही, पृ.–14
6. वही, पृ.–43
7. वही, पृ.–79
8. वही, ज–1 मातृका की फोटोस्टेट कापी, पृ.–29

शेष सात हस्तलिखित मातृकाओं में 'अ-1' और 'ज-2' एक दूसरे से साम्य रखती हैं। यथा पूर्वोक्त उदाहरणों में वुछणमकेन ज-2, अ-1; ल्युर्ल्युठ ज-2, अ-1; हुसलभ्य ज-2, अ-1; अलोपो न ज-2, अ-1; क्तेवेति ज-2, अ-1 कैयटानुयायिनः ज-2, अ-1; अजानत्त अग्रे ज-2, अ-1

चाहे ही पाठ शुद्ध हो अथवा अशुद्ध किन्तु ये दोनों परस्पर मिलती जुलती हैं। तथा प-1, प-2, अ-3, अ-2, अ-4 परस्पर आपस में साम्य रखती हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि अ-1 और ज-2 प्रतियों का एक वंश है और इनकी काल्पनिक मूल प्रति को 'ख' नाम दिया है। उसी तरह प-1, प-2, अ-3, अ-2, अ-4 प्रतियों का एक वंश है और इनकी काल्पनिक मूल प्रति को 'ग' नाम दिया गया है। हस्तलिखित मातृकाओं की प्रतियों के बारम्बार हस्तान्तरण से उनमें नवीन अशुद्धियाँ होती जाती हैं। इसलिए , यह मानना युक्तिसंगत होगा कि 'ख' प्रति अ-1 और ज-2 प्रतियों की अपेक्षा दोष मुक्त होगी और 'ख' प्रति अ-1, ज-2 प्रतियों का काल्पनिक स्रोत होने के कारण उसके पाठों का वाचन अ-1 और ज-2 प्रतियों के पाठों के वाचन की अपेक्षा अधिक प्राचीन और प्रामाणिक है। 'ख' प्रति के पाठों की प्रामाणिकता अ-1 और ज-2 प्रतियों के पाठों का मिलान करने के पश्चात् मुझे ज्ञात हो सकी।

इसी प्रकार प-1, प-2, अ-3, अ-2,अ-4 प्रतियों में से प्रत्येक प्रति के पाठों का अध्ययन करने के अनन्तर यह स्पष्ट हो गया कि 'ग' प्रति के पाठ भी इनके पाठों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक हैं। इसी बीच मुझे यह भी पता चला कि प-1,प-2, अ-3, अ-2, अ-4 प्रतिलिपियों के वंश में अ-2 और अ-4 प्रतिलिपियाँ प-1, प-2, अ-3 प्रतिलिपियों की अपेक्षा आपस में एक दूसरे से पाठों की अपनी विशेषताओं के कारण, वंशगत सामान्य विशेषताओं के होते हुए अधिक साम्य रखती हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में 'वुञ्छणकेन अ-2, अ-4; वुञ्छण्केन' (12-2-80 अष्टा.) ज-1; वुछणकेन ज-2, अ-1; नुछणकेन अ-3; ल्युलुट अ-2,

अ–4;, ल्युट् च (3/3/115 अष्टा.) ज–1 त्युर्ल्युठ ज–2, अ–1 हुसलभ्य अ–2, अ–4, अ–3; हुसल्भ्यो इति (6/4/101 अष्टा.) ज–1; हुसलभ्य इति ज–2, अ–1. अलोपन इति अ–2, अ–4; अल्लोपोऽनः (6/4/134 अष्टा.) अल्लोपो न ज–2, अ–1. पूर्वत्वमर्थ अ–2, अ–4. आशयमजानता अ–2, अ–4।

अत एव यह निष्कर्ष निकलता है कि अ–2 और अ–4 प्रतियाँ 'घ' नामक एक सामान्य काल्पनिक स्रोत से तैयार की गई हैं। यह 'घ' प्रति भी प–1, प–2, अ–3 'घ' परिवार की ही है। अ–2 और अ–4 प्रतियों के पाठों से तुलना करने के पश्चात् 'घ' प्रति के पाठों का पुनर्निर्मितरुप अ–2 और अ–4 प्रतियों के पाठों से अधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक है।

यथा– त्वदुक्त परिभाषाभाव प–1, प–2, अ–3; तदुक्त[1] ज–1. नोपलभ्यते ज–2, अ–1, अ–4।

ग्रन्थाः संगच्छन्ते प–1, प–2, अ–3, अ–4 संगच्छते ज–1. सुधिभिरिति ज–2, अ–1 सुरिभिरिति प–1, प–2, अ–3, अ–4. ढगितिटकि यस्येति इकार नियोग इति प–1, प–2, अ–3; ढकि यस्येतीकार निवृत्तौ सन्नियोग ज–2, अ–1. दादित्वे सति ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; दादिधात्व वयवत्वे सति ज–1. स्वस्त्यादि अ–4; स्वस्न्यादि ज–2; स्वत्यादि प–1, प–2

प्रस्तुत सम्पादन कार्य में, मैं ने प–1, प–2, अ–3 तथा 'घ' प्रतियों के पाठों के तुलनात्मक अध्ययन से 'ग' प्रति के पाठों तक पहुँचने का प्रयास किया है। तदनन्तर 'ग' और 'ख' प्रतियों के पाठों का आपस में तथा अ–4 के पाठों से तुलना करके एक सर्वथा अलग ही 'क' नामक मूल प्रति का निर्माण किया है।

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोधप्रबन्ध, पृ.– 222–335

'क' प्रति किसी मातृका- विशेष की उपलब्ध आठों प्रतियों की काल्पनिक मूल प्रति है। बस इस 'क' प्रति से प्रतिलिपियाँ बनवाई गई होंगी, तो ये प्रतियाँ अनेक विभिन्न धाराओं में जैसे ज-1, 'ख' तथा 'ग' धाराओं में विभक्त हो गई होंगी। अतः 'क' मातृका सर्व उपलब्ध मातृकाओं की आद्य प्रारुप (Archetybe) मातृका मानी जायेगी।

अष्टग्रन्थोपलब्धि एवं सम्बन्ध विमर्श

ज-1 मातृका प्रमुखाधार है। 'ज-1' मातृका का जो पाठ स्वीकार्य नहीं है, उसका निर्देश पाठटिप्पणी में कर दिया गया है तथा स्वीकार्य पाठ का निर्देश भी पाद टिप्पणी में दर्शाया गया है। यह 'ज-1' मातृका अपूर्ण ही समुपलब्ध होती है। जहाँ तक तो 'ज-1' मातृका उपलब्ध है वहाँ तक मूलाधार 'ज-1' मातृका ही है[1] किन्तु अनुपलब्ध भाग के लिए मातृका 'अ-1' सम्पादन कार्य में मूलाधार है। तथा अस्वीकार्य पाठ का पादटिप्पणी में निर्देश कर दिया गया है।

प्रश्नोत्पन्न होता है कि सम्पादन कार्य में किस विधि को अपनाया गया है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है साहित्यशास्त्र की उस प्रसिद्ध उक्ति को जो कि-

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य संनिधि॥

सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृति हेतवः॥[2]

इन उपलब्ध अष्ट ग्रन्थों में चाहे तो लिपिकार ने कितनी ही भूलें की हों किन्तु सारांश में मैं यह कहने में सर्वतोभावेन समर्थ हूँ कि इन

---

1. द्रष्टव्य ज-1 मातृका के प्रथम तथा अन्तिम पृष्ठ की फोटोस्टेट कापी पृ.-29
2. साहित्यदर्पण, विश्वनाथ मित्र, पृ.-40

सभी मातृकाओं से मुझे अपने सम्पादन कार्य में अत्यधिक सहायता उपलब्ध हुई है।

पाठभेद चिकित्सा-

अब ज-1, ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 मातृकाओं में विद्यमान भिन्न-भिन्न पाठों की चिकित्सा प्रारम्भ की जा रही है। सर्वप्रथम यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने "आचार्य भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी" के प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध में मूलग्रन्थ के रुप में स्वीकृत बहुत से पाठ पौनः पुन्येन विमर्शकरणानन्तर चिकित्सा में पाठभेद के रुप में स्वीकृत किये हैं और पाठभेद के रुप में स्वीकृत कुछ एक पाठों को मूलग्रन्थ के रुप में रखा है। अत एव भीमविरचित परिभाषार्थमञ्जरी ग्रन्थ पठन के समय प्रिय पाठक महोदय भी यहाँ पाठभेद चिकित्सा में हमारे द्वारा मूलग्रन्थ के रूप में स्वीकृत पाठों को ही ग्रहण करें।

किस मातृका का सर्वाधिक प्रामाण्य है?:-

यहाँ ज-1, ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4- मातृकाओं में मध्य में ज-1 मातृका कालदृष्टिसे प्राचीनतम प्रतीत होती है, क्योंकि कागज भी सभी मातृकाओं से पुराना है। कुछ एक पाठाधिक्य भी इसमें ऐसे उपलब्ध होते हैं। जो किसी अन्य मातृका में उपलब्ध नहीं होते हैं। यथा- "श्रीसाम्बसदा शिवाय नमः, श्रीगुरुभ्यो नमः, श्री मदिष्ट देवता जयति"[1]।

इस मातृका के पाठ अन्य मातृकाओं की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय हैं। यथा प्रजां वर्धयति ज-1 अन्य मातृकाओं में प्रजाः वर्धयति प-1; प्रजावद्र्धयति अ-4, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4

---

1. द्रष्टव्य प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में ज-1 मातृका की फोटोस्टेट कापी, पृ.-29

ग्रन्थकृदाकृतम् ज–1; ग्रन्थकृदाकूतम् प–1, अ–1, अ–4 कदाकूतम् अ–3; कृवाकूतम् अ–2. वुञ्छण्केन दोष (12/2/80 अष्टा.) ज–1; बुछणकेन ज–2, अ–1 वुञ्छणकेन अ–2, अ–4; नुछणकेन अ–3.

यद्यपि यह मातृका अपूर्ण ही उपलब्ध होती है किन्तु सभी मातृकाओं में इस ज–1 मातृका का ही सर्वाधिक प्रामाण्य स्वीकार करने योग्य है और सम्पादन कार्य के लिए परमावश्यक भी है। अतः सम्पूर्ण मातृकाओं के अशुद्ध स्थलों में लेखनिकानवधानजनित भ्रान्त्यादिस्थलों में इस प्रकार के दोष अन्य सात मातृकाओं में ज–1 मातृका से अधिक मात्रा में पौनः पुन्येन दृष्टिगोचर होते हैं। अतः जहाँ तक ज–1 मातृका समुपलब्ध होती है वहाँ तक मेरे सम्पादन कार्य में मूलाकार ज–1 मातृका ही है। ज–1 मातृका के अनुपलब्ध भाग के लिए मैं ने अ–1 मातृका को प्रमुखाधार बनाया है; क्योंकि कालदृष्टि से भी इस मातृका का अन्य मातृकाओं से महत्वपूर्ण स्थान है। इस मातृका का लेखन काल विक्रम सम्वत् 1889 (सन् ईस्वी 1832) है। पाठशुद्धता की दृष्टि से भी ज–1 मातृका के पश्चात् यह अ–1 मातृका दूसरे स्थान पर आती है। यथा–
वाक्यतयाऽन्वयस्तर्हि अ–1; वाक्यत्तयान्वयस्तर्हि ज–1

ईदूदेद्विवन ज–1; ईदूदेद्विवचन अ–1; ईदूदेदद्विवचनं प्रगृह्यम् (1/1/11 अष्टा.) विनिवर्तनम् ज–1; विनिवर्तने[1] अ–1

1. द्रष्टव्य प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध, पृ.–37–86

छत्रादिभ्योण: ज-1 (4/4/62 अष्टा.); छत्रादित्योण: अ-1 प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या ज-1, प-1, अ-1, अ-3, अ-4, अ-2; प्रत्यय ग्रपंचम्या ज-1, अन्तर्भूत निमित्तके ज:1; अन्तर्भूत निमित्त निमित्तके अ-1, अ-3 अत एवांगाधिक्ये ज-1; अत एवांगाधिक ये[1] अ-1, अ-3 अत एव ज-1 तथा अ-1 मातृकाएँ ही मेरे सम्पादनकार्य में आलम्बन (आधार) हैं।

आचार्य भीमविरचित परिभाषार्थमञ्जरी की उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों का वर्णन:-

पाठभेदचिकित्सा में "वाक्यार्थज्ञाने वाक्यघटकीभूत पदपदार्थज्ञानं कारणम्" इस न्याय को आधार बनाकर पाठभेद चिकित्सा आधारभूत ज-1, अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-2, अ-4 मातृकाओं का लेखनकाल स्थलादिस्वरूपज्ञान परमावश्यक है। इस प्रकार विचार करके सर्वप्रथम इन मातृकाओं के स्वरूप का वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ।

गृहीतमूलग्रन्थशाखा ज-1 मातृका-

हस्तलिखितग्रन्थोपलब्धिस्थान- इस हस्तलिखित ग्रन्थ की उपलब्धि मुझे श्री रघुनाथ संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू से धमार्थ ट्रस्ट जम्मू के सौजन्य से हुई। इस ग्रन्थ का ग्रन्थालय क्रमांक- 117 (75/117) है जो कि ग्रन्थालय की सूची मध्य में विद्यमान है। यह ग्रन्थ साधारण कागज पर लिखा हुआ है। लेखन कार्य में काले रंग की स्याही (मसी) और कलम का प्रयोग किया गया है। अपने सम्पादन कार्य में इस ग्रन्थ के लिए मैं ज-1 इस संकेतचिह्न का प्रयोग कर रहा हूँ।

---

1. वही, पृ.-79-143

हस्तलिखितग्रन्थलेखनवैशिष्ट्य-

यह ज-1 ग्रन्थ अत्यन्त अशुद्ध, अक्षरव्यत्यास त्रुटि न्यूनाधिक्यादि विविध दोषों से ग्रस्त, अति निकट के पाठ की पुनरावृत्ति, समान वर्ण एवं अक्षरों के सम्बन्ध में विभ्रान्ति, अपरिचित शब्दों के लिए परिचित शब्दों का प्रयोगादि दोषों से सर्वतोभावेन ग्रस्त है। इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में मेरा विचार है कि प्रतिलिपिकार ने अनवधान भ्रान्त्यादि दोष परिपूर्ण मन से इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की है। जैसे पदाम्भोजम् के स्थान पर 'यदाम्भोजम्'[1] ज्ञापक के स्थान पर 'ज्ञायक' और 'यथा' के स्थान पर 'जथा' तथा 'त' के स्थान पर 'त्त' , 'च' के स्थान पर 'व' इत्यादि।

लिपिकार व्याकरणशास्त्र का इतना अधिक पण्डित प्रतीत नहीं होता है। लिपिकार भी दो हैं यह स्पष्ट प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ के लगभग 50 पन्ने (100 पृष्ठ) लिपिकार ने सुसम्यक् प्रकारेण लिखे हैं। 50 पन्नों के उपरान्त अशुद्ध पाठ लिखकर के लिपिकार ने अशुद्ध पाठों को मिटाने का प्रयास किया है किन्तु उस मिटाये हुए पाठ से अनेकानेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं। कहा जा सकता है कि लिपिकार को लगभग 50 पन्ने लिखने में तो यत्किञ्चतरूपेण साफल्य प्राप्त हुआ है, किन्तु उसके बाद के पन्नों की प्रतिलिपि करने में असफल रहा है। प्रायः इस ग्रन्थ में अखण्ड पंक्तिलेखन दृष्टिगोचर होता है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में तो लिपिकार ने वाक्यान्त में पूर्णविराम (।) दिया है, किन्तु लगभग चार पन्नों के उपरान्त पूर्णविराम के स्थान पर वाक्यान्त में पूर्णविराम का बिन्दुरूप (.) आधुनिक चिह्न दिया हुआ है। जैसे जैसे हम आगे बढ़ते हैं तो प्रतिलिपिकार बिन्दुरूप (.) पूर्णविराम का चिह्न देना भी समाप्त कर देते हैं। अतः अखण्डपंक्तिलेखन ही करते हैं। इतना सब कुछ होने के उपरान्त भी यह ग्रन्थ अन्य प्रतियाँ की अपेक्षा शुद्ध और प्राचीन है।

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में संलग्न फोटोस्टेट कापी, पृ. 29-35

इस ग्रन्थ का कागज अन्य सभी ग्रन्थों से पुराना है। कुछ इस तरह के मूल पाठ उपलब्ध होते हैं जो इसकी प्राचीनता एवं प्रामाणिकता को द्योतित करते हैं। यथा 'श्री साम्बसदाशिवाय नमः, श्रीगुरुभ्यो नमः, श्री मदिष्ट देवता जयति' यह पाठ अन्य किसी भी ग्रन्थ की प्रति में उपलब्ध नहीं होता है। अतः यह मातृका प्रमुखाधार है।

पत्रपङ्क्त्यक्षरादिमापन-

इस ज-1 ग्रन्थ के 54 पन्ने अर्थात् 108 पृष्ठ समुपलब्ध हैं। अन्त के 30 पन्ने अर्थात् 60 पृष्ठ अनुपलब्ध हैं। यह ग्रन्थ अपूर्णदशा में ही उपलब्ध है, किन्तु अन्य मातृकाओं से महत्त्वपूर्ण, प्राचीन एवं प्रामाणिक है। प्रतिपृष्ठ पर 9 पंक्तियें हैं। प्रतिपङ्क्ति में सामान्यतः 45 अक्षर हैं। इसका माप 25.10 परिमित पत्र के 22 x 85 परिमित भाग में लेखन कार्य क्रिया गया है।

पुष्पिका-

इस ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ पर 'परिभाषेन्दु शेष (ख) र दी टीका' लिखकर-

विरेश्वरेण (वीरेश्वरेण) विदुषा भैम्यां पुस्तकमुत्तमम्।
लेखापितं शिवानाथ नगर्यां शिशुतुष्टये॥1॥

इस श्लोक से सुस्पष्ट हो जाता है कि विद्वान् वीरेश्वर ने भीम की टीका (भैमी) में काशीनगरी में बालकों की सन्तुष्टि के लिए उत्तम रचना (प्रतिलिपि) को लिखवाया[1]।

---

1. द्रष्टव्य ज-1, अ-1 के प्रथम तथा अन्तिम पृष्ठ को फोटोस्टेट कापी पृ. -29,30

2. गृहीतमूलग्रन्थोपशाखा अ–1 मातृका–

हस्तलिखितग्रन्थोपलब्धिस्थानादि–

राजस्थान के अलवर नगर में विश्वविख्यात– राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, महलचौक अलवर के संस्कृत हस्तलिखित सङ्ग्रह विभाग में यह मातृका उपलब्ध हुई है। किसी भी सूची पत्र में इन चार अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 मातृकाओं से सम्बन्धित आवश्यक सूचना उपलब्ध नहीं है।

अपने सम्पादन कार्य में, मैंने प्राचीन इस हस्तलिखित प्रति को अ–1 का संकेत चिह्न दिया है। इस अ–1 ग्रन्थ का ग्रन्थालय ग्रन्थांक– 4543 है। यह एक साधारण बड़े कागज पर काले रंग को स्याही से कलम से लिखा हुआ ग्रन्थ है। मैंने प्रस्तुत सम्पादन कार्य में ज–1 ग्रन्थ को प्रमुखाधार बनाया है किन्तु ज–1 ग्रन्थ अपूर्ण होने के कारण जितना उपलब्ध है, उतने भाग के लिए तो प्रमुखाधार ज–1 ग्रन्थ ही है किन्तु अनुपलब्ध भाग के लिए मैंने इसी अ–1 ग्रन्थ को सम्पादन कार्य की परिसमाप्ति तक सम्पादन कार्य में मूलाधार बनाया है।

हस्तलिखितग्रन्थलेखन वैशिष्ट्यः–

यह अ–1 ग्रन्थ भी मूलपुस्तकोपशाखा होने के कारण नितान्त अशुद्ध है। किन्तु ज–2, प–1, प–2, अ–2, अ–3, अ–4 ग्रन्थों की अपेक्षा यह ग्रन्थ अ–1 अधिक प्राचीन एवं शुद्ध भी दृष्टिगोचर होता है। इस अ–1 ग्रन्थ में सामान्य दृष्टिपात और सुलेख से तो ज्ञात होता है कि स्फुटाक्षर हैं, किन्तु जैसे ही इस मातृका का अध्ययन प्रारम्भ करते हैं तो सुस्पष्टतया प्रतीत होता है कि इसमें भी स्फुटाक्षर नहीं है अपितु शब्दाक्षरसादृश्यजनित भ्रान्तिमूलक दोष प्रत्येक वाक्य में दृष्टिगोचर होते हैं। यथा लेखनसादृश्यजनित भ्रान्तिमूलक भिन्नशब्दलेखन, वर्गव्यत्यास, सन्धि– पदच्छेद के विषय में अनवधानमूलक अथवा भ्रान्तिमूलकदोष, पूर्वपदस्थ विभक्ति प्रत्ययों का समीपवर्ति शब्दों में अन्तर्भाव, वर्ण, शब्द,

वाक्य, पङ्क्ति का पन्नों के व्यत्यात से व्युत्क्रम, उच्चारण श्रवण जनित दोष, सूत्रों का नवीन पद्धति (भिन्न व्युत्पत्ति) से लेखन, पूर्वलिपिकार के समान अनवधानता के कारण परित्यक्त वर्णों एवं शब्दों के स्थान पर स्वतर्क से नवीन वर्गों एवं शब्दों की स्थापना, द्विर्लेखन, मिश्रण, आधिक्य अर्थात् अक्षर सादृश्य से अधिकाक्षर विन्यास यथा एचोऽयवायाव: के स्थान पर ऐचौऽयावायाऽवा आदि।

प्रतिलिपिकार ने अखण्डपंक्ति लेखन किया है अर्थात् वाक्यान्त की परिसमाप्ति पर पूर्णविरामादि कोई भी चिह्नादि नहीं दिया है। इतना होने पर भी इस अ-1 ग्रन्थ का सम्पादन कार्य में अपने वैशिष्ट्य के कारण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रमुखाधार ज-1 मातृका के उपरान्त अ-1 मातृका से ही मुझे सम्पादन कार्य में अधिक सहायता उपलब्ध हुई है। कालदृष्टि से भी इस मातृका का अन्य मातृकाओं से महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका लेखनकाल विक्रम सम्वत् 1889 (सन् ईस्वी 1832) है। पाठ- शुद्धता की दृष्टि से भी ज-1 मातृका के पश्चात् यह मातृका दूसरे स्थान पर आती है। इसीलिए मैंने ज-1 ग्रन्थ के अनुपलब्ध भाग के लिए इसे प्रमुखाधार बनाने को चेष्टा की है।

पत्रपङ्क्त्यक्षरादिमापन-

इस 'अ-1' मातृका की पत्र संख्या-117 है अर्थात् 234 पृष्ठ उपलब्ध हैं। यह सम्पूर्ण मातृका समुपलब्ध होती है। इसकी लिपि देवनागरी है। इसका माप 10 X 23 सें.मी. है। प्रतिपृष्ठ पर 9 पंक्तियें हैं तथा प्रति पंक्ति में सामान्यत: 37 अक्षर हैं। इस मातृका का लिपिकाल विक्रम सम्वत् 1889 (सन् ईस्वी 1832) है।

पुष्पिका-

'परिभाषेन्दुशेखर की टीका परिभाषार्थमञ्जरी' है यह बात प्रथम पृष्ठ पर ही अङ्कित है। इस मातृका की परिसमाप्ति पर-

परिभाषा रसास्वादवद्घादरधियामुना भीमेन रचिना (ता) सेसेयं (सेयं) परिभाषार्थमञ्जरी इति श्री मदलगतेकरोपनामक माधवाचार्यतनय भीम प्रणीता परिभाषार्थमंजरी समाप्त; संवत् 1889 मि० मार्गशीरशे (शीर्षे) मासे वुसुक्ल (शुक्ल) पक्षे 9॥ मंदवासेरे॥ राम

3- गृहीतमूलग्रन्थोपशाखा ज-2 मातृका:-

ग्रन्थोपलब्धिस्थान

इस ज-2 हस्तलिखितग्रन्थ की भी मुझे उपलब्धि श्रीरघुनाथ संस्कृतानुसन्धान पुस्तकालय, जम्मू से धर्मार्थ ट्रस्ट के सौजन्य से हुई। इस ग्रन्थ का पुस्तकालय क्रमाङ्क- 3986 नवीना काश्मीरिकी लिपि, यह सूचीमध्य में दिया हुआ है। सम्पादन कार्य में इस ग्रन्थ के लिए ज-2 का संकेत चिह्न दिया गया है। साधारण कागज़ पर काली स्याही और कलम का प्रयोग किया गया है।

ग्रन्थलेखन वैशिष्ट्य-

ज-1 ग्रन्थ की अपेक्षा यह ग्रन्थ अशुद्धि परिपूर्ण न्यूनाधिक्य दोषों से प्रारम्भ से लेकर अन्त तक भरा हुआ है। अवलोकन करने से हमें विश्वास हो जाता है कि यह ग्रन्थ व्याकरणशास्त्र अनाधीत किसी छात्र लिपिकार के द्वारा लिखा गया है। इस ग्रन्थ में समान वर्ण एवं अक्षरों के सम्बन्ध में विभ्रान्ति, समरुपता के कारण शब्दों को अशुद्ध लिखना, शब्दों के अन्त्याक्षरों को अशुद्ध रीति से मिलाना, वर्णों एवं शब्दों का क्रम- परिवर्तन करना, एक ही शब्द से आरम्भ तथा अन्त होने वाले शब्दों को छोड़ देना आदि त्रुटियाँ लिपिकार ने पग-पग पर की हैं। जैसे 'नाग्नी' के स्थान पर 'नग्नि' 'प' के स्थान पर 'य' और 'य' के स्थान पर 'ज' या 'प' लिखना तो आम सा है। 'व' के स्थान पर 'च' और 'च' के स्थान पर 'व' अतः स्फुटाक्षर दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। हाँ, इतना निश्चित है कि प्रतिलिपिकार एक ही है। इस ग्रन्थ में कहीं भी पूर्णविराम या अर्द्धविराम चिह्न वाक्यान्त में नहीं हैं। अतः अखण्ड

पङ्क्तिलेखन किया गया है। इस ज-2 ग्रन्थ से ज-1 ग्रन्थ का सम्पादन कार्य में अत्यधिक महत्त्व होने के कारण ज-1 मातृका जितना भी उपलब्ध है प्रमुखाधार है।

पत्रपङ्क्त्यक्षरादिमापन-

यह ज-2 मातृका एक बड़े साधारण कागज पर स्याही से लिखी हुई है। इसके प्रथम तीन पन्ने अर्थात् 6 पृष्ठ अनुपलब्ध हैं। यह संकेत सूची पत्र से भी मिल जाता है कि 1-3 पत्राणि विहाय सम्पूर्णाः। इस मातृका के 52 पन्ने (पत्राणि) अर्थात् 104 पृष्ठ उपलब्ध हैं। 15 पंक्तिएँ (श्रेणयः) हैं और प्रत्येक पंक्ति में 45 अक्षर हैं। देवनागरी लिपि है। 34. 5 x 22.5 परिमित पत्र के 26. 5x12.5 परिमित भाग में लेखन कार्य है।

पुष्पिका

इस ज-2 ग्रन्थ की समाप्ति पर यह संकेत तो हमें अवश्य मिलजाता है कि इस ग्रन्थ के मूल लेखक माधवाचार्य पुत्र भीम हैं और इस प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम परिभाषार्थमञ्जरी है। किन्तु यह संकेत कहीं भी उपलब्ध नहीं होता कि इस ग्रन्थ की रचना कब हुई। जैसे-

परिभाषारसास्वादवद्वादरधियामुना भीमेन रविना (रचिता) सेयं परिभाषार्थमंजरी इति श्रीमदलगलेकरो नामक माधवाचार्य तनय भीमप्रणीता परिभाषार्थमंजरी समाप्तम्॥ शुभम्॥

गृहीतमूलग्रन्थोपशाखा प-1 मातृका-

हस्तलिखितग्रन्थोपलब्धिस्थानादि

इस प-1 मातृका की उपलब्धि मुझे डॉ. सरीजा भाटे, विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग, पूना विश्वविद्यालय के सौजन्य से "ढैक्कन कॉलेज, पूना" के हस्तलिखित संग्रहालय से हुई। इस मातृका का पुस्तकालय पुस्तकाङ्क- 10975 है। यह मातृका साधारण बड़े कागज पर काली स्याही से लिखी गई है।

ग्रन्थलेखन वैशिष्ट्य-

प-2, अ-3, अ-2, अ-4 की अपेक्षा इस प-1 ग्रन्थ में कुछ अल्पदोष उपलब्ध होते हैं। आनवधानिकी त्रुटि भी कुछ अल्प संख्या में है। अक्षर लेखन समीचीन नहीं है पर प्रायः स्फुटाक्षर है। वकार और बकार, त्रकार और न्नकार, तकार और त्तकार, पकार और यकार, यकार और जकार, शकार और षकार का व्यत्यास तो है ही। यह प-1 ग्रन्थ भी दो लिपिकारों के द्वारा लिखा गया है। इस ग्रन्थ का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि कहीं कहीं तो बांस की बनी कलम का प्रयोग किया गया है और कहीं कहीं आधुनिक होल्डर का प्रयोग किया गया है। इन दोनों प्रतिलिपिकारों में एक लिपिकार तो स्फुटाक्षर लिखता है किन्तु जब दूसरा लिपिकार प्रतिलिपि करता है तो वह सम्पूर्ण पाठ अशुद्ध और अस्फुटाक्षरों में लिखता है। यथा समाक्षर लोप कर देना, अतिनिकट के पाठ की पुनरावृत्ति करना, पंक्ति को काट कर पुनः कुछ अङ्कित करना और फिर काट देना आदि। कहा जा सकता है कि एक लिपिकार व्याकरण तथा देववाणी से सुसम्यक् परिचित है तथा दूसरा लिपिकार यत्किञ्चित् रूपेण ही संस्कृत भाषा से परिचित है। एक लिपिकार तो पूर्ण विराम वाक्यान्त में (।) दण्डरूप चिह्न से दे देता है किन्तु दूसरा लिपिकार अखण्डपंक्ति लेखन करता दृष्टिगोचर होता है। इससे स्पष्ट है कि प्रथम लिपिकार के द्वारा की गई प्रतिलिपि से मुझे सम्पादन कार्य में अत्यधिक सहायता समुपलब्ध हुई है।

पत्रपङ्क्त्यक्षरादिमापन-

इस प-1 हस्तलिखित प्रति के 121 पन्ने (पत्राणि) 242 पृष्ठ (पृष्ठानि) हैं। यह प्रति सम्पूर्णरूपेण उपलब्ध हुई है। प्रतिपृष्ठ पर 10 पंक्तियें (श्रेणियाँ) हैं। प्रति पंक्ति में प्रायः 30 अक्षर हैं। 26.5 x 10.5 परिमित पत्र के 19.5 x 8 परिमित भाग पर लेखन कार्य किया हुआ है।

पुष्पिका-

इस प्रति के प्रथम पृष्ठ के अवलोकन से ही हमें ज्ञात हो जाता है कि यह "परिभाषार्थमञ्जरी" ग्रन्थ "परिभाषेन्दुशेखर" की टीका है और इस ग्रन्थ के रचयिता माधवाचार्यपुत्र भीम हैं। यथा-

"परिभाषेन्दुशेखर टीका, श्री॥ भैमी प्रारंभ॥श्री॥"

प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्त में भी ग्रन्थ का रचयिता भीम उसके पिता माधवाचार्य तथा प्रतिलिपिकार एवं उसके पिता का नामोल्लेख है। इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि प्रतिलिपिकार ने कब की? यह उल्लेख भी किया गया है। यथा- "इति श्री मद्गलगलेकरोपनामक माधवाचार्य तनय भीमप्रणीता परिभाषार्थमंजरिसमाप्तम्॥ कासिरामपदद्वंद्वनलिने चमरीयता॥ चिंतामणेन लिखिता परिभाषार्थमंजरि॥3॥" श्रीशुभं भवतु॥ श्रीरामराम-रारामायरामार्पणमस्तु॥ शके 1773 विरोधिकृतनाम संवत्सर अषाढ् (आषाढ) शुक्ल 8 अष्टमितद्दिने द्वितीय यामे पुस्तकं समाप्तम्॥ हस्त अक्षर माहादेव (महादेव) पौराणिकात्मज दत्तात्रयेण लिखितम्[1]॥

॥6॥ भैमीसमाप्तिमगमत्॥6॥

5. गृहीतमूलग्रन्थोपशाखा- प-2 मातृका-

ग्रन्थोपलब्धिस्थान-

प-2 हस्तलिखित ग्रन्थ की उपलब्धि मुझे भण्डारकर प्राच्य विद्या अनुसन्धान संस्थान, पूना के क्यूरेटर श्री पी.डी.नवाथे के सौजन्य से अक्टूबर, 1988 में हुई। इस ग्रन्थ का पुस्तकालय क्रमाङ्क- 181/ 1882 - 83 है। प्रथम तीन पृष्ठों को छोड़कर अर्थात् प्रथम तीन पृष्ठ नहीं हैं। शेष ग्रन्थ सम्पूर्ण है। यह निर्देश सूची मध्य में दिया हुआ है तथा ग्रन्थ के प्रथम पृष्ठ पर भी अंकित है। ग्रन्थ के ऊपर पृष्ठों की संख्या भी

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में संलग्न फोटोस्टेट कापी, पृ.-29-35

4,5,6 से प्रारम्भ करके ग्रन्थ की समाप्ति पर पृष्ठ संख्या-35 दी गई है। इससे यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि और तो और प्रतिलिपिकार को भी इस बात का ज्ञान नहीं है कि इस ग्रन्थ का आदि भाग कहाँ से प्रारम्भ होता है। अनुमान के आधार पर, मैं कह सकता हूँ कि कम-से-कम इस ग्रन्थ के 90 पन्ने अर्थात् 180 पृष्ठ अनुपलब्ध हैं।

ग्रन्थलेखन वैशिष्ट्यः-

इस प-2 ग्रन्थ का लिपिकार एक ही है। वाक्यान्त में एक दंड के स्थान पर सर्वत्र पूर्णविराम के लिए (।।) दो दण्डों का प्रयोग किया गया है। इससे कहीं कहीं पूर्णविराम लगाने में सहायता अवश्य प्राप्त हुई है। किन्तु लेखन समय में लेखनिकानवधानजन्य वर्ण-शब्द-पङ्क्ति तथा परिच्छेदादि में त्रुटि, वर्णशब्दादि का अनवधानजन्य व्युत्क्रम, लेखन समय में लिपिकार के द्वारा मूलग्रन्थस्थ लिप्यक्षरादि दुर्ज्ञेय होने से दुर्बोध स्थलों में लिपिकार के द्वारा कल्पित अर्थात् मूलग्रन्थरूप में संसूचित (अन्तर्भावित) पाठ स्पष्टया प्रतीत होता है। अनवधानता के कारण यत्र-तत्र परित्यक्त वर्णों एवं शब्दों के स्थान पर स्वतर्क से नवीन वर्णों एवं शब्दों की स्थापना, पुनः पुनः द्विर्लेखन, प्राचीनवर्तनी के स्थान पर नवीन वर्तनी का प्रयोग, समरूपता के कारण शब्दों को अशुद्ध प्रकार से लिखना, शब्दों के अन्त्याक्षरों को भी अशुद्ध रीति से मिलाना, अनजाने में हुई भूलों के परिणामों में सुधार करने का प्रयत्न करना आदि।

लिपिकार को प्रायः इन अक्षरों में कहीं कहीं भ्रम हो जाता है, जैसे 'ट' के स्थान पर 'ठ', 'द्ध' के स्थान पर 'द्द', 'थ' को 'ध' तथा 'ध' को 'थ', 'भ' को 'म' और 'म' को 'व', 'प' को 'य', 'व' को 'च' और 'च' को 'म', 'त' को 'त्त' का भ्रम, 'र्' का भ्रमादि। अतः प-1 की अपेक्षा यह प-2 ग्रन्थ अशुद्ध है। यत्र तत्र तो पाठ को पढ़ने में तथा पूर्णविरामादि में अवश्य इस ग्रन्थ से सम्पादन कार्य में सहायता उपलब्ध हुई है।

पत्र पङ्क्त्यक्षरादि मापनः-

इस प-2 हस्तलिखित ग्रन्थ के 32 पन्ने (पत्राणि) 64 पृष्ठ (पृष्ठानि) उपलब्ध हैं। भण्डारकर प्राच्य विद्या अनुसन्धान संस्थान पूना के सूचीपत्रानुसार प्रथम 3 पन्ने अर्थात् 6 पृष्ठ अनुपलब्ध हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि लगभग 90 पत्र अर्थात् 180 पृष्ठ अनुपलब्ध हैं। ग्यारह श्रेणियाँ हैं और प्रतिश्रेणी में लगभग 50 अक्षर हैं। देवनागरी लिपि है। 34.5 x 22.5 परिमित पत्र के 27.5 x 8 परिमित भाग पर लेखन कार्य किया हुआ है।

पुष्पिका-

परिभाषा[1] र (सा) स्वादवत्धादरयामुना॥ भीमेनरचितासेयं परिभाषार्थम (मं) जरी ॥1॥ इति श्रीमहुगलेकरोपनामकमाधा (ध) वार्य (वाचार्य) तनय भीम प्रणीतापरिभाषार्थमंजरि समाप्तम्॥ काशिरामपद्वंद्व- नलिने भ्रमिरियता चिंतामणे लिखितापरिभाषार्थमंजरि 166 श्रीरामरामरामश्रीलक्षी (लक्ष्मी) जी सहादू राम राम श्रीलक्ष्मीमत: श्रीहनमान (हनुमान:) राम राम राम॥

6. गृहीतमूलग्रन्थोपशाखा अ-3 मातृका-

पुस्तकोपलब्धिस्थान-

इस अ-3 मातृका की उपलब्धि भी राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान महलचौक अलवर से हुई। इस मातृका का पुस्तकालय क्रमांक- 3079 है। यह एक बड़े कागज पर काली स्याही और कलम से लिखा हुआ ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भी पूर्ण उपलब्ध होता है। इस ग्रन्थ का लिपिकाल विक्रम सम्वत्-1913 है।

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध- प्रबन्ध में संलग्न प-2 की फोटोस्टेट कापी, पृ.-34

पुस्तकलेखनवैशिष्टय-

यह अ-3 ग्रन्थ मूलपुस्तकोपशाखा होने से अत्यन्त अशुद्ध, अक्षरत्रुटि विपर्यन्यूनाधिक्यादि विविध दोषों से ग्रस्त अक्षरलेखन के समय कहीं मात्राओं का आधिक्य और कहीं न्यूनता, मैं समझता हूँ कि अनवधान भ्रान्त्यादिदोष परिपूर्ण मन से प्रतिलिपिकार ने इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि की है। ऐसा मेरा अनुमान है। हाँ, इतना स्पष्ट है कि लिपिकार एक ही है और उसने सुलेख से लिखने का प्रयत्न अवश्य किया है किन्तु सुलेख बना कर 'प' का 'य' और 'प' को 'ष' भी अनवधानता के कारण लिख दिया है। अ-1 की अपेक्षा इस मातृका में समरुपता के कारण शब्दों को अशुद्ध लिखना, अन्त्याक्षरों को अशुद्धरीति से मिलाना और एक शब्द को दूसरे वाक्य से मिलाना, वर्णों एवं शब्दों का क्रम परिवर्तन कर देना, एक ही शब्द से आरम्भ तथा अन्त होने वाले शब्दों का परित्याग करना, अक्षर लोप करना, निकट के पाठ की पुनरावृत्ति कर देना, अक्षरों में भ्रमवश कुछ का कुछ लिख देना जैसे 'च' को 'ब' या 'व' तथा 'छ' को 'थ' और 'ध' को 'थ' 'भ' को 'व' लिख देना आदि त्रुटियों से यह ग्रन्थ भरा हुआ है। लिपिकार ने अखण्ड पंक्तिलेखन किया है। पूर्णविराम के लिए वाक्यान्त में किसी भी प्रकार का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता है।

पत्रपङ्क्त्यारादिमापनः-

इस अ-3 मातृका की पत्रसंख्या-166 है और पृष्ठ संख्या-332 है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता है। प्रतिपृष्ठ पर 9 पंक्तियां हैं तथा प्रति श्रेणी में प्रायः 30 अक्षर हैं। कागज का माप 13.5 x 26 सैं.मी. है। लिपि देवनागरी है। ग्रन्थ दशा अच्छी है। लिपिकाल 1913 है।

पुष्पिका-

परिभाषार (सा) स्वादवद्वादरधियामुनाभीमेनरचिना (ता) सेसीयं (सेयं) परिभाषार्थमंजरी इति श्रीमदलगलेकरोपनामकमाधवाचार्यतनयभीमप्रणीता

परिभाषार्थमंजरीसमाप्त:॥ संवत् 1913 ज्येष्ट (ठ) कृष्णा (कृष्ण)

2. द्वितीया लिपिकृतं शंकरेण शुभं भवतु। श्री गोपालाय नमः हे कृष्ण॥ राम जी

दा.पुस्तकशालासरकार अलवर सं.-1913

7. गृहीतमूलग्रन्थप्रशाखा अ-2 मातृका-

ग्रन्थोपलब्धिस्थान-

इस अ-2 मातृका की उपलब्धि राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान महलचौक अलवर से आदरनीय वेणीमाधव शर्मा वरिष्ठ शोध सहायक के सौजन्य से जून 1989 में हुई। इस ग्रन्थ का ग्रन्थालय ग्रन्थाङ्क - 3072 है। यह अपूर्ण प्रति है।

ग्रन्थलेखन वैशिष्ट्य-

यह अ-2 मातृका अ-4 मातृका से एकदम मिलती जुलती है। जो अशुद्धियाँ अ़-2 में हैं प्राय: वही अशुद्धियाँ अ-4 में भी उपलब्ध होती हैं। अ-1 की अपेक्षा यह ग्रन्थ अशुद्धिपूर्ण है। इस ग्रन्थ में भी द्विर्लेखन, प्रक्षेपमित्रण, अक्षरसादृश्य के कारण अधिकाक्षर विन्यास, श्रेणियों की पक्तियों की पंक्तियों का छोड़ देना, संकेतित शब्दों का अन्यथाग्रहण, लिपिकार की विशिष्ट लिपि शैलीवश सहजतया अथवा भ्रान्तिवश लिपिकार ने तो कुछ लिखा है किन्तु उसको और रूप में पठन करके 'म' को 'स' आदि लिखना, वर्णनवद को 'चरणनवद' आदि लिखना अर्थात् 'व' को 'च' आदि लिखना। 'इ' को 'ई' के रूप में लिखना तथा स्वेच्छा से बिन्दु (.) का प्रयोग करना। अनवधान भ्रान्ति आदि दोषपूर्ण मन से लिखना, अक्षर त्रुटिव्यत्यास न्यूनाधिक्यादिदोषों से यह प्रति सर्वतोभावेन ग्रस्त है। सुलेख होने के कारण जितनी भी यह मातृका उपलब्ध हुई है पाठ के पाठन में मुझे इससे भी सहायता उपलब्ध हुई है। केवलमात्र प्रथम पृष्ठ पर पूर्णविराम के लिए लिपिकार ने आधुनिक

बिन्दु (.) रूप पूर्णविराम का चिह्न दिया है, किन्तु द्वितीय पृष्ठ से लिपिकार ने अखण्ड पंक्ति लेखन किया है तथा वाक्यान्त में पूर्ण विरामादि के लिए कोई भी संकेत चिह्न नहीं दिया है। यह अपूर्ण प्रति उपलब्ध होती है।

पत्रपंक्त्यक्षरादिमापनः-

इसके पूर्वाद्र्ध के 46 पन्ने (पत्राणि) अर्थात् 92 पृष्ठ उपलब्ध होते हैं। प्रतिपत्रपंक्तिसंख्या 9 है और प्रतिपंक्ति अक्षरसंख्या- 31 है। यह साधारण कागज (कर्गज) पर काली स्याही से कलम से लिखा हुआ ग्रन्थ है। इसका माप 11.5 x 25.5 सैं.मी. है। यह अलवर सूचीपत्र के अनुसार 20वीं शताब्धि का लिखा हुआ ग्रन्थ है। लिपि देवनागरी/ संस्कृत है।

पुष्पिकाः- अनुपलब्ध।

8. गृहीतमूलग्रन्थप्रशाखा अ-4 मातृका-

ग्रन्थोपलब्धिस्थान-

इस अ-4 हस्तलिखित ग्रन्थ की उपलब्धि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान से हुई। इस ग्रन्थ का ग्रन्थालय क्रमांक- 3075 है। यह साधारण कागज पर बांस की बनी कलम से लिखा गया है और लिखने में काली स्याही का प्रयोग किया गया है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध होता है। ग्रन्थालयसूची के अनुसार इस अ-4 का लेखन काल 20वीं सदी है।

ग्रन्थलेखन वैशिष्ट्य-

आनवधानिकी ग्रन्थत्रुटि अत्यधिक है। लिपिकार प्रत्येक पन्ने पर कुछ न कुछ पाठ अवश्य छोड़ देता और उस पाठ के उसी प्रकार के वर्ण या अक्षर से उसे मिला देता है। इस प्रकार की कोई एक दो त्रुटि ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होती है अपितु पचासों बार यही क्रम चलता रहता

है। इस ग्रन्थ के 220 पृष्ठ हैं। अगर लिपिकार मूलग्रन्थ के सम्पूर्ण पाठ को नकल करता तो अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि 220 पृष्ठों के बजाए इस प्रस्तुत मातृका के 280 पृष्ठ होते[1]। अनवधानता के कारण वर्ण, अक्षर, शब्द, तथा वाक्यादि का पुनर्लेखन, द्विर्लेखन, वर्णसादृश्य के कारण अधिक वर्ण विन्यास, किसी विशिष्ट कारण के बिना लेखक के द्वारा अनवधानता से अक्षर, शब्द एवं वाक्यों का परित्याग, अप्रसिद्ध पदों के स्थान में हैतुक अथवा अहैतुक प्रसिद्ध पर्यायपद स्थापन, लेखन सादृश्यजनित भ्रान्तिमूलक भिन्न शब्द लेखन आदि। इस मातृका में भी प्रायः अखण्डपंक्तिलेखन किया गया है। मातृका के प्रारम्भ में वाक्यान्त में पूर्णविराम का बिन्दुरूप (.) आधुनिक चिह्न दिया हुआ है। कहीं कहीं बिन्दुरूप चिह्न के स्थान पर दण्ड रूप (।) पूर्णविराम का चिह्न भी दिया हुआ है। किन्तु आवश्यकतानुसार पूर्णविरामचिह्न नहीं दिये हुए हैं। यहाँ लिपिकार को पूर्णविराम के लिए याद आता है तो वह पूर्णविराम लगा देता है। अधिकतर पूर्णविराम के बिना ही लिपिकार अखण्डपंक्तिलेखन करता है। इतना होने पर भी लिपिकार के स्फुटाक्षर होने से इस ग्रन्थ से सम्पादन कार्य में सहायता उपलब्ध हुई है।

पत्रपंक्त्यक्षरादि मापन-

इसके 110 पत्र (पत्राणि) अर्थात् 220 पृष्ठ उपलब्ध हैं। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। प्रतिपृष्ठ पर 9 श्रेणियाँ हैं और प्रत्येक श्रेणी में सामान्यतः 39 अक्षर हैं। इसका माप 13.5 x 25.5 सें.मी. है। लिपि देवनागरी है और ग्रन्थदशा अच्छी है। ग्रन्थालय सूची के अनुसार 20वीं सदी की रचना है। साधारण कागज का प्रयोग एवं कलम तथा स्याही का प्रयोग किया गया है।

पुष्पिका- में परिभाषार्थमंजरी के कर्ता माधवाचार्य पुत्र भीम का नाम है।

---

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में संलग्न फोटोस्टेट प्रतियाँ, पृ. 29-35

परिभाषार्थमंजरी की मातृकाओं में अक्षरव्यत्यास-

सभी मातृकाओं में विशेषरूप से ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-4 मातृकाओं को किसी एक पंक्ति में नहीं अपितु प्रतिपंक्ति में लिपि करने के समय में लिपिकार के द्वारा अनवधानता से भ्रान्तिवश एवं स्वकीय विशिष्टलेखनशैली के प्रभाव से अक्षर विपर्यय यत्र तत्र दृष्टिगोचर होता है। मातृकाओं के वर्णन के अवसर पर बारम्बार प्रतिपादित किया गया है। उभयविधाक्षरलेखनपूर्वक अक्षरव्यत्यास का सविस्तर प्रदर्शन कर रहा हूँ। प्रायः सामान्यरूप से सर्वत्रोपलभ्यमान अक्षरव्यत्यास इस प्रकार हैं:-

0 कारस्थान में 0 कार मातृकासंकेतचिह्न 0कार स्थान में 0कार-मातृका संकेत

अ	श्र	ज-2	णे	ए	अ-3
श्र	अ	प-2	ए	ण	अ-2
अ	झ	अ-3	य	घ	अ-1
इ	उ	अ-3	थ	य	अ-4
उ	इ	अ-3	छ	थ	ज-1
इ	द	ज-2	थ	छ	अ-4
द	इ	अ-3	भ	झ	अ-2
ह	ई	प-2	झ	भ	अ-3
ङ	ड	प-2	भ	ब	अ-3
ड	ङ	अ-3	ब	व	अ-3
व	च	प-2	ढ	ट	प-2
च	व	अ-2	ट	ढ	प-2

क्ष	झ	अ–2	ढ	ड	अ–3
क्ष	थ	प–1	य	र्थ	प–2
ज	ब्र	अ–1	र्थ	य	प–1
ब्र	न	अ–3	थ	य	ज–2
र	इ	ज–1	न	ल	ज–1
			उ	ह	प–2
			ह	ड	प–2
ड	ढ	ज–2	य	प	अ–2
ढ	ड	ज–2	प	य	अ–1, ज–1
ढ	ट	अ–1	य	ज	ज–2
ट	ड	अ–3	ज	झ	अ–3
छ	ह	अ–3	त	न	ज–2
ह	श	अ–2	त	ज	अ–1
न	ल	प–2	ह	..	अ–2
हा	श	प–2	ब्र	न्र	ज–1
शा	हा	अ–3	न्र	ब्र	प–2
र	ण	प–2	द	ध	अ–1
ण	र	अ–3	द	त	प–2, अ–1
र	ट	अ–3	द	द्द	प–2
त	न	अ–3	द्द	द	ज–2

ट	र	अ-4	स	य	प-2
ग्रा	आ	ज-1	च	व	ज-1

उपरिनिर्दिष्ट उपवर्णन तो केवल असंयुक्त अक्षरों के विषय में है। न्न, त्र, कृ, त्न, क्त्न, त्त्रे, त्त, ल्ले, ल्त, कत्र, क्र, त्थ, च्छ, द्ध, कभ, ज्झ, ट्ठ, क्क इत्यादि संयुक्ताक्षरों के विषय में तो सभी प्रतियों में स्थान-स्थान पर व्यत्यास दृष्टिगोचर होता है। उनकी गणना करना सम्भव नहीं है। निम्नलिखित व्यत्यासों से तो यह सभी मातृकाएँ भरी पड़ी हैं। जैसे-

रेफस्थान में : अनुस्वार

अनुस्वार के स्थान में: ऊर्ध्वमात्रा

ओकार स्थान में: औकार

औकार के स्थान में: ओकार

ऊर्ध्वमात्रा के स्थान में: अनुस्वार

उकार के स्थान में: ऊकार

ऊर्ध्वमात्रा के स्थान में पृष्ठ मात्रा दी गई है।

इस तरह वाक्यान्त में दण्ड स्थान में (1) पूर्णविराम चिह्न (.) बिन्दुरूप ज-1, प-1, अ-2, अ-4 में कहीं कहीं दिया हुआ है।

परिभाषार्थमंजरी मातृकाओं में प्रधानदोष चतुष्टय-

इस प्रकार परिभाषार्थमंजरी का सम्पादन करने के पश्चात् यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशाश्रित हेतु विशेष के कारण मूल मातृका की आवृत्ति करने के समय लिपिकारों के अनवधान, अज्ञान आदि दोषों के कारण निम्नलिखित चार प्रकार के दोष हमें उपलब्ध होते हैं:-

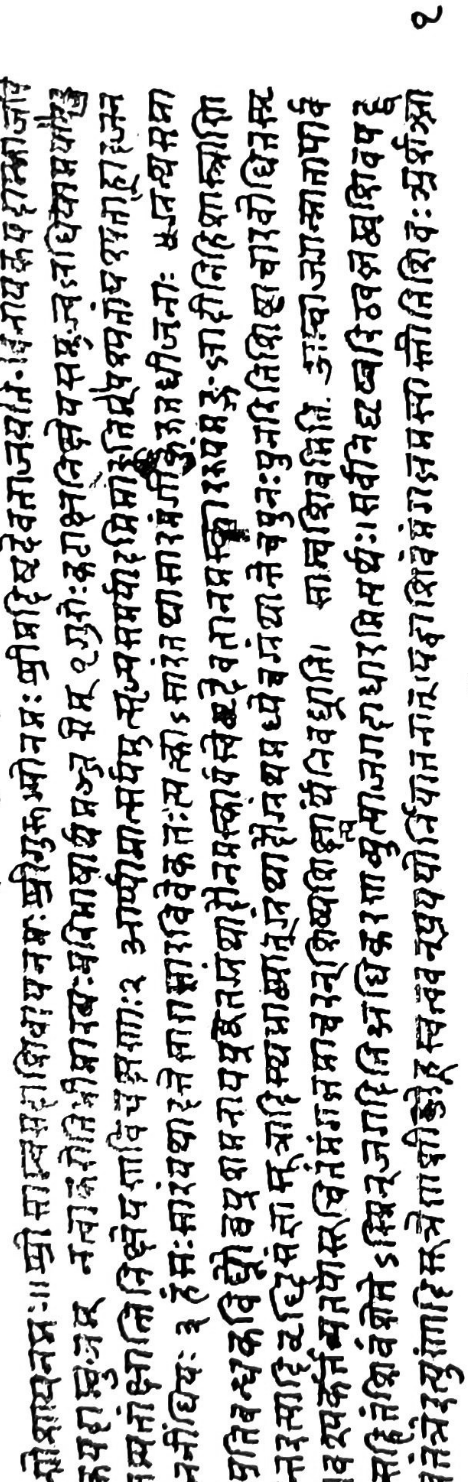
1. प्रतिलिपिकार के द्वारा प्रतिलिपि करने के समय अनवधानजन्य वर्ण शब्द-पंक्ति तथा परिच्छेद को छोड़ने की त्रुटि।

2. लिखने के समय लेखनिक अनवधानजन्य वर्ण-शब्द-पङ्क्ति आदि का व्युत्क्रम या व्यत्यास।

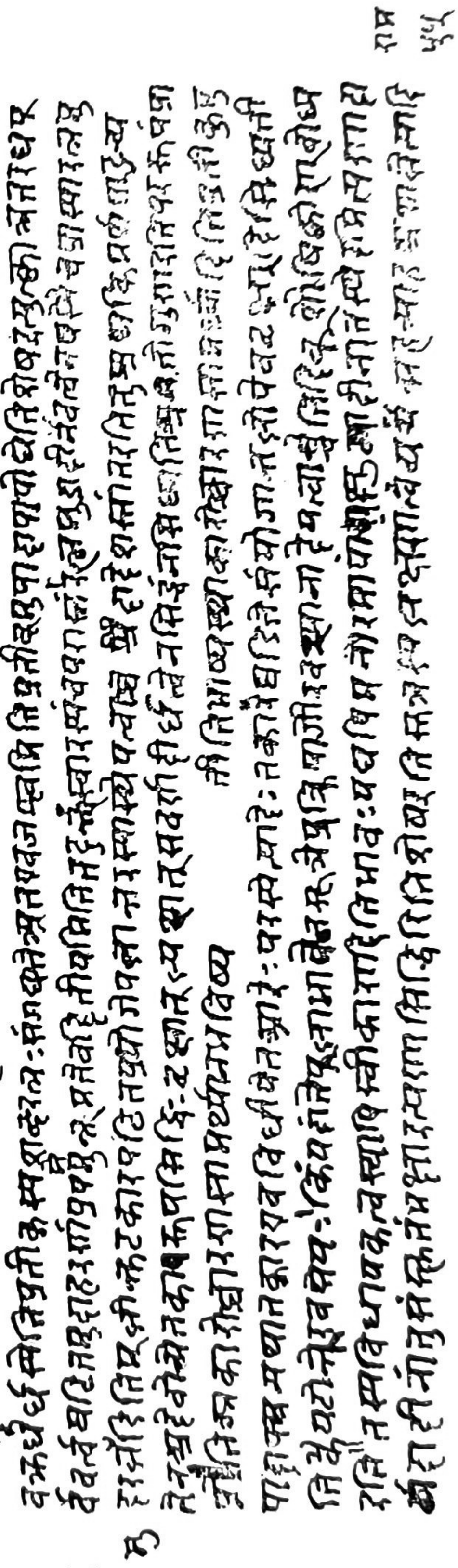
3. लिखने के समय लिपिकार के द्वारा अथवा पढ़ने के समय छात्र के द्वारा अथवा पाठक के द्वारा या पढ़ाने के समय में अध्यापक के द्वारा व्याख्या करने के समय व्याख्याकार के द्वारा हैतुक अथवा अहैतुक प्रक्षिप्त पाठ को जोड़ना।

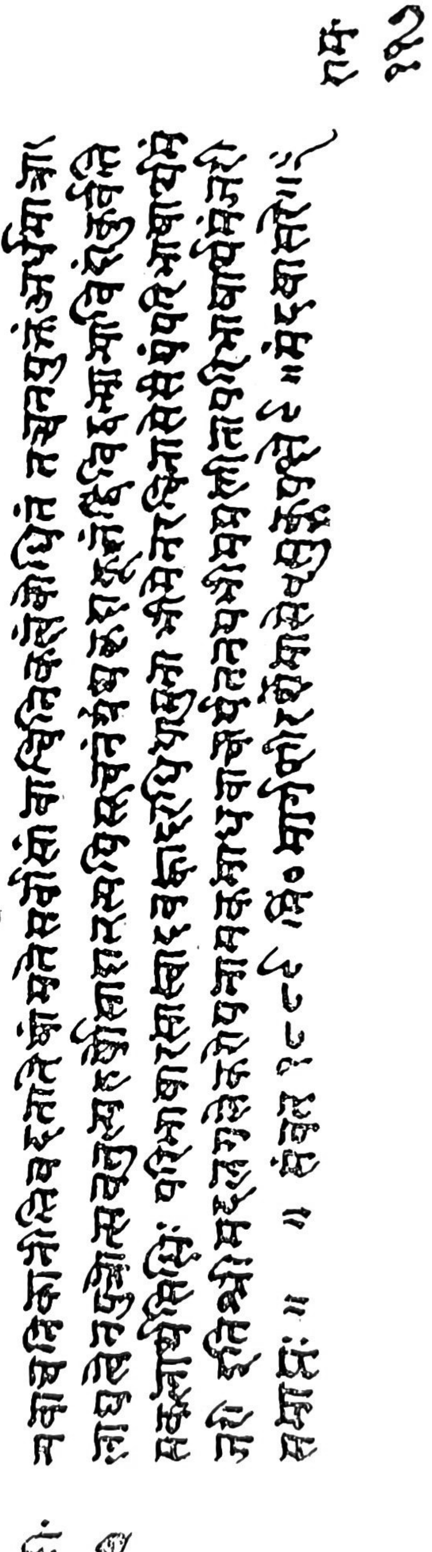
4. मूलग्रन्थ की लिप्यक्षरादि के दुर्ज्ञेय होने से दुर्बोध स्थलों में तथा लेखनिक के प्रमादस्थलों में लिपिकारों, पाठकों, व्याख्याकारों आदि के द्वारा कल्पितपाठ का मूलग्रन्थ में अन्तर्भाव।

प्र-१ मातृका (प्रथम पत्र)

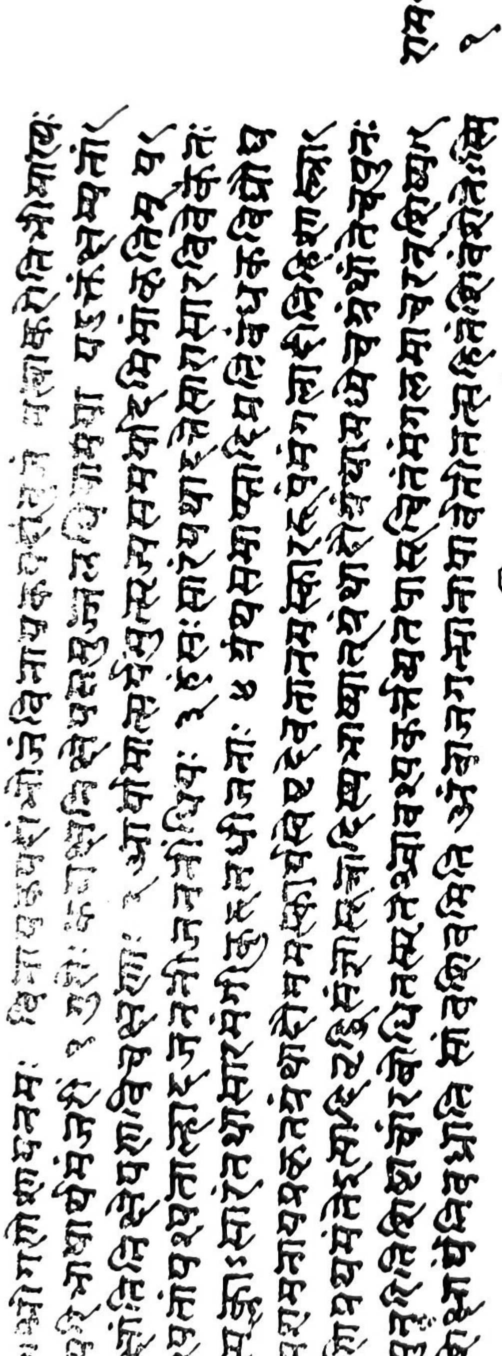


प्र-१ मातृका (उपलब्ध अन्तिम पत्र)

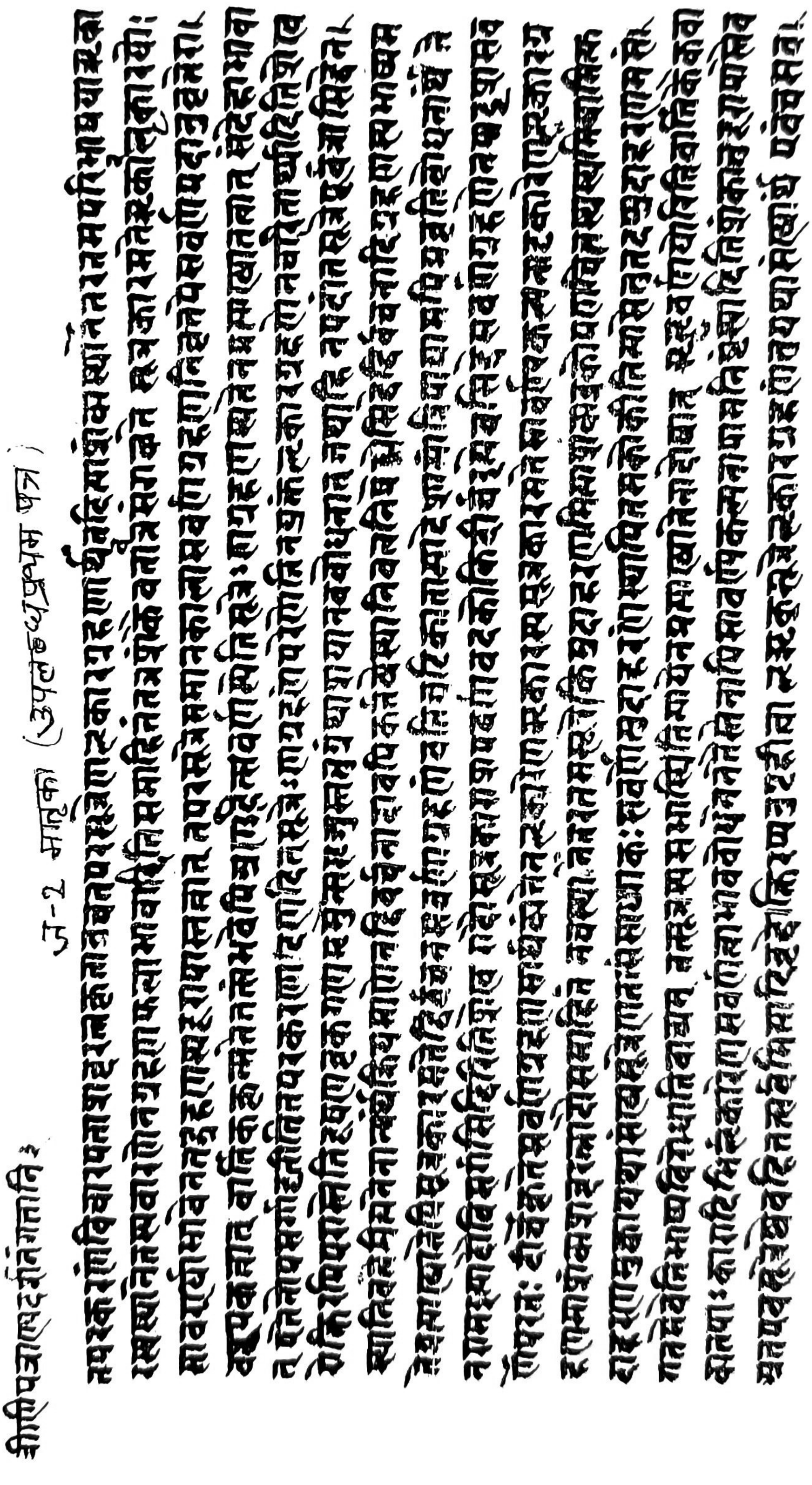


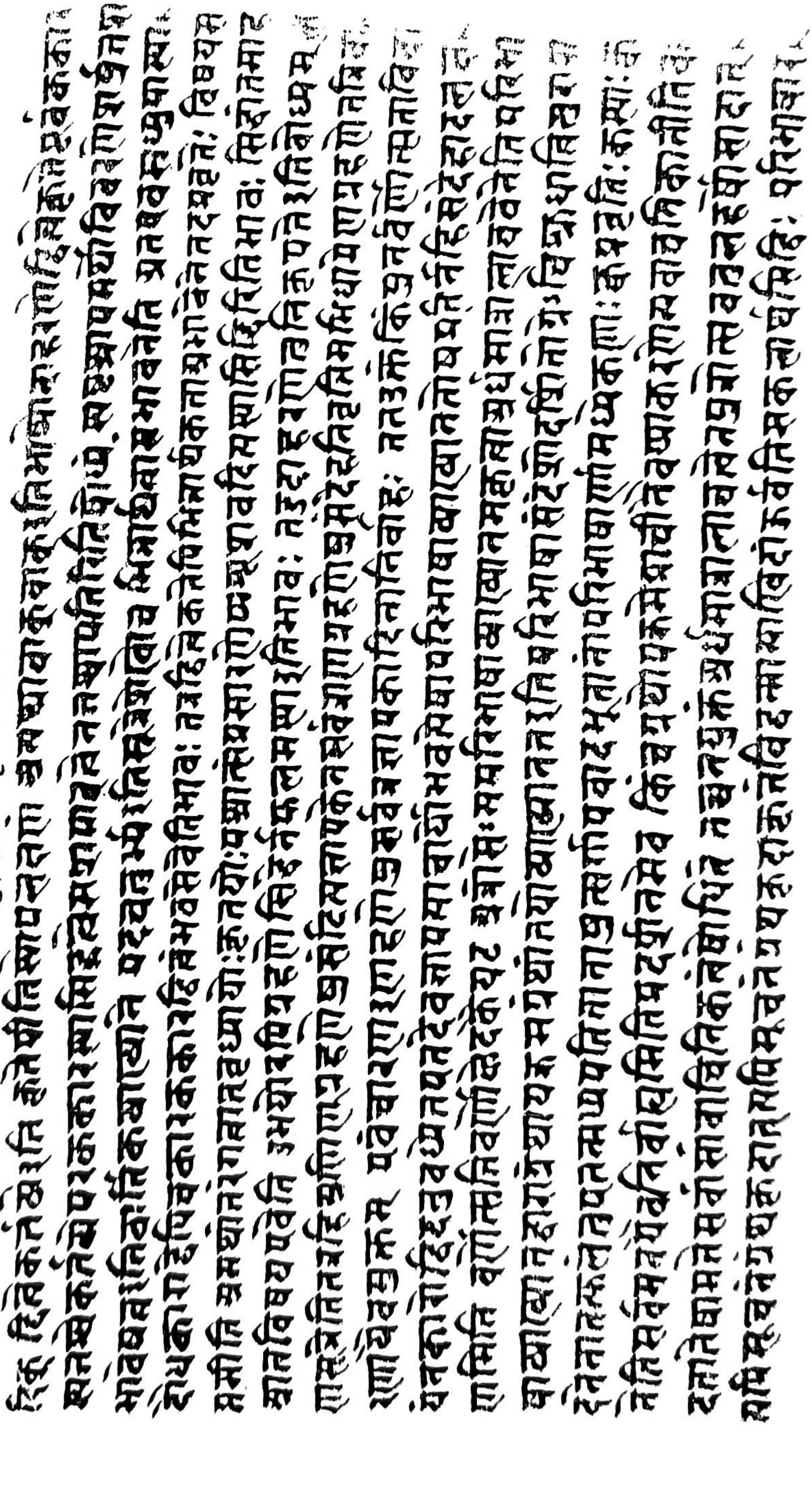


अ-१ मातृका (अन्तिम पत्र)

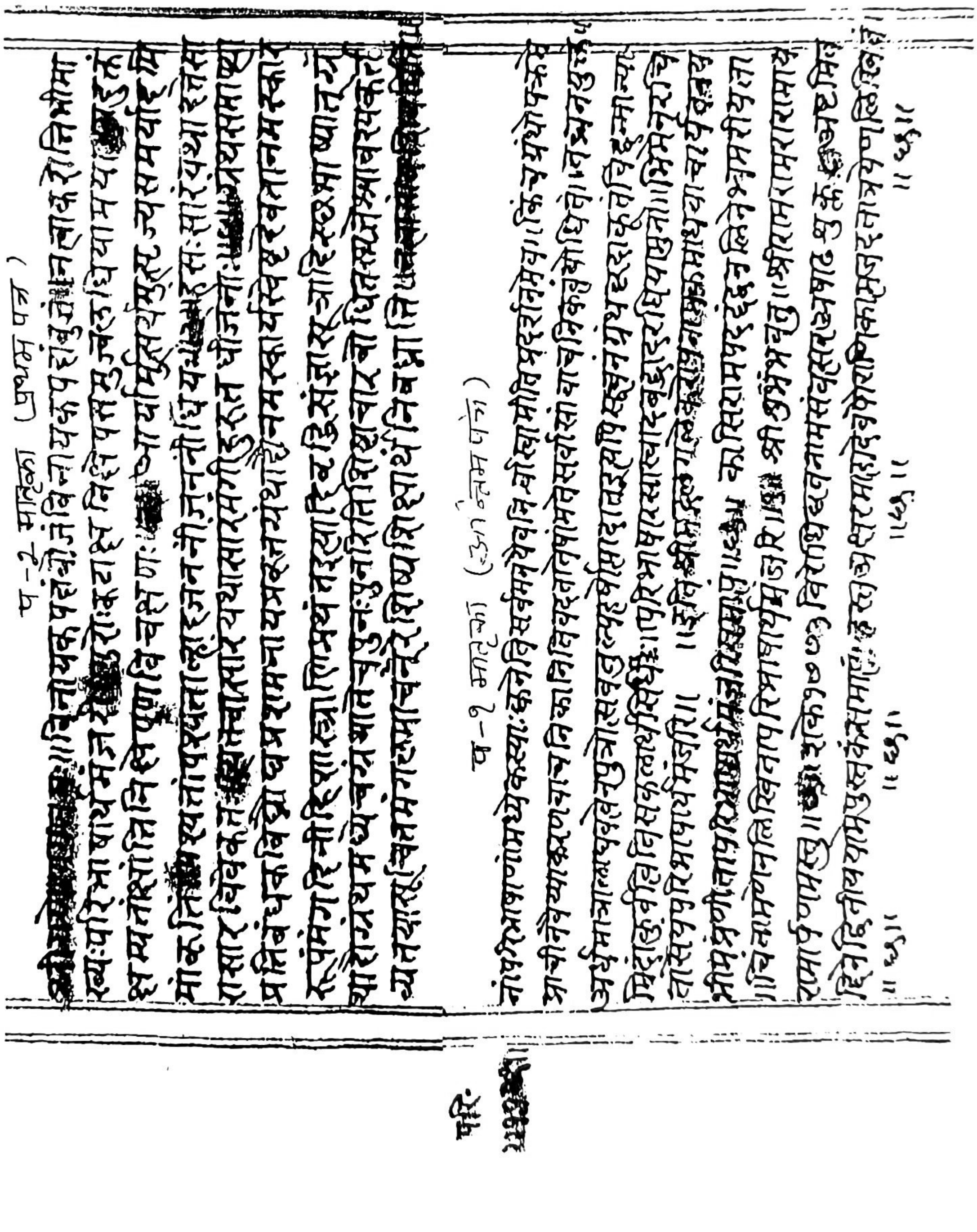


अ-१ मातृका (प्रथम पत्र)

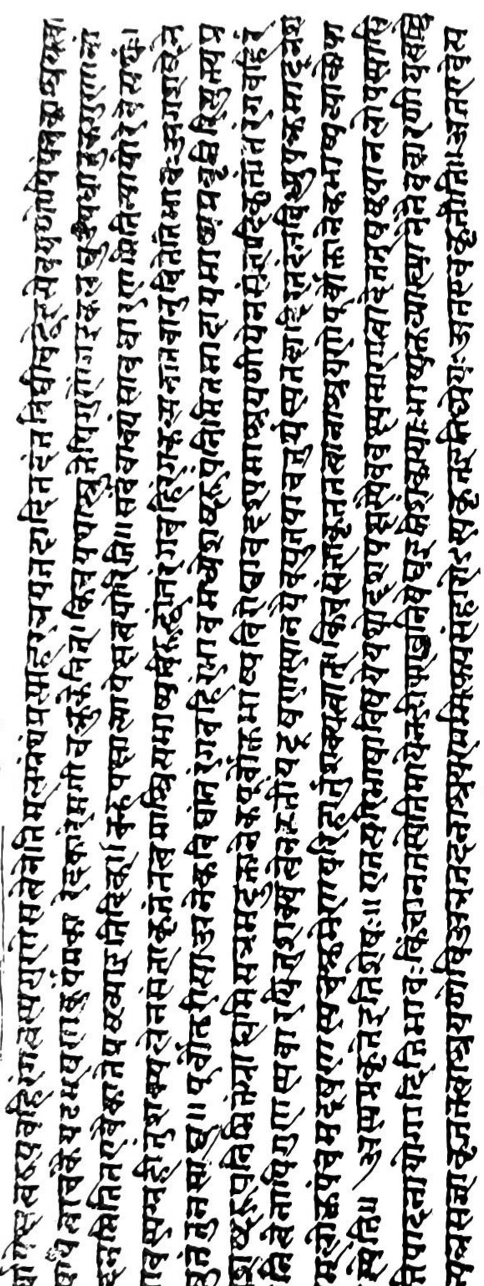

ग्र-2 मातृका (उपलब्ध प्रथम पत्र)



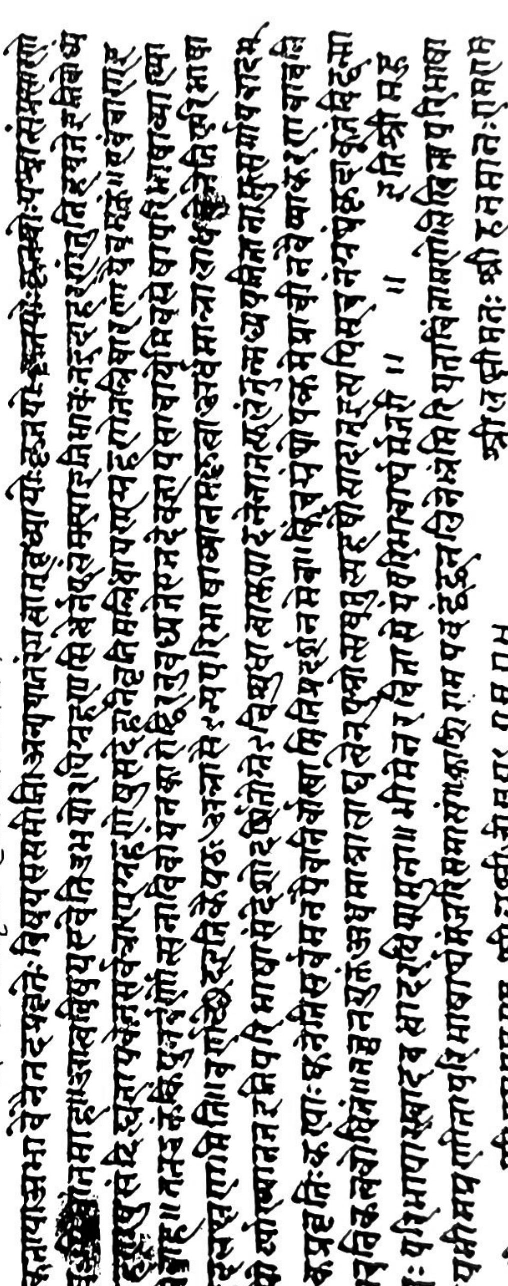
उ-१ - मातृका (अन्तिम पत्र)

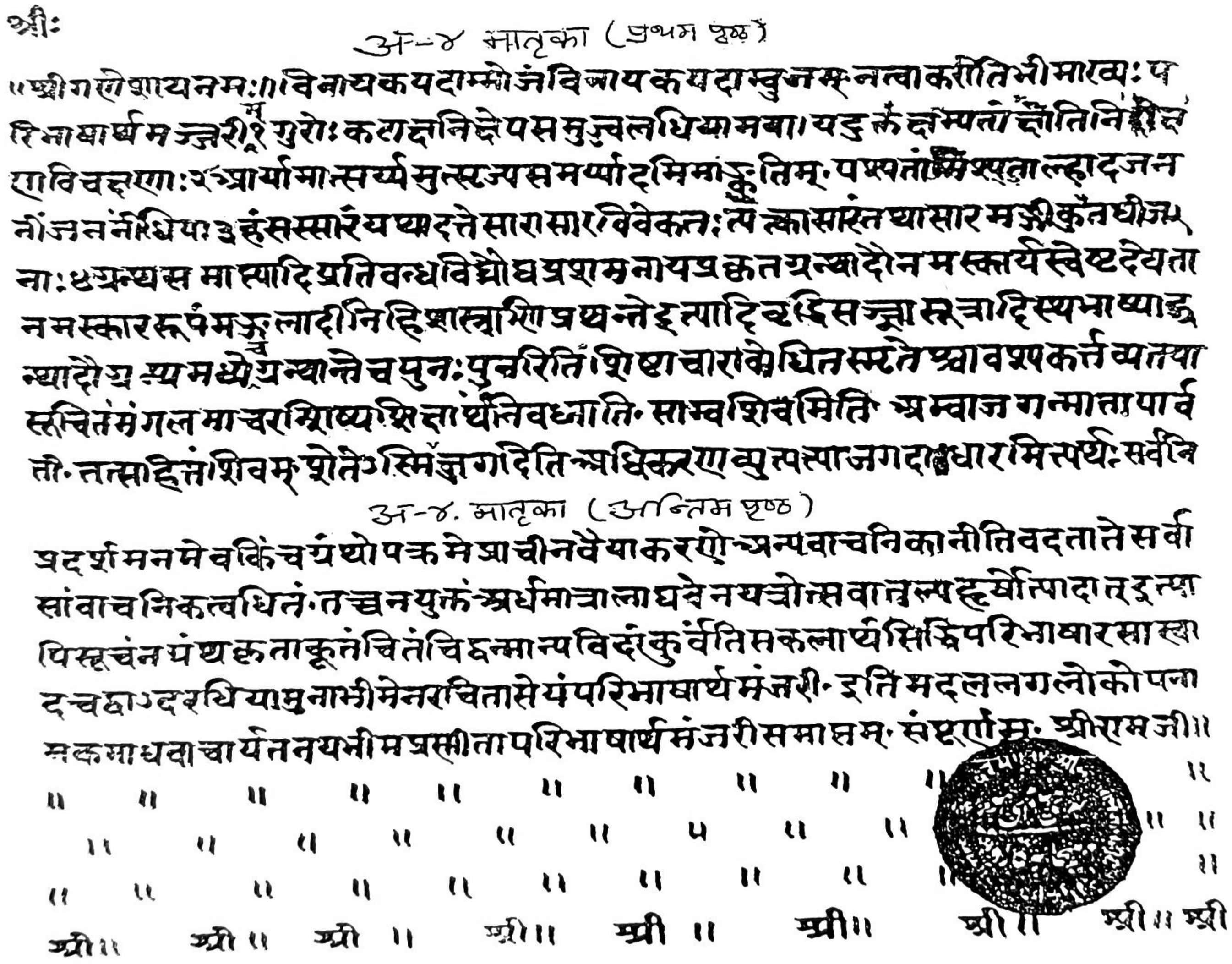


प-2 मातृका (प्रथम पत्र)



प-2 मातृका (अन्तिम पत्र)





श्रीः

अ-४ मातृका (प्रथम पृष्ठ)

॥श्रीगणेशाय नमः॥ विनायकपदाम्भोजं विनायकपदाम्बुजम्‌ नत्वा करोति भीमाख्यः प
रिभाषार्थमञ्जरीम्‌ १ गुरोः कटाक्षनिक्षेपसमुज्वलधिया मया। यदुक्तं दाम्पत्यं चौतिनिर्दोष
गा विचक्षणाः २ आर्या मात्सर्य्यमुत्सृज्य समर्प्यादृमिमां कृतिम्‌ पश्यन्तां श्रुताल्हादजन
नीं जननीमिव ३ हंसस्सारं यथादत्ते सारासारविवेकतः तत्का सारस्तथा सारमङ्गीकुर्वन्तु धीजना
नाः ४ ग्रन्थसमाप्त्यादिप्रतिबन्धविघ्नोघप्रशमनाय प्रकृतग्रन्थादौ नमस्कार्यस्वेष्टदेवता
नमस्काररूपं मङ्गलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते इत्यादि रद्दिसञ्ज्ञासूत्रादिस्थभाष्याद्
न्यादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च पुनः पुनरिति शिष्टाचारानुमितस्मृतेरावश्यकर्त्तव्यतया
सूचितं मंगलमाचरन्शिष्यशिक्षार्थं निबध्नाति· साम्बशिवमिति· अम्बा जगन्माता पार्व
ती· तत्सहितं शिवम्‌ शेते ऽस्मिं जगदिति अधिकरणव्युत्पत्त्या जगदाधारमित्यर्थः सर्वनि

अ-४. मातृका (अन्तिम पृष्ठ)

प्रदर्शनमेव किंचिद्ग्रंथोपक्रमे प्राचीनवैयाकरणोऽन्यवाचनिकानीति वदताते सर्वा
सां वाचनिकत्वधितं· तच्च न युक्तं अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवान्मन्यन्ते वैयाकरणा इत्या
दिसूचनं ग्रंथकृताकूतं चितं चिद्वन्मान्य विदां कुर्वन्ति सकलार्थसिद्धिपरिभाषारसास्वा
दचञ्चुरधिया भुनाभीमेन रचिता सेयं परिभाषार्थमंजरी· इति मदललगलोकोपना
मकमाधवाचार्यतनय भीमप्रणीता परिभाषार्थमंजरी समाप्तम्‌· संपूर्णम्‌· श्रीरामजी॥

॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ५ ॥ ॥ ॥ ॥
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥
श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री॥ श्री

प्रथम खण्ड

अथ श्रीमन्नागेशभट्टविरचितः परिभाषेन्दुशेखरः–

नत्वा साम्बं शिवं ब्रह्म नागेशः कुरुते सुधीः।
बालानां सुखबोधाय परिभाषेन्दुशेखरम्॥1॥

अथ परिभाषार्थमञ्जरी-

श्री गणेशाय नमः। श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः। श्री गुरुभ्यो नमः। श्रीमदिष्टदेवता जयति[1]।

विनायक पदाम्भोज[2] विनायकं पदाम्बुजम्[3]।
नत्वा करोति भीमाख्यः परिभाषार्थमञ्जरीम्[4]॥1॥

गुरोः कटाक्षनिक्षेप समुज्ज्व[5]लधिया मया।
यदुक्तं क्षम्यतां[6] क्षान्ति[7] निक्षेपण[8]विचक्षणैः[9]॥2॥

---

1. श्री साम्बसदा शिवाय इत्यारभ्य मदिष्ट देवता जयति इत्यन्तं प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4, मातृकासु नाऽवलोक्यते।
2. यदाम्भोजम् अ–4.
3. यदाम्वुजम् अ–3.
4. मन्जरी प–1, अ–2
5. पाठोऽयं अ–4, समुज्वल ज–1, प–1, अ–2, समुज्जल अ–1, अ–3.
6. क्षम्यनां अ–3.
7. ज्ञात्ति प–1.
8. निरीक्षणः अ–4.
9. सं. पाठः विचक्षणाः ज–1, अ–1, अ–3, अ–4; विचक्षमः प–1, अ–2

[1]आर्य्यामात्सर्य[2]मुत्सृज्य[3]समर्यादमिमाङ्कृतिम्।
पश्यतां पश्यता[4]ह्लाद जननीं[5] जननीं[6] धियः।।3।।

हंसः[7] सारं यथादत्ते सारासार[8] विवेकतः[9]।
त्यक्त्वा[10]ऽसारं तथा[11] सारमंगी कुरुत[12] धीजनाः।।4।।

ग्रन्थ[13]समाप्त्यादिप्रतिबन्धक[14] विघ्नौद्य[15] प्रशमनाय प्रकृत ग्रन्थादौ नमस्कार्य स्वेष्टदेवता नमस्काररूपं मंगला[16]दीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते[17] इत्यादि वृद्धि संज्ञा सूत्रादिस्थ भाष्यात् ग्रन्थादौ ग्रन्थ[18]मध्ये च[19] ग्रन्थान्ते[20]

---

1. आयी प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4
2. मात्सर्य्यम् अ-2, अ-4,; आयार्मुत्सर्यम् प-1
3. समर्य्यादं अ-2; समयीदमिमारुतिम् अ-3
4. पश्यत्ताल्हाद प-1, अ-1; पश्यत्ताल्हाद अ-3
5. जननी अ-1, अ-3
6. जननीधियः अ-3
7. हंसस्सारम अ-2, अ-4
8. सारसार अ-3
9. विवेकजः अ-2
10. पाठोऽयं प-1, अ-2; त्यक्ताऽसारम् ज-1, अ-1, त्यक्तासारम् अ-4, सक्ताऽसारम् अ-3
11. यथा प-1
12. कुल अ-2
13. पाठोऽयं- प-1, अ-2, अ-3, प्रत्ययो निपातनात् अ-2, अ-4 प्रययोर्निपात्तनात् ज-1.
14. प्रतिबन्ध अ-2, अ-4.
15. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 विघ्नौव ज-1.
16. मंगदिनो प-1.
17. पाठोऽयं अ-2, अ-4 प्रर्थन्त ज-1,; प्रथंत प-1; प्रथमंते अ-1, अ-3.
18. ग्रन्था अ-1, अ-3.
19. 'च' नाऽस्ति अ-1.
20. ग्रन्थाते प-1.

च पुनः पुनरिति शिष्टाचार[1]बोधितस्मृतेश्चावश्यकर्त्तव्यतया सूचितं[2] मङ्गलमाचरन् शिष्य[3] शिक्षार्थं निवध्नाति[4]।

'साम्बं शिवमिति'- अम्बा जगन्माता[5] पार्वती तत्सहितं शिवं शेतेऽस्मिन्ज[6]गदिति अधिकरणव्युत्पत्या जगदाधारमित्यर्थः। 'सर्व निघृष्व रिष्वलष्व शिवपद्वप्रह्वेष्वा अतन्त्रे[7] इत्युणादि सूत्रेण शोङो ह्रस्वत्ववन्[8] प्रत्यययोर्निपात[9]नात् यद्वा शिवं मंगलमस्यास्तीति शिवः। अर्श आद्य[10]च् साम्बेति विशेषणन्तु तद् वियोगसूचनाय[11]। ननु गुण[12]शून्यनमने किम्फलमित्या-शंक्याह[13]। ब्रह्मेति बृंहते[14]ऽस्मिन् गुणा[15] आनन्दादयो यत्रेत्यर्थः। यद्वा[16]

---

1. शिष्टाचारा अ-2, अ-4.
2. सूचित प-1.
3. शिष्या अ-3.
4. निवध्नाति अ-1.
5. माना अ-1, अ-3
6. शेतेस्मिन् प-1; शतेस्मिन् अ-3.
7. सं. पाठः तत्त्वबोधिनीव्याख्योपेता वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी सूत्र संख्या-4353-उणादिसूत्र।
8. ह्रस्वत्ववन् अ-2, अ-4.
9. पाठोऽयं- प-1, अ-2, अ-3, प्रत्ययो निपातनात् अ-2, अ-4 प्रययोर्निपात्तनात् ज-1.
10. आद्यचासांवेति अस-1, अ-3.
11. पाठोऽसं अ-1, अ-3; सूनाय ज-1, प-1; सुचना अ-2, सूचनाया अ-4.
12. सून्यनमने अ-2.
13. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 इत्यांशकयाद ज-1.
14. वृंहंते अ-4.
15. गुणाश्चानंदादयो अ-3 गुणाश्रानंदादयो अ-1.
16. यद्वाः अ-1. अ-3.

वृंहते प्रजा[1] वर्धयति[2]. इति[3] ब्रह्म वृहंते[4]र्नोऽच्चेति अन्तर्भावि[5]तण्यर्थात्[6] मनिन्। शिव[7] ब्रह्मशब्दाभ्यां सृष्टिस्थिति कर्तृत्व[8] बोधितम्। शिवो मोक्षे महादेवे कीलके ग्रहयोगयोरिति कोशवलेन शिव शब्दस्य[9] मोक्षपरत्वे तु मोक्षदातृत्वमपि तस्य[10] वोध्यम्। एवञ्च त्रितय[11]कर्तृत्वेन तस्यैव सर्वोत्कृष्ट[12]त्वात्तस्यैव नमस्कार विषय[13]त्वमिति ग्रन्थ[14] कृदाकृतं यद्वा माता[15] च कमला देवी[16] त्युक्तेरंबालोकमाता लक्ष्मीस्त[17]न्सहितं शिवं। सर्वः[18] शर्वः शिवः स्थाणुरिति महा[19]भारतोक्ते नृसिंहनामानं विष्णु[20]मित्यर्थः। क्वचित्तु साम्बं [21] शिवमिति पृथक् पदमपि दृश्यते। न च [22]रथकाराधिकरण-

1. प्रजा अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; प्रजाः प-1.
2. वर्द्धयति अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
4. वृहेनो अच्चेति प-1, वृहंतेनीच्चेति अ-2.
5. भाविन अ-1, अ-3.
6. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; ग्यथाल् ज-1.
7. 'व' नोपलभ्यते प-1.
8. 'क' नास्ति प-1.
9. पदस्य अ-4.
10. 'तस्य' नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
11. तृतय अ-2.
12. सर्वोत्कर्षत्तस्यैव प-1; सर्वोत्कृष्टवा तस्यैव अ-1, अ-3.
13. पाठोऽयं अ-2, अ-4; विषयतेति ज-1.
14. कृदाकृतं प-1, अ-1, अ-4; कदाकृतं अ-3; कृवाकृतम् अ-2.
15. पाता अ-3.
16. देवोत्यूक्तं प-1.
17. लक्ष्मीतत्सहितम् अ-2, अ-4.
18. सर्व प-1.
19. महाभारतोक्त प-1.
20. संशोधित पाठः; विहमुम् ज-1 प-1; विमो अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
21. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-3, अ-4; शाम्वं ज-1.
22. रथकाधि अ-2.

न्यायेन रुढेरुद्वहता[1]। विष्णुसहस्त्र[2]नामेति शिष्ट सम्प्रदायस्या[3]त्राप्य विशिष्टत्वात्। न च[4] रुढे स्तुल्य[5]त्वेऽस्यैवात्र ग्रहणेमानाभाव[6] इति वाच्यम्।

रुजं[7] द्रावयते यस्माद् रुद्रस्तस्माज्जनार्दनः[8]।
ईशा[9]नादेव चे[10]शानो महादेवो महत्वत्तः॥1॥

पिवन्ति ये नरा[11] नाकं मुक्ताः[12] संसारसागरात्।
तदाधारो यतो विष्णुः[13] पिनाकीति ततः स्तृतः॥2॥

शिवः सुखात्मकत्वेन शर्वः[14] संरोधनाद् हरिः।
कृत्यात्वक[15]मिमं देहं यतो[16]वस्ते प्रव[17]र्तयन्॥3॥

---

1. सं. पाठः; रूह्गटता ज-1; रूद्धटता प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. सहास्त्र अ-1, अ-3.
3. सम्प्रदायस्याप्यत्राप्य अ-2.
4. 'व' अ-1, अ-3.
5. रूढोस्तुल्यत्वे अ-1, अ-3; रूटेस्तुल्य्यत्वे प-1.
6. अभान अ-1, अ-3.
7. रूत्तं प-1; रूद्रं अ-2.
8. जनार्हनः अ-4.
9. इशानादेव अ-1; ईशनादेव अ-4.
10. वेशानो अ-1, अ-3.
11. नराः प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
12. मुक्तास्संार अ-2, अ-4.
13. संशोधित पाठः; विध्मुः ज-1.
14. पाठोऽयं अ-4; शर्चशंरोधनाद्वरिः प-1; शर्वः शंरोधनाद्यरिः ज-1; सर्वस्संरोद्हनाद् हरिः अ-2; शर्वः त्सरोधनाद्वरिः अ-3 सर्वसंरोधनाद्वरिः अ-4.
15. कृत्यात्मकाममं अ-1; कात्यात्मकाममं अ-3
16. पतोचस्ते अ-1, अ-4.
17. प्रवर्त्तयन् अ-1, अ-4; प्रवर्तयत् अ-2.

कृति[1]वासाततो देवो विर[2]ञ्चिश्च विरेच[3]नात्।
वृंहणाद् ब्रह्म[4] नामा सावैश्व[5]र्य्यादिन्द्र उच्यते॥4॥

एवं[6] नानाविधैः[7] शब्दैरेक एव त्रिविक्रमः।
वेदेषु सपुराणेषु गीयते[8] पुरुषोत्तमः॥5॥

न तु[9] नारायणादीनां नाम्नामन्यत्र सम्भवः।
अन्यनाम्नां[10] गतिर्विष्णुरेक एव प्रकीर्तितः॥6॥

ऋते[11] नारायणादीनि नामानि पुरुषोत्तमः।
प्रादा[12]दन्यत्र भगवान्[13] राजेवर्तेस्व[14]कं पुरम्॥7॥

[15]चतुर्मुखः शतानन्दो ब्रह्मणः प[16]द्मभूरिति।
उग्रो भस्मधरो नग्नः[17] कपालीति शिवस्य च॥8॥

---

1. कृत्तिवासात्तो प-1; कृतिवासा अ-2, अ-4.
2. चिरन्चिश्च प-1; विरिंविश्च अ-1, अ-3.
3. विरोचनात् अ-2.
4. ब्रह्म नामांस प-1; ब्रह्म नामासो अ-3.
5. वैश्वयदि प-1, अ-2, अ-4; वैश्वर्माद् अ-1, अ-3.
6. एवन्नाना अ-2, अ-4.
7. विधर अ-2.
8. गायते अ-2.
9. ऋते प-1.
10. अयं पाठस्तु अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; नाम्तां ज-1.
11. न तु प-1.
12. प्रदादन्यत्र अ-3.
13. भगवा अ-2.
14. वर्तरवकं अ-1, अ-3.
15. चतुरर्मुखः प-1; चतुर्मुख अ-2.
16. अयं पाठस्तु प-1, अ-1 यद्मभूरिह अ-2, अ-4 य प्रभुरिति ज-1, यः प्रभुरिति अ-3.
17. नग्रः अ-1, अ-3.

विशेष[1] नामानि[2] ददौ स्वकीयान्यपि केशवः[3] इति ब्रह्माण्डवामन स्कन्द[4] ब्रह्मपुराणैर्मुख्यशिवादि पद[5] वाच्यताया विष्णावेव प्रतिबन्ध[6] परिकरत्वात्। न हि मुख्ये[7] सत्यमुख्यं युज्यते[8]।

कर्पूर[9] धामधवलं कनकाङ्ग दाद्यैश्छन्नं[10]
त्रिनेत्र[11] राशि शेखर मण्डि[12]तास्यम्।
वा[13]मांगमाश्रितरमा नयनाभिरामं[14]
माला[15]क्षशंख सहितं नृहरिं नमामि[16]।।

इति ब्रह्ममाण्ड पुराणेन[17] नृहरिरुपस्य विष्णोः[18] शशि शेखरत्वस्यापि

1. स्वकीय अ-2.
2. अयं पाठस्तु प-1, अ-2, अ-2, अ-3, अ-4; नामांति ज-1.
3. केशव प-1.
4. अयं पाठस्तु अ-2, अ-4; स्कांद ज-1, प-1, अ-1, अ-3.
5. यद अ-3, अ-2.
6. वद्ध प-1, अ-4; बहु अ-1, अ-2; बद्व अ-3.
7. मुखो अ-4.
8. युज्यंते प-1.
9. कपूर अ-1, अ-3.
10. अयं पाठस्तु अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 गदाद्यैर्श्छन्नं प-1, गदाद्येच्छन्नं ज-1.
11. त्रिनेत्र अ-3.
12. अयं पाठस्तु अ-1, अ-2, अ-3; मणि उतास्यम् ज-1 मंदित्तास्यम् प-1; मुण्डि त्तस्थिम् अ-4.
13. वामाङ्क प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
14. नयनाभरामं प-1.
15. मालाक्षरां खं सहितं अ-3.
16. भजामि अ-2, अ-4.
17. ब्रह्मामडेन नृहरि इति पाठोपलभ्यते प-1.
18. विष्णोर्नमस्कार्य्यता ग्रन्थकृदभिप्रेतेति इति पाठोपलभ्यते; शशिशेखर इत्यारभ्य विष्णाव संभवान्न इत्यन्तं अ-2, अ-4 नाऽवलोक्तये.

बोधनेन परिभाषा इन्दुः[1] स[2]शेखरे [3]यस्येत्यर्थक परिभाषेन्दु[4]शेखरमिति विशेषणस्य विष्णाव[5]संभवान्न विष्णो[6]र्नमस्कार्यता ग्रन्थकृदभिप्रेतेति तु न शंकाकलंक लेशोपि।देव्या नित्या वियोगित्वं नमस्कारे भगवतः प्राधान्यं यः सर्वज्ञः स[7] सर्व[8]वित्। यस्य[9] ज्ञानमयं तपः तस्मादेतत् ब्रह्मनामरुप[10]मन्नञ्च जायते इति श्रुतिबोधित ब्रह्म शब्द वाच्य चतुर्मुख[11]स्यासंग्रहणम्। गुणपूर्णत्वमर्थ[12]प्रकाशकत्वं च। साम्ब शिव[13] ब्रह्मपरिभाषेन्दुशेखरपदैः क्रमेण सूचितम्। **नागेश[14] इति।** ननु-

आत्मनाम गुरो र्नाम नामातिकृपण[15]स्य च।
श्रेय[16]स्कामो न गृह्णीयाज्ज्येष्ठा[17]पत्य कलत्रयो॥

---

1. परिभाषा इव इंदुः अयं पाठोऽपि लभ्यते प-1.
2. सः अ-1, अ-3'
3. द्यस्यत्यर्थक अ-1, अ-3.
4. अयं पाठस्तु अ-3; परिभाषेन्दु ज-1, प-1, अ-1.
5. अयं पाठस्तु प-1, अ-1, अ-4; विध्मा ज-1.
6. अयं पाठस्तु प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; विहमो ज-1.
7. अयं पाठस्तु प-1, अ-1, अ-3, अ-4; सः नाऽस्ति ज-1.
8. ससर्वतत् प-1.
9. अयं पाठस्तु प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; नोपलभ्यते ज-1.
10. रूपमनं च प-1.
11. मजास्या संग्रहणम् अ-3; मजस्या संग्रहणम् अ-4.
12. पुर्णत्वम् प-1; पूर्णत्वथमर्थ अ-1, अ-3 पूर्वत्वमर्थ अ-2, अ-4.
13. अयं पाठस्तु अ-1, अ-3; शिव ज-1, अ-1, अ-2, अ-4.
14. नागेश इति अ-3.
15. क्रमणस्य अ-2; कपणस्य अ-3.
16. श्रेयस्कायस्कामो प-1.
17. अयं पाठस्तु प-1 अ-1, अ-2, अ-3 अ-4; ज्येष्ठाय स कलत्रयोः ज-1.

रिति निशेधा[1]शीर्विषयस्य जागरु[2]कत्वे कथमात्मनाम ग्रह[3] इति चेत्सत्यम्। औपाधिक[4]भेद परि[5]कल्पना गरुत्म[6]त्पक्षपातेन तस्य[7] मूर्च्छितत्वात्[8]। तथाहि आत्मान[9]मात्मना हन्तीत्यादावंतः करणशरीराद्युपाधि भेदेनैकस्यैवात्मनो भेदपरिकल्पन[10] वदहं[11] करोमीत्यनुक्त्वा[12] **नागेशः कुरुते** इत्युक्त्या[13] एतद्वाक्य[14] प्रयोक्तृपेक्षयाऽन्यस्य[15] ग्रन्थकर्त्तुर्लाभाद्वाक्य प्रयोक्तृत्व[16] ग्रन्थकर्तृत्वादिरुपोपाधि भेदे[17] नैकस्यैवा[18]त्मनो भेद कल्प[19]नात्।

---

1. निषेधाशी विषयस्य प-1, निषेधाशीवषस्य अ-1, अ-3; निषेधाशीविषस्य अ-4.
2. जागरुके त्वे अ-3; जागुरूकत्वे अ-4.
3. ग्रहण प-1.
4. औपाधि भेद अ-1.
5. परिकल्प्य प-1; परिकल्पन अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
6. गरुत्यक्षव्रातेन प-1; गुरु त्मत्पक्षवातेन अ-1; गुरु त्मपक्षपातेन अ-2.
7. अयं पाठस्तु अ-2, अ-3, अ-4; नाऽस्ति ज-1, प-1, अ-1.
8. आयु पाठस्तु अ-4; मूर्खितत्वात् ज-1, प-1, अ-1, अ-2, अ-3.
9. आत्मनामात्मनं हंति अ-2; आत्मनमात्पन हंत्तीत्यान्तः अ-4.
10. भेद परिकल्प्य प-1; भेदकल्पन अ-2; भेकल्पन अ-4.
11. वद्दहं अ-3.
12. अयं पाठस्तु अ-4; अनुक्ता ज-1, प-1, अ-1, अ-3; उक्त्वा अ-2.
13. इत्युक्त्वा अ-4.
14. वाकय प्रयोपेक्षया प-1; वाक्या प्रयोक्तृपेक्षय अ-1.
15. अन्य अ-2.
16. प्रयोक्तत्व अ-3.
17. तेदेनैकस्य अ-1, अ-3.
18. आत्म भेद प-1.
19. भेदध्यात् अ-1, अ-3; भेदकल्पनत् प-1.

विधोर्मस्तक धृतत्वेना दोषात्[1]। यद्वा दशम्युत्तरकालं जातस्य पुत्रस्य नाम विदध्यातु[2]। घोष[3]वदाद्यन्तरं तस्थं अवृद्ध[4] **त्रिपुरुषानूकं** अनरि प्रति[5]ष्ठितं तत्धि[6] प्रतिष्ठिततमं **द्वयक्षरं**[7] चतुरक्षरम्बा[8] नामकृतं कुर्यान्नतद्धि[9]तमिति विधिबोधितनामग्रहणे[10] एव सनिषेधः[11]। अत एव निषेधे श्रेयस्काम इति विशेषणं संगच्छते[12]। अन्यथा पूर्वोक्त विधि विरुद्ध[13] नाम्नः सर्वथाऽग्राह्यत्वेन[14] तन्निषेधे फला[15]भावात्तद् ग्रहणे श्रेयसः[16] प्राप्तेरेवा भावा[17]त्तदसंगतिः स्पष्टैव।

---

1. विधोर्मस्तक धृतत्वेनादीघात् नोपलभ्यते अयं पाठः अ–2, अ–4 विधेस्तकधृत्तत्वेनुनादोषात् प–1.
2. विधौर्मस्तक इत्यारभ्य विदध्यात् इत्यन्तं नोपलभ्यते अ–1, अ–3.
3. धोषवयदाद्यं तरूंस्थं प–1; शोऽप्यवदाद्यन्तरं तरस्थं अ–2; धोषवदाद्यन्तरस्थं अ–4.
4. अवृद्ध अ–2; अवृ अ–3 अवृद्दि अ–4.
5. अयं पाठस्तु अ–1, अ–2, अ–3, अ–4, प–1 प्रतिष्ठितं ज–1.
6. पाठोऽयं प–1; तद्धि प्रतिष्टिततमं ज–1; तद्धिप्रतिष्ठिततमुं अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
7. पाठोऽयं अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; व्यक्षरं ज–1, ध्यक्षरं प–1.
8. चतुरक्षरंग प–1.
9. पाठोऽयं प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 तधितं ज–1.
10. ग्रहण प–1.
11. संनिषेधः अ–1, अ–3.
12. पाठोऽयं अ–2, अ–4 संच्छते अ–1.
13. पाठोऽयं प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; विरुध्र ज–1.
14. 'न' नाऽस्ति प–1; 5, नास्ति अ–2.
15. फलाभावातग्रहणे अ–1, अ–3.
16. श्रेयसः प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
17. अभात्तद् संगत्तिः प–1; अभावाभावात्तद संगतिः अ–1; अभवात्दंसगति अ–4.

वि[1]धिवि[2]रुद्ध नामस्थापने पित्रादीनां विध्यु[3]ल्लंघनमित्यन्यत्। यद्वा पूर्वोक्त[4] निषेधस्थ न हि स्यात्सर्व[5] भूतानीत्यादि[6] निषेधक[7] वाक्याना-मग्नीषोमीयं[8] पशुमालभेतेत्यादि[9] विशेष **वाक्यै**स्तत्तद्योगोद्देश्यक वेद बोधित संस्कार विकल्प[10] सर्वं भूतार्थत्ववत्[11]। ग्रन्थोपक्रमे स्वनामग्रहा[12] विषयकत्व कल्पनाच्च। न च तत्र संकोचक[13] विधि केसरिणः सत्वाद्[14]युक्तः संकोचः[15]। अत्र तु किं संकोचकमिति वाच्यम्। शिष्टाचारानु[16]क्रमित मंगल बोधक स्मृतिवत्। अत्रापि तदाचारानुमित स्मृति दिग्गजस्य सत्त्वात्। तत्र श्रुतिः संकोचिका। अत्र तु अनुमिता स्मृतिरित्यन्य[17]देतत्।

---

1. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 मातृकासु अवलोक्यते.
2. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 विरुध ज-1.
3. विधध्युल्लंघनं अ-1, अ-3.
4. पूर्वोक्तषेधस्य प-1; निषेधस्य अ-1.
5. सवी प-1; सार्व अ-2.
6. 'दि' नाऽस्ति अ-2 'इ'.
7. 'क' नाऽस्ति प-1, अ-4.
8. अग्निषोमीयं प-1, अ-1, अ-3.
9. इत्यादिवत् अ-2.
10. पाठोऽयं अ-1, अ-3; विकल ज-1, प-1, अ-2, अ-4.
11. भूतार्थत्वत् अ-1.
12. ग्रह अ-2, अ-4.
13. 'क' नाऽस्ति प-1.
14. सत्त्वेद्युक्तः प-1.
15. शंका च- प-1.
16. अनुमित प-1, अ-4.
17. रित्यदेतत् प-1.

अनुमापकाचारस्तु[1]। गोनर्दी[2] आह। भट्टोजिदीक्षित कृति[3]रित्यादि वृंहन्[4]मंजूषा संगोपनीयो बोध्य:। न च[5] प्रथमाध्या[6]यीय तृतीयपादे पंचमाधिकरणे[7] क्रम प्राप्तमातुल कन्यापरिण[8]यना परिणयन विचार पर[9] भट्टपादग्रन्थ[10] व्याघ्र दंष्ट्रापत्ति:[11]। तत्रहि क्वचिद्दक्षिण[12] देशे मातुल कन्या परिणयनं दृश्यते[13]। सोऽयमाचार: प्रमाणं शिष्टाचारात्। होलकाद्या[14]चारवदि त्यनुमानेन स्मृतिं कल्पयित्वा तादृशाचारस्य[15] प्रमाणिक[16]त्वमांशक्य न शिष्टाचारेण स्मृतिरनुमातुं शक्येति[17] सिद्धान्तितमिति वाच्यम्।

---

1. तु: अ–1, अ–3.
2. गानद्दीर्य अह प–1; गोर्नदीय आह अ–2, अ–4; गोनीहार्येयज्जाह अ–1; गोनदीयज्जाह अ–3.
3. कति अ–3.
4. हृन्मंजूषा प–1, अ–1, अ–2, अ–4; हृंन्मंजूषां अ–3.
5. 'व' अ–1.
6. प्रथमाध्याय प–1.
7. करणे प–1.
8. परिग्रहणयना अ–1, अ–3, परिणायना अ–2.
9. परपट्टपाद अ–2, अ–4.
10. ग्रन्था प–1.
11. रंष्ट्रापातापत्ति: प–1, अ–4, अ–2; दष्ट्रापातापति: अ–1; दृष्ट्वापातायति: अ–3.
12. क्वचिदक्षिण प–1.
13. हिश्यते अ–3.
14. होलिकायाचारवद्दित्य अ–2, अ–4; होलकाद्याचर अ–1, अ–3.
15. तादृश्यचारस्य अ–3.
16. ग्रामाणिक त्वं अ–1, अ–3; प्रमाणिकत्वम् अ–4; प्रमाणकत्वम् अ–2.
17. शंस्येति प–1

मातुल्यस्य सुतामुद्[1]वा मा[2]तृगोत्रात्तथैव च।
न मातृ प्रवरां[3] चैव त्यक्त्वा[4] चान्द्रायणं चरेत्[5]॥

इति[6] स्मृति[7] निशित खड्गेन[8] शिष्टाचारानुमित स्मृते[9] र्विच्छेद इत्याशयात्। न चात्रापि पूर्वोक्तरीत्या प्रत्यक्षस्मृतिकृत्यया शिष्टाचारानुमित स्मृतिकामिनी प्रमोह इति वाच्यम्। एवं तर्हि शिष्टाचारानुमित श्रुत्या[10] प्रत्यक्षाया अपि स्मृते[11]र्बाधेनादोषात्। ननु न शिष्टाचार:[12] साक्षादनुमापक: किन्तु मध्ये स्मृति कल्पनया श्रुत्यनुमापक:[13]। अन्यथा पूर्वोक्त भट्टपाद[14] व्याकोप गिरिगह्वर गुहान्धतम:[15] प्रक्षेप:।

अत एवाहु:-

---

1. सुत्तामूढा प-1; सुतामूलद्वा अ-2; सुताम् अ-4.
2. पाठोऽयं अ-4; गोत्रो त्तथैव; गोत्रां तथैव प-1, अ-2, अ-3; गोत्रांस्तथैव अ-2.
3. सनान प्रवरा प-1, न मातृ प्रवरा अ-3.
4. पाठोऽयं अ-1; त्यक्ता अ-2, अ-3, अ-4; चैवत्युक्ता प-1.
5. चरेत अ-1, अ-3.
6. 'प्रत्यक्ष' आप्यस्ति प-1.
7. स्मृति: अ-2.
8. खड्गो न प-1.
9. पाठोऽयं अ-2, अ-4; स्मृते विंछेद अ-1, अ-3; स्मृतेर्विछेद ज-1.
10. स्मृत्या अ-2, अ-4.
11. स्मसस्मृते बाधेन अ-1, अ-3.
12. शिष्टार: अ-1, अ-3.
13. श्रुत्यमापक प-1.
14. पाठोऽयं प-1; भद्रयाद ज-1; भदृपाद अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
15. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-4; गिह्वंणु हांथमतम अ-1, गिहंगुहांथतम: अ-3; गुहान्धर्म: ज-1.

आचार्या[1]त्तु स्मृतिं ज्ञात्वास्मृतेश्चश्रुति कल्पनम्।
तेनव्यं[2]तरितं तेषां[3] प्रामाण्यं विप्रकृष्यते[4]॥

एवञ्च प्रत्यक्षस्मृत्याबाध एवेति चेन्न। श्राद्धे विवाहे संन्या[5]सेप्या-पत्कालादिषु क्वचित्। इति[6] तदपवादक स्मृतावादिपदेन ग्रन्थारम्भ संध्या[7]वंदन प्रोषिताभिवादननाम ग्रहणस्य[8] ग्रहणेनादोषात्[9]। भाष्यकारस्यापि ऋषित्वा विशेषेण पूर्वोक्त तदुक्ते रादिपदेन तस्यापि ग्रहणाच्च षोडशी ग्रहणाग्रहण[10]योरिव विकल्पस्य वा कल्पनाच्चेति[11] दिक्। **कुरुत[12] इति।** अनेन फलस्य कर्त्तृगामित्वं सूचितम्। तत्फलन्तु[13] न मयान्यार्थं[14] ग्रन्थः क्रियते[15] किन्तु स्वात्म वोधार्थमित्यह[16] कृति खंडनम्।

---

1. आचारात्तु प-1, अ-1, अ-2, अ-3; आचारानु अ-4.
2. तेन ह्यंतरिते अ-2, अ-4; तेन व्द्यंतरितं अ-3.
3. तेषो अ-1, अ-3.
4. प्रेष्यत्त इति प-1; विप्रलव्यते अ-2; विप्रक्लव्यते अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3; संन्यासेथायत् ज-1; संन्यासे यथावत् अ-2; सन्यासेप्यावत् अ-4.
6. नामग्रहंत्तु कुर्वीत श्रेयस्कामोप्यदोष भागिवित्तदपवादकं इति पाठाधिक्यं 'प-1' पुस्तके लभ्यते.
7. पाठोऽयं अ-4; वंधन प-1, अ-3.
8. ग्रहणस्य नाऽवलोक्यते अ-2, अ-4.
9. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; ग्रहणो नादोषात् ज-1.
10. ग्रहणयोरिव अ-1, अ-3.
11. 'च्' नाऽस्ति अ-4.
12. कुरत इति अ-2, अ-4.
13. तत् ज-1 ग्रन्थे नाऽवलोक्यते.
14. मयानान्यार्थं प-1; मयान्यांर्थ अ-1, अ-3, मयान्यार्थ इत्यारभ्य ग्रन्थकरणे इत्यन्तुं अ-2, अ-4 पुस्तके नाऽवलोक्यते.
15. क्रीयते प-1; क्रियतेः अ-1.
16. मित्यह ज-1.

प्राचीन वैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीय तन्त्रे ज्ञापक-न्यायसिद्धानि भाष्यवार्त्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यायन्ते।

सुधीरिति। अनेन ग्रन्थकरणे स्वेष्ट[1] देवताऽनुग्र[2]हात्स्वस्य[3] सामर्थ्य-मस्तीति सूचितम्। घटायोन्मी[4]लितं चक्षु[5]रिति न्यायेन परा[6]र्थोपि भवित्वत्याह **बालानामिति**[7]। यथान्धकारे[8] स्वात्मार्थं नीयमानो दीपः पर[9]प्रकाशकश्चेत् कोवारयितेति भावः॥

ज्ञापकन्यायसिद्धानीति। ज्ञापकन्यायशब्दाभ्यामर्श[10] आद्य च[11] सिद्ध[12] शब्दस्य क्रिया निष्पत्यर्थ[13]कस्य सिद्धे शब्दार्थेति वार्त्तिक व्याख्या[14] परभाष्यस्थ ननु च भोरिति[15] प्रती[16]कमादाय कैयटे[17] स्पष्टतया प्रकृतेऽपि

---

1. स्वष्ट प-1.
2. देवतानुग्रहाः प-1.
3. त्वस्य प-1; स्वस्म अ-3; यस्य अ-4.
4. उन्मीलिलं अ-4.
5. चक्षारिति अ-4.
6. परार्थोर्थोपि प-1; पराय्यार्मपि अ-4; परार्थामपि अ-2.
7. ग्वालानामिति अ-4.
8. पधांधकारे अ-4.
9. परप्रकाशश्चेत् अ-2, अ-4.
10. ज्ञापकसिद्धाभ्यां अर्श आद्य च इति पाठान्तरं अ-2, अ-4; अश अ-4.
11. आद्य च अ-3.
12. शिद्व अ-2; शिद्ध अ-4.
13. कत्वस्य प-1.
14. व्याख्यायश्च ज-1.
15. भौरिति अ-3.
16. प्रदीपकमादाय अ-4.
17. कैय्यटे प-1; कैयटे अ-3.

1. अथ शास्त्रत्व सम्पादनोद्देश नाम प्रथमं प्रकरणम् ननु 'लण्' 'अ इ उ ण' सूत्रयोर्णकारद्वयस्यैवोपादानेनाणिण्ग्रहणेषु सन्देहादनिर्णयोऽत आह-

---

तस्य[1] तदर्थकत्वेन सिद्धानि[2] उच्चारण क्रिया निष्पन्नानि[3] वाचनिकानीत्यर्थ[4]।

अन्यरीत्या [5]तत्संग्रहे तु ज्ञापकन्याय साध्यानीति वदेत्[6]। एवं इद्दरिद्रस्येति[7] सूत्रे सिद्धश्च[8] प्रत्यय[9] विधाविति **वार्त्तिके** निष्पन्नार्थकस्य[10] सिद्धशब्दस्य प्रसिद्धत्वाच्च[11]। अन्यत्राप्यु[12]च्चारण क्रिया निष्पन्न[13]त्वा विशेषेपि ज्ञापक[14] न्यायाऽसह[15]कृतोच्चारण क्रिया निष्पन्नत्वं बोध्यम्। इदं चान्यसमभिव्याहारादेव लभ्यते। यद्वा वाचनि[16]कानीत्यस्योभयत्रान्वयो न्याय विशेषवलात्

---

1. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3; तस्थ ज-1; 'स्य' नास्ति अ-4.
2. सिद्धानी प-1; सिद्धुद्धानि अ-2, अ-4.
3. निष्पत्तानि अ-1, निष्पन्नानी अ-2.
4. वाचनि नाऽस्ति अ-2, अ-4.
5. संग्रहेषु तु अ-4.
6. चेत् प-1.
7. पाठोऽयं प-1. इदरिद्रस्येति ज-1; इद्रारिद्रस्योति अ-1, अ-3; इन्द्रस्येति अ-2; चन्द्रस्येति अ-4.
8. सिद्धप्रत्यय अ-2, अ-4.
9. प्रत्ययावितिवार्त्तिवार्त्तिके प-1.
10. निष्फलार्थकस्य अ-2.
11. प्रति सिद्धत्वाच्च अ-4.
12. अन्यत्राप्युच्चारण क्रिया इत्यारभ्य सम्बन्धस्तु स्पष्ट एव इत्यन्तं प-1 मातृकायां नोपलभ्यते.
13. निष्पत्तत्वा अ-1, अ-3; निष्पन्न वा अ-2, अ-4.
14. पाठोऽयं अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; ज्ञामक ज-1.
15. न्याया सह अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
16. का नाऽस्ति का अस्ति अ-4.

व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्॥1॥

सिद्धानी[1]त्यस्याग्रे[2]ऽहर्दिवं नीयमानो[3] गामश्वं पुरुषमित्यादि। भाष्य[4]वलात्स मुच्च[5]यलाभः। एवं चात्र पाणिनि तंत्रे[6] वाचनिकानि[7] ज्ञापक न्याय[8] सिद्धानि चेत्यर्थः। पूर्वत्र वाचनि[9]कानीत्यस्य सम्बन्धस्तु[10] स्पष्ट एव।

तेना[11]णुदित्सवर्णेति। यत्वत्र शब्द[12]रत्नमनुद्य कैयटानु[13]यायिनः यत्त्वणुदित् सवर्णस्येति परेणाण्[14] ग्रहणे ज्ञापकमुर्र्हदिति[15]। **तपरकरणं**[16] विचारयता[17] शब्दरत्न कृता[18] न च तपर सूत्रेण लृकार ग्रहणार्थं[19] तदि

1. पाठोऽयं अ–1, अ–2, अ–3; सिधानीत्यस्याग्रे ज–1.
2. ऽग्रे अ–2 सिद्धनीत्यस्याग्रे अ–4.
3. नयमोणामश्वं अ–3; नयमामोमामश्वं अ–4.
4. पाठोऽयं अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; भाव्य ज–1.
5. पाठोऽयं अ–1, अ–3; समुदाय लाभः ज–1; समुच्चयलाभः नोपलभ्यते अ–2, अ–4.
6. याणिनि ज–1, अ–2, अ–4.
7. वाचनिकोनि ज–1.
8. न्याया अ–2, अ–4.
9. वाचानिकानीत्यस्य अ–2, अ–4.
10. संवेधस्तु अ–1, अ–3.
11. तेनाऽणुदित् अ–1, अ–3, अ–4.
12. शब्दरलमनूद्य अ–1, अ–3.
13. कैय्यटा प–1; कैआनुयायिनः अ–3.
14. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; पदेणण् ज–1.
15. उर्हदिति अ–2, अ–4.
16. त्तपर ज–2, अ–4.
17. विचारयाता प–1.
18. पाठोऽयं अ–1, अ–3; कृतो ज–1, ज–2; कृत्ता अय–1; कृप्ता अ–2, अ–4.
19. ग्रहणार्थ अ–2, अ–4.

त्याशंक्य स्थानेऽन्तरतम[1] परिभाषया ऋकारस्य[2] स्थाने तस्य वारणेन ग्रहण[3]फलाभावादिति समाहितम्। तत्र शंकैव[4] तावन्न संगच्छते[5]। सूत्रकार मते ऋकारलृकार[6]योः सावर्ण्याभावेन तद्[7] ग्रहणस्य दूरापास्तत्वात्[8]। तपर[9]सूत्रे समान काला सवर्ण ग्रहण निवृत्तये सवर्णपदानुवृत्तेरावश्यकत्वात्। वार्त्तिककृन्मते[10] तत्संभवेऽपि अणुदित् सवर्णस्येति सूत्रेऽण्[11] ग्रहणस्य तेन प्रत्या[12]ख्यातत्वात् संदेहा[13]भावात्। एतेनो[14]पसर्गा**दृतीति** तपर[15] करणा[16]दणु दित्सूत्रे[17]ऽण् ग्रहणं परेणेति[18] न युक्तम्। लृकार[19] ग्रहणेन चारिता[20]र्थ्यादिति

1. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2; स्थानेंतरम ज-1, अ-3.
2. ह्कारस्य अ-2, अ-4.
3. तत्ग्रहणे 'तत्' पाठाधिक्यं अ-2, अ-4; इत्यात्रायं पाठोऽपि लभ्यते- स्थाने तस्य स्थाने तस्य वारणे न तत् ग्रहणे अ-4.
4. शंकैच अ-1, अ-4.
5. संगछते ज-2, प-1, अ-1.
6. ॠकार लृकारया: प-1; ऋकालकारयो: अ-1, अ-4.
7. 'तद्' नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
8 पाठोऽयं ज-2; दूरायास्तत्वात् ज-1; दुरापारत्वत्वात् अ-2.
9. त्तपर प-1.
10. कृन्मेतेत्तत् प-1; कृन्मतेपि अ-2; कन्न्मते अ-3.
11. सूत्रेण प-1; सूत्रेऽण ज-2; सूत्रेऽणा ग्रहणस्य अ-2, अ-4.
12. प्रत्याख्यानन्कात् अ-1.
13. संदेहभावात् अ-3.
14. संशोधित पाठः उपसर्गादृति धातौ, 6/1/91.
15. त्तपर प-1, ज-2.
16. करणदणु अ-1.
17. सूत्रण प-1; सूत्रेऽण् अ-3; सूत्रेऽय अ-4.
18. परेणतितयुक्तं अ-3.
19. लकार अ-3.
20. चारितार्थादिति अ-3.

शेखरोक्तिरपि परास्तेति[1] दूषण वृकगण[2]मुत्ससृजुस्तत्तु ग्रंथाशयानव वोधनात्[3]। तथाहि न पदान्त सूत्रे पूर्व[4]त्रासिद्धेन स्थानिव[5]त्वमित्यनेनान्यार्थं क्रियामाणेन[6] द्विर्वचनादा[7]वपि कर्त्तव्ये स्थानि[8]वत्व निषेधे सिद्धे द्विर्वचनादि[9] ग्रहणस्य भाष्यमते प्रत्याख्यानेपि सूत्रकारमते द्विर्वचन[10] सवर्णादिग्रहणं वति-घटितान्या[11]देशानां त्रिपाद्यामपि प्रवृत्तिवोध[12]नार्थं। तेन राम इत्यादौ विसर्ग सिद्धिरिति शेखरादौ[13] सूत्रकाराशय[14] वर्णनवद कोकि[15] दीर्घ इत्येव सिद्धे सवर्णग्रहणेन यादृश सवर्णेपरत:[16] दीर्घेकृते सवर्णग्रहण सार्थक्यम्[17]। तेन लृकारेण[18] ऋकारस्य सूत्रकारमते सावर्ण्यकल्पनाद्[19] ऋकारेण

---

1. परास्तोति अ-3.
2. गणमुत्सृजुस्तत्तु अ-2, अ-4; गणमुपुत्ससृजुस्तत्तु अ-1, अ-3.
3. बोधात् प-1.
4. पूर्वत्रा सिद्धम् 8/2/1 पुर्वत्रासिद्धेन प-1.
5. स्थानिवत्वस्मित्यनेन इति पाठः अ-4; स्थानिवते ज-2.
6. क्रीयमाणेन प-1; क्रियमाणो न अ-3.
7. र्विचनादौ अ-4.
8. स्वानिवत्वनिषेधौ अ-2, अ-4.
9. द्विर्वचानादि अ-4.
10. सूत्रस्मत्ते द्विव च अ-4.
11. पाठोऽयं अ-1, अ-3; घटितान्य दिशानां ज-1, घटिकाता मादेशायां ज-2; घटितान्यात्तिदेशानां प-1, अ-2, अ-4.
12. वाधनार्थं अ-4.
13. शखरादौ प-1.
14. चर्णन अ-2; चरणन, अ-4; वर्णवद ज-2, अ-1, अ-3.
15. कोटि अ-1, अ-3.
16. परत्तः प-1.
17. सार्थकयं प-1.
18. तेन लृकारस्य ते ऋकारस्य इति पाठः अ-4.
19. कल्पना दृकारेण प-1; कल्पना दकारेण अ-4.

यतः सन्देहाच्छास्त्रमलक्षणमननुष्ठापकं लक्षणमलक्षणं तथा न, शास्त्रस्य

लृकार[1]ग्रहणमाशंक्य [2]शब्दरत्नादौ[3] समाहितम्। न च स्थानेऽन्तरतमः[4] सूत्रे किमुदाहरणमित्याशंक्य इको[5] यणचि तस्थस्थमि[6]पामित्युदाहरणमुक्त्वा[7] यथासंख्य सूत्रेण तत्सं साध्याऽकः[8] सवर्णेत्युदाहरणं स्थापितमको[9] कीति न्यासे तु तदप्यु[10]दाहरण मसंगतमेवेति भाष्यविरोधेति वाच्यम्। तत्सूत्र[11]स्य सभास्थिति[12] न्यायेन प्रत्याख्या[13] नेनादोषात्। ॠलृवर्णयोरिति वार्तिकैक-वाक्यतयाऽकारा[14]दिभिर्लृकारेण सवर्ण[15]त्वाभाव बोधनेन[16] तैस्तेनापि[17] सावर्ण्य कल्पनायामनिष्ट[18] स्यादिति शंका तु[19] दूरापास्तैव। अत एव सूत्रेष्वेव

---

1. लृकाग्रहणं प-1.
2. ग्रहणमंशक्य अ-2, अ-4.
3. शब्दरत्नादै प-1; शब्दरलादौ अ-2, अ-4.
4. पाठोऽयं अष्टाध्यायी, 1/1/50; स्थानेंतरतम ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
5. इक प-1.
6. इत्युदाहरणमाशंकितमेवेति भाष्य विरोध इति वाच्यम्, इति पाठः अ-2, अ-4.
7. पाठोऽयं अ-3; उक्ता ज-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
8. संसाध्याकः ज-2, प-1.
9. स्थापित्तंकीति अ-2; सकोकीति ज-2.
10. 'त' नास्ति 'न' अस्ति अ-3.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
12. सभास्ति प-2; प्रत्याख्यानादोषात् प-1.
14. अकादिभिः ज-1.
15. सवर्णत्या अ-3.
14. बोधेन प-1.
17. नोपलभ्यते प-1.
18. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1; कल्पनायानिष्ट ज-1; अनिष्ठ अ-2, अ-4.
19. नोपलभ्यते अ-2, अ-4.

(हि[1]) तत्सर्व[2]मित्यादि वृद्धोक्तिरप्यनुगृहीत्वा[3]। ऋलृक् सूत्रे[4] लृकार ग्रहणन्तु[5] यथा संख्यार्थं एवं च सवर्ण[6] संज्ञा विधायकं वा[7]र्त्तिकं नापूर्वमिति गूढा[8]कृतम्। अत एव भाष्येऽकः[9] सवर्णेति सवर्णपदांशेऽक[10] कर्तव्यतानोक्ता। तस्य सर्वथाऽ[11]प्रमाणिकत्वेतदकर्त्तव्यतां ब्रूयात्। ऋलृक् सूत्रे वार्त्तिक-कारेण सावर्ण्य[12]स्योपसंख्यातत्त्वे न सूत्रकृत्तातदनाश्रयणादत्र लृकारोपदेशः। कृतेति कैयटस्तु यथाश्रुतार्थग्राहीति नास्माकं प्रतिकूलः किञ्च ऋ[13]लृवर्णयो स्सावर्ण्योप[14]संख्यानवादिमते[15] ऋति[16] ऋवेत्यादि वार्त्तिक-

---

1. अयं कोण्ठान्तर्गत पाठस्तु अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; मातृकासु एव लभ्यते.
2. वृद्धौक्तिः अ-3.
3. अनुगृहीत्वा ज-2.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, सूत्रै ज-1.
5. ग्रहणे तु अ-1, अ-3; लकार ग्रहणं 'तु'ऽाऽस्ति, अ-2, अ-4 (लृकार ग्रहणं तु सवर्ण ग्रहणानुमित सावण्यी नित्यत्व वोधनाय सूत्रे लृकार ग्रहणाभावोत्तदस त्वशंका स्यादित्युक्तिस्तु ज्ञापकमजान तोभिप्रायिका एवं च सवर्णसंज्ञा) अयं कोष्ठान्तर्गत पाठाधिक्यं तु प-1.
6. पाठोऽयं अ-1, अ-2, ज-2; एकत्त्वर्सेण संज्ञा ज-1, प-1, एवं च सर्वणं अ-3, अ-4.
7. पाठोऽयं प-1, अ-4; वार्तिक ज-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, गूटाकृतम् ज-1, गूढाकृतम् अ-1, अ-3; गूढाकृतम् अ-2; नाद्युदुर्यमिति अ-4.
9. कुः अ-3; भाव्येकः अ-4.
10. कर्त्तव्यता अ-2.
11. सर्वर्थाप्रामाणिक त्वे प-1; सर्व उ प्रामाणिक त्वे अ-2; सर्व उभप्रामाणिक त्वे अ-4.
12. सावर्णस्य ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-3; सावर्ण्यः स्योप अ-2, अ-4.
13. किन्चलृऋलृवर्णयोः इति पाठः अ-4.
14. 'उप' नास्ति अ-2, अ-4.
15. वादोमते प-1.
16. ऋति सवर्ण ऋवा (139 सि. कौवा); ऋचैत्यादि प-1.

निर्णयजनकत्वौचित्यादित्यर्थः। असन्दिग्धानुष्ठानसिद्ध्यर्थेऽत्र शास्त्रे

प्रत्याख्याने सूत्रेण[1] विवृतेष[2]त्स्पृष्ट [3]ऋकारलृकारयोः सिध्य[4]तिदैववाक्यतया सूत्रकारमतेपि तयोः सूत्रेणैव[5] सिद्धिरुचिता किञ्च तुल्यास्य सूत्रे सूत्रकारमते ऋकार लृकारयो[6]स्सावर्ण्यमाशंक्य वार्त्तिकं प्रवृत्तमिति[7] तन्मतेऽपि तस्य सत्वात्। अण्[8] ग्रहण प्रत्या[9]ख्याने तु तस्यार्थान्तरमित्यन्यत्[10]। अन्यथा सूत्रकारमतेन्यूनता त[11]दवस्थैव। अत एव[12] जातिपक्षमुपक्रम्य वार्त्तिक-स्यार्थान्तरं[13] ग्रन्थेषु[14] संगच्छते[15]। वार्त्तिक कृन्मते इत्याद्युक्तिरपि अति तुच्छा[16]। तन्मतेऽण् ग्रहणं[17] प्रत्याख्यानेन - ऋलृवर्णयोरित्यनेन

---

1. सूत्रेणैव ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. विवृते यतस्य ऋकार ज-2; 'ष्ट' नाऽस्ति अ-1; विवृते यत् ऋकारयोः इति पाठोपलभ्यते अ-3; विवृजेषु तस्याट ऋकार इति पाठः अ-4; विवृत्रेषु तस्यष्ट ऋकार अ-2.
3. 'ऋकार' नाऽस्ति अ-1, अ-3.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3 सिद्ध ज-1; सिघ्रा अ-4.
5. पाठोऽयं ज-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; सुत्रे ज-1.
6. लृकारयो रसा वर्ण्यम् ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
7. 'ति' नाऽस्ति अ-4.
8. अणग्रहण ज-2; अणग्रहण अ-3; यणग्रहण अ-2, अ-4.
9. प्रत्याख्यने ज-1.
10. तस्यार्थंतिरमित्यन्यत् ज-2, अ-1, अ-3.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3.
12. एजाति अ-3.
13. वार्त्तिकस्थारर्थातरं अ-4.
14. ग्रन्थे प्रसंगच्छते अ-3. ग्रन्थेषु संगच्छते अ-4; संगछते ज-2, प-1.
15. किन्चवार्त्तिक इति पाठोपलभ्यते प-1; वर्तिक अ-1.
16. पाठोऽयं अ-1, अ-2, अ-3 अति नाऽस्ति प-1; अतितुछा ज-2; अ-3 अतितुच्छो ज-1.
17. ग्रहणं ज-2, प-1, अ-1, अ-3 अतितुच्छो ज-1, ग्रहण ज-1, प-1, अ-2, अ-3, अ-4.

सन्दिग्धोच्चारणरूपाचार्यव्यवहारेण सन्देहनिवृत्तेर्व्याख्यानातिरिक्तनिमित्तानपेक्षत्वं बोध्यत इति यावत्। तेन 'अणुदित्सवर्णस्य' (1.1.69) इत्येतत्परिहाय पूर्वेणाण्ग्रहणं, परेणेण्ग्रहणमिति 'लण्'

साजात्या[1]तिदेशात्। शब्द रत्नादौ त्वण्[2] ग्रहणविचारमुपक्रम्य[3] शंकायाः करणात्। एवञ्चत्वदुक्तशंकानवकाश[4] एव अत[5] एवोपसर्गादृतीनेति[6] शेखरोप्युज्जीवितेत्यलं ग्रन्थाशयमजानतो[7] दूषण वृकगण[8]भीषणेनेति[9] दिक्।

ननु ऋकार लृकारयो[10]स्सावर्ण्य बोधने[11]पिवार्त्तिककारमतेऽण् ग्रहणप्रत्याख्यानेनोपसर्गादृतीत्यादौ ऋकारेण लृकारा[12]ग्रहणमाशंक्य वार्त्तिकेन साजात्यमतिदिश्यते[13]। इत्युक्तिस्त्वनुचिता। सूत्रेणसवर्णसंज्ञ।

तत्रत्य वार्त्तिके न[14] तु साजात्याति[15] देशेति वैरुप्यग्रहदंष्ट्रा[16]ग्रस्तत्वात्।

---

1. साजात्त्यातिदेशा ज-2; साजात्विशात् प-1; साजात्यादिदेशात् अ-2, अ-4.
2. त्वऽण् अ-2.
3. उपक्रम्यस्य अ-3; विचामुपक्रम्य ज-1.
4. शंकावुकाश अ-2, अ-4.
5. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-4; अत एवनाऽस्ति प-1; अतवो ज-1.
6. उपसर्ग हतेति ज-2; उपसर्गा दृतीति प-1, अ-1, अ-4.
7. ग्रन्थाशमज्जानतो प-1.
8. 'ण' नाऽस्ति प-1.
9. भाषणेनिति अ-2, अ-4 भिषणेति ज-2.
10. पाठोऽयं प-1 नन्ऋकार लृकारस्सावर्ण्य ज-1; ननु ऋकारयोः सावर्ण्य ज-2, अ-2, अ-4; ननु ऋकारद्योः सावर्ण्य अ-1, अ-3.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; वोधेपि ज-1.
12. लृकार एव ग्रहणम् अ-2; लृकार रा ग्रहणम् अ-4.
13. मितिदिश्यत प-1 दृश्यते अ-2.
14. वार्तिकं नैव ज-2.
15. साजात्यति ज-2, अ-3.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; दंष्ट्राग्रेस्तत्वात् ज-1.

सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्।।

किन्तूभाभ्यामपि साजात्यमेवातिदिश्यतां [1]। मानं चात्रनाज्झला[2] विति, सूत्रं ऋ[3]लृवर्णयोः [4]सावर्ण्य प्रतिपादक [5]वार्तिकञ्च। तथा हि। जातिपक्षे[6]ऽज्झलां सवर्ण संज्ञायामपि[7] अणुदित्[8] सूत्रेऽण्[9] ग्रहणप्रत्याख्यानेन विधिप्रदेशे तदग्रहणे[10] निषेधसूत्र वैय्यर्थ्यं[11] स्यात्। एवमण्[12] ग्रहण प्रत्याख्याने उपसर्गादृती[13]त्यादौ। ऋकार ग्रहणेन लृकार[14] ग्रहणानापत्तौ[15]। अण्[16] ग्रहण प्रत्यख्यानमसंगतं[17] स्यात्। ताभ्यां साजात्य बोधने तु सूत्र सार्थक्यं वार्त्तिक[18] कृदुक्ताण् ग्रहण प्रत्याख्यानं [19] च संगतम्। अत एव नाज्झलाविति[20] सूत्रे –

---

1. मेवातिदृश्यतां अ–2, अ–4.
2. नाऽऽज्झलौ (1/1/50) अष्टा., नाफलाविति अ–4.
3. ऋ लृ ए अ–4.
4. साचण्य अ–4.
5. वर्तिकं ज–2.
6. पाठोऽयं ज–2, प–1; पक्षेऽजुझस्नां ज–1; पधेऽसलां अ–1, अ–3; पक्षेऽजलां अ–4.
7. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–2, अ–3, अ–4 अणि ज–1.
8. 'त्' नास्ति प–1.
9. सूत्रेण अ–3.
10. तद्ग्रहणे अ–1.
11. पाठोऽयं प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 वैयर्थ्यं ज–1; वैय्यर्थ्य ज–2.
12. एवमण ज–2, अ–3.
13. उपसगीतोत्यादौ ज–2; उपसर्गोदृतीत्यादौ अ–3.
14. हृकार अ–2, अ–4.
15. ग्रहणानामपत्तौ प–1.
16. अण अ–3.
17. असंगत प–1.
18. 'क' नाऽस्ति प–1.
19. प्रत्याख्यान अ–4.
20. नासलाविति ज–2; अ–1, अ–3.

तत्प्रत्याख्यान[1] भगवता कंठतोनो[2]क्तम्। एवं सति सूत्रवार्त्तिक भाष्या[3]णामेक वाक्य[4]ता संपन्ना[5] भवति। न च सूत्रकारमते जातिग्रहणस्याभिमतत्वे सूत्रेऽण्[6] ग्रहणे किमर्थं[7] कृतमिति चेदेक[8] शेषसूत्रवत्[9] जात्याख्यायामितिवच्चा[10]वेहि। ननु[11] तर्हिं सूत्रकारवार्त्तिककारादीनां मते को विशेषेति चेन्न[12] कोपि। तदाशयस्यैव ताभ्यां प्रकाशितत्वात्[13]। न च नृन्पे[14] केणेत्यादिवर्णग्रहणे स[15]जातीयवर्ण ग्रहणे नृन्[16] विभर्त्तीत्यादावपि रुत्वा[17]द्यापत्तिरिति वाच्यम्। चजोः कुः धिण्यतोः[18] दधस्तथोश्च[19] झषस्तथोरित्यादि[20] ज्ञापकादित्संज्ञ

---

1. प्रत्याख्या प-1.
2. कंठनोक्तम् प-1; कंटतोनोक्तम् अ-1, अ-3.
3. भाण्याण मेक अ-4.
4. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3, अ-4, वाक्यतो ज-1, वाक्यतां ज-2.
5. संपत्राव भवति अ-3; संपन्ना अन्म; संयमा, ज-2.
6. सूत्रेण प-1, अ-2; सूत्रेऽण अ-3; सूत्रेणाग्रहणं अ-4.
7. किमर्थ अ-2, अ-4.
8. चेदेकुशेष अ-2, अ-4; चेदेशेष अ-3.
9. सुत्रंवत् अन्म.
10. वन्चावेहि अ-1, अ-4.
11. गुनुतर्हि अ-2, अ-4.
12. चेत्र अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
13. प्रकाशित्वात् अ-4.
14. नृन्पे 8/3/10 अण्टा.
15. संजातीय.
16. लृन् ज-2; नृ न् प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
17. ह्वाद्यापत्तिः अ-2, अ-4.
18. अष्टा 7/3/52; कुचिन्स्मितो ज-2; कुधिग्यती ज-1 कुधिन्णित्तौ प-1; कुधिण्नो अ-2; चयौः कुधिशरनो अ-4.
19. अष्टा., 8/2/38.
20. झधस्तथोर्धेऽधः अष्टा. 8/4/20.

कोकारानु[1]पलक्षित हलां संजाती[2]यत्वं प्रयुक्त[3] कार्याभाव ज्ञापनाद्[4] ग्रहण ज्ञापनाद्वा सवर्णग्रहण सामर्थ्यादैव[5] झरो झरीत्यादौ[6] न दोषः हलामित्युक्तेरक्षुन[7] दोषः। न च चजोरेवेति[8] नियमार्थे[9] तदग्रहणमिति वाच्यम्। अनैकत्र नियम[10] कल्पनाया[11] अन्याय्यत्वात्[12]। नियमा[13]पेक्षया विधेर्व लीयस्त्वाच्च[14]। ज्ञापकत्वे[15] तु विधित्वं[16] ध्वनितश्चायमर्थं[17] ए ओ ङ् सूत्रस्थ हल[18] इत्येतत् सूत्र ज्ञापकपरभाष्ये[19] एवम इ उ ण् सूत्रेऽ[20]नुवंधासंकरवारक[21] –

---

1. उकारामुपक्षिलेत्त प–1; संज्ञायकोकारानुपलषित अ–2, अ–4.
2. संजातीयत्व ज–2.
3. प्रयुक्ता अ–3.
4. ज्ञापनादण् ग्रहण अ–2, अ–4; ज्ञापनाद ग्रहण अ–1.
5. 'व' नाऽस्ति अ–4.
6. सं. पा. क्षरो क्षरि सवर्णे 8/4/65 अष्टा.
7. हलो अ–1; इत्युक्तेरक्षन ज–2 , इत्युक्तेरधन ज–2; इत्युक्तेरक्षुन प–1.
8. चजौरैवेति अ–1; चजोरैवेति अ–3.
9. नियमार्थ अ–2; नियमार्थे ज–2, अ–1, अ–3.
10. 'म' नाऽस्ति अ–1, अ–3.
11. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
12. कल्पानाया ज–1.
13. अन्याय्यत्वात् प–1, अ–2; अन्यायात्वात् अ–4.
14. मिपमापेक्षया अ–4.
15. पाठोऽयं ज–2, प–1, विधर्वोलय ज–1; विर्धेबलीय स्त्वाच्च अ–1, अ–3; वलीयस्त्वच्च अ–2; विधर्वधतीयस अ–4.
16. ज्ञापकत्वोतृ ज–2.
17. विधितं ज–2; विधित्वा प–1, विधित्व अ–1, अ–4.
18. पाठोऽयं ज–2, अ–2, अ–4 अर्थ ज–1, प–1, अ–1, अर्था अ–3.
19. हल् अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
20. ज्ञापकमरभाष्ये ज–2; अनुबंधो प–1.
21. वरिक ज–2.

प्राग्दीव्यतोऽण्[1] इत्येव [2]सिद्धे शिवादिभ्यो[3] णित्यत्रणित्करणेन[4] नानुबंधसंकर[5] इत्येद्भाष्य[6] व्याख्यानपर विवरणे च। च चात्र पक्षे नाज्झलाविति सूत्र स्वी[7]कारे गौरवम्[8]। अणुदित्सवर्णत्य चैत्यंशस्य[9] प्रत्याख्यानेन द्वादश पुत्रोत्सव स्थानापन्नषण् मात्राकरण[10] प्रयुक्त लाघवेन तस्य परा हत्तत्वात्। न च चो: कुरित्यादौ[11] विधेये[12]ऽप्रत्यय इति निषेधापत्ति:[13] भवन्मते उदित्करणे[14] नैव मन्मतेप्य निषेधात्। चजोरिति ज्ञापकेन [15]सजातीय प्रयुक्तकार्याभावे प्रसक्ते[16]तदभावायतत्करणात्। सवर्णसंज्ञायामिति। संज्ञाव्यवहार परभाष्य[17] तु व्यक्तिपक्षाभिप्रायकमिति नास्माक[18] मार्गमवरुणद्धि एवं च[19] सकलेष्ट[20]

---

1. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 प्राण्दिव्यतोण् ज-1, ज-2.
2. सिद्वै ज-2.
3. सिवादिभ्याण् प-1; शिवादिभ्योऽनित्यत्र अ-2.
4. करणे प-1.
5. संकई ज-2.
6. इत्यत्तद्भाष्य प-1.
7. स्वीकारो अ-4.
8. गौरव अ-2, अ-4.
9. 'स्य' नाऽस्ति अ-2, अ-4; चेत्यशस्य ज-2.
10. मात्राऽकरण अ-1, अ-3 ज-1, माकरणप-1.
11. न चजो: कु: ज-2.
12. विधेय प-1; विधेयेऽप्रत्य इति अ-2; विद्येद्येऽप्रत्य इति अ-4.
13. निशेधा प्रति: अ-4.
14. उगिद् ग्रहणे नैव प-1.
15. सजातीय प-1; सृजातीय अ-4.
16. प्रसक्तेन ज-2.
17. उपरिभाष्य अ-3.
18. नास्माकं अ-2, अ-4.
19. च- नैवाऽवलोक्यते प-1.
20. सेकलेष्ट ज-2.

सिद्धिरिति चेदिष्टापत्तेः। न चाप्रत्ययस्येत्यस्य प्रतियोगिनो भावात्[1] प्रतियोगि[2] प्रसिद्धये[3] सवर्णस्येति वाच्यमेव। अत एव तपरस्तत्कालस्ये[4] त्युत्तर[5]सूत्रमपि नासमंजसमिति[6] वाच्यम्। तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्[7] तपरस्तत्कालस्य नाज्झलौ[8] प्रत्ययेति न्यासे सूत्रकार वार्त्तिक[9]कारयो[10]स्तात्पर्य कल्पनेनादोषात्। अत्र पक्षे नञ्[11] ग्रहणमपि न कर्त्तव्यमिति द्वि[12]पुत्रोत्सवोऽभि वृद्धेत्यति लाघवम्। अण्[13] ग्रहणप्रत्याख्यानवार्त्तिकेन साजात्यमतिदिश्यते[14] इति व्याख्यात्रा[15] च[16] सर्वोऽयमर्थो[17] ध्वनितेत्यलमतिलेखने[18]नेति दिक्॥1॥

---

1. भात् प-1; भावा अ-3.
2. अतियोगि ज-2, व्युत्पतियोगि अ-4.
3. सिद्धये प-1.
4. 1/1/70 अष्टा.
5. उत्तर नाऽस्ति अ-2, अ-4.
6. 'ति' नाऽस्ति प-1.
7. 1/1/2 अष्टा.
8. नाऽऽज्झलौ- 1/1/10 अष्टा.
9. क नाऽस्ति प-1.
10. तात्पर्यम् अ-1, अ-2, अ-4.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-3, अ-4; पक्षिनेज् ज-1; पक्षेनज् अ-1, अ-2.
12. द्विपुरुषोत्सवो अ-2, अ-4.
13. अण ज-2, अ-3.
14. साजात्यमतिदिनयते ज-2; साजात्यदश्यत्त प-1; अतिदिनयतै अ-1; सात्यमतिदिश्येते अ-2, अ-4.
15. इतिख्यात्र च अ-2, अ-4.
16. 'च' नाऽस्ति प-1.
17. अर्थौ अ-4.
18. पाठोऽयं ज-2, प-1 अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; लेखने नत्ति ज-1.

यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम्॥2॥
कार्य्यकालं संज्ञापरिभाषम्॥3॥

उद्देशमनतिक्रम्य यथोद्देशम्। उद्देश उपदेशदेशः। अधिकरणसाधनश्चायम्। यत्र देश उपदिश्यते तद्देश एव वाक्यार्थबोधेन गृहीतशक्त्या गृहीतपरिभाषार्थेन च सर्वत्र शास्त्रे व्यवहारः। देशश्चोच्चारणकाल एवात्र शास्त्रे व्यवह्रियते। तद्वाक्यार्थबाधे जाते

उच्चारणकालेति[1]। तस्मिन्निति[2] सूत्रे निर्दिष्ट[3]ग्रहणेनोपशब्दपूर्वकस्यैव[4] दिशेरुच्चारणार्थकत्वमित्यस्य व्यभिचारादिति भावः। **कैयटेति**[5]। अत्रायं प्राचीनमते निष्कर्षः। यथो[6]द्देशे संज्ञा परिभाषयोः[7] स्वदेशे वाक्यार्थवोधोत्तरं विधिप्रदेश उप[8]स्थित्यावाक्यैकवाक्यताया[9] तत्रैव लक्ष्यसंस्कारः। कार्यकालपक्षे तु स्वदेशे[10] वाक्यार्थं विनैव तत्रोपस्थितौ पदैक[11] वाक्यतयाऽन्वये लक्ष्य संस्कारः। एवं च स्वदेशे वाक्यार्थबोधः विधिप्रदेशे[12] वाक्यैव वाक्यता लक्ष्य[13] संस्कारस्तत्रैव[14] यथाश्रुतग्राहि प्रतिपत्रपेक्षश्च। पक्षेति चतुष्टयं

---

1. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 काले ज-1.
2. तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1/1/66.
3. निर्दिर्दष्ट अ-2.
4. हि प-1, द्रिशे अ-4.
5. कौइट इति अ-2, अ-4.
6. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-4 यथोदेशे ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
7. परिभाषायोः अ-2.
8. उरित्या अ-2.
9. वातायां अ-4, लक्षसंस्कारः अ-2, अ-4.
10. स्वदेश अ-2.
11. पेदेश ज-2; पदैशकवाक्यतया अ-4.
12. प्रदेश ज-2.
13. लक्ष ज-2.
14. एव यथाश्रुत ग्राहि प्रति पत्र इति पाठो नोपलभ्यते अ-2, अ-4.

भविष्यति किञ्चिदनेन प्रयोजनमिति ज्ञानमात्रेण सन्तुष्यद्यथाश्रुतग्राहिप्रतिपत्त्रपेक्षोऽयं पक्ष इति 'ईदूत्' (1.1.21) सूत्रे कैयटः।

केचित्तु- परिभाषाविषये 'तस्मिन्' (1.1.66) इत्यादिवाक्यार्थ बोधे 'सप्तमीनिर्देशादिः क्व' इति पर्यालोचनायां सकलतत्तद्विध्युपस्थितो सकलतत्तत्संस्काराय गुणभेदं परिकल्प्येकवाक्यतयैव नियमः।

कार्यकालपक्षे तु त्रिपाद्यामप्युपस्थितिरिति विशेषः। एतदेवाभिप्रत्याधिकारो नाम त्रिप्रकारः कश्चिदेकदेशस्थः सर्व शास्त्रमभिज्वलयति, यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्व वेश्माभिज्वयतीति 'षष्ठी स्थाने' (1.1.49) इति सूत्रे भाष्ये उक्तम्। अधिकारशब्देन पाराथ्यो त्परिभाषाप्युच्यते। कश्चित् परिभाषारूप इति कैयटः। दीपो यथा प्रभाद्वारा सर्व गृहप्रकाशक एवमेतत् स्व बुद्धिजननद्वारा सर्वशास्त्रोपकारकमिति तत्तात्पर्यम्। एतव्च पक्षद्वयसाधारणं भाष्यम्, पक्षद्वयेऽपि

यथोदेश[1] पक्षे[2] पर्यवसन्नम्[3]। कार्यकाल पक्षे तु विधिप्रदेशे वाक्यार्थबोधः। पदैक[4] वाक्यता विशेष प्रतिपत्र[5] पेक्षश्चेति[6] त्रितयं पर्यवसन्नम्[7]। लक्ष्यसिद्धिस्तूभ्यत्रापि समानैव विधिप्रदेशे। यथोदेशे[8] वाक्यैकवाक्यतया कार्यकाले तु पदैक वाक्यतयेत्यन्य[9]देतत्। अव्यवहितोच्चरिते-

---

1. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; यथोद्देशे ज-1.
2. पक्षे नाऽस्ति अ-2, अ-4.
3. पर्यवसन्न अ-2, अ-4.
4. यदैक ज-2.
5. प्रतिपन्न अ-2, अ-4.
6. पेक्ष्यश्चेति प-1; पेक्षश्चैति अ-4; पेक्षेश्चेति अ-1.
7. सन्नाम् अ-2; पर्यवसन्नम् ज-2.
8. पाठोऽयं प-1, यथोदेशे ज-1, अ-1, अ-3,
9. वाक्येतेयत् अ-4; वाक्येतयेत्यन्यदेतत् अ-2.

प्रदेशैकवाक्यताया इतःप्रतीतेः। तत्रैतावान् विशेषः यथोद्देश परिभाषादेश सर्वविधिसूत्रबुद्धावात्मभेदं परिकल्प्य तैरेकवाक्यता परिभाषाणाम्। तदुक्तं 'क्ङिति च' (1.1.5) इति सूत्रे केयटेन- 'यथोद्देशे प्रधानान्यात्मसंस्काराय सन्निधीयमानानि गुणभेदं प्रयुन्जते' इति। कार्यकाले तु तत्तद्विधिप्रदेशे परिभाषबुद्धैकवाक्यतेति। अत्रैकदेशस्य इत्यनेन तत्र तत्र ततद् बुद्धावपि तत्तदेशस्थत्वं वारयति, यथा व्यवहर्तृणां कायोर्थमनेकदेशणमनेऽपि न तत्तद्देशीयव्यवहारः किन्त्वभिजनदेशीय-त्वव्यवहार एव तद्वत्।

निषेधवाक्यानामपि निषेध्यविशेषाकाङ्त्वाद्विध्येक-वाक्य-

सप्तम्यन्ते[1] यत्कार्यं[2] तत्पूर्वसम्बन्धि अव्यवहितोच्चरितेचीति[3] सप्तम्यन्ते[4] पूर्वस्य इको यण्[5] भवतीति तन्मते[6] क्रमेण वाक्यार्थः अत एव ईदूत्सूत्रे[7] तपर[8]करणे नाग्नी इति प्लुतस्य प्रगृह्यत्वाभाव[9]माशंक्य प्रगृह्यत्व दृष्ट्या[10] प्लुतस्या[11]सिद्धत्वेन संज्ञा प्रवृत्तिभविष्यतीत्युतरित्तेऽन्येन[12]प्लुत प्रगृह्येति[13] ज्ञापकेन प्लुतस्य सिद्धत्वे ज्ञापिते यथोदेश[14]पक्षाश्रयणे –

---

1. सप्तम्यन्तार्थे तत् कार्य ज-2; सप्तम्यते अ-1, अ-4.
2. यत् नाऽस्ति अ-2, अ-4.
3. यत्कार्यं इत्यारभ्य उच्चरिते इत्यन्ते प-1 मातृकायां नाऽस्ति; उच्चरिते नाऽस्ति अ-2, अ-4.
4. चोतिसप्तम्यंतो अ-2, अ-4.
7. ईदुतौ च सप्तम्यर्थे 1/1/18 अष्टा. ईदुत् प-1.
8. नपर अ-4.
9. प्रगृह्यत्वभावं अ-2, अ-4; प्रगृह्यताभावं अ-3.
10. दृष्ट्या अ-1.
11. प्लुतस्यापि अ-4.
12. अन्येन नाऽस्ति अ-2, अ-4.
13. प्रनाऽस्ति अ-2, अ-4.
14. यथोद्देश ज-2, अ-1, अ-3.

तथैवान्वय इति परिभाषासादृश्यात् परिभाषात्वेन व्यवहारः 'किङ्ति च' (1.1.5) इत्यत्र भाष्ये। तत्रैकवाक्यता पर्यदासन्यायेन। प्रसज्य-प्रतिषेधेऽपि तेन सह वाक्यार्थ बोधमांत्रेणैकवाक्यताव्यवहारः। संज्ञाशास्त्रस्य तु कार्यकालपक्षे न पृथग्वाक्यार्थबोधः, किन्तु प्रदेशवाक्यार्थेन सहैव। अतएव 'अणोऽप्रगृह्यस्य' (8.4.47) इत्येतदेकवाक्यतापन्नम् 'अदसो मात्' (1.1.12) इत्येतत् प्रति न मुत्वाद्यसिद्धम्, असिद्धत्वस्य कार्यार्थतया कार्यज्ञानोत्तरमेव तत्तप्रवृत्तिः, कार्यज्ञानं च प्रदेशदेश एवेति तद्देशस्थस्यासिद्धत्वात् पूर्वग्रहणेना-ग्रहणात्, एवं तद्बोधोत्तरमेव विरोधप्रतिसन्धानं चेति तत्र त्यपर त्वमेव 'विप्रतिषेध' सूत्रप्रवृत्तौ बोजम्। अत एव कार्यकालपक्षे 'अयादिभ्यः परैव प्रगृह्यसंज्ञा' इति 'अदसो मात्' (1.1.12) इति सूत्रे भाष्य उक्तम्।

आकाडाराधिकारस्थभपदसंज्ञादिविषये तु यथोद्देशपक्ष एवेति तत्रत्य परत्वेनैव बाध्यबाधकभावः। पदादिसंज्ञानां तत्र जातशक्तिग्रहेणैव त्रिपाद्यामपि व्यवहारः।

प्रगृह्य संज्ञादृष्ट्या[1] प्लुतस्यासिद्धत्वेन प्रगृह्यत्वं स्यादित्याशयकं किमत्तो[2] यत्सिद्धः प्लुत स्वर[3]संधिषु संज्ञा विधावसिद्धेति[4] भाष्यमुपादाय यथो[5]द्देशे संज्ञापरिभाषे प्रगृह्य संज्ञा च स्वरसंधिप्रकरण मध्यपतिता न भवतीति प्रश्नेति[6] कैयटः संगच्छते[7]। अत्रैव प्रतीकान्तरे[8] महावाक्यार्थ[9] पर्यालोचन

---

1. अ–1, अ–4.
2. कियनो अ–3.
3. पाठोऽयं प–1, अ–3 स्वसंधिषु ज–1, ज–2, अ–1, अ–4 स्वसंधिषु अ–2.
4. सिद्ध इति प–1.
5. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 यथोदेशे ज–1.
6. इति नाऽस्ति अ–2, अ–4.
7. संशोधित पाठः संगछते ज–1, ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
8. प्रतिकारांतरे अ–4.
9. 'वा' नाऽस्ति प–1.

अत एव 'पूर्वत्रासिद्धम्' (8.2.1) इति सूत्रे भाष्ये परिभाषणामेव त्रिपाद्यामप्रवृत्तिमाशङ्क्य कार्यकालपक्षात्रयणेन समाहितमित्याहुः। यथोद्देशपक्षरः प्रगृह्यसंज्ञाप्रकरणे भाष्ये॥2॥

प्रवृत्त्प्रतिपक्ष[1] पेक्षस्तु कार्यकालपक्षः यदि यथोद्देशेपि[2] विधि[3]प्रदेशेपदैक[4] वाक्यतयाऽन्व[5]यस्तर्हि तद्देशत्वेन भाष्यस्य कैयटस्य[6] चासंगत्यापत्तेः। किञ्च महावाक्यार्थेतिवदता यथोद्देशे[7] पदैकवाक्यत्वाभावस्य कार्यकालतायां तत्सत्ताबोधनाच्च। न हि वाक्यैक वाक्यतायाः[8] महावाक्यार्थः[9] संभवति[10]। अत एव कार्यकाल पक्षे तु विधिवाक्येनैव[11] वद्धि[12]संज्ञा विशिष्टा[13]नामादैचां भाव्य[14]मानतया सवर्ण ग्रहणमेव न प्राप्नोतीति स्पष्टार्थमेव तपरकरणमिति[15] वृद्धिसंज्ञा सूत्र[16] शेधे कौस्तुभः संगच्छते[17]।

---

1. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3 पत्तिपत्र ज-1, प्रतिपन्न अ-2, अ-4; प्रतिपक्ष ज-2.
2. यथोदेशे पि ज-2, अ-2.
3. प्रदेशै ज-2, प्रदेशो अ-4.
4. यदैक अ-2, अ-4.
5. '5' नास्ति ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
6. कैटस्य अ-3.
7. यथोदेशे अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
9. वाक्यताया ज-2.
10. कार्यकालतायां इत्यारभ्य संभवति इत्यन्तं अ-2, अ-4 पुस्तकयोः नोपलभ्यते.
11. वाक्यैनेव अ-1; वाक्येनैनेव अ-3.
12. वृधि अ-1; वृद्धिसंज्ञ ज-2.
13. विशिष्ट अ-1 अ-3.
14. भाव्यमानतया अ-2, अ-4.
15. करणमिति अ-2, अ-4.
16. सूत्रे अ-2, अ-4.
17. संगछते प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.

वृद्धिरादै च[1] सूत्रन्तु परिभाषात्व पक्षे इको गुण वृद्धीतिवत्[2] पदोप स्थापक मित्युक्तया[3] पदैकवाक्यतायास्तत्रैव बोधनादिति दिक्[4]। प्रदर्शनमेतत्। **गुणभेदमिति।** अत एव भट्टैः[5] दशापवित्रेण ग्रह[6] संमार्ष्टीति मंत्रेण[7] ग्रह संमार्जन[8] विधीयते। तत्र पशुना[9] यजेतेत्पादौ पशुगतैकत्व[10] विवक्षाव त्। अत्रैकत्व विवक्षयैकग्रहः संमार्जनीय[11] इत्यांशक्यग्रहं प्रतिगुणः समार्गः[12] प्रतिविधान[13] च गुण आवर्तनीय इति न्यायेन[14] यावन्तो[15] ग्रहाः सन्ति ते संमार्जनीया[16] इति निश्चिते। उद्देश्यगत[17] संख्या श्रूयमाणाप्य[18] च विवक्षितेति

---

1. 1/1/1 अष्टा., वृद्धिरादौ च अ–2, अ–3 अ–4.
2. 1/1/3 अष्टा. वृद्धिति यत् अ–3, अ–4.
3. मित्युत्या अ–3.
4. दि नाऽस्ति ज–1.
5. पाठोऽयं अ–4 भद्रैः ज–1, भट्टैः ज–2, अ–1, अ–2, अ–3.
6. ग्रहं अ–4; ग्रर्ह अ–1, अ–3.
7. मंत्रेणग्रह नोपलभ्यते अ–4.
8. समार्जन अ–1, अ–3.
9. पशुता ज–2; श्रुना अ–1, अ–3.
10. त्व नाऽस्ति ज–1; अत्र नाति प–1.
11. समार्जतीय ज–1; रामार्जनीय अ–4.
12. समार्ग अ–2, अ–4.
13. संशोधित पाठः, प्रतिवधानं ज–1; प्रविधानं ज–2; प्रतिधानं प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
14. न्याये अ–1.
15. वावतो अ–4.
16. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3 समार्जनीय ज–1, अ–4.
17. गतं अ–1, गते अ–4.
18. श्रूयमाणाथ ज–2, प–1, अ–1 अ–3.

तृतीयाध्यायी[1]सप्तमाधि[2]करणे समाहितं तद्व[3]दिति भावः। पशुनेत्यत्र तु[4] पशो विधेयत्वेन[5] न दोषः[6] दशापवित्रं[7] वासः खंडः[8] उपस्थितिरिति। **विशेष[9] इति**। अत्रायं मत निष्कर्षः। यथोद्देशे[10] स्वदेशे[11] वाक्यार्थ[12]बोधः पदैक वाक्यता[13] परिभाषा प्रदेशे[14] लक्ष्यसंस्कारः विशेषप्रतिपत्रपेक्षश्चेति[15] चतुष्ट्यम्। तत्र स्वदेशे वाक्यार्थ बोधस्तु उभयसाधारणः कार्यकाले[16] तु तस्मिन्निति सूत्रोक्त भाष्य प्रामाण्यात्। साकांक्षे[17] विप्रतिषेध[18] शास्त्रोपयोगिनि-शाब्दबोधे परिभाषा[19] प्रदेशे जातेऽनन्तरं[20] विधिप्रदेशे उपस्थितौ –

---

1. पाठोऽयं ज–2, अ–2, अ–4 तृतीयाध्यायो ज–1; तृतीमाध्यायो अ–1, अ–3, तृतीयाध्यायीय प–1.
2. समाप्तमधि ज–2, अ–1, अ–3; असप्तमाधि अ–2, अ–4.
3. तद्विदिति अ–4.
4. तु इत्यारभ्य खंडः इत्यन्तं ज–1 पुस्तके नोपलभ्यते.
5. विधेगत्वेन अ–1 विधेयत्वे अ–2.
6. तद्दोषः अ–2.
7. दशापवित्र अ–2, अ–4.
8. खंड अ–2.
9. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 विशेश ज–1.
10. यथोदेशे ज–1, अ–2, अ–4.
11. 'स्वदेशे' पाठो नाऽस्ति अ–1, अ–3.
12. वाक्यार्थः.
13. वाक्तया अ–4, अ–2.
14. प्रनाऽस्ति ज–1.
15. पेक्षेश्चेति अ–3.
16. कालत्व अ–2.
17. साक्षात् साकांक्षे इति पाठोप लभ्यते अ–3.
18. विप्रतिषेत्तिध प–1.
19. परिभाष अ–3.
20. जातेरनंतरं अ–2, अ–3.

निराकांक्ष[1]पदैक वाक्यतया[2]ऽन्वयबोधः लक्ष्यसंस्कारादिकं विधिप्रदेशे[3] एव स्वदेशे वाक्यार्थः[4] प्राचीन[5] कार्यकालापेक्षया विशेषः। वस्तुतस्तु तस्मिन्निति सूत्रस्थ भाष्यमेकदेश्युक्तिरिति वक्ष्यते। तदा तु न स्वदेशे[6] वाक्यार्थबोध इति ध्येयम्[7]।

संज्ञायां यथोद्देशे[8] तु स्वदेशे वाक्यार्थबोधादिकं प्राचीनोक्त यथोद्देशवदेव[9] बोध्यम्। एतावांस्तु[10] विशेषः तेषां यथाश्रुत ग्राहि[11] प्रतिपत्र[12] पेक्षो[13] वाक्यार्थः एतेषान्तु विशेष ग्राहि[14] प्रतिपक्ष पेक्षश्चेति। लोकेऽस्य[15] किं नामेति पृष्टे देवदत्तेत्युत्तरिते न हि आकांक्षा दृश्यते किमेतन्नाम्नः[16]

---

1. निराकांक्षः प-1 नि एकाक्ष अ-1.
2. वाक्यतायान्वय प-1.
3. प्रदेश प-1.
4. कार्यः अ-2, अ-4.
5. प्राचिन प-1.
6. 'स्व' नाऽवलोक्यते अ-2, अ-4.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4. ध्येयेम् ज-1.
8. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3; यथोदेशे ज-1, प-1; यथोदेश पक्षे अ-2, अ-4.
9. पाठोऽयं ज-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; यथोदे ज-1, प-1.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; एतास्तु ज-1.
11. आहि प-1.
12. प्रतिपत्रे अ-1.
13. पेक्षे अ-2, अ-4.
14. प्रतिपत्र इत्यारभ्य विशेष ग्राहि इत्यन्तं प-1 मातृकायां नाऽवलोक्यते.
15. लोकेस्य प-1.
16. किमेतेन्नाम्र अ-1, अ-3.

प्रयोजनमिति प्राचीनै[1]स्तु यथोद्‌देशे[2] निराकांक्ष[3] शाब्द[4] बोधाभावात्[5]। यथाश्रुत ग्राहित्वं कंठत:[6] एवोक्तम्। इदं सर्वं जातशक्ति ग्रहेणैवेति[7] वदता सूचितम्। संज्ञायामाकडारी[8]याधिकार वहि[9]र्भूतसूत्र विषयके[10] कार्यकाल[11] पक्षे तु स्वदेशे वाक्यार्थ[12] बोधमंत्तरेण[13] विधिप्रदेशे उप[14]स्थितौ ईदूत् सूत्रादिस्थ भाष्यप्रामाण्येन वाक्यैकवाक्यतयाऽन्वय:[15] लक्ष्य[16] संस्कारादिकन्तु परिभाषा विषयक[17] कार्यकाल पक्षवत्[18] बोध्यम्[19]।

---

1. प्रचीनैस्तु अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, यथोदेशे ज-1, प-1.
3. निएकांक्ष अ-2.
4. शब्द अ-3.
5. बोधाभावा अ-4.
6. कंटत अ-1, अ-3; कंवत अ-2, अ-4.
7. ग्रहैणेवेति अ-1, अ-3; शक्तिर्ग्रहेणैवेति अ-4.
8. आंकडारिया अ-1, अ-3.
9. वहिभूत प-1.
10. विषयके अ-3.
11. कार्य्यकाले प-1.
12. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; वाक्योर्थ ज-1.
13. बोधमक्षरेण अ-2; बौधुमंक्षेरेण अ-4.
14. उपा अ-4.
15. पाठोऽयं ज-2, अ-4; वाक्तयान्वय: ज-1, प-1, अ-1, अ-2, अ-3.
16. लक्ष्यं अ-4.
17. विषक अ-2.
18. पक्षत् अ-1, अ-3.
19. बाध्यम् प-1.

कार्य्यकालमित्यस्य च कार्य्येण काल्पते स्वसन्निधिं पाप्यत इत्यर्थः। कार्येण स्वसंस्काराय स्ववृत्तिलिङ्गचिह्नितपरिभाषाणामाक्षेप इति यावत्। अतएव पूर्वत्रासिद्धम् (8.2.1) इति सूत्रे भाष्ये त्रिपाद्या असिद्धत्वात्तत्र सपादसप्ताध्यायीस्थ परिभाषाणामप्रवृत्तिमाशङ्क्य यद्यपीदं तत्रासिद्धं तत्त्विह सिद्धमित्युक्त्वा तावताप्यसिद्धिरित्यभि-

---

तत्र हि भाष्ये प्रगृह्यः[1] प्र[2]कृत्येत्युपस्थितमिदं भवतीदूदेद्द्विवचन[3] मित्येव वदेतु[4]। वाक्या[5]र्थस्तु प्रगृह्य पदाभिन्नेदूदेदं तस्याचिप्रकृति[6]भाव इति। यदि विशिष्टो[7]पस्थितावपि पदैक वाक्यतयाऽन्व[8]यस्तर्हि एकं प्रगृह्य पदम[9]तिरिच्यमानं स्यात्। एतदुपक्रम[10] भाष्यन्तु प्राचीनोक्त यथोद्देशो[11] पष्टंभकत्वेन पूर्वमुक्तम्[12]॥ **सूत्रे वैय्यटेति**[13]। तत्र हि क्ङितीति

---

1. प्रगृह्य प-1, अ-4.
2. प्रकृतेत्युपस्थितं; कृतेत्युपस्थितं अ-4.
3. ईदूदेदूद्विवचनं प्रगृह्यम् (1/1/11); ईदूदेद्विवन ज-1; इॅदेदेद्विवचन ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, भवति ईदूत्सप्तम्यर्थे प्रगृह्यमि उक्तं पदषि दैक वाक्यता स्यात् तत्रोपस्थितमिदं भवति, ईदूदे द्विवचनमित्येक देतत् इति पाठान्तरं प-1; मातृकायामुपलभ्यते.
4. वदेत् ज-2, अ-1, अ-4 वेत्त् अ-4.
5. वाक्यर्थस्तु ज-1.
6. पाठोऽयं ज-2, ज-4; भिन्नृदूदेततदेस्याविप्रकृति अ-1, अ-3; भिन्नृदूदेदं तस्याऽचि प्रकृतिभाव ज-1, अ-4, प-1.
7. विशिष्ठो ज-1.
8. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 वाक्यत्तयान्वय: ज-1, वाक्यतयान्वय: ज-2.
9. पदमित्तिरिच्यमान अ-3; यदमंतिरिच्यमान अ-4.
10. उपक्रमं अ-4.
11. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, अ-4 यथोदेशो ज-1, प-1.
12. उक्तम् नाऽस्ति ज-1, प-1.
13. कैयटेति प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; सप्तम्यामप्यवहिते ज-1.

प्रायके कथमिति प्रश्ने कार्यकालं संज्ञापरिभाषं यत्र कार्यं तत्रोपस्थितं द्रष्टव्यमित्युक्तम्।

परसप्तभ्यामप्यव्यवहिते[1] चितमित्यादौ[2] क्ङिति निषेधस्यान्न[3]भिन्नमित्यादौ व्यवहिते इत्याशयेन तन्निमित्तग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्त्तिक प्रवृत्तौ तत्खंडनाय भिनत्ती[4]त्येतल्लक्ष्ये गुण[5]निषेधक निषेध वाक्ये विधि[6]सूत्रवुद्धावचरि[7]तार्थे नैतलक्ष्यविषयक निषेधशास्त्रेण बाधेति भाष्यमुपादाय तेनोक्तम्। अनेने[8]दूत्सूत्रस्थ कैय्यटस्य[9] पूर्वापर विरोधोपि ध्वनित:। **सूत्रे भाष्ये** इति। तत्र हि रोर[10]वीतीत्यत्र यङ्[11] लुकः प्रत्ययलक्षणेनपर[12]त्वमाश्रित्य निषेध शंकायां न लुमतेति निषेधे[13]। उक्ते[14]ङ्गाधिकारस्थे एव सनिषेधे[15] त्यन्येनोक्ते –

---

1. पाठोऽयं प-1, सप्तम्यामव्यवहिते जन्म, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; सप्तम्यामप्यवहिते ज-1.
2. चित्तम् ज-2; चित्यम् अ-3.
3. स्यातृन्नभिन्नं प-1.
4. भिन्नमित्येतल्लक्ष्ये प-1; मिनतीत्येतलक्ष्ये ज-2.
5. गुणा अ-3, अ-4, अ-1.
6. सूत्रसम्बुद्धौ प-1.
7. अचारितार्थेन प-1.
8. अनेन दृत् अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
9. कैयटस्य ज-2, अ-2.
10. रोरावीत्तीत्यत्र प-1.
11. यङ् ज-2.
12. लक्षणेतपरत्वं अ-2.
13. निषेध ज-2.
14. उक्तांगाधि ज-2; उक्ते अगाधि प-1; उक्तंऽगाधि अ-1, अ-3, अ-4; उक्तंऽगाधि अ-2.
15. सनिषेध प-1, अ-4.

कार्य कालमाश्रित्य[1] गुणप्रदेशस्थत्व[2] निषेधशास्त्र[3]स्योक्तम्। एवं निपात[4] एकाजनाङित्यत्राद्यं तवदेकस्मिन्येन विधीत्यति[5]देश संज्ञासूत्रयोरपि तत्[6] व्यवहारो[7] द्रष्टव्यः। एवं च[8] निषेधस्या[9]प्यंगाधिकारस्थत्वेन न लुमतेति[10] निषेध इति तात्पर्यम्[11]। अदसो मादिति[12]। तत्र हि[13] प्रगृह्य[14]संज्ञादृष्टयामुत्वस्या सिद्धत्वेनाया[15]दीनाम्प्राप्ति[16]माशंक्य संज्ञा विधान[17] सामर्थ्येन तेषां सिद्धत्वे-ऽन्येनाभिहितेऽणीप्रगृह्यस्येत्यनुनासिक[18] प्रतिबंधेन कार्यकाले[19] चारितार्थ्य-मुक्तम्[20]। भाष्ये उक्तमिति। आकडारेति[21]। अत्रत्यं[22] तत्त्वमेकदेश

---

1. कालमाश्रीत्य प-1.
2. प्रदेशस्थत्व प-1.
3. शास्त्रास्योक्तं ज-2.
4. निपातः अ-4, निपात एकाजनाङ् 1/1/14.
5. वीधीत्यति अ-3.
6. त्तत् ज-2.
7. व्यवहो प-1.
8. सवं च अ-1, अ-3.
9. स्यावि अंगाधि अ-2, अ-4.
10. न लुमताऽङ्गस्य 1/1/63.
11. हितात्यर्थं अ-3.
12. अदसामादिति प-1.
13. हि नाऽस्ति ज-2.
14. प्रगृह्यं अ-1, अ-3.
15. असिद्धत्वेना उपादीनां प-1.
16. व्याप्तिमाशंक्य प-1.
17. निधान अ-1, अ-3.
18. प्राप्तिमाशंक्य अ-3.
19. कालपक्षे अ-2; कलपक्षे अ-4.
20. उक्ते अ-3.
21. आकाडारेति ज-2, अ-1, अ-3.
22. अत्रत्य अ-1, अ-2, अ-4.

न च कार्यकालपक्षे 'ङमो ह्रस्वात्' (8.3.32) इत्यादौ 'तस्मादित्युत्तरस्य' (1.1.67) 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' '1.1. 66' इति परिभाषाद्वयोपस्थितौ परत्वाद् 'उभयनिर्देशे' पञ्चमीनिर्देशो बलीयान् इति 'तस्मिन्' इति सूत्रस्थभाष्यासङ्गतिः, उभयोरेकदेशस्थत्वेन परत्वादित्यस्यासङ्गत्यापत्तेः स्पष्टं चेदम् 'इको गुण' (1.1.3) इत्यत्र कैयट इति वाच्यम्; 'विप्रतिषेध' सूत्रेऽष्टाध्यायीपाठकृतपरत्वस्या-श्रयणेनादोषात्। न हि कार्य्यकालपक्ष इत्येतावता तदपैति, पक्षद्वयेऽपि प्रदेशेषु स्वबुद्धिजननेनाविशेषात्। न हि तत्पक्षेऽप्यचेतनस्य शास्त्रस्य स्वदेशं विहाय तद्देशगमनं सम्भवति। नाप्यस्मदादिबुद्धिजननेन स्वदेश त्यागो भवति। अतएव भाष्ये एकदेशस्थस्यैव सर्वशास्त्राभिज्वालकत्व-मुक्तम्। अत एव 'तस्मिन्' इति सूत्रे कैयटः- सूत्रपाठापेक्षया परत्वस्य व्यवस्थापकत्वमिति। 'इको गुण इति सूत्रस्थकैयटस्तु चिन्त्य एव। अयथा सर्वशास्त्राणां प्रयोगार्थत्वेन प्रयोगरूपैकदेशस्थत्वेन क्वापि

विकृतमनन्यवदिति परिभाषाव्याख्यावसरे स्फुटी भविष्यति[1]। स्पष्टचेदमिति। स्पष्टमित्यारभ्य कैय्यटे[2] इत्यन्तः पाठ[3] आहुरित्यस्याग्रे प्रक्षिप्तः। तेनसंज्ञाविषय-स्यास्पष्टत्वात्। न चेदमित्यस्य यथोद्देश[4] वर्णनमित्यर्थः[5]। तस्य तदुक्तमित्यनेन स्पष्टमुक्तत्वात्।

न च कार्यकालेति। यत्तु कैयटानुयायिभिर्यथोद्देश[6] पक्ष[7]

---

1. भविस्यति अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1; कैयटे इत्यन्तः ज-1, कैयटे इत्यंतः अ-1, अ-2, अ-3,अ-4.
3. पाठः अ-1, अ-3.
4. पाठोऽय ज-2, अ-1, अ-3; यथोदेश ज-1, प-1, अ-2, अ-4.
5. वर्णनमित्यर्थः इत्यारभ्य कैयटानुयायिभिः इत्यन्तं अ-4 पुस्तके नाऽस्ति।
6. पाठोऽयं अ-1, अ-3, अ-4; यथोदेश ज-1, प-1; द्दे नाऽस्ति ज-2, अ-1.
7. वक्ष अ-4.

परत्वं न स्यात्'।

'किञ्च क्ङिति' च इति सूत्रस्थकैयटरोत्या विधिसूत्राणां

कुत्सित[1]यष्टिमवलंयेद[2] भाष्यं व्याख्यातम्। तथाहि यत्र तु यथोद्देश्यत्वेन पर[3]त्वात्त्रिपाद्यांप्रधानस्य संस्कारो यथा ङ्मो ह्रस्वादित्यत्र तत्र[4] नमुने[5] इति योग विभागेन न पदान्त सूत्रे द्विर्वच[6]नादीनां केषाचित्[7] ग्रहणेनेदुदुपधस्येति[8] सूत्रेऽप्रत्ययग्रहणेन वा केषांचिद[9]सिद्धत्वाभावात्। **प्रधान-स्योपस्कारेति**[10]। तत्तुस्वेनैव स्वलेखन[11] गौरवभाराक्रान्तमिति नमस्कृत यत्नमपेक्षते[12] योग[13] विभागस्य भाष्येऽदृष्टत्वात्[14]। द्विर्वचनादीनां भगवता प्रत्याख्यानात्[15] अप्रत्यय इत्यस्या प्रत्ययो[16] विसर्ग[17] इत्यर्थं दूषयित्वा

---

1. पष्टि अ-3.
2. यथोदेशत्वेन अ-4.
3. परं त्वात् ज-2.
4. तत्र नोपलभ्यते प-1.
5. सं पां. 8.2.3 अष्टा, पाठोऽयं ज-2, नमुन ज-1, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; न पुन इति ज-2.
6. द्विर्वचादीनां अ-2, द्विर्वचनादीना अ-4.
7. वपांचित् प-1.
8. इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य 8/3/41.
9. केषाचिद् ज-2; गृहेणेन दुपधस्येति अ-2, अ-4; उदुदपधस्येति प-1.
10. उपस्कारति अ-1, अ-3.
11. स्वखलेखन अ-4; स्व नाऽस्ति प-1.
12. अपेक्ष्यते प-1, ज-2.
13. याग प-1
14. भाष्ये दृष्टत्वात् अ-3; भाष्येरदृष्टत्वात् अ-4.
15. प्रत्याख्यात प-1.
16. अप्रत्ययरज्यत्याप्रत्ययो ज-2, अ-1, अ-3.
17. पाठोऽय ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 यो विसर्ग इति पाठः ज-1; विसर्गं प-1.

यथोद्देशपक्षे परिभाषादेशसन्निधानेन तेषां परत्वं व्याहन्येत। एवं च वृक्षेभ्य इत्यत्र 'सुपि च' (7.3.102) इत्यतः परत्वाद् बहुवचने झल्येत् (7.3.103) इत्येत्त्वमित्याद्युच्छिद्येतेत्यलम्।।3।।

प्रत्ययपदस्य[1] तत्सम्बन्धिपद[2]त्वेन प्रत्यय सम्बन्धिभिन्न इत्यर्थस्यभाष्यशेखर[3] शब्दरत्नादौ व्यवस्थापितत्वात्। यदपि[4] कार्यकाल पक्षपाति[5] मूलेऽदसोमादिति[6] सूत्रस्थ मयादिभ्यः परैव[7] प्रगृह्यसंज्ञेति भाष्यविरोधोद्भावनम्[8]। पूर्वत्व स्याश्रयणे[9]ऽयादीनामेव परत्वं[10] स्यादित्याशयः। तदपि विशेष विषयकत्व-रूपदूषणेन पराहतम्। इदं भाष्यं[11] परिभाषा विषयकम्[12]। तत्तु संज्ञा विषयक-मिति महान्भेदः[13]। अन्यतराकांक्षयापि[14] सम्बन्ध[15] इत्युक्तमेव मूलकृता। यदपि ङ्म इति पन्चम्यानिरवकाशत्वेन परत्वं भाष्योक्तमनुपपन्नम् इत्यज्ञानं मूलकृत आविश्चक्रुः। **तदपि न।**

---

1. षदस्य ज-2; पदस्थ अ-4.
2. पर त्वेन ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
3. शेखरं अ-1, अ-3.
4. पदपि ज-2, अ-1.
5. पक्षापाति अ-2, अ-4.
6. मूलेऽदेसोयादिति अ-1, अ-3.
7. पदैव अ-4.
8. भावन अ-4.
9. पूर्वत्वायणे ज-2, अ-1; पूर्व त्वाश्रयणे प-1; पूर्वत्वाद्यणि अ-2, अ-3, पूर्वत्वायृणि अ-4.
10. परत्व प-1.
11. भाष्य प-1; भाव्यं अ-4.
12. विषयिकं ज-2.
13. महाभेदः प-1.
14. अन्यत एकांक्षयापि अ-2, अ-4; अन्यतरां कांक्षयापि अ-3.
15. संबध अ-1, अ-3.

तत्रैव[1] भाष्येविवरणकारैस्तदुक्ते:। अत्रोल्लेखस्तूक्ति संभव[2] प्रदर्शना[3]यैकदेशिनः सिद्धान्ते तु अनवकासत्वेन ङ्म[4] इति पञ्चमीनिर्देशस्यैव[5] **प्राबल्यम्**[6]। इत्यलमदालापेनेति[7] दिक्॥

इत्यलमिति। नन्वदसो[8]मादिति सूत्रस्थ परैव प्रगृह्यसंज्ञेति संज्ञापदेन तत्कार्यं प्रकृतिभाव उच्यते। [9]आशयमजानत अग्रे प्रश्नः[10] कथमिति। एकदेशिन[11] उत्तरं[12] **कार्यकालमिति।** एवं चात्रापि पक्षे स्वदेशे[13] वाक्यार्थ बोध इति संज्ञाशास्त्र परिभाषाशास्त्रयोरैकरुप्यमेव[14]। अन्य[15]थात्रापि पाठकृत[16] परत्वे प्रगृह्य[17]माणेऽयादीनामेव[18] परत्वमापद्येतेति[19] भाष्या[20]संगतिः।

---

1. तत्रैवाभाष्ये अ-3.
2. सभव प-1.
3. प्रदार्शनायैक अ-1.
4. ङ्म इति नाऽवलोक्यते प-1.
5. निद्र्देशस्य ज-2, अ-1; निर्दिशस्यैव अ-2, अ-4.
6. प्रावल्यं एवं च कार्य कालपक्षे स्वदेशेनैव वाक्यार्थ हत्यलम् इत्यत्रायं पाठोऽपिलभ्यते प-1 मातृकायाम्.
7. इत्यलमदासलापेनेति पन्म; असदालापेनति अ-3.
8. मदिति ज-2.
9. ते आशय अजानत्त अग्रे ज-2, अ-1; आशयमाचानत अ-3; आशयमजानतां अ-2, अ-4.
10. प्रश्नम् प-1.
11. एकदेशिनः अ-2, अ-4.
12. उंतरे अ-1.
13. 'स्व' नाऽस्ति प-1; स्वदेशे अ-1.
14. शास्त्रयोरेक अ-4; शायोः एक अ-1, अ-3.
15. अथात्रापि प-1.
16. पाठकृकृत प-1.
17. गृह्यमाणे ज-2, ज-1.
18. ऽयादिनमेव अ-4.
19. अपद्यतेति पन्म. आपद्येतिति अ-3.
20. भाष्यसंगतिः अ-2, अ-4.

अत एव मदुक्तरीत्यैव[1] भाष्यं व्याख्या[2]यात एव ङ्मो ह्रस्वादचीति सूत्रस्थ भाष्य विरोधोनेति तस्मिन्निति सूत्रस्थं विवरणं[3] संगच्छते[4] इति चेन्न। एकदेशिभाष्य[5] विरोध परिहाराय यथा[6]-श्रुत भाष्यस्यान्यथा व्याख्या[7]नन्तु शपथ निर्णयमिति तथा वक्तु[8]मशक्यत्वात्। विरोध परिहारस्तु विशेष विषयत्वेन पूर्वं कृत एव तस्मिन्निति सूत्रस्थ[9] पञ्चमी[10] निर्देशो[11] नवकाशत्वाद्भविष्य[12]तीति भाष्य[13]व्याख्यापर[14]बलवत्वात्। स्वार्थ एव भविष्यतीति विवरणविरोधेन उभयनिर्देशे[15] पञ्च[16]मीति परिभाषा व्याख्यानपरानव[17]काशत्वात् पञ्चमी निर्देशः[18] प्रबल इति मूल विरोधेन तत्रत्य **गदाविरोधेन**[19] चात्रत्य सामान्य[20] विवरणस्य प्राचीनानुसारित्वात्[21]।

---

1. रीत्येवाभाष्यं अ-2, अ-4.
2. व्याख्यायत प-1.
3. 'भाष्य विवरणम्' इति पाठः प-1.
4. पाठोऽयं ज-2, अ-2, अ-4 संगच्छत ज-1; संगछते प-1, अ-1, अ-3.
5. एकदेशे अ-3; एकदेश, अ-4.
6. यश्रुत प-1.
7. अन्यथात्वाख्यानं अ-4.
8. वक्तुशक्यत्वात अ-4.
9. सूत्रस्य ज-2.
10. पन्चमा ज-2, अ-1, अ-2.
11. निशो ज-2, अ-3.
12. भावष्यात इति, ज-2, अ-1, अ-3.
13. भाष्यं ज-2.
14. व्याख्यान अ-2.
15. निद्र्देशे अ-1, अ-3.
16. पंजीकोति ज-2.
17. 'नव' नाऽस्ति प-1.
18. निद्र्देशः अ-3.
19. 'न' तत्रतयगदाविरोधेन नोपलभ्यते अ-4.
20. 'सामान्य' नोपलभ्यते प-1.
21. अनुसारित्वा प-1.

तेन विप्रतिषेधस्य ङ्म इत्यंशे[1] दुष्टत्वं[2] बोधितम्। किञ्च तावत्तापि पदैक[3] वाक्यता[4] वाक्यैकवाक्यताकृतभेदस्य जागरुकत्वाच्च उभयत्रापि पदैक वाक्यता स्वीकारे तु उपस्थितमिदं भवति ईदूदेद् द्विवचन[5]मितिदूषणदीक्षितादिच[6]रणनिगड विनिर्मोके[7] वृद्धिपदाभिन्नादैचा[8] विधाने भाव्यमानतया सूत्रा[9] प्रवृत्तौ तपरकरण[10] स्पष्टार्थमिति तदभीष्ट[11]सिद्धौ[12] तपरकरणमैजर्थमिति वृद्धिसंज्ञासूत्रस्थ[13] भाष्य-विरोधो भवताम्। विरोधश्च तत्रत्य वाक्यैक[14] वाक्यतया[15] प्राचीनमतदूषण परविवरणस्य[16] किं च। वृद्धिसंज्ञासूत्रस्थ[17] संज्ञासूत्राणां वाक्यैकवाक्यता[18]-मंगीकृत्य तपरकरण[19] प्रत्याख्यानपरप्राचीन -

---

1. ङम इत्यंशे इति पाठः प-1, मातृकायां नोपलभ्यते ; ङमरत्यंशे अ-3.
2. स्पष्टत्वं अ-2, अ-4.
3. पदैक्य अ-1.
4. वाक्यतां अ-1, अ-3, वाक्याता अ-4.
5. 1/1/11 अष्टा. ईदूदेद्विवचनम् प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; इदूदेद्विवचनं ज-2.
6. दिक्षितादि ज-2.
7. वितिमोके अ-3.
8. पदाभिन्नादेवां अ. म, अ;2 भिन्नदैवां अ-3.
9. सूत्रावृत्तौ अ-2, अ-4.
10. करण प-1.
11. तदाभीष्ट प-1; तदभिष्ट अ-2.
12. सिधौ अ-1.
13. 'स्थ' नाऽस्ति, अ-2; सूस्थ अ-4; सूत्रस्य अ-3; सूत्रस्थ संज्ञा सूत्राणां वाक्यैकवाक्यतया भाष्यविरोधो प-1 मातृकायामयमपि पाठो लभ्यते.
14. वाक्यैक्य अ-2.
15. वाक्यातया ज-2, अ-1, अ-3.
16. पद ज-2.
17. सूस्थं अ-1, अ-3.
18. वाक्यमणो प-1; वाक्यातामांगो अ-3.
19. तपकरण ज-2.

मतखंडकशेखर[1] ग्रंथविरोधश्च। च चोभयत्रापि वाक्यैक वाक्यतैवास्तु[2] षष्ठी स्थानेति सूत्र[3] भाष्येणात्रत्य भाष्येण च तथाऽबोधनात्[4]।

विनिगमनाविरहात्[5] किञ्च। लक्षणया[6] तादृ[7]शार्थवादिनां मते प्रकृति-भावस्य परत्वेपि प्रगृह्य संज्ञा[8] विना तदप्राप्ते[9]: प्रगृह्यसंज्ञायास्तु परत्वेनायादि बाधरूप दूषणकीटेन निकृत्त[10]त्वाच्च। त्वदुक्त[11]मर्थमुक्त्वा[12]ऽन्येदिक् इत्युक्तं वृद्धैस्तत्र[13] दिगर्थस्तु[14] मदुक्त एवेति नत्तद्विरोध[15] इत्यल[16]मतिलेखनेनेति दिक्॥2-3॥

---

1. शेखरे प-1; शेखग्रन्थं अ-3.
2. वाक्यतैवास्तु इत्यारभ्य बाधरूपदूषणकीटेन इत्यन्तं प-1 ग्रन्थे नोपलभ्यते; वाक्यैवास्तु अ-2.
3. सूत्रभाष्येणा च तथा इति पाठोपलभ्यते अ-4.
4. वोधनात् अ-4.
5. विराहात् ज-2, अ-1, अ-3.
6. लक्षणतया अ-2.
7. 'ता' नाऽस्ति अ-2.
8. संज्ञा ज-2.
9. नाऽस्ति अ-2; विनानदप्राप्तैः अ-3, अ-4.
10. निराकृतत्वाच्च अ-2, अ-4.
11. तदुक्तम् ज-2.
12. उत्क्रांत्ये अ-1; उक्तांत्ये ज-2; उत्कांऽत्ये अ-1, अ-2, अ-4; उक्त्वांऽत्ये अ-3.
13. वृद्धेस्तत्र अ-1, अ-3.
14. तदिगर्स्थस्तु अ-4.
15. न तद्धितविरोध प-1; एवेन त्वाद्विरोध अ-4.
16. इलमर्मति अ-4.

बोधः स्वदेशे लक्ष्याणा[1]मपरत्र च संस्कृतिः[2]।
वाक्यैकवाक्यताह्या[3]द्ये स च मंदोपकारकः।।1।।

द्वितीय[4]विधिसम्बद्ध[5]पदैः[6] सहवि[7]निर्णयः।
तत्रैव लक्ष्य संस्कारो जिज्ञासा विनिवर्तनम्[8]।।2।।

संज्ञानां परिभाषाणामेषा प्राचीन पद्धतिः।
यथोद्देश[9] नवीनानां[10] स्वदेशे ह्यर्थ[11] निर्णयः।।3।।

पदैक[12]वाक्यतालक्ष्यसंस्कारो[13]ऽत्रैव संमतः[14]।
विशेषज्ञो[15]ऽधिकारीस्यात्षष्टो[16] स्थानेति भाष्यतः।।4।।

---

1. लक्षाणाम् ज-2.
2. संस्क्रांतिः अ-4.
3. पाठोऽयं अ-3, अ-4, वाक्यतात्माद्ये ज-1; वाक्यतास्वाद्ये ज-2; वाक्यतात्द्याद्ये प-1, अ-1; वाक्यतात्पाद्ये अ-2.
4. द्वितीये ज-2; द्वितीये प-1.
5. संबंध प-1; संपद्ध अ-3.
6. परे प-1.
7. सहा विनिर्णयः अ-4.
8. विनिवर्तते ज-2; विनवर्तिने अ-1, अ-3; विनिवर्त्तनेम अ-4.
9. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3; यथोदेशे ज-1, प-1, अ-2, अ-4.
10. न विनानाम् अ-2, अ-4.
11. स्वदेशेत्यर्थं अ-2, अ-4.
12. यदैक अ-1.
13. सस्कारोत्रैव प-1, अ-1, अ-3.
14. समतः अ-1, अ-3.
15. पाठोऽयं अ-2, अ-4; विशेषज्ञोधरीका स्यात् प-1; विशेषज्ञोधिकारो ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
16. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2; षधोस्थानेति ज-1; षष्टीत्स्थानेति अ-4; षष्ठास्थानेति प-1.

विधिप्रदेशे वाक्यार्थः कार्यकाले[1] पदैः सह।
भाष्यान्तरस्य दुष्टत्वा[2] द्विशेषज्ञोप[3]कारता॥5॥

यथोद्देशे[4] तु संज्ञानां[5] प्राचीनोक्तेरभिन्नता[6]।
विशेष[7]ज्ञोपकारस्तु विशेषो भाष्यकृन्मता॥6॥

कार्य[8]काले तु संज्ञानां[9] स्वदेशे[10]नैव निर्णयः।
ईदूत्सूत्र[11]स्थ भाष्येण पदानां[12] नैक वाक्यता॥7॥

तत्रैव संस्कृतिः प्रौढ़[13] मनोरंजनता[14] तथा।
आकडाराधिकारस्थ[15] संज्ञासु तु विपर्ययः[16]॥8॥

1. कार्यकाले ज-2; कार्यकाल प-1; कार्यकालै अ-3.
2. इष्टत्वात् ज-2.
3. विशेषज्ञापकारता अ-4.
4. यथोदेशे प-1, अ-2, अ-4.
5. संज्ञायाम् प-1.
6. अभिन्नतो अ-1.
7. विशेषज्ञो प-1.
8. कार्य्य प-1.
9. सज्ञानां अ-1, अ-3.
10. स्वदेशेदेनैव प-1.
11. ईदत् अ-1, अ-3.
12. पदानानैवाक्यता प-1.
13. प्राढ प-1, प्रौढ अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
14. मनोरजनता अ-2; मनोरंजनाता अ-4.
15. अकडाधिकारस्थ प-1.
16. विपर्यय प-1.

इत् संज्ञका अनुबन्धास्तेष्ववयवानवयवत्वसन्देह आह-

अनेकान्ता अनुबन्धा इति॥4॥

अनेकान्ता अनवयवा इत्यर्थः। वो ह्यवयवः स कदाचित् तत्रोपलभ्यत एव। अयं तु न तथा, तदर्थभूते विधेये कदाप्यदर्शनात्। शित्किदित्यादौ समीपेऽवयवात्वारोपेण समासो बोध्यः। 'वुञ्छणकठ' (7.2.80) इत्यादौ णित्त्वप्रयुक्तं कार्यं पूर्वस्यैवेत्यादि तु व्याख्यानतो निर्णेयम्। हलन्त्यम् (1.3.3) इत्यत्रान्त्यशब्दः परसमीपबोधकः॥4॥

वस्तुतस्तु-

एकान्ताः॥5॥

जातशक्तिग्रहेणैव[1] संस्कृतिर्भाष्यमानतः[2]।
संगृहीतो विवेकोऽत्र मताना[3] बालवुद्धये॥9॥

नैवमयमिति[4]। सूत्रे स्वघटित[5]समुदायत्यादिवृत्तित्व[6] सम्बन्धेन। लक्ष्ये[7] तुस्वघटित समुदायोपस्था[8]प्यत्वसम्बन्धेन[9] स्वप्रतियोगिका[10]भाववत्व संबंध नवेति[11]भावः।

---

1. ग्रहैणैव ज-2.
2. त्तः ज-2.
3. ममानां अ-4; मतानां अ-4.
4. नैवयमति अ-2, अ-4.
5. सूत्रेष्वघटित अ-2.
6. पाठोऽयं अ-1, अ-3; समुदाया आदिवृत्तित्व ज-1; समुदायां त्यादिवृतत्वं, ज-2; समुदायांत्य वृत्तित्व-1; समुदायांत्यादित्व संबंधेन अ-2, अ-4.
7. लक्ष्मे अ-4.
8. उपस्थाप्यत्वम् ज-2.
9. सम्बन्धे तु अ-4.
10. भावुवत्व अ-2.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3; संबंधेनेवेति भावः अ-2, अ-4; संबंधेनवेति भावः ज-1.

इत्येव न्याय्यम्, शास्त्रे तत्रोपलम्भादन्यत्रानुपलम्भाच्च। अनवयवो हि काकादिरेकजातीयसम्बन्धेन गृहवृक्षादिषूपलभ्यते, नैवमयम्। एवं हि बहुव्रीहिरपि न्यायत एवोपपन्नः। अन्त्यादिशब्दे लक्षणा च न।

किञ्चानवयवत्वे ण श- क प्रत्ययादौ णादेरित्त्वानापत्तिः, प्रत्ययादित्वाभावात्। दध्नचश्चकारस्य वैयर्थ्यापत्तेश्च। इदं च 'तस्य लोपः' (1.3.9) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम्। तत्र ह्युक्तम् 'एकान्ता अनुबन्धाः' इत्येव न्यायमिति दिक्॥5॥

यथाभूतलं घटाभाववदित्यत्र[1] भूतल[2]वृत्यभावे प्रकार[3]तया भासमानस्य घटस्यालौकिकसंन्निकर्ष[4]जन्यज्ञानविषयत्वं तथेहापीति ध्येयम्[5]। स साक्षा[6]देव तत्र प्रतीतिरित्या[7]ग्रहः। णशकप्रत्ययादा[8]विति। कशणेति[9] पाठः। अत एवाग्रे**कादेरिति**[10] संगच्छते[11]। यद्वा ननु णशप्रत्ययादौ इत्वेऽसतिपाक्षिक

---

1. वहित्यत्र अ-4; विदित्यत्र ज-2.
2. भूतलवृत्य नोपलभ्यते अ-4.
3. प्रकाशस्तया अ-4.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1; सनिकर्ष ज-1; संनिकर्ष अ-1, अ-3, ज-2; सन्निकार्ष अ-4.
5. बोध्येयम् अ-2; वोधेयम् अ-4.
6. साक्ष्यादेव ज-2; साक्षादेवव अ-4.
7. प्रत्तीत्तिरित्याह अ-2, अ-4.
8. प्रत्यायादाविति अ-2, अ-4.
9. केशणेति अ-3.
10. कादे इति अ-4.
11. संशोधित पाठ संगछते ज-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, प-1.

नन्वेकान्तत्वेऽनेकाल्त्वादेव औशादीनां सर्वादेशत्वसिद्ध्या

श्याद्[1] व्यधेतिण प्रत्यय प्रापक[2] ददातिदधात्योर्विभाषेति[3] विभाषाग्रहणं[4] व्यर्थं[5] स्यात्।

असरुपप्रत्यय[6]त्वेनैव लाभात्[7]। पक्षेण प्रत्ययसिद्धेरेव[8] चेत्संज्ञा तेन[9] विभाषा[10] ग्रहणेन ज्ञाप्यते[11]। तत्फलन्तु छत्रादिभ्योण[12] इत्यादौ बोध्यमिति। चेत्तत्राह[13] क प्रत्ययादाविति। तद्गुण[14] संविज्ञानो[15] बहुब्रीहि:[16]। तेन क प्रत्यय नंदिग्रहीति[17] ल्युट्[18] चेत्यादिनां संग्रहो बोध्य:। तदेव विवृणोति

---

1. सं. पा.- श्याद्व्यथास्रुसंस्रवतोणवसावहलिहश्लिषश्वसश्च (3.1.101) अष्टा. श्याध्येधेति प-1; शाद्वाधते अ-3.
2. प्रायक ज-2, अ-3, अ-1; यापक अ-2.
3. सं. प. 'ददातिदधात्योर्विभाषा' (3.1.139) अष्टा.; दधात्यो विभाषेति प-1; दध्यात्योरिति विभाषा अ-2, अ-4.
4. ग्राहणम् अ-2.
5. व्यर्थ अ-3.
6. प्रत्ययेनैव प-1.
7. पाठोऽयं ज-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; मातृकासु नोपलभ्यते.
8. शिद्धेरेवं अ-3.
9. संज्ञानेन अ-3.
10. विभाया अ-1.
11. ज्ञाथंते अ-3.
12. छत्रादिभ्यो ण: (4.4.62); छत्रादि स्रो ज-2, अ-1.
13. चेतत्राह प-1, अ-1, अ-3.
14. तद्धग ज-2.
15. संज्ञानो प-1; न ज्ञानो अ-3.
16. वहुव्रिहि प-1, अ-2.
17. नन्दिग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्य च: (3.1.134) अष्टा.
18. ल्युट् च 3.3.115 अष्टा; ल्युर्ल्युठ ज-2, अ-1

'अनेकाल्' (1.1.55) सूत्रे शिदग्रहणं व्यर्थमत आह-

नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्॥6॥

शिदग्रहणमेवैतज्ज्ञापकम्। तेन 'अर्वणस्तृ' (6.4.127) इत्यादेर्न सर्वादेशत्वम्। डादिविषये तु सर्वादेशत्वं विनानुबन्धत्वस्यैवाभावेनानुपूर्व्यात्सिद्धम्॥6॥

कादिरित्यादिना। व्यर्थतापत्तेश्चेति। ननु चकारेण स्वपूर्ववर्त्तिन्येव कार्यं[1] ज्ञाप्यते[2] नोत्तरत्रेति वुञ्छ[3]ण्केन दोष इति चेत्सत्यम्? गौरवं भाष्यविरोधश्च मुख्यं[4] दूषणं तन्मते बोध्यम्। तत्र गौरवं प्रदर्शितमेव[5] भाष्यविरोधं[6] दर्शयति। इदञ्चेति[7]॥5॥

डादिविषयेत्विति[8]। नन्वनुबंधत्व[9]योग्यकृतमनेकाल्त्व नेति परिभाषार्थस्यान्यत्र स्पष्टतया आनु[10]पूर्व्यात्सिद्ध[11]त्व कथन[12]मसंगतमिति चेत्सत्यम्।

---

1. कार्य अ-2, अ-4.
2 ज्ञाप्यते अ-4.
3. वुन्छण्कठ (12.2.80); वुछणकेन ज-2, अ-1, वुन्नकणकेन अ-2, अ-4; नुछणकेन अ-3.
4. मुख्य अ-4.
5. दर्शितमेव अ-2, अ-4.
6. विरोध अ-2.
7. इदन्चेति नाऽस्ति अ-2.
8. विषयेत्वेति प-1; विषयेस्त्विति अ-4.
9. नन्वतवधत्व अ-3; वषत्व प-1.
10. अनु प-1; आमु अ-4.
11. पाठोऽयं अ-1; पूर्व्यो सिद्ध त्व ज-1, ज-2, अ-2, अ-4; पूव्या प-1.
12. कथनम् नोपलभ्यते अ-2, अ-4.

दीक्षिता[1]नुरोधित्वात् अस्य ग्रन्थस्य। सर्वादेशनिर्वाहस्तु प्रश्लेषेण[2] बोध्य:[3]। अत एव तु:[4] प्रयुक्त: स्पष्टश्चायमर्थो[5]ऽनेकालिति सूत्रस्थ[6] भाष्य व्याख्याने परस्मै[7] पदानामित्यत्र विवरणे[8]शेखरे[9] जस:[10] शीत्यत्रा[11]पीतिध्येयम्। कैयटानु[12]यायिभिर्डाणलादि[13] विषये तु सर्वादेशत्वं विना[14]ऽनुबंधस्यै[15]वाभावे नानु[16]पूर्व्यात्सिद्धि[17]रित्युक्तं, तत्परास्तम्। यदपि शित्करणेनानुबंधामल्[18] व्यवहाराभावो ज्ञाप्यते इति स्थानिवत्सूत्रस्थ[19] शेखरमनुद्य अनुबंधविनिर्मुक्त[20]

---

1. दीक्षतानु अ–2.
2. प्रश्लेषण अ–1, अ–3.
3. बोध्यु: ज–2.
4. तु अ–4; अ एव तु: प–1.
5. अर्थे ज–2; अर्थोनेकालिति अ–2, अ–4.
6. सूत्रस्य ज–2.
7. परेस्मै अ–1.
8. विवरणो ज–2; विवरणे अ–4.
9. शखरे प–1.
10. पाठोऽयं प–1, अ–1, अ–3 जस: ज–1, 5ज–2; जश: अ–2, अ–4.
11. त्रापिति ध्ययां अ–1, अ–4; ध्येया अ–3.
12. कैय्यटा प–1.
13. डाणत्वादि अ–1, अ–3.
14. पाठोऽयं ज–1; विमानु ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–4.
15. अनुबंधस्यैव भावेन अ–3.
16. नाऽस्ति तु अस्ति अ–3.
17. सिधि ज–2.
18. अनुबन्धानीमसुव्यवहारा भावो ज–2, अनुबन्धा मामल्यवहाराभावो अ–2, अ–4.
19. सूत्रस्य ज–2.
20. मुर्क्त ज–2.

पदार्थोपस्थितेः सर्व[1]संमतत्वेन[2] स्वयमपि तथैवानुदितत्वेन[3] दोषानवकाशादिति[4] दूषणावभा[5]समभिद[6]धुस्तन्मुधैव तस्य हलःश्नः इत्यादि सूत्रस्थ[7] भाष्य विरोध[8]हालाहल[9] संमिश्रितत्वात्[10]। तत्र हि शानचः[11] शित्वेनानुबंध-कार्ये[12]ऽनल्विधाविति प्रतिषेधः प्रवर्तते[13] इत्युक्ते सेर्ह्यपिच्चेत्यपि[14] त् ग्रहणस्य तातङो[15] ङित्वस्य च वैय[16]र्थरुपदूषणेशिद्[17] ग्रहणं प्रत्याख्यातम्। त्वदुक्तरीत्या अनुबंध विनिर्मुक्तस्यैव स्थानित्वेन[18] शंका-

1. उपस्थितेऽसर्व अ-2.
2. संसतत्वेन प-1; समंतत्वेन अ-2, अ-4.
3. 'न' नाऽस्ति प-1.
4. काशदिति ज-2.
5. दूषणावभावमभि अ-2, अ-3; दूषणावधाधमिति अ-4.
6. अभिद्धुः प-1.
7. हलःश्नः शानज्झौ (3.1.83) अष्टा., सूत्रस्य ज-2.
8. विरोधे अ-2, अ-4.
9. हालाहल प-1.
10. संमिश्रितत्वोत् ज-2.
11. शानचु अ-2; शानच् अ-2; शानच अ-4.
12. अनुबंधा ज-1.
13. प्रवेर्त प-1.
14. सं पा. 3.4.87 अष्टा.
15. तङानावात्मनेपदम् 1.4.100 अष्टा. तातङे ङितस्य च इति पाठः ज-2.
16. वैय्यर्थ्य ज-2, अ-2.
17. शि ग्रहणस्य.
18. स्थानिवत्वेवन प-1.

समाधानयोरसंगत्यापत्तिः। किञ्च क्ङिति चेति सूत्रेऽचिन[1] वादौ स्थानिवत्वेन ङित्वे गुणनिषेधमाशंक्य यासुटो ङित्वेन[2] ङिदादेशा ङित्तोनेत्युक्तम्[3]। अपि च रमा[4]यामित्यादौ ङेरन[5]वकाशत्वादामि स्थानिव त्वेन ङि [6]त्वाद्याड्जाय मानो न स्यात्। ननु च सर्वत्र[7] स्थानिनिष्ठस्य[8] धर्मस्यानेयमिति[9] चेत्त[10]त्रैवानल्विधाविति निषेधः स्यात्। विशेषणतया सर्वत्रालाश्रयणात्[11]। ज्ञापकेनाल्[12]त्वव्यवहारा[13]भाव बोधने[14] (तु न कश्चिद्दोषः। **नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वमिति** ज्ञापयतीति भाष्येऽल्त्व व्यवहाराभावबोधन)[15] द्वारेति शेष इति न तद्विरोध इति शेखरे एव तद्विरोध[16] परिहारेण[17] न तद्भाष्य[18] विरोध इति दिक्[19]॥6॥

---

1. सूत्रेऽचिनवमित्यादौ अ-2, अ-4.
2. यासुटि ङित्वे प-1.
3. ङिदादेशोङिन्नेत्युक्तम् अ-2, अ-4.
4 स्मायामोत्यादौ अ-4.
5. ङेरनवकाशत्वाद्याट् जायमानो न स्यात्- इति पाठः प-1 मातृकायामुपलभ्यते; ङेदनवकाशत्वादामि अ-4; ङित्वाद्याट् अ-2, अ-4.
7. सर्व अ-4.
8. निष्टस्यु ज-2.
9. धर्मल्यानधनमिति ज-2; धर्मस्यानयनमिति प-1; धर्मस्याननयमिति अ-1, अ-3, धर्मस्थानेयमिति अ-4.
10. चेत्तत्रोवानल् प-1; चेतृतत्रैवानल् अ-1.
11. सर्वत्रालाश्रयणत् अ-4.
12. 'त्व' नाऽस्ति प-1.
13. व्यवहार ज-2.
14. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 बोधन ज-1.
15. कोष्ठान्तर्गतपाठस्तु ज-1 मातृकायां नाऽवलोक्यते; पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
16. तद्विरोधे अ-3; ताद्विरोध ज-2.
17. परिहारेणा ज-2.
18. तद्भार्ष्य ज-2.
19. शेखरे इत्यारभ्य विरोध इति दिक् यावत् प-1 मातृकायां पाठो नाऽवलोक्यते.

नन्वेवमप्यवदात मुखमित्यत्र पलोपोत्तरमात्त्वे कृते 'अदाप्' (1.1.20) इति घु संज्ञाप्रतिषेधो न स्यात्, दैपः पकारसत्त्वेऽनेजन्तत्वा-दात्वाप्राप्त्या पलोपोत्तरं पकाराभावेनास्य दाप्त्वाभावादत आह-

नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम्॥7॥

'उदीचां माङ' (3.4.19) इति निर्देशोऽस्या ज्ञापकः। 'आदे च उपदेशे' (6.1.45) इति सूत्रेणोपदिश्यमानस्यैजन्तस्यात्त्वं क्रियते ङकारसत्त्वे तु एजन्तत्वाभावादात्त्वाप्राप्तेस्तस्या सङ्गतिः। न चास्यामवस्थायां तस्य धातुत्वा भावात्कथमात्त्वम् (इति वाच्यम्) तत्र

उपदिश्यमानस्येति। उपदेशपदे कर्मणि धञिति[1] भावः। यत्तु केयटा[2]नुयायिनः परिभाषाया[3] अवतरणमाहुः[4]। अवदात[5] मुख[6]मित्यत्रोपदेशे एजंतानामात्वमुच्यमानमित्यादि। भाव घञन्तोपदेश[7] पदोल्लेखन[8] भाष्यविरोधभिक्षमंगी[9] चक्रुः करतले। तत्र टौकिते[10]त्यादावपि प्राप्नोतीति।

---

1. धाजिति अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-4; अनुर्यायिनः ज-1; अनुयायिभिनः प-1, कैटानुयायिनः अ-3.
3. परिभाषा अ-2, अ-4.
4. अवतरमहा अ-4.
5. अवदातुं अ-2; अवदात अ-1, अ-3.
6. मुखमित्रत्यत्रो प-1.
7. धजतो अ-1, अ-3.
8. उल्लेखनेन अ-2, अ-4.
9. त्तिक्षाम्रंणि प-1; निक्षमणो अ-3.
10. टौकिते ज-2; ढौकिते प-1, अ-1; दौकिते अ-2; सैकिते अ-4.

धातोः (6.1.8) इत्यस्य निवृत्तेरित्यन्यत्र विस्तरः। स्पष्टं चेदं 'दाधा ध्वदाप्' (1.1.20) इति सूत्रेभाष्ये॥7॥

नन्वेवमपि 'वाऽसरूपः' (3.1.94) इति सूत्रेण क-विषयेऽणोप्यापत्ति रित्यत आह-

नानुबन्धकृतमसारुप्यम्॥8॥

भाष्यमुपादाय पदा[1]कर्मसाधनस्तदा उपदेशेत्यस्य उपदिश्य[2] मानस्येत्यर्थः[3]। षष्ट्यर्थे सप्तमी तदा तु विशेष्योपादाना[4]त्तदन्तविधौ प्रकृते न दोषः। यदा[5]त्वन्यसाधनस्तदातदनु[6]पादानादुपदेशे य एच्[7] इत्यर्थे प्रकृते स्याद्दोष[8] कैयटः[9]। तत्र[10] धातोरित्यस्य निवृत्त्याढौकितादौ[11] दोषवारणा-यतत्स्वीकार[12] इत्याद्यादेच उपदेश इति शेखरे च स्पष्टम्॥7॥ **विकल्प-विधायकमिति**[13]। विकल्पार्थकविभाषाघटितं सूत्रमित्यर्थः। एवञ्च विभाषाग्रहणं ज्ञापकमिति[14] भावः॥

---

1. यदा प-1, ज-2.
2. उपदिश्यमास्यन त्यर्थः प-1.
3. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 षष्ठयथ्रे ज-1; षष्टार्थे ज-2.
4. विशिष्यापादाना त् प-1.
5. पदात्वन्य अ-1, अ-3.
6. तदतु अ-3; य एव च अ-1, अ-2; य इच् अ-4, प एच ज-2.
8. स्यादोष इति अ-4.
9. कयटः प-2.
10. तन्नधातोः ज-2; धातोः 6.1.62; एवमेव 3.1.91 अष्टा.
11. निवृत्पाठौकितादौ अ-2; निविृत्यादौ कितादौ ज-2; निवृत्यटौकितादौ अ-4.
12. ततवोकार अ-3; स्वीकारमात्रादेव उपदेश अ-2; स्वीकारपादे च उपदेश अ-4.
13. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, अ-4 विधायमिति भावः 'इति पाठः' प-1 मातृकायामुपलभ्यते विधायके ज-1.
14. विकल्पार्थक इत्यारभ्य ज्ञापकमिति इत्यन्तं प-1 मातृकायां नोपलभ्यते.

'ददातिदधात्योर्विभाषा' (3.1.138) इति ण- बाधकशस्य विकल्पविधायकमस्या ज्ञापकम्। तेन गोद इत्यादौ नाणिति वाऽसरूपसूत्रे भाष्ये स्पष्टम्॥8॥

ननु संख्याग्रहणे बह्वादीनामेव ग्रहणं स्यात्, प्रकरणस्याभिधानियामकत्वसिद्धात् 'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्यय' इति न्यायात्। अस्ति च प्रकृते बह्वादीनां संख्यासंज्ञा कृतेति ज्ञानरूपं

वाऽसरुप सूत्रे[1] **इति।** अत्र यदयपि शित् ग्रहणमांङ् निर्देश[2] विभाषा[3]ग्रहणैरनेकान्तत्व पक्षोपि[4] ज्ञापयितुं[5] शक्यस्तथापि अनेकत्रानेक[6] लक्षणादिप्रयुक्तगौरवेण भाष्यविरोधेन चोक्तार्थ ज्ञापकतैव[7] साध्विति[8] ध्येयम्[9]॥8॥

ननु कतीति[10] कृत्रिमासंख्यास्तीतित्यंत[11] प्रतिषेधोऽज्ञापक[12] **त्यन्ताशदन्ताचेति।** इति चेन्न[13]। अर्थवत[14]स्ति शब्दस्य ग्रहणेन च[15] तस्यैव

---

1. वासरूपसुत्रे इति ज-2; सं. पाठः 'वाऽसरूपोऽस्मियाम्' (3.1.94).
2. निद्र्देश अ-1, अ-3; निद्देश अ-4.
3. ग्रहनैः ज-2; ग्रहणौर अ-3.
4. पक्षौपि.
5. ज्ञापकमेव साध्विति 'इति पाठोपलभ्यते अ-1, अ-3', ज्ञापवितुं अ-3.
6. अनेकत्राते लक्षणादि अ-3; अनेकाभनेक प-1.
7. ज्ञाकतैव अ-1; ज्ञपयितुं शक्यः इत्यारभ्य ज्ञापकतैव इत्यन्तं नाऽस्ति अ-2, अ-4.
8. साध्विति ज-2.
9. ध्येयम् अ-1.
10. कताति अ-4.
11. त्यन अ-3.
12. पाठोऽयं प-1, प्रतिषेधोऽज्ञापक ज-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
13. चैत्र अ-1, अ-3.
14. अर्थवतस्शिब्दस्य ज-2; अर्थवतस्त शब्दस्य प-1.
15. 'च' नाऽस्ति प-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.

प्रकरणम्। न तु लोकप्रसिद्धैकद्वयादीनाामित्यत आह-

उभयगतिरिह भवति॥9॥

इह शास्त्रे। संख्या अतिशदन्तायाः (5.1.22) इति निषेधोऽस्या ज्ञापकः। न हि कृत्रिमा संख्यात्यन्ता शदन्ता वास्ति।

तेन 'कर्त्तरिकर्मव्यतिहारे' (1.3.14) कण्वमेघेभ्यः करणे (3.1.17) 'विप्रतिषिद्धं चानधिकरण' (2.4.13) इत्यादौ लौकिक क्रिया द्रव्याद्यवगतिः। तत्र क्वोभयगतिः क्वाकृत्रिमस्यैव क्व कृत्रिमस्यैवेत्यत्रलक्ष्यानुसारिव्याख्यानमेव शरणम्। अत एवाम्रेडितशब्देन कृत्रिमस्यैव ग्रहणं न तु द्विस्त्रिर्घुष्टमात्रस्य। स्पष्टं चेदं संख्या संज्ञासूत्रे भाष्ये।

यत्तु संज्ञाशास्त्राणां मच्छास्त्रेऽनेन शब्देनैत एवेति नियमार्थत्वं

व्यावर्त्यत्वात्। अत एव भाष्येत्वदुक्तमाशंक्यार्थवत् ग्रहणेनानर्थकस्ये[1]त्यर्थवतस्ति [2]शब्दस्य ग्रहणमित्युक्तम्। नन्वेतद्[3]भाष्यमयुक्तम्[4]। तथाहि। ज्ञापकात्पूर्वं[5] सूत्रे संख्यापदेन कृत्रिम[6]संख्याग्रहणात् कृत्रिमत्यंतस्यैव ग्रहणं प्रसक्तं ना[7] कृत्रिमस्येति उभयोरनुपस्थित्या कथमर्थवत् परिभाषोपस्थितिरिति[8] चेन्न। अति[9]शदन्तायाः इत्यस्य संख्या विशेषणत्वेन विशिष्टवुद्धौ[10] विशेष्य[11]

---

1. कस्यैत्यर्थ अ-3.
2. अर्थवतस्मिंस्तिशब्दस्य अ-1; अर्थवतस्मिस्ति अ-3.
3. न चेतद्भाष्यम् अ-1, अ-3.
4. भाष्यमयुक्तं अ-4.
5. पूर्व अ-3.
6. कत्रिम अ-4.
7. 'वा' ज-2; नाकृतिमस्येति अ-3.
8. 'इति' नोपलभ्यते ज-1, प-1, अ-1.
9. प्रति ज-2.
10. वुध्रौ प-1.
11. विशेष अ-2.

कृत्रिमा कृत्रिमन्यायबीजमिति तत्र; तेषामगृहीतशक्तिग्राहकत्वेन विधित्वे सम्भवति नियमत्वायोगात्। 'सर्वे सर्वार्थवाचकाः' इत्यभ्युपगमोऽपि योगिदृष्ट्या, न त्वस्मदादिदृष्ट्या, विशिष्य सर्वशब्दार्थज्ञानस्याशक्यत्वात्। सामान्यज्ञानं तु न बोधोपयोगीत्यन्यत्र निरूपितम्।।9।।

नन्वध्येता शयितेत्यादाविङ्शीङोर्ङित्वाद्गुणनिषेधः स्यादत आह-

कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते।।10।।

ज्ञानासंवलितविशेषण ज्ञानस्य कारणतया तत् ज्ञानस्य पूर्वं संपाद्यत्वेन तदवस्थायां[1] [2]त्यंतांशे उभयोरुपस्थित्या[3] परिभाषा प्रवृत्ता[4]वर्थ वत्तिशब्दस्यैव ग्रहणे[5] पश्चाद्विशिष्ट ज्ञानेनानुपपत्तिरिति[6] प्रति[7]संधानेपि[8] ज्ञापकत्वस्य साम्राज्य[9]पदारुढत्वादिति ध्येयम्[10]। स्पष्टश्चायमर्थः कैयटविवरणयोः।

ननु अतिशदन्तग्रहणेनशास्त्रेऽकृत्रिमस्यैव[11] ग्रहणमिति विपरीतमेव कुतो न ज्ञाप्यत[12] इति चेन्न। बहुग[13]णेति सूत्र बाधापेक्षया उक्तार्थस्यैवोचित्त-

---

1. तदवस्थायो अ-1, अ-3; नदचस्यायाम् अ-4.
2. त्यताशे अ-3.
3. स्थिता अ-3.
4. वृत्तार्थवति अ-4; प्रवृत्तार्थविति अ-2; प्रवृत्तावर्थप्रति ज-2.
5. ग्रहणे नाऽवलोक्यते प-1.
6. पाठोऽयं अ-1, अ-3, अ-4.
7. 'रिति' नाऽस्ति ज-1, ज-2, इति नाऽस्ति अ-2; अनुपपत्तिरूढ इति पाठः प-1.
8. संधानपि प-1, सांम्राज्य ज-2; संभ्राज्य अ-3; साम्नाज्य अ-4.
10. बोध्यम् अ-4.
11. शास्त्रेऽकृत्रिग्रहणमिति इति पाठः प-1; शास्त्रोक्ति त्रिमस्यैव अ-; शास्त्रोक्ते त्रिमस्यैव अ-4.
12. ज्ञाप्यते प-1.
13. वद्गणैति प-1, बहुगणवतुडति संख्या 1.1.23

'स्थण्डिलाच्छयितरि' व्रते। (4.2.15) इति निर्देशोऽस्यां ज्ञापकः। उर्णुनविषतीत्यादिसिद्धये कार्यमनुभवन्निति। अत्र हि- 'द्विर्वचनेऽचि' (1.1.59) इति

नुशब्दस्य द्वित्वम्। अन्यथा 'सन्यङोः' (6.1.9) इत्यस्य षष्ठ्यन्तत्वात् सन्नन्तस्य कार्यित्वेन इसो द्वित्वनिमित्तत्वाभावात् तत्प्रवृत्तिर्न स्यात्। वस्तुतः समवायिकारणनिमित्तकारणयोर्भेदस्य सकल लोकतन्त्रप्रसिद्धतया तस्य तत्त्वेनाश्रयणाभावेन नैषा ज्ञापकसाध्या। अतएव हि प्रयुक्तः। सहि तत्त्वेनानाश्रयणे हेतोः प्रसिद्धत्वं द्योतयतीति तत्त्वम्। 'द्विर्वचनेऽचि' (1.1.59) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितैषा॥10॥

त्वादितिध्येयम्। न बोधोपयो[1]गीति द्रव्य[2]त्वप्रकारक द्रव्यविशेष्यं सामान्यज्ञानं घटत्वप्रकार[3]कघट विशेष्यक विशेषज्ञानं[4] प्रति न कारण[5]मित्यर्थः। सामान्य[6]ज्ञानं तु सामान्यबोधोपयोगिभवत्येव एतेन[7] सामान्यज्ञानस्य बोधानु[8]पयोगित्वे जगत्[9]सकल कृत्स्नादि[10]भ्योपि बोधो[11] न स्यादिति दूषण[12] दत्तज[13]लाञ्ज-लित्वमापादितम्॥9॥

---

1. बोधोपणेगीति अ-1, अ-3.
2. द्रव्यंत्व अ-4.
3. प्रकारंकटविशेष्यक अ-4.
4. विशेष्यानं अ-2, अ-4.
5. कारकम् अ-2, अ-4; करणम् अ-3.
6. बोधोपयोगीति इत्यारभ्य ज्ञानन्तु सामान्य इत्यन्तं प-1 मातृकायां नोपलभ्यते.
7. ते एन प-1.
8. बाधानुपयोगित्वे ज-2, अ-3.
9. जगसकल प-1.
10. कृत्स्नादिन्योपि अ-4.
11. बोधे अ-2, अ-4.
12. दृषणं ज-4.
13. दत्तम् प-1.

ननुप्रणिदापयतीत्यादौ दारूपस्य विधीयमाना धुसंज्ञा दापेर्न स्यादत आह-

यदागमास्तद्गुणीभूतास्तद्ग्रहणेन गृह्यन्ते॥11॥

अध्ये[1]ताशयितेति। तृजन्तमेतत्[2]। यत्तु केयटानुयायिभिः ननु दोधीवेव्योर्ङित्वात्क्ङिति[3] चेति सिद्धेतयोः[4] पृथक्[5] निषेधो व्यर्थोऽत[6] आहेति परिभाषावतारितात्तत्तुच्छम्[7]। भाष्ये दीधीवे[8]व्योर्निषेध[9]विषयेऽदीधे-ददीध युदाशराज्ञे[10] वृत्तास[11] इत्यादौ[12] गुणदर्शनेन छांद[13]सत्वेनैव तत्र निषेधाप्राप्तेर्वक्तव्यतया सूत्रमेव मास्तित्यर्थक[14] दीधीवेव्योरश्छन्दो विषय[15] त्वात् दृष्टा[16]नुविधित्वाच्च छंदस इत्युक्तत्वेन तद्विरोधपर्वत[17]पातेन तेन त्वदुक्तावतरणस्य चूर्णितत्वात्। सूत्रकाररीत्यापि न[18]।

---

1. अध्यता अ-1, अ-3.
2. लृजन्तमेतत् अ-4.
3. दोधोवेव्यार्डत्वात् प-1.
4. पाठोऽयं अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, सिद्धतयोः ज-1, ज-2, प-1.
5. पृथकं ज-2.
6. व्यर्थोति ज-2, प-1.
7. अवतारितात्तुंछ ज-2; अवतारितातुछं प-1; अवतारिताततुच्दं अ-1, अ-3.
8. दोधोवोव्योनिषेध ज-2.
9. निषेधे अ-1, अ-3.
10. नुदीधेदधोधर्युदाशराज्ञे अ-2; उदीधेदधोधयुदीस राज्ञे अ-4.
11. नृतास अ-1; नृताम ज-2.
12. इत्यादौर्गुण अ-4.
13. छांदस इत्युक्तत्वेन तद्विरोध इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
14. मास्त्वत्यर्थक प-1; सूत्रमेवास्त्वित्यर्थक अ-3.
15. दीघोवेषोछंदो ज-2.
16. दृष्टानुविधिताच्च ज-2.
17. पयर्तपातेन अ-1.
18. ना अ-4.

यमुद्दिश्यागामो विहितः स तद्गुणीभूतः शास्त्रेण तदवयवत्वेन बोधितोऽतस्तद्ग्रहणेन तद्ग्राहकेण शब्देन गृह्यते बोध्यत इत्यर्थः। तत्र तद्गुणीभूता इत्यंशो बीजकथनम्। लोकेऽपि देवदत्तस्याङ्गाधिक्ये

आदीध्यक इत्यादावनिग्ल[1]क्षणाचोञ्णितीति निषेधेन[2] चरितार्थत्वात्। स्पष्टश्चाय[3]मर्थः शब्दकौस्तु[4]भादौ स्थण्डिलाच्छयितरीति। ननु उर्णु[5] न विषतीत्यादाविस्[6] शब्दस्य निमित्तत्वेनाश्रय[7]णार्थं प्रशस्तकार्यिणः[8] निमित्तत्वं नास्तीत्यर्थो ज्ञापनीयः[9]। स च कार्यमनुभवन्नित्यादिना क्रोडीकृतः[10]। एवञ्च[11] धर्मिग्राहक[12] मानविरोधः। तथाहि। शयितरीत्यत्र प्रशस्तकार्यित्वं सार्वधातुकार्ध-धातुकयो[13]रित्यस्येगन्ताङ्गात्य[14]स्य गुण इत्यर्थे नेकारस्य[15]। न च तत्र ङित्वमस्ति तस्य समुदायानुबन्धत्वात्[16]। यश्चङिन्नासौ कार्यी[17]। न च प्रशस्तकार्यिघटिततयांगस्य तत्वम्।

---

1. अनिलक्षणा अ–4.
2. निषेधेन अ–2.
3. स्पष्टाश्चायमर्थ अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
4. कौस्तमादौ ज–2.
5. ऊर्णु ज–2, प–1, अ–1, अ–3.
6. 'हस' ज–2, अ–1, अ–2.
7. इत्यादाचित्सशब्दनिमितत्वेना इति पाठोपलभ्यते अ–4.
8. कार्यिणी प–1; कायिणेः अ–3.
9. ज्ञापनियः प–1.
10. क्रोदीकृतः ज–2.
11. 'च' नाऽस्ति अ–2, अ–4.
12. ग्राहमान प–1.
13. 7.3.84 अष्टा. धातुकार्द्ध ज–2, अ–4.
14. गन्ताङ्गात्परस्य प–1.
15. नकारस्या अ–4.
16. समुदायानुवेधत्वात् अ–1.
17. कार्यो अ–1, अ–3; कार्या अ–4.

तद्विशिष्टस्यैवदेवदत्तग्रहणेन ग्रहणं दृश्यते। यमुदिश्य विहित इत्युक्तेः प्रनिदारयतीत्यादौ न दारित्यस्य धुत्वम्। 'आने मुक्' (7.2.82) इति मुग्विधानसामार्थ्यादेषाऽनित्या। अन्यथा पचमानः इत्यादावकारस्य मुकि

उर्णु[1] न विषती[2]त्यादावपि समुदाय[3]स्थ तत्वेन दोष[4]स्योज्वलत्वात्[5]। न च तद्[6] घटितत्वेन तस्य तत्वेपि तद्घटकस्य तस्य[7] तत्वेनाश्रयणे बाध काभाव[8] इति वाच्यम्। परिभाषाया[9] कार्यी[10]निमित्त तयानाश्रीयत[11] इति। यथाश्रुतार्थकत्वे उर्णु[12] न विषती[13]त्यादौ सन्नन्तसमुदायस्य कार्यि[14]त्वेपि इस्[15] शब्दस्य कार्यित्वा[16]भावेन तस्य विना यत्न[17] निमित्तत्वे[18] –

---

1. ऊणु प-1; ऊर्णु अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. विशत्ति प-1.
3. समुदायस्य प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
4. दोषस्य पाठो नाऽवलोक्यते प-1.
5. सोज्वलत्वात् प-1.
6. द् नाऽस्ति अ-4.
7. तस्य नाऽस्ति अ-2, अ-4.
8. बाधकाभावादिति अ-2, अ-4.
9. परिभाषाया ज-2, प-1, अ-1, अ-4.
10. कार्यो अ-1, अ-3.
11. नाश्रीयत्त ज-2.
12. ऊर्णु ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
13. विषयीत्यादौ ज-2.
14. कार्यत्वेपि ज-2.
15. इसूत्रो शब्दस्य अ-1; इसूत्राशब्दस्य अ-3.
16. कार्यत्वाभावेन प-1.
17. यत्रं अ-2; यत्नं अ-4.
18. निमितवो अ-3.

नाश्रयणेऽति[1]देश प्रवृत्तौ यत्नानर्थक्येन कार्यिघटकतया[2] तस्यापि। कार्यित्वे[3] एव यत्नस्य साफल्येनाऽत्रापि[4] विनिगमना विरहेण प्रशस्त कार्यिघटकतया[5] प्रशस्तकार्यित्वस्येस्[6] शब्देपि[7] सत्वेन[8] तस्यापि निमित्तत्वानापत्तौ[9] दोषास्योद्-भवत्वात्।

ननु प्रकृतेपि[10] यत्ने[11] परंपरया प्रशस्तकार्यिणो ग्रहणे यत्नानर्थक्येन साक्षात्प्रशस्त कर्मिणी ग्रहणेनेस्[12] शब्दस्य तत्वाभावेन निमित्तत्वे[13] नात्रयणम्। द्वितरव:[14] रुढमिति चेत्तर्हि तैनैव यत्नेन[15] प्रशस्त[16]कार्यिघटितत्वेन[17] समुदायस्य[18] निंबत्तर्वा[19]रुढतां कथं न[20] जानासि[21]। न चङित्वस्य

1. 'ऽ' नाऽस्ति अ-2, अ-4.
2. घटिकतया ज-2; घटतया अ-4.
3. कार्य्यत्वे अ-4.
4. 'ऽ' नाऽस्ति -2 अ-1, अ-3, अ-4.
5. घटिकतया अ-4.
6. कार्यि घटकत्वस्येस् अ-2, अ-4; प्रशस्तपित्वस्येस् अ-3.
7. शब्देन अ-2, अ-4.
8. सत्वे नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
9. नायतो अ-3; उद्भटत्वात् अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
10. च कृतेपि ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
11. 'इति' अप्यस्ति अ-4.
12. ग्रहणेनेस ज-2, अ-1, अ-3.
13. निमित्ते अ-2, अ-4.
14. सं. पा. द्वितर्वारूढमिति ज-1, द्युत्तर्वारूढमिति प-1, अ-2, अ-3 द्युतवीरूढमिति ज-2; युतवसिढमिति अ-4.
15. यत्नेत ज-1.
16. प्रकाश अ-4.
17. घटितेन ज-2, घटित्वेन प-1.
18. समुदायस्यो अ-2, अ-4.
19. निवंत विरूढतां प-1; निंवर्त्तर्वारूढतां अ-1; निंवर्तावारूढतां अ-3.
20. ना प-1.
21. जानामि ज-2.

स्वोपलक्षित[1] समुदायघटकत्वरूप परंपरया ईकारे[2] सत्वेन तस्य प्रशस्त[3] कार्यित्वेन च तस्य[4] दोष इति वाच्यम्। अत्रापि स्वघटित[5] समुदायघटक-त्वरूपपरम्परा सम्बन्धेन प्रशस्तकार्यित्वस्येस् शब्देपि सत्वेन दोषस्या शीविषायमानत्वात्। न च सर्वेसर्वपदादेशा इति न्यायेन शी इत्यस्य शे इत्यादेशे दोषस्य[6] गंगाजलावसेक इति वाच्यम्। उर्णु[7] न विषती[8]त्यादावपि तस्या विशिष्टे[9]नेसः कार्यितया निमित्तत्वानापत्तिः। न च[10] समुदायस्य तत्त्वेपि नावयवस्य तत्वम्। पूर्वोक्त द्वितीय[11] प्रदूषणोक्त[12]दिशादोषस्य जागरुकत्वेन[13] तस्य कुत्सितकर्दमह्रदोन्मज्जन[14]प्रसंगादिति चैन्न। सार्व धातुकार्धधातुकयोरित्यादाविक्। परिभाषा प्रवृत्तौ प्रथमांत[15]गुणपद श्रवण[16]मात्रस्य प्रयोजकतया तज्ज्ञाने[17] सर्वापेक्षया[18]न्तरंगत्वात्तदुपस्थितौ[19]वाक्यार्थ –

---

1. लाक्षित ज–2 रथोपलक्षित अ–2; सोपलक्षित अ–4.
2. इकारे प–1.
3. प्रशस्ता अ–2, अ–4; 'तस्य प्रशस्तकार्यित्वेन' पाठोनोपलभ्यते अ–2.
4. तस्य पाठोनाऽवलोक्यते अ–1, अ–3 तस्य न पाठोनोपलभ्यते अ–2, अ–4.
5. घटितस्य ज–2.
6. 'स्य' नोपलयते अ–2, अ–4.
7. ऊणु ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
8. न षत्तो त्यादावपि प–1; विषयी त्यादावपि ज–2.
9. विसिष्टत्वनेसः प–1; विशेष्टेनेसः अ–4.
10. व अ–4.
11. द्वितीय ज–2.
12. दृषणोक्त ज–2, अ–1, अ–4; दृषणात्तू प–1.
13. 'जा' नाऽस्ति अ–4.
14. कुत्सित्वकदंह्रदोन्मज्रन अ–4; ह्रदोन्मज्जन अ–2.
15. गुपद प–1.
16. श्रवणा प–1.
17. तजज्ञाने प–1.
18. सर्वापेक्षायां प–1; सर्वानेक्षयां अ–4.
19. उपस्थिते ज–2.

बोधे जाते स्थान षष्ठीत्व निर्णये पश्चात् प्रसक्तालोन्त्य[1] परिभाषाया निषेधाश्च बलीयांस इति न्यायेन क्ङिति चेत्यस्योपस्थित्या निषेधेपर्युदासार्थकन ञोऽभावेन[2] वाक्यैकवाक्यतयाऽन्वयबोधे[3]तदवस्थायामंगे ङित्वस्य प्रशस्त-कार्यित्वस्य[4] च सत्वेन परिभाषोत्पत्तौ[5] पश्चादप्रतिबद्ध[6] प्रसरालोन्त्यपरिभाषा[7] प्रवृत्तावपि तस्याः पूर्वपरिभाषा व्याख्यात[8] भाष्यध्वनित[9] रीत्याऽप्रयोजकत्वेन ज्ञापक[10]त्वस्य मेरुशिखरारुढत्वात्। न चान्तरंगोपजीव्या[11]दपि निषेधस्य प्राबल्येनेक्। परिभाषायामन्तरंगत्व[12]स्योपजीव्य[13] त्वस्य च[14] सत्वेन तस्यापि प्रतिबन्धः[15] स्यात्। अत एव सवर्णसंज्ञाया[16] निषेधोपजीव्यत्वेपि[17] न तदंशे प्रवृत्तिरितिवाच्यम्। इक्[18] परिभाषा प्रवृत्तिमंत्तरागुण[19]स्येक्। लक्षणत्वाभावेन

---

1. प्रसक्तालोप प-1.
2. नजो ज-2, अ-3.
3. बोधेन अ-2, अ-4; बोधेत्तदवस्थायां प-1.
4. कार्येत्वस्य अ-2, अ-4.
5. परिषोत्पत्तौ प-1.
6. प्रतियद्ध प-1.
7. परिभाषा शब्दो नाऽस्ति अ-2, अ-4.
8. व्याख्यान ज-2, अ-2, अ-4.
9. धुनित ज-2.
10. ज्ञापकस्य ज-2, अ-1.
11. उपजीव्यत्वादपि अ-2, अ-4.
12. गत्वास्य अ-2, अ-4.
13. उपजीव्य त्वस्या अ-2, अ-4.
14. 'च' नाऽस्ति ज-2.
15. वंधा अ-2, अ-4.
16. अत एवर्ण अ-4.
17. जीव्यात्वेपि प-1.
18. एकू अ-3; यकू अ-2, अ-4.
19. गुणस्येक ज-2, अ-2, अ-4.

गुणोपजीव्यत्वेपि निषेधोपजीव्यत्वाभावेन च त्वदुक्त[1] दूषणस्याकिञ्चित्[2] करत्वात्। उर्णु[3] न विषतीत्यादौ तु सन्नन्ते[4] प्राप्त कार्यित्वस्या[5]प्रतिबद्ध[6] प्रसरेण अजादेर्द्वितीयस्येत्यनेना[7]वयवस्यैव प्रशस्तकार्यित्वपर्यवसानमिति[8] ध्येयं सुरिभिरिति[9] दिक्।

भाष्येध्वनितैषेति। तत्र हि सूत्रेण कार्यमति[10] दिश्यत[11] इति मनसि[12] निधाय चक्रतुरित्यादौ यणि[13] अनच्कत्वेन[14] द्‌वित्वाप्राप्तौ अनेन द्वित्वरूपकार्यातिदेशेपि अभ्यासेऽकारस्य[15] श्रवणं न स्यादिति दोषेऽज्[16] ग्रहणस्य रुपातिदेशे ज्ञापकत्वमुक्तम्[17]। अज्ग्रहण[18]व्यावर्त्य[19] जेध्री[20]यते

---

1. 'उक्त' नाऽस्ति अ-2; दुक्त नाऽस्ति अ-4; त्यदुक्त अ-3.
2. किंवित् अ-1, अ-3; किंचित्कारंत्वात् अ-4.
3. ऊर्णु ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
4. सन्नेते अ-4.
5. प्रत्यकायित्वस्या प-1.
6. प्रतिवध प-1, प्रतिबुद्ध अ-3.
7. द्वितीयस्यैवप्रशस्तकार्यित्व इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
8. पर्यवज्ञानमिति प-1.
9. सुरिभिरिदिक् अ-4.
10. कार्षमिति अ-4.
11. 'दि' नाऽस्ति प-1.
12. मसिप-1.
13. याणि अ-2, अ-4.
14. षणि अ-3.
15. अनुक्तत्वेन अ-2; अनच्यूत्वेन अ-3; अनन्कात्वेन अ-4.
16. ऽज अ-2, अ-4.
17. उक्त अ-3.
18. ग्रहणस्य ज-2, अ-4; ग्रहस्य अ-2, अ-3.
19. व्यवर्त्य प-1.
20. जेप्रीयते अ-4.

अनया परिभाषया विशिष्टस्य सवर्णदीर्घे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव।

तेन दिदीय इत्यादौ यणादि न, जहार इत्यादौ 'आत औ णलः' (7.1.34) इति च न। न चाकारादेवर्णस्य वर्णान्तरमवयवः कथमिति वाच्यम्, वचनेनावयव त्वबोधनात्। तस्य चावयवत्व सादृश्ये पर्यवसानं बोध्यम्।

देध्यीयते[1] इत्यादि सति च कार्यातिदेशे[2] तत् व्यर्थमेव स्यादित्याशयः। एवञ्च कृतेपि अज् ग्रहणेऽरिषतीत्यादौ[3] गुणस्य इस् निमित्तक[4] स्थानिवद्भावेनेस् शब्दस्य या द्वित्वं दुर्निवारमेवेति[5]। कथमिष्टसिद्धिरुक्ता। किञ्चाज्[6] ग्रहणे सत्यसति[7] वा[8] उभयथाप्यत्र दोषसत्वेन[9] तत्परित्यज्य अन्योदाहरणध ावनमसंगत[10] स्यात्। तस्मांत्तेन[11] तत्सत्वमनुमीयते इति ध्येयम्[12]॥10॥

तद्गुणीभूतः इति। यत्तु कैयटानुयायिभिः प्रयोगसंपादने उपकारका इति कैयटोक्तार्थोक्तः स तु[13] प्रत्ययस्यापि[14] प्रकृत्युपकारकत्वात्तद्विशिष्ट

---

1. देध्योयते अ-1, अ-3.
2. देशेत् अ-3.
3. ग्रहणेऽरितिरिषतीत्यादौ अ-1, अ-3.
4. निमिक ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
5. इवेति अ-4.
6. किज्वात् अ-4.
7. सत्यतिवा अ-1, अ-3.
8. 'वा' नाऽस्ति च अस्ति अ-2, अ-4.
9. दोषत्वेन तत् अ-2, अ-4.
10. धावनसंगतं अ-4.
11. तस्माप्तेन अ1, अ-3.
12. बोध्यम्।
13. सत्तु प-1, अ-1, सत्यु अ-2.
14. प्रत्ययस्यापे ज-2.

न चोक्तज्ञापकाद्वर्णग्रहणेऽस्या अप्रवृत्तिरिति वाच्यम्, 'आने मुक्' (7.2.82) इति सूत्रे भाष्येऽकारस्याङ्गावयवस्य मुगित्यर्थेपचमान इत्यत्र तास्यनुदात्तेत् (6.1.186) इति स्वरो न स्यादि त्याशङ्क्यादुपदेशभक्तस्तद्ग्रहणेन ग्रहीष्यत इत्युक्तेरसङ्गत्यापत्तेः।

किञ्चङमन्तपदावयवस्य ह्रस्वात्परस्य ङमो ङमुडि त्यर्थे कुर्वन्नास्त इत्यादौ ङमो ङमुडागमे णत्व प्राप्तिमाङ्क्य 'यदागमा' इति न्यायेनाद्यनस्यापि पदान्त ग्रहणेन ग्रहणात् 'पदान्तस्य' (8.4. 37) इति निषेध इत्यनया परिभाषया आगमानामागमिधर्मवैशिष्टयमपि बोध्यत हत्याशयक 'ङमुट्' (8.3.32) सूत्रस्थभाष्यासङ्कतेः।

किञ्च गुणादे रपरत्वे रेफविशिष्टे गुणत्वाद्येष्टव्यम्। अन्यथा ऋकारस्य गुणवृद्धी अरारावेवेति नियमो न स्यात्। तच्च वर्णग्रहणे

स्यापि ग्रहणापत्तेः। युक्तेस्तुल्यत्वादिति दूषणेन तत्रैव विवरणकारैर्दूषितत्वेन मूलोक्तार्थस्यैव प्रयुक्तत्वात्। एवञ्च स्वस्य[1] विवरणापर्यालोचनांधतमः प्रवेशो[2] बोधितः।

मुग्विधान[3] सामर्थ्यादिति। ननु मुग्विधानस्यश्रवणार्थतया[4] वक्तुं शक्यत्वेन तत्सामर्थ्यात्परिभाषाऽप्रवृत्तिः[5]? सुलभेति चेन्न। सामर्थ्य[6]कल्पना पेक्षया[7] ज्ञापकत्वस्यौचित्यादित्याशयः। तच्च[8] प्रमाणानां सामान्ये[9]

---

1. अस्य विवणी अ–2, अ–4.
2. प्रदेशो अ–4.
3. मुग् विधो सामर्थ्यादिति प–1.
4. श्रेवणार्थतया ज–2; श्रवणार्थत्ताया प–1; श्रवर्णार्थतया–अ–2.
5. ऽप्रवृत्तिऽसुलभेति अ–4.
6. सामथ्य प–1.
7. अपेक्ष्यया ज–2, कल्पेनापेक्षया प–1, कल्पनामेपेक्षया अ–3.
8. तच्चे अ–4.
9. समान्य अ–4.

एददप्रवृत्तौ न सङ्गच्छते। अत एव 'रदाभ्याम्' (2.42) इति सूत्रे भाष्ये गुणो भवति वृद्धिर्भवतीति रेफशिरा गुण वृद्धिसंज्ञकोऽभिनिर्वर्त्तते

पक्षपातात्सामान्यविषयकमेव। ननु पचआन[1] इत्यवस्थायां अकः सवर्ण[2] दीर्घ इति दीर्घे[3] प्राप्ते विशेष विहितेनातोङि्त[4] इतीयादेशे[5] न तद्बाधे तस्यापि मुकाऽपवादत्वात्[6] बाधेन[7] मुग् विधानस्य चरितार्थ्ये[8] कथमेतत्[9] परिभाषाया[10] अनित्यत्वे[11] ज्ञापकत्वम्? न च रमायामित्यादि सर्वथा[12] नवकाशस्थले[13] पुनरुत्सर्गप्रवृत्तिस्वीकारेण मुक्यपि परिभाषामवलंव्ये[14] यस्य प्रवृत्तिरव्याहतैवेति[15] वाच्यम्? सर्वथा[16] नवकाशस्थले तथांगीकारेपि[17] येन नेति[18] न्यायेन बाध स्थले-

---

1. अन प-1 ज्ञान अ-2.
2. पंचआन अ-4.
3. वर्णेदीघ प-1.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
5. हिवितेन अ-2, अ-4.
6. ईयादर्शे अ-4.
7. पाठोऽयं ज-21, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; मुक्यऽपवादत्वात् ज-1; मुका अपदत्वात् प-1.
8. बोधेन ज-2.
9. चरित्तर्थे प-1.
10. न कथमेतत् अ-2, अ-4.
11. परिभाषाय अ-3.
12. अनित्वे ज-2, अ-1; अतित्वे अ-3. अनित्येत्वे अ-4; अनित्यवे प-1.
13. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2 सर्वथा ज-1, सर्वथाऽनवकाश ज-2, ज-4; सर्वथानवकार अ-3.
14. स्थाले प-1; मुकपरिभाषा अवलंव्य अ-2; मुकपरिभाषावलंव्ये अ-4.
15. अव्याहैवेति प-1; अन्याहतैत्वेवेति अ-3.
16. सर्वस्थानवकाश अ-4.
17. तथांगोकरेपि अ-1, अ-3; तथांगोकारोपि अ-4.
18. ये न न नेति इति पाठः अ-2.

इति। अत एव 'नेटि' (7.2.4) 'णेरनिटि' (6.5.51) इत्यादि चरितार्थम्। अनागमकानां सागमका आदेश इत्यस्य त्वयमर्थः- आर्द्धधातुकस्येडागम इत्यर्थे ज्ञाते नित्येषु शब्देष्वागमविधानानुपपत्त्याऽर्थापत्तिमूलक वाक्यान्तरकल्पनेनेङ्हितबुद्धिप्रसङ्गे सेङ्बुद्धि कर्त्तव्येति। एवं चादेशोष्विवात्रापि बुद्धि विपरिणाम इति न

तथानंगीकारात्। न्यायेन हि कृते यत्र सावकाशत्वं तत्र बाधः द्विर्वचनादाविव[1]प्रकृतेपी[2]यादेशे सर्वेसर्व पदेति[3] न्यायेनानस्येयादेशे स्थानिवद्भावेन मुकश्चारितार्थ्येपि तस्य तेन बाधः[4]। यत्तु **आने मुगिति**[5] सूत्रे मुकि[6] इयादेशप्रवृत्तिं[7] परिभाषया[8]शंक्य वर्णग्रहणे यदागमा इत्यस्या प्रवृत्त्या[10] न दोष इति समाहितं विवरणे तत्तु[11] प्राचीनानुरोधीति दिक्।

न च तावत्तापि[12] सवर्णदीर्घो[13] दुर्वार ऐवति वाच्यं आनस्यनेति[14] न्यासे। **आतोङित**[15]। इत्यातोऽनुवृत्या आनस्यातोनेत्यर्थेन[16]–

1. 'व' नाऽस्ति अ-2, अ-4.
2. पाठोऽयं अ-1द्व अ-2, अ-3, अ-4; प्रकृतोपीयादेशे ज-2; प्रकृतेकृतेपि यादेशे प-1.
3. यदेति अ-1.
4. तस्येतेन अ-2, अ-4.
5. मुकिति प-1.
6. मुको इत्यादेश अ-2.
7. प्रवृत्ति अ-2, अ-4.
8. परिभाषामांशक्य अ-2, अ-4.
9. पदागमा ज-2.
10. प्राप्ता ज-2.
11. तत्तु अ-1.
12. तावपि ज-2.
13. सवर्णे अ-3.
14. आनस्येनेत्ति प-1; अनस्यनेति अ-2, अ-4; भानस्येनेति अ-3.
15. अष्टा 7.2.81. आतो ङित् अ-4; आतोङीत प-1.
16. नेत्यर्थे ज-2.

नित्यत्वहानिः। स्थानिवत्सूत्रे च नेदृशादेशग्रहणम्, साक्षादष्टाध्यायी बोधितस्थान्यादेशभावे चारितार्थ्यात्। किञ्चेवं सति स्थानिबुद्धयैवकार्यप्रवृत्त्या 'निर्दिश्यमानस्य' इति परिभाषया अप्राप्याडागमसहितस्य पिबाद्यादेशापत्त्या लावस्थायामडिति भाष्योक्तसिद्धान्तासङ्गतिः। स्थानिबद्भावविषये 'निर्दिश्यमानस्य' इति

आनेदीर्घ[1] आने[2] आ इति न्यासेन वा इयाऽप्रवृत्तौ[3] मुग्विधानस्य सवर्ण[4] दीर्घैकवाधकत्वादिति चेन्न। दत्तोत्तत्वात्।

ननु मुगागमस्यावर्णत्वेन ग्रहणे आनेऽचि आद्गुणे[5] ओकाररूप गुण सम्पादनेन चारितार्थ्यमिति[6] चेन्न। अवर्णत्ववत्[7] कंठ्यत्व[8]स्याप्यतिदेशे तत्प्रतिबंधात्[9]। गुणस्य सवर्ण[10]दीर्घ बाधाच्च[11]। एतेन कंठयत्वातिदेशेप्यम् इत्यस्य समुदायस्य तत्वेपि ऋकारैकदेश[12] रेफीयेषत्स्पृष्टप्रयत्नमादाय ऋकारस्येषत्स्पृष्टस्य[13] सिध्यावार्त्तिक द्वयमपि न कर्त्तव्यमित्युक्तरीत्या अत्रोप्येक[14]देशमकारसादृश्यमादायौ[15]कारो गुणो दुर्वार इत्यपास्तम्।

---

1. आने दोषः नोपलभ्यते ज-2, अ-1, अ-3.
2. आमे अ प-3.
3. इयाप्रवृत्तौ अ-2, अ-4.
4. सवर्णदीक ज-2; सर्वदीधैकत्वात् प-1.
5. आद्गुणः 6.178.
6. चरितार्थामति प-1.
7. अवर्णत्ववत्वंत् अ-2; अवर्णत्ववत्वं अ-4.
8. कंठयस्याप्यति प-1; कठत्वस्याप्यति अ-4; कंठत्वास्याप्यति अ-2.
9. प्रतिवधात् अ-4.
10. दीर्घेण ज-2, अ-3.
11. बाधत्वाच्च प-1.
12. देशे अ-3.
13. स्पृष्ट अ-2.
14. 'एक' नोपलभ्यते प-1.
15. पाठोऽयं ज-2 प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 सादृश्यमायादौ ज-1.

परिभाषायाः प्रवृत्तौ तिसृणामित्यर्थ पर त्वात्तिस्रादेशे स्थानिबद्भावेन त्रयादेशमाशङ्क्य सकृद्गति न्यायेन समाधानपरभाष्यासङ्गतिः। 'एरुः' (3.4.86) इत्यादौ स्थानषष्ठीनिर्देशात्ततदन्तपरतया पठितवाक्यस्यैव समुदायादेशपरत्वेनादेशग्रहणसामर्थ्यात्तस्य स्थानिवत्सूत्रे ग्रहणेन न दोषः। आनुमानिकस्थान्यादेशभावकल्पनेऽपि श्रौतस्थान्यादेशभावस्य

ऐचोश्चोत्तर[1]भूयस्त्वादिवदत्र पूर्वभागस्य[2] बाहुल्येन तत्सादृश्यमादाय[3] आ इत्युत्तरभागमादाय वा[4] ओकारस्याप्राप्तेश्चेति दिक्। ननु मुग्विधानेन परिभाषाया अनि[5]त्यत्वेपि मुग्विषये[6] कुतो[7] न प्रवर्तते लक्ष्यानुरोधान्[8] मुग्विधानसामर्थ्याद्वेति समाधान[9]स्यान्ततोप्याश्रयणीय[10]तयान्तेरंडा विवाहश्चेदादावेव कुतो[11] न स[12] इति न्यायेन लक्ष्यानुरोधा[13]त्सामर्थ्याद्वा सवर्णदीर्घे[14] कर्त्तव्येमुग्विषयेऽ-प्रवृत्ति[15]रिति पूर्वमेव कुतो नोच्येत[16] इति चेत्सत्यम्।

1. ऐचौश्चोत्तर प-1.
2. भागस्थ प-1.
3. 'दा' नाऽस्ति प-1.
4. 'वा' नाऽस्ति ज-2.
5. अनित्यत्वेनापि मुहुषे कुतो न इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
6. मुविषये प-1.
7. कुतो ज-2.
8. अनुरोधामुण् अ-2, अ-4.
9. समाधान प-1.
10. आश्रयणीयांते प-1; आश्रयाणीयतपांते अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
11. कृतो ज-2.
12. स् अ-4.
13. लक्ष्यानरोधात् अ-1, अ-3.
14. सवर्णे दीर्घ अ-3.
15. अप्रवृत्तैरिति प-1; ऽप्रकृतैरिति अ-1, ऽप्रव्यतैरिति अ-3; ऽप्रवर्तिरिति अ-2; ऽप्रवृत्तिपूर्वमेव इति पाठ, अ-4.
16. नोच्येत् प-1.

न त्याग इति 'अचः परस्मिन्' (1.1.57) इत्यादेर्नासङ्गतिः। एतेन 'यदाग मा' इति परिभाषा स्थानिवत्सूत्रेण गतार्थेत्यपास्तम्। एतत्सर्वं 'दाधा ध्वदाप्' (1.1.20) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्॥11॥ नन्वेवमुदस्थादित्यादौ 'उदः' स्थास्तम्भोः पूर्वस्य (8.4.61) इति पूर्वसवर्णापत्तिरत आह-

---

अत एवारूचेराह[1] तेनेति[2]। तच्छब्दस्य[3] बुद्धिस्थपरामर्शकतया वुग्युटाविति[4] वार्त्तिके युट् ग्रहणात्[5]परिभाषाया अनित्यत्वेनेत्यर्थः। युटिकृते तस्याभीया सिद्धत्वेन[6] यणि प्राप्ते तदभावाय[7] प्रवृत्तं वार्त्तिकमफलमेव स्यादिति भावः।

नन्वत्रापि युट् विधान सामर्थ्येनैव निर्वाहः। यद्[8] द्वयश्रवणानापत्तेः। न च यणोमय इति **वार्त्तिके** न तत्सिद्धिः[9]। अंतर्भूत निमित्तके[10] द्वित्वे तस्यासिद्धत्वात् ननु च त्रिपाद्यांत्तद प्रवृत्तिरिति चेद्यकारत्रय[11]श्रवणार्थं तर्हि तदित्यवेहि। न च यकार[12]द्वय विशिष्ट एव[13] युट् विधेयः।

---

1. अतएवाहचेराह अ-1, अ-4.
2. नेनेति अ-3.
3. 'स्य' नाऽस्ति प-1.
4. यटाविति प-1.
5. ग्रणात् अ-1, अ-3.
6. सिधत्वेन अ-1.
7. तदाभावाय ज-2.
8. सं. पा., यद्वय ज-1: ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
9. तत्सि ज-2.
10. निमित्तनिमित्तके अ-1, अ-3.
11. चेत्यकारत्र य अ-2; चेयुकारत्रप अ-4.
12. युकार अ-4.
13. एक अ-3.

निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति॥12॥

'षष्ठी स्थाने योगा' (1.4.49) इति सूत्रमावर्त्तते। तत्र द्वितीयस्यायमर्थः- षष्ठयन्तं निर्दिश्यमानमुच्चार्यमाणमुच्चार्यमाण-सजातीयमेव निर्दिश्यमानावयवरूपमेव वा स्थानेन स्थाननिरूपित सम्बन्धेन युज्यते न तु प्रतीयमानमिति (अर्थः) तेनेदं सिद्धम्। न च

अर्ध[1]मात्रागौरवादिति संक्षेपः। ननु चात्रापि[2] पूर्ववदेव वार्त्तिकारंभ सामर्थ्यमिति चेत्तर्हि लक्ष्यानुरोध एव शरणम्। अनित्यत्वे ज्ञापिते क्व[3]नित्यत्यत्वमित्यस्य लक्ष्यानुरोधेनैव[4] निर्णेयत्वात्। लोकव्यवहारः उभयथापि दृश्यते। अतएवाधिक्ये[5] देवदत्तग्रहणेन ग्रहणमयं देवदत्त इति। देवदत्तस्यायमवयव[6] इति च। तथाच लोकत एव[7] तद् व्यवहारा[8]व्यवहारयोः सिध्या न तदंशे[9] ज्ञापकानुशरणं लोकसिद्ध्य[10]र्थानुवादकत्वं वास्तुः। अत एवात्रांशे भाष्य[11] प्रमाणत्वेन नील्लिखितमिति[12] दिक्। **अत एवाह। जहारे[13]त्यादो चेति।** चेन-

---

1. अर्द्धमात्र ज-2.
2. ननुत्रापि प-1.
3. क्वा ज-2; क्वनित्यत्वं क्वानित्यत्वमित्यस्य इति पाठोपलभ्यते प-1.
4. नैव ज-2.
5. एवाणाधिक्ये अ-1, अ-3.
6. देवदत्तल्यायमवय ज-2.
7. एवात्रांशे भाष्य प्रमाणत्वेन इति पाठोपलभ्यते अ-1, अ-3.
8. तद्व्यवहारायोः ज-2.
9. नदत्तंशे अ-4.
10. सिध्येर्थानु ज-2; सिद्धार्थानु प-1 अ-1, अ-4.
11. भाष्य अ-2, अ-4.
12. नोल्लिख्तिामिति अ-2, अ-4; लोकत एवात्रांशे भाष्यं प्रमाणत्वेन इति पाठोपलभ्यते अ-1.
13. जाहारेत्यादौ अ-3.

लक्ष्या[1]नुसारोऽत्रसूचित:। धातो रधिकारा[2]भावेन यद्विनेति[3] न्यायाप्रसरा-दाक्षेपस्यापि कर्त्तुमशक्यत्वेवात:[4] परस्यणल[5] औकार[6] इत्यर्थे आकार-मुद्दिश्यरेफस्य विधानेनानया तद्विशिष्टस्य ग्रहणे आदेशापत्ति:। **प्रनिदारय-तीत्यादौ**[7] तु घु संज्ञोद्देश्यदामुद्दिश्य[8] रेफस्या विधानान्न दोष इति भाव:। ननु किं विशेषणतया यत्र वर्णग्रहणं तत्र नेत्यर्थ उत विशेष्यतया वा[9] यत्र वर्णग्रहणं तत्र नेत्यर्थस्तव विवक्षित इति विकल्पनाद्य[10] इत्याह। आने[11] मुगिति। नांत्योपीत्याह। किं च ङमन्तेति? ननु आवृत्यादिकरण[12] गौरवेणास्य भाष्य[13]स्यैकदेश्युक्तित्वेन मिदचोऽन्त्यात्परेति[14] सूत्रस्थमित:[15]। परादिवद्भावे द्विषत्[16] शब्दोपपदात्[17] तपे: खशि-

---

1. लक्षानुसारो ज-2, अ-1.
2. अधिकाभावेन अ-2, अ-4; अधिकाभवे प-1.
3. भावेनर्याद्विनेति ज-2, अ-1, अ-3.
4. अशक्यतवेनात: ज-2, अ-1ख अ-3; अशक्यत्वे चाद्रत: अ-2; अशक्यत्वेचाटत: अ-4.
5. परस्ययणल अ-2, अ-4.
6. औकारमुद्दिश्यरेफस्य इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
7. प्रनिदारयतेत्यादौ, प-1; प्रनिदारयति तादौक संज्ञोद्देश्य अ-4.
8. दामुदिश्य ज-2, अ-3.
9. 'क' ज-2.
10. विकृ त्यनाद्य ज-2; कल्प्यनाद्य अ-1; विकल्पनाय अ-2; कल्यानाद्य अ-3.
11. आनेनुणीति अ-4.
12. करणं अ-2.
13. भाष्यैक प-1.
14. मिदचोऽन्त्यात्पर: 1.1.47
15. मिति अ-3; मित्त: ज-1, प-1.
16. द्विशत् अ-2, अ-4.
17. उपपदा तपे: अ-3.

द्विषच्छब्दात्तकारात्पूर्वं मुमि मोऽनुस्वारो[1]ऽपदान्त[2]त्वान्न प्राप्नोति इति भाष्यविरोधेन परिभाषाया अर्थान्तरस्य कर्त्तुमशक्यत्वेन च कुर्वन्नास्त। इत्यादौ णस्य दुर्वारतया तथा भाष्योपष्टंभकतानुचितेत्यरूचेराह[3]। किंचेति। एतेन[4] मूलोक्त परिभाषार्थमनुद्य[5] द्विषन्तप इति भाष्य[6] विरोधमुद्भावयत:[7] कैयटानुयायिन[8] समाहिता:[9] वस्तुतस्तु द्विषंतपे[10] तकारस्य संयोगान्तलोपे एकदेशविकृतन्यायेन पदान्ततयानुस्वार: सिद्ध एवेति भाष्यमेक देश्युक्तिरेव। स्पष्टश्चायमर्थो विवरणे इति दिक्[11]।

रदाभ्यामितीति। तत्र हि कृ[12] धातो: क्ते[13] तस्मादित्रि[14]–

वृद्धौ रेफा[15]त्परत्वेन तकारे नत्वमाशंक्यवृद्धिर्निमित्तं यस्य[16] तस्मात्परस्य प्रतिषेध[17] इत्यर्थकेन वृद्धिनिमित्तात्प्रतिषेध[18] इति वार्त्तिकेन समाहितम्।

---

1. संशोधित पाठ: 8.3.23 अष्टा., मोनुस्वारो अ–2, अ–4.
2. तदान्तत्वात्र प–1.
3. रूचेराह्न ज–2.
4. एते प–1; एतेना अ–3.
5. अरूद्य अ–1, अद्यहि अ–3.
6. भाष्या ज–2.
7. भावयन्त: ज–2.
8. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4, कयटानुयायिन: ज–1.
9. समाहित: अ–4.
10. द्विषयंतपे अ–4.
11. स्पष्टश्चायं विवरण इति पाठोपलभ्यते प–1.
12. क अ–3.
13. धातोक्ते प–1.
14. तस्मादिनि अ–1, अ–3; तस्मादितिनि अ–2, अ–4.
15. रफात् प–1; रेफात्यत्बेन अ–1, अ–, ज–2.
16. पश्य अ–1, अ–3
17. प्रतिषेध इति वार्त्तिकेन समाहितं इति पाठोपलभ्यते अ–2, अ–4.
18. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4 निमित्ताप्रतिषेध: ज–1.

'अस्य चौ' (7.4.32) इत्यादौ दीर्घणामादेशानापत्तिः, तेषां निर्दिश्यमान त्वाभावादिति वाच्यम्, जातिपक्षे दोषाभावात्। किञ्च न भूसुधियोः (6.4.85) इति निषेधेन ग्रहणक शास्त्रगृहीतानां निर्दिश्यमानकार्यबोध नात्र दोषः। इयङुवङोङित्त्वं त्विवर्णोवर्णान्तधातुश्नुभ्रुवामित्यर्थेन धात्वादीनामपि निर्दष्टत्वादन्त्यादेशत्वाय। रीङ्रिङोङित्त्वं तु स्पष्टार्थमेव। एतेनेदं ङित्त्वं वर्णग्रहणे निदिश्यमानपरिभाषाया अप्रवृत्तिज्ञापकमित्य-पास्तम्, 'हयवरट्' सूत्रस्थेन अयोगवाहानामुपदेशेऽलोऽन्त्यविधिः प्रयोजनम्- वृक्षस्तत्रः, नैतदस्ति प्रयोजनं निर्दिश्यमानस्येत्येव सिद्धम् 'इति भाष्येण विरोधात्। अनया परिभाषया येन विधिः' (1.1.72)

रेफस्य वृद्धिनिमित्तत्व[1] प्रदर्शनाय तत्र तथोक्तम्। ननु रेफे परिभाषया वृद्धिनिमित्तत्व प्रदर्शनाय तत्र तथोक्तम्। ननु रेफे परिभाषया वृद्धित्वादेरतिदेशेपि प्रत्येकं[2] तत्पर्याप्त्या समुदाये तत्वा[3]भावेन विशिष्टे वृद्ध्या[4]दिव्यवहार पर[5]भाष्यासंगतेरिति[6] चेन्न। तदग्रहणेनेत्यस्य[7] तद् ग्राह[8]केनेत्यर्थ करणे न मूल कृतैव[9] तद्दोषवारणात्॥11॥

पूर्वसवर्णापत्तिरिति। ननु यमुदिश्येत्यर्थस्य पूर्वं[10] व्यवस्थापितत्वे नाडागम विधायकेंगस्योद्देश्यत्वेनांगस्यानयाति[11]देशेपि-

---

1. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 निमित्त ज-1.
2. प्रत्येकं अ-1, अ-3 प्रत्येक अ-2, अ-4.
3. समुदायैतत्वा अ-2, अ-7.
4. वृधाति ज-2.
5. 'पर' नाऽस्ति अ-2, अ-4; परिभाषासंगतेरिति प-1.
6. संगतिरिति ज-2.
7. नेत्यर्थ प-1; ग्रहणेनत्यस्य अ-1.
8. ग्रहके अ-3.
9. कतैव अ-3.
10. पूर्वे ज-2.
11. गत्वस्यानयाति; न पात्ति ज-2; अनुयातिदेशेपि अ-2, अ-4; अनयानिदेशेपि अ-3.

इति सूत्रबोधिततदन्तस्य स्थानित्वाभावबोधनं 'यदागमाः' इति लब्धस्य च। तेन सुपदः, उदस्थादित्यादिसिद्धिः।

अनया च स्वस्वनिमित्तसन्निधापितानाम् 'अलोऽन्त्यस्य' (1.1.52) इत्यादीनां समावेश एव, न बाध्यबाधकभावः, विरोधाभावात्। नाप्येतयोरङ्गाङ्गिभावः, उभयोरपि परार्थत्वेन तदयोगात्। 'अनेकाल् शित्' (1.1.55) इति सूत्रे सर्वश्चैतत्परिभाषाबोधित एव गृह्यते।

स्थात्व[1]स्यानतिदेशेन[2] कथं तदापत्तिरिति चेन्न? उद्देश्य[3]तावच्छेदक धर्म[4]स्यैवानयातिदेशेतकारथकारयोर्विधीयमान सुटित[5]त्वादेरतिदेशेपि आर्ध[6]धातु-कत्वस्यानतिदेशे इडागमानापत्या उद्देश्यतावच्छेद[7]कीभूत[8] धर्मसमानाधि करणयावद् धर्माणां अतिदेशस्य कार्यार्थतया कार्यप्रयोजकानां सर्वेषामतिदेशेन स्थात्वस्याप्यति देशे[9] तदापत्तेर्दुर्धरत्वात्। किञ्च **न भूसुधियोरितीति**[10]। इदञ्च व्यक्तिपक्षे बोध्यम्[11]। न चान[12]वकाशयालोन्त्य परिभाषया[13]–

---

1. स्थात्व नाऽस्ति अ–2. अ–4.
2. अतिदेशेनतिदेशेन कथं इति पाठः प–1.
3. उद्देशताया प–1.
4. धर्मस्यवानया अ–2, अ–4.
5. सुहितत्वादेशेपि अ–2, अ–4.
6. आर्द्ध ज–2.
7. तावछेऽदको अ–3.
8. आर्धधातुक त्वस्याऽवतिदेश न कथं तदापत्तिरिति चेन्न उद्देश्यतावद्देदकीभूत इति पाठोपलभ्यते अ–2, अ–4.
9. देशे तु इति पाठः प–1.
10. 'इति' नाऽस्ति प–1, अ–2, अ–4.
11. बाध्यम् प–1.
12. 'व' नाऽस्ति अ–3.
13. परिभाष्यषय अ–3; परिभाषाषया अ–1.

यत्तु 'आदेः परस्य' (1.1.54) अलोऽन्त्यस्य (1.1.52) इत्येतावेव तद्वाधकाविति तन्नः 'उदः स्था' इतिसूत्रविषयेऽस्याः 'पादः पत्' (6.4.130) इति सूत्रे भाष्ये सञ्चारितत्वात्। नाप्येतयोरियं बाधिका,

---

अस्याबाधेना[1]स्यच्वा[2]वित्यादौ ग्रहणकशास्त्रेण सर्वेषामपि स्थानित्वे[3] इष्टसिद्धिरिति वाच्यम्। आदेः परस्येति[4] परिभाषा[5] बाध्यालोन्त्यस्येत्यनेन[6] निदि्र्दश्यमान[7] परिभाषाया[8] बाधे आदेः[9] परस्येत्यने[10]नावश्यं निर्दिश्यमान[11] परिभाषाया बाधेन उदस्था[12] दित्यादौ दोषस्योज्वलत्वात्। न चोदस्थादित्यादौ यदागमा इति प्राप्त विशिष्ट[13] स्थानित्वस्य निर्दिश्यमान परिभाषया बाधे स्था इत्यस्यैव स्थानित्व[14] प्राप्त्यादेरिति[15] परिभाषया तस्यापि[16] बाधके[17] दोष इति वाच्यम्। पूर्वप्राप्त यदागमेति[18] परिभाषया प्राप्त स्थानित्वस्यैवाऽनया बाधे कर्त्तव्ये तदपवादकपरिभाषा[19]बाध-

---

1. बाधोस्य ज-2.
2. च्चावित्यादौ अ-2, अ-3, च्चवित्यादौ अ-4; च्चावित्यादो अ-1.
3. स्थानिवत्वे प-1; स्थानित्व अ-2.
4. आदेः परस्य 1.1.54; परस्येति अ-3; अदेः परस्य प-1.
5. परिभाषया अ-2; परिभाषया अ-4.
6. अलोन्त्यस्यै अ-3.
7. निर्दिश्यमान ज-2.
8. परिभाषायां प-1.
9. आदेशः अ-1, अ-3.
10. परस्यै अ-3.
11. निदि्र्दश्यमान अ-2, अ-3.
12. उदस्यादित्यादौ अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
13. विशिष्टस्यानित्यत्वे निर्दिश्यमान परिभाषाया इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
14. स्थानिवत्व ज-2; प्राप्त्याऽदेरिति ज-2.
16. अस्यापि अ-2, अ-4.
17. बाधेकवदोष ज-2, अ-3, अ-4.
18. 'इति' नाऽस्ति अ-4.
19. परिभाषया ज-2.

एतयो र्निर्विषयत्वप्रसङ्गादितिति विंशतेः (6.4.142) इति सूत्रे कैयटः। अकज्विषये तु नायं न्यायः स्थानिवद्भावेनेव तन्मध्यपतित न्यायेन तद्बुद्धयैव कार्यजननात्।

---

[1]पर्यन्तानुधावनस्य निर्वीजत्वात्। किञ्च तद्वाध्यत्ववदेत्तत्[2] बाध्य-बाध्य[3]त्वस्यापि वक्तुं शक्यत्वाच्च। न च विरोधाभावेन तस्याः कथं बाध इति वाच्यम्। निर्दिश्यमान[4] स्थास्त[5]म्भोरादेः[6] पूर्वसवर्ण इति वाक्यभेद-निर्मोकेनाविरोधस्यात्रापि त्वयापर्यालोचनीयत्वात्[7]। इदमेवाग्रे[8] समावेश व्याख्यावसरे[9] स्फुटी[10] भविष्यति **न च यदागमा**[11] इति प्राप्त स्थानित्व-स्याप्यनया बाध इति वाच्यम्। नन्वेवं उद[12]स्थादित्यादाबुदस्थास्तंभो[13]रिति पूर्व सवर्णापत्तिरत आहेति[14] त्वदीय परिभाषा[15]वतरणस्य दत्तजलाञ्जलि[16]त्व-पात्तात्। एतेन न भू सुधियोरिति ग्रंथमनूद्य रीङ[17]रिङोरित्यादि ग्रंथमनूद्यानया चेत्यादि संचारितदित्यन्तं[18]-

---

1. पर्यताधावनस्य अ-3; पर्यतावाधनस्य अ-4; पर्य्यतानु ज-2.
2. वदेतत् अ-1, वदेतद्बाध्य अ-4.
3. बाध्येत्वस्यापि अ-4.
4. निर्दिश्यमान ज-2, अ-2.
5. स्थ अ-4.
6. स्तम्भारादेः ज-2.
7. लोचननीयत्वात् ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
8. इदमग्रे प-1.
9. अवसरे स्फुओ इत्यारभ्य इति वाच्यम् इत्यन्तं नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
10. स्फटो ज-2, स्फुटि प-1.
11. यदगमा ज-2, पदागमा प-1.
12. उत् प-1. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य 8.4.61, स्तंभारिति अ-4.
14. ग्राहेति ज-2.
15. परिभाषायातरणस्य अ-2, अ-4.
16. जलान्जलीलत्व प-1.
17. रीङ् रीङो ज-2.
18. संचारित्तत्वादित्य तं प-1; संचारित्यंतं अ-2, अ-4; संचारितदित्यनं अ-3.

इयं चावयवषष्ठीविषयेपि। अतएव 'तदोः सः सौ' (7.2.106) इति सत्त्वम् अतिस्य इत्यत्र उपसर्गतकारस्य न। निर्दिश्यमानयुष्मदाद्यवयवमपर्यन्तस्यैव यूयादयो न त्वतियूयमित्यादौ सोपसर्गावयवमर्यन्तस्येति बोध्यम्। 'पादः पत्' (6.4.130) इति सूत्रे

समावेश ग्रन्थमनूद्य[1] चानवकाशत्वेन दूषयित्वाऽनव्यतराणा[2] प्रदीप निर्वापक-फुत्कारप्रशमितो वेदितव्य[3] इति वदन्तः कैय्यटानुचरा:[4] प्रदीपनिर्वाप[5]क-फुत्कारनिसृत[6]दूषणरजः कणपूरितनयना[7] आन्ध्य[8] प्रापिता इति ध्येयम्।

निर्दिष्टत्वादिति। ननु ये न विधिरिति[9] परिभाषया[10] तदन्तविधौ प्राप्तथानित्वस्य यदागमा इति न्यायेन प्राप्त स्थानित्वस्य[11] चाभावो बोध्यते[12] इति[13] वक्ष्यमागेन ग्रंथेन एतद्रीत्यारीङादावपि[14] ङित्वस्य साफल्यात्तद् वैयर्थ्यप्रतिपादक[15] ग्रंथे नातिस्यमित्यादावपि तद्वयस्य सत्वाभावप्रतिपादक

---

1. अनूद्यं अ-1.
2. ऽनेव्यत्त एणां अ-1, अ-2; नव्यतराणां प-1.
3. चेदितव्य अ-1, अ-3.
4. कैय्यय्यटानुचर्रो: अ-1, अ-3; कैयटानुचरः अ-4.
5. निर्वायक अ-1, अ-3.
6. निसृष्टा अ-2.
7. र:जकरणपूरितनयनोः अ-2, अ-4.
8. अध्यं प-1, अ-1, अ-3; आंध्यांशयता अ-2; आंध्यां प्रापिताः अ-4; 1-1/1/72 अष्टा.
10. 'परि' नाऽस्ति ज-2, अ-1.
11. स्थानिवत्वस्य प-1, अ-2.
12. बोध्यत ज-2, प-1, अ-1, अ-3; वोध्यमाणे अ-4.
13. 'इति' अप्यस्ति प-1.
14. रोङादायपि अ-4; रीङादावापि प-1.
15. प्रतिपादकेन अ-4.

'षष्ठी स्थाने' (1.1.49) इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टैषा॥12॥

ननु चेतेत्यादौ ह्रस्वस्येकारस्य प्रमाणत आन्तर्यादकारोऽपि

ग्रंथेन च विरुद्धमिति[1] चिन्त्यमिदमिति चेन्न[2]। अनुवृत्तस्य[3] येनेति सूत्रेण तदन्तविधौ विशिष्टस्य प्राप्तस्थानि[4]त्वाभावबोधने न ग्रंथस्योज्जीवनात्।

किञ्चजस्त्वाद्यंशे[5] ङित्वस्य चारितार्थ्याच्च। न च परिभाषाया[6] यथा श्रुतेऽर्थेऽतिस्य[7] इत्यादौ तद्वयस्यापि[8] निर्दिश्यमानत्वेन[9] प्राप्तस त्ववारणायार्थान्तर स्वीकारेणानुवृत्तात्पदादिति[10] पदस्यापि[11] निर्दिश्यमानत्व[12] स्वीकारवत् रिङादिविधौ विशिष्टस्य[13] स्थानित्वेपि केवल त्यदादेरपि-

---

1. विरुद्धत्व चिंत्यमिदमिति प-1, अ-2.
2. चेत्त अ-3.
3. अणुवृत्तस्य ज-2; अवृत्तस्य प-1.
4. स्थानिवत्वाभाबोधनेन प-1.
5. किंचाद्यंशे प-1; किंचश्वाद्यंशे अ-1; किंचश्चाद्यंशे अ-2, अ-3; किंचश्चाद्यंशे अ-4, ज-2.
6. परिभाषया अ-2, अ-4.
7. श्रुतेर्थेतिस्म अ-2, अ-4.
8. तद्वयस्यपि अ-2.
9. निदि्र्दश्यमानत्वेन ज-2, प-1.
10. अनुवृत्तत् ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
11. पादस्यापि अ-3.
12. निर्दिश्यमानत्व ज-2, अ-3; निदि्र्दश्यनत्व प-1; निर्दिश्यमानस्वोत्वकारवत् अ-2, अ-4.
13. विशिष्टस्य स्थानित्वेपि इत्यारभ्य रिङादि विधौ इत्यन्तं नोपल भ्यते अ-2, अ-4; रिङाविधावपि अनुवृत्तंगस्येत्यस्य तत्रं दुर्वारमिति वाच्यम्। सत्त्वविधात्पदा-देरनुवृत्यातदंत विधौ विशिष्टस्य इति पाठस्तु प-1 मातृकायां एव लभ्यते.

स्यादत आह-

यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्र स्थानत आन्तयर्म्बलीयः॥13॥

अनेकविधं स्थानार्थगुणप्रमाणकृतम्। अत्र मानम्- 'षष्ठी स्थाने' (21.1.49) इत्यत एकदेशानुवृत्त्या स्थाने-ग्रहणेऽनुवर्त्तमाने पुनः 'स्थानेऽन्तरतमः' (1.1.50) इति सूत्रे स्थाने-ग्रहणमेव। तद्धि तृतीयया विपरिणम्य वाक्यभेदेन स्थानिनः प्रसङ्गे जायमानः सति सम्भवे स्थानत एवान्तरतम इत्यर्थकम्। तमब्ग्रहणमेवानेकविधान्तर्यसत्तागमकम्।

स्थानित्वस्य संभवेन परिभाषा विषयाद्विशिष्टस्य[1] सत्त्वाप्रवृत्तावपि रिङादिविधौ तु अनुवृत्तांगादित्यस्य केवलस्य स्थानि[2]त्वेऽतिप्रसंगादवश्याश्रयि तव्ये तदन्त विधौ[3] परिभाषा प्रवृत्या[4] निद्र्दिश्य[5]मानस्यैवादेश सिद्धौ[6] ङित्वस्य[7] वैयर्थ्यात्[8]। एवं च निद्र्दिश्यमान[9] इत्यस्य साक्षादनुवृत्या[10]-

वा निर्दिश्य[11]मान इत्यर्थः। इदं सर्वं पादः पदिति[12] सूत्रस्थ परिभाषा विषयकातिस्य[13] इत्युदाहरणपरभाष्यादनुमीयते। **इति संक्षेपः[14]। समावेश**

---

1. परिभाषयाद्विशिष्टस्य अ-3.
2. स्थानिवत्वे प-1.
3. श्रयितव्येतवाधौ इति पाठः अ-4, तदन्त 'नाऽस्ति'।
4. प्रवृत्ता ज-2; वृत्या अ-4.
5. निर्दिश्य ज-2, प-1.
6. सित्वो प-1; शिद्धौ अ-4.
7. ङित्व अ-2, अ-4.
8. वैय्यर्यात् ज-2, अ-3.
9. निर्दिश्यमान ज-1, प-2, अ-1.
10. साक्षादवृत्या प-1
11. निद्र्दयमान प-1.
12. पादः पत् 6.4.130.
13. हत्युिदाहरण ज-2.
14. 'इति संक्षेपः' नोपलभ्यते प-1.

स्थानतः स्थानेनेत्यर्थः। तत्र स्थानत आन्तर्यम् 'इको यणचि' (6.1. 77) इत्यादौ प्रसिद्धमेव। अर्थतः 'पदन्न' (6.1.63) इत्यादौ। स्थान्यर्थाभिधानसमर्थस्यैवादेशतेति सिद्धान्तात् यदर्थभिधानसमर्थो यः स तस्यादेश इति तत्समानार्थतत्समानवर्णपादादीनां ते। 'तृज्वतकोष्टुः'

इति। त्यदादीनाम[1] इत्या[2]दावंगाधिकारेण तदन्त[3] विधौ निर्दिश्यमान[4] त्यदाद्यं तस्याकार इति सूत्रार्थे न बाधकाभावात्सः। एवं बृद्धत्वनिमित्तछ[5]संनियोगेन विधीय[6]माने राज्ञः कचेति[7] कादेशेपि निर्दिश्य[8]मानांत्यस्य कादेश[9] इत्यर्थेन[10] सबोध्यः[11]। एवमादेः परस्येत्यंशेपि[12] द्वयन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्[13] छपादिभ्यः[14] परस्य[15] निर्दिश्यमानस्याया[16]देरीदादेशः[17] एवमुदस्थास्तंभोरित्यत्रापि बोध्यम्। तथानेकाल् शित्सर्वस्येत्यंशेपि[18] निर्दिश्यमानस्य[19]–

---

1. त्यदादिनाम प–1.
2. इत्यावंगाधिकोरेण ज–2.
3. तदंतरविधौ ज–2; तदेतविधौ अ–1, अ–3.
4. निर्दिश्यमान प–1, अ–1, अ–3.
5. संन्नियोगेन प–1.
6. विधीयमानेन अ–2, अ–4; विधीयमानो अ–3.
7. केचेति अ–1 केचिति अ–3.
8. निदि्र्दश्य प–1, अ–3.
9. कादेश्य ज–2.
10. इर्थेन प–1.
11. संबोध्य प–1, अ–4.
12. परस्यैत्यंशेपि ज–2, अ–1, अ–3.
13. सं. पाठः 6.3.97 अष्टा.
14. छपादिभ्यः प–1; द्वयादिभ्यः अ–1, अ–3; वृद्धयादिभ्यः अ–2, अ–4.
15. परस्परस्य अ–2, अ–4.
16. निर्दिश्यमानस्याय आदे प–1, अ–1, अ–3, अ–4.
17. रीरादेशः अ–1, अ–3; रीत्यादेशः अ–4.
18. सर्वस्यैत्यंशेपि अ–3.
19. निदि्र्दश्य अ–3.

(7.1.95) इति च गुणतो वाग्धरिरित्यादौ। प्रमाणतः 'अदसोऽसेः' (8.2.90) इत्यादौ 'स्थानेऽन्तरतमः' (1.1.50) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टैषा॥13॥

सर्वस्य[1] पा[2] च शब्दस्थानेकालादेशरित्यादिरर्थः। यद्यपि[3] अलोन्त्य परिभाषयान्त्यस्य स्थानित्वं[4] द्वितीय[5] पा[6] च यदागमा[7] इतिन्याय[8]लब्धस्यागम विशिष्टस्यादेः स्थानित्वं[9] तृतीये तु तदन्तविधौ विशिष्टस्य[10] तत्त्वमनया[11] तु विपरीतमिति कथमेक[12]वाक्यतया समावेशस्त[13]थापि तच्छेष पक्षेमृजेर्वृद्धि[14] रित्यादावेक[15] वाक्यतया परिभाषा द्वयस्यान्वये विरोधवदत्र[16] तदभाव इत्याशयः। नहि एकवाक्यतयान्वये[17] लक्ष्यसिद्धि[18]रत आह विरोधाभावादिति।

---

1. स्वरूपूर्वस्य याच्छब्दस्यावेनेकादेशः इति पाठः अ-2 पुस्तके; स्वरूपपूर्वस्य-याच्छब्दस्याकादेशः इति पाठः अ-4 मातृकायां.
2. याच्छब्दस्यानेकालादेश प-1, अ-1, अ-3; पाशब्दस्थाने... ज-2.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-4.
4. स्थानित्वे अ-1, अ-3.
5. द्वितीय च अ-2, अ-4.
6. 'पाच' नाऽस्ति अ-2, अ-4.
7. पदागमा अ-2; पदोगमा ज-2.
8. न्यायलब्धे अ-4.
9. स्थानिवत्वं प-1.
10. विष्टस्य अ-1.
11. नत्वम् अ-3.
12. न एके ज-2.
13. 'श' नाऽस्ति अ-3.
14. वृधिः ज-2.
15. इत्यादाकेक अ-1, अ-3.
16. वदत्रदत्तभाव प-1; वदत्रभाव अ-4.
17. तपान्यये अ-3.
18. लक्षयासिविधरिति अ-2.

यद्यपि जराशब्दा[1]न्तेऽनेकालिति[2] बाधित्वा अत्याश्चारितार्थ्येन **पादः[3] पदिति** सूत्रे च भाष्ये प्रायोऽनेकालिति[4] विषये अस्याः प्रवृत्तिदर्शनादलोन्त्यस्ये[5] त्यादि परिभाषाद्वयमनव-

काशत्वादस्या[6] बाधकं तथापि अबाध[7]कत्वे नैवोपपत्तौ बाधकत्व मनुचित मिति भावः। **सूत्रे कैय्यट[8] इति।** तत्र हि[9] यस्येति चेतीकार[10]लोपे सिद्धे समुदायनिर्देशवैयर्थ्यमुक्त्वा[11] कृतेपि तन्निर्देशेत्यस्य[12] कस्मान्ने त्याशंक्य[13] निर्दिश्य[14]मान परिभाषया समाधान[15] परभाष्यमादाय[16] नात्र परिभाषाप्रवृत्तिरिष्टा न सातयो[17]र्वाधिका विरोधाभावात् किन्तु समुदायनिर्देशा स्तद्वा प्रवृत्तौ[18] सर्वादेशो नयेत्युक्तम्[19] तेनेति भावः। **अकञ्चिषय** इति।

---

1. शब्दंते ज-2; शब्देते अ-1.
2. ऽनेकासति अ-4; अनेकाल् शित्सर्वस्य 1/1/55.
3. पादः पत् 6/4/130; पाद पदिति ज-2.
4. 'ऽ' नास्ति अ-2.
5. दर्शनादत आह इति पाठः प-1.
6. अस्याः अ-2, अ-4.
7. अवधाकत्वेनोपपत्तौ अ-4; नोपपत्तौ अ-2.
8. सुत्रे कैयट अ-4.
9. हि' नाऽस्ति प-1.
10. इकार प-1.
11. मुक्ता ज-2; मुत्का अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
12. पाठोऽयं अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 तन्निदेशन्त्यस्य ज-1, ज-2, प-1.
13. कन्नेत्याशंक्य प-1; कस्मान्नेत्याशंक्या अ-2, अ-4.
14. निर्दिश्य नाऽस्ति अ-3.
15. समाधान प-1.
16. परिभाष्यम् ज-2
17. न सत्वयोः ज-2.
18. निर्देशात्तदप्रवृत्तौ ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
19. सर्वादेशाऽनेयत्युक्तम् अ-2, अ-4.

किमः[1] कादेशे कर्त्तव्ये इति[2] शेषः। अत्र प्रमाणन्तु किमः क[3] इत्यावृत्त्याकादेश विधानमेव स्पष्टश्चायमर्थः। किमः क[4] इति सूत्रे कैयटे विवरणे शेखरे शब्दरत्ने च। इम इति वक्तव्ये[5] सूत्रारंभ सामर्थ्यादिति तु न किम इत्यस्य[6] कुतिहोरि[7]त्याद्यर्थत्वात्। अत एव हुझल्भ्यो[8] इति सूत्रस्थ[9] भाष्यविरोधो न तत्र हि–

भिंधकीत्यत्राकचिकृतेधि[10]त्वं परिभाषया न प्राप्नोती त्याशंक्य पर[11]त्वाद्वित्वेऽकजित्युक्तम्। अथवा [12]इकारस्योच्चारणार्थत्ने हकारमात्रं स्थानी[13] इत्यप्युक्तमिति बोध्यम्। स्पष्टश्चायमर्थः किमः क इति सूत्रे शेखरे इति बोध्यम्[14]। यत्तु[15] कैय्यटानुयायिन[16] इम –

---

1. किम्ः अ–3.
2. 'इति' नाऽस्ति प–1; अपितु इत्यर्थः प–1.
3. किमःकः 7/2/103; प्रमाणंतुमिमः क प–1; किमका त्यावृत्या ज–2, अ–3; किमाकर त्यावृत्या अ–1; किमक त्यनुवृत्या अ–4.
4. किमः इतिसूत्रे इति पाठः ज–2 किम इति सूत्रे अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
5. वक्तव्य अ–4.
6. तु न म इत्यस्य ज–2, अ–3; नुनम इत्यस्य य अ–1.
7. कुतिहो : 7/2/104
8. हुझल्भ्यो हेर्धिः 6/4/101; हुसलभ्य इति ज–2, अ–1 हुसलभ्य अ–2, अ–3, अ–4.
9. सूत्रस्य अ–2, अ–4.
10. कृते ते धित्वं अ–3.
11. परत्वाक्रिडत्वे प–1.
12. दकारस्योच्चार कार्यत्वेन ज–2, अ–1, अ–3.
13. स्थातो अ–1.
14. स्पष्टश्चायमर्थः इत्यारभ्य इति बोध्यम् इत्यन्तं प–1 मातृकायां नोपलभ्यते.
15. यतु अ–1.
16. कैयटा ज–2, प–1, अ–1, अ–4.

ननु प्रोदूवानित्यत्र 'प्रादूहोढ' (6.1.89) इति वृद्धिः स्यादत आह-

अर्थवद्ग्रहणे नानर्थकस्य॥14॥

विशिष्टरूपोपादान उपस्थितार्थस्य विशेषणतयाऽन्वयसम्भवे त्यागे मानाभावोऽस्या मूलम्। अत्रार्थः कल्पितान्वयव्यतिरेककल्पितः, शास्त्रीयोऽपि गृह्यत इति 'संख्यायाः' (5.1.22) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। इयं वर्णग्रहणेषु नेति 'लस्य' (3.4.77) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम्। अत एवैषा विशिष्टरूपो पादानविषयेति वृद्धाः। एतन्मूलकमेव 'येन विधिः' (1.1.72) इत्यत्र भाष्ये पठ्यते- 'अलैवानार्थकेन

इत्येवास्तुत्यदादीनाम इति[1] चानुवर्तते। तणैसामर्थ्यादिवपर्यन्त[2]स्येत्यवधिः परित्यज्यते[3]। अन्त्यस्य पूर्वेणैव सिद्धेऽन्त्यार्थामिदम्। तत्र द्वयोरकारयोः[4] पररुपेणेष्ट सिद्धौ किमः कादेश विधान[5] साकच् कस्यादेशार्थ[6]मिति निदि्र्दश्यमान[7]परिभाषया तद्बाधे[8] तु व्यर्थमेव स्यादिति वदन्त[9] आवृत्या साकच्कस्यादेश[10] इति स्वमूलधातुपश्यन्तश्चोपेक्ष्याः[11]। अत्रन्यासे इमावि[12] त्यादावतिव्याप्तेश्चेति दिक्॥12॥

---

1. 'ति' नाऽस्ति प-1.
2. वित्त्वेस्येत्य वाधिः अ-4; विपर्यतस्येत्यवधिः अ-1; विपर्यस्येत्यवाधि अ-2.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; तयज्यत ज-1.
4. द्वयोरकारयोपररूपे सोष्टसिद्धौ प-1; द्वयोरेकारयोः अ-2; द्वयोरकारयोः अ-3.
5. विधान ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
6. साकच्छस्यादेशार्थमिति अ-4.
7. निर्दिश्यमान ज-2.
8. तवोधे तु प-1; तद्वधतु अ-1, अ-3.
9. वदं ज-2, अ-1, अ-3; वदतः प-1; वदताऽवृत्या अ-2; वदत्ताऽव्रज्या अ-4.
10. साच्कस्यादेश अ-4; इति सरूपेलघात अ-3.
11. श्चोप्रेक्ष्यः प-1; अपश्यंतश्चापेक्ष्याः अ-2, अ-4.
12. इमानि त्यादावति ज-2, अ-1, अ-3.

तदन्तविधिः' इति।

किञ्च 'स्वं रूपम्' (1.1.68) इति शास्त्रे स्वशब्देनात्मीय-वाचिनार्थो गृह्यते रूपशब्देन स्वरूपम्। एवं च तदुभयं शब्दस्य संज्ञाति तदर्थः। तत्रार्थो न विशेष्यस्तत्र शास्त्रीयकार्यासम्भवात्, किन्तु

गुणतो वाग्घरिरि[1]तीति। गुण शब्दे[2]नोक्तत्रितयातिरिक्त[3] धर्ममात्रं[4] गृह्यते तेना[5]नांन्तर्यमेवैतयोरान्तय्यमिति भाष्येण न[6] विरोधः। अत्र कैय्यटानुयायिनः[7] प्रसङ्गान्न[8] च तत्र तत्र रलपरानादेशानुच्चार्य्य[9] उरणरपर इति न कार्य्यम्[10]। आप्ज्ञप्यृधामीत्[11] भृज्ञामि[12]दित्यादौ दोष इति शेखरमनूद्यतदेशुद्ध[13] पठित्वा कुचोद्यं[14] भृज्ञामिमिदिति। पाठेदोषलेशादित्याहुस्तन्न। तस्य स्वज्ञानप्रकाशद्वारा[15] स्वस्वरूपप्रकाशकत्वात्[16]।

---

1. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2; वाग्घरिरिति प-1; वाग्धरितिरितीति अ-3; वाक्यरितीति अ-4.
2. शब्दोनोक्त प-1.
3. रिक्त ज-2, अ-1, अ-3; त्रितयाविरक्तं अ-2, अ-4.
4. मात्र अ-2, अ-4.
5. त तन्नंतर्यम् प-1, आन्तर्यमिति अ-1; गृह्यते नानातर्पमेवैतयोरांतर्यमिति भाष्ये (ण) न विरोधः इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4; न नाऽस्ति ज-1, प-1.
7. कैयटा ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
8. प्रसङ्गानेव ज-2; प्रत्यांभ न च अ-4.
9. अनुच्चर्य प-1.
10. कार्यम् ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
10. कार्यम् ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
11. सं. पा. 7/4/55 अष्टा.
12. सं. पा. 7/4/76.
13. तदशुधं ज-2; तदशत्धं अ-3; तशुद्धं अ-4.
14. कुचोद्यु ज-2.
15. प्रकाशाक द्वारा अ-4.
16. प्रकाशत्वात् अ-4; प्रकारात्वात् अ-2.

शब्दविशेषणम्। एवं चार्थविशिष्टः शब्दः संज्ञीति फलितम्। तेनैषा परिभाषा सिद्धेति भाष्ये स्पष्टम्॥14॥

नन्वेवमपि महद्भूतश्चन्द्रमा इत्यत्र 'आन्महतः' (6.3.46) इत्यात्त्वापत्तिरति आह-

गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः॥15॥

गुणादागतो गौणः। यथा गोशब्दस्य जाड्यादिगुणनिमित्तोऽर्थो वाहीकः। अप्रसिद्धश्च संज्ञादिरपि तद्गुणोरोपादेव बुध्यते। मुखमिव प्रधानत्वान्मुख्यः प्रथम इत्यर्थः। गौणे ह्यर्थे शब्दः प्रयुज्यमानो मुख्यार्थारोपेण प्रवर्त्तते। एवं चाप्रसिद्धत्वं गौणलाक्षणिकत्वं चात्र गौणत्वम्। तेन

तद[1]ग्रन्थस्याक्षरमर्यादयाऽने[2]कत्र तथा[3] पाठेनासंगत्यप्रतीतेः[4] समाधानस्यापि[5] तदनुसारित्वात्। अत एव परमगुरुचरणैर्यत्तुकस्यचिन्मतं[6] खण्डयतीत्यवतारितम्। हलादिः शेषेण[7] भृञामिदित्यादौ[8] दोषाभावेपि[9] तत्प्रवृत्ति कल्पने[10] माङादौ गौरवात्[11] इत्यप्युक्तम्[12]। एवञ्च मृलकृदुपरिदूषणं जन्मान्तरीयद्वेष[13] प्रयुक्तमित्येव वयं विभावयाम इति दिक्॥13॥

---

1. तद्वंथस्याक्षर अ-4.
2. मर्यादयादने कत्र ज-2.
3. 'तथा नाऽस्ति प-1.'
4. असंगत्यत्तीत्तेः ज-2.
5. समानस्यापि अ-4.
6. कस्यचिन्मजं अ-1, अ-3.
7. हलादिशेषः 7.4.60.
8. भृनामिदित्यादो अ-1.
9. दोषा भोपि अ-3.
10. कल्पनेन प-1.
11. गारवात् प-1; गौरवातु अ-2, गौरवा अ-4.
12. इत्याप्युक्तम् अ-1.
13. जन्मान्तरे द्वेष ज-2; जन्मांतरीद्वेध अ-1, अ-3, अ-4.

प्रियत्रयाणामित्यादौ त्रयादेशो भवत्येव। तत्र त्रिशब्दार्थस्येत रविशेषण-त्वेऽप्युक्तरूपगौणत्वाभावात्।

किञ्‌ चायं न्यायो न प्रातिपदिककार्ये, किन्तुपात्तं विशिष्यार्थोप-स्थापकं विशिष्टरूपं यत्र तातृशपदकार्य एव। परिनिष्ठितस्य पदान्तरसम्बन्धे हि गौर्वाहीक इत्यादौ गौणत्वप्रतीतिर्न तु प्रादिपदिकसंस्कारवेलायामित्यन्तरङ्गत्वाज्जातसंस्कार बाधायोगः

नन्वस्याः वर्णग्रहणेपि प्रवृत्तौ हरय इत्यादाव[1]यादिर्नस्यात्। अयती-त्यादावेव स्यादत[2] आह। इयञ्चवर्णेति। तत्र मानमाह। **लस्येति।** तत्र हि चूडा[3]लादावादेशमाशंक्यार्थवत्परि[4]भाषया वारणे कृते उक्तरीत्या परिभाषाया-ऽप्रवृत्तिरुक्ता। अलैवानर्थकैति। अयं भावः यदिवर्णग्रहणेपि इयं प्रवर्तेता[5]नर्थ-केनेति। तर्हिव्यर्थं तस्य प्रयोजनन्तु एरजित्यादौ अनर्थकेनापितदन्त[6]विधौ नयादिसिद्धिः[7]। अस्याः प्रवृत्तौ तु व्यावर्त्याभाव इति एवं च समुदायेन चेत्सस्तर्हि अर्थवतैवेति[9] फलितम्। तेन हनादि[10]ग्रहणेप्लीहन्[11] ग्रहणं नेति येन विधिरिति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। यत्तु कैयटानुयायिनः भ्राजिग्रहणस्य ज्ञापकता[12]मुपपाद्य धातु- संज्ञकराजि[13]-

---

1. इत्यादावयोदिर्नस्यात् अ-2, अ-4.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3 अपरतीत्यादावस्यादत आह अ-4.
3. चडाण्लादावादेशम् अ-2; चंडाणलादावादेशम् अ-4.
4. 'य' अस्ति अ-3.
5. प्रवर्तनामर्थके नेति अ-1, प्रवर्ततानर्थ केतेति अ-3.
6. तदान्त ज-2.
7. विधौ अनयासिद्धिः प-1; विधौनायादिसिद्धिः अ-2; विधौनादिसिद्धिः अ-4.
9. अर्थवनेवेति अ-3.
10. हन्यादि अ-4.
11 प्लोहन् पाठो नाऽस्ति प-1.
12. ज्ञापकतयामुपपाद्य-1.
13. संज्ञक एजि अ-2.

प्रातिपदिककार्ये प्रवृत्त्यभावे बीजम्। श्वशुरसदृशस्यापत्यमित्यर्थके श्वाशुरिरित्यादौ अत इञः सिद्धये उपात्तमित्यादि। न च प्रातिपदिकपदं तादृशमिति वाच्यम्, तेन हि प्रातिपदिकपदवत्त्वेनोपस्थितिरिति तस्य विशिष्यार्थोपस्थापकत्वाभावात् निपातपदं तु चादित्वेनैव चादीनामुपस्थापकमिति तदुद्देश्यक-

कार्यविधायके 'ओत्' (1.1.15) इत्यादावेतत् प्रवृत्त्या गोऽभवदित्यादौ दोषो न। अग्नीषोमौ माणवकावित्यत्र प्रसिद्धदेवताद्वन्द्ववाच्यग्नीषोमतत्सदृशपरत्वेऽन्तरङ्गत्वादीत्वषत्वे भवत एव।

ग्रहण[1]स्योपक्षीणत्वान्न[2]ज्ञापकत्वमिति शब्दरत्नमनुद्यातिव्याप्ति परिहाराय राज्[3] इति पठितस्यानुबंध[4]स्यैवं सति वैयर्थ्य[5]प्रसंगात्। निडभिरित्यादौ षत्वस्याभियुक्तैरुदाहृतत्वात्तन्मन्द[7]मिदमितिदूषणमभिद[8]धुस्तच्छेखरादिग्रंथाज्ञान-ग्रह[9]ग्रस्तम्। तत्र हि धातुग्रहणं व्रश्चादि[10] सूत्रेऽनुवर्तमानं व्याख्यायात्रार्थो[11] भाष्यानुग्रहो[12] मृग्य इत्युक्तम्[13]। एवञ्चास्य धातुग्रहणानुवादिमतानु[14]सारित्वं स्पष्टमेवबोधितम्॥14॥

---

1. ग्रहणेन भ्राजि ग्रहणस्योपक्षोणत्वान्न ज्ञापकत्वमिति पाठाधिक्यं.
2. उपक्षीणत्वात्त ज-2, अ-3.
3. राजृ, प-1, अ-2, अ-4; यराज अ-3.
4. पटितस्यानु ज-2; पठितस्यनु अ-4.
5. वैय्यर्थ्य ज-2, अ-1 वैय्यर्थ्यम् अ-2, अ-4; षत्वस्यापियुत्तैः प-1.
7. उदाहृतत्वातन्मंदमिदमिद्रमिश्रि प-1; उदाहृतत्वात ग्रांदमिदमिति अस-2.
8. दूषणमभिदाद्युस्तच्छ्स्वरादि इति पाठः अ-4.
9. ज्ञानग्रहणग्रस्तम् अ-2, अ-4; ग्रहग्रस्ते अ-3.
10. व्रश्चभ्रस्जसृजमृजयज राजभ्राजच्छशांषः 7/2/36; ग्रहणवश्चादि अ-3.
11. व्याख्यायान्नार्थो अ-1, अ-3.
12. भाष्यानुग्रहा अ-2, अ-4.
13. इत्युक्तः अ-4.
14. अनुसारित्व प-1; ग्रहणानुसारित्वं अ-2, अ-4 वार्द्विमुतानुसारित्वं अ-3; वादिमुतानुसारित्वं अ-1.

सदृशलाक्षणिकाग्निसोमपदयोर्द्वन्द्वे तन्नामकावित्यर्थके च नेत्वषत्वे।

मुख्यार्थो[1]रोपेणेति। एवञ्च प्रथमप्रतीतार्थमादाय कृतार्थं शास्त्रं गोणार्थमादाय न प्रवर्तत[2] इति भावः। अत एव भट्टैस्तृतीया[3]ध्याये द्विवतीयपादे[4] प्रथमाधिकरणे वर्हि[5]र्देव सदनंदमिति[6] विलवन[7]प्रकाशको[8] मंत्रः। तत्र लवितव्यञ्च वहिर्दिर्वविध[9] गौणं मुख्यञ्च[10] मुख्यं कुशकाशादि[11] दशविधं[12] दर्भरुपम्। गौणन्तु तत्सदृशम् तस्मिन्वार्हिः[13] शब्दस्य माणवकेऽग्नि[14]–शब्दवत्प्रवृत्तेः[15]। एवञ्चो[15]भयोरपि[16] वर्हिः[17] शब्दार्थत्वेने गौणस्यापि[18] लवने[19]मंत्रो विनियुज्येतेति[20] –

---

1. मुख्यारोपेणेति ज–2; मुख्यार्थोरोपेणेति अ–4.
2. न प्रवर्त्त इति अ–4.
3. भट्टैस्ततीया प–1; भट्टैस्तृतीया अ–1, अ–2; भत्द्दैस्तृतीयाध्ये अ–4.
4. द्वितीय प–1.
5. बहिदेव प–1.
6. सदनंददामीति अ–2 सदनं इहामीति अ–4.
7. लवन प–1, अ–2, अ–4.
8. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; प्राकाशको ज–1.
9. वर्हि द्विविधं ज–2.
10. 'च' पाठो नाऽस्ति प–1.
11. कशकाशदि ज–2; मुजांकुशकाशादि अ–3.
12. दशविध ज–2.
13 वहि प–1.
14. मागकेग्नि प–1, अ–2; मावकेऽग्नि अ–4.
15. शब्दवप्रवृत्तेः प–1,
15. एववोभयो प–1, अ–3.
16. वहि प–1.
17. गोणस्यापि ज–2; गोपास्यापि अ–3.
18. लवणे ज–2.
19. विनियुज्यतेति प–1.
20. युज्यतेति

आद्ये गौणलाक्षणिकत्वादन्त्येऽप्रसिद्धत्वात्। अत एवाग्निसोमो माणवकावित्यत्र गौणमुख्यन्यायेन षत्ववारणपरम् 'अग्नेःस्तुत्स्तोमसोमाः' (8.3.82) इति सूत्रस्थं भाष्यं संगच्छते। गां पाठयेत्यादौ मुख्यगोपदार्थस्य पाठनकर्मत्वासम्भवेन विभक्त्युत्पत्तिवेलायां प्रयोक्तृभिर्गौणार्थत्वस्य प्रतीतावप्यपदस्याप्रयोगेण बौद्धभिः सर्वत्र पदस्यैव गौणार्थकत्वस्य ग्रहेणात्वं त्वं सम्पद्यते, अमहान् महान् भूतस्त्वद्भवतीत्यादिभाष्यप्रयोगे त्वाद्यादेशदीर्घादिनां करणेन चास्य न्यायस्य पदकार्यविषयत्व-मेवोचितम्। अन्यथावाक्यसंस्कारपक्षे तेषु तदनापत्तिः।

किञ्च शुक्लामित्युक्ते कर्म निर्दिष्टं, कर्तृक्रिये चानिर्दिष्टे

संदिह्य[1]मुख्यस्य शीघ्रमुपस्थिततत्वेन मंत्रस्य चरितार्थतया गौणा[2]पेक्षां न करोतीति समाहितम्। ननु पूर्वोक्तरीत्यालोके[3] गौणार्थ[4]बोधजनकत्वरुपस्य गौणत्वस्य परिभाषायां ग्रहणे[5] सामान्यतो गौणत्वग्रहणप्रतिपादकवक्ष्यमाण भाष्यविरोध इत्याशंक्याह।

अर्थाश्रयेत्यादि। तद्रहित[6]शब्दाश्रये चेति। पूर्वोक्तार्थरहितशब्दाश्रये चेत्यर्थः। ननु शब्दाश्रये चेत्यस्यार्थरहित[7] तन्मात्राश्रय[8] इत्येव यथाश्रुतः कुतोनार्थ[9] इत्यत आह। **गोत इति यथेति।** एवञ्च सूत्रेऽर्थवत्[10] उपादानेन

---

1. संदिह्य मुख्यस्य शीघ्रमुख्यस्य शीघ्रमुपस्थिततत्वेन इति पाठः अ–4.
2. गोणापेक्षा अ–2, अ–3.
3. रित्यालोके ज–2; रित्याकेलो प–1; रीत्यालोकैं ज–1.
4. गोणार्थ ज–2, अ–1, अ–3; गौर्थ प–1.
5. ग्रहसो ज–2.
6. तदृहित अ–1, राहित अ–2, अ–4; मातृकायां नाऽस्ति.
7. रहितन ज–2.
8. तन्मात्राश्रये अ–4.
9. कुतोनर्थ इत्यतः अ–2, अ–4.
10. सुत्रेऽर्थवत्त ज–2, सूत्रेऽर्थवत प–1, अ–1, अ–2, अ–3; सुत्रेऽचेर्थवत अ–4.

इत्याद्युक्त्वा इहेदानीं गामभ्याज कृष्णां देवदत्तेत्यादौ सर्वं निर्दिष्टं गामेव कर्म देवदत्त एव कर्त्ता अभ्याजैव क्रियेत्यर्थकेन अर्थवत् (1. 2.45) सूत्रस्थभाष्येण कारकादिमात्रप्रयोगे योग्यसर्वक्रियाध्याहारे प्रसक्ते नियमार्थः क्रियावाचकादिप्रयोग इत्येतत्तात्पर्यकेन सामान्यतः क्रियाजन्यफलाश्रयत्व मात्रविवक्षायां द्विवती यादीनां साधुत्वान्वाख्यान-मित्यर्थलाभेन पाठन -

क्रियान्वयकाले पदस्यैव गौणार्थत्वप्रतीतिः प्रयोक्तुरपि। एवमेतन्मूलकः 'अभिव्यक्तपदार्था ये' इति श्लोकोऽपि पदकार्य-विषयकः। ध्वनितं चेदं 'सर्वादीनि' (1.1.37) इति सूत्रे संज्ञाभूतानां प्रतिषेधमारभता वार्त्तिककृता 'पूर्वपर' (1.1.34) इति सूत्रेऽसंज्ञायामिति वदता सूत्रकृताऽन्वर्थसंज्ञया तत्प्रत्याख्यानं कुर्वता भाष्यकृता च। अर्थाश्रय एतदेवं भवति शब्दाश्रये च वृद्धयात्त्वे इति 'ओत्' (1.1. 15) सूत्रस्थभाष्यस्य लौकिकार्थवत्त्वयोग्यपदाश्रय एव न्यायस्त-द्रहितशब्दाश्रये च ते इत्यर्थः। 'गोतः' (7.1.90) इति यथाश्रुतसूत्रे विशिष्टरूपादानसत्त्वेनोक्तरीत्यैव तस्य भाष्यस्य व्याख्येय-त्वादित्यलम्॥15॥

अर्थवदग्रहणेन (पं 14) इत्यस्यापवादमाह-

तथा- वक्तुमशक्यमिति भावः। यद्वा ननु गोत इत्यस्य स्थाने ओत इत्युक्ते विशिष्ट[1]रूपोपादानाभावादेव परिभाषाया अप्रवृत्ताविष्टसिद्धेर्भाष्य[2]स्थ शंकादिक[3] प्रसंगमित्यत आह[4]। गोत इति यथेति। एवञ्चौत इति पाठो[5] संगत इति भावः॥15॥

---

1. विशिष्टोपादानाभावादेव अ-2.
2. भाष्यस्थं अ-2, अ-4.
3. प्रसंग इत्यत अ-2.
4. सिद्धेभाष्यस्थशंकादिकमसंगतमित्यत आह इति प-1 मातृकायां पाठः
5. पाठोऽसंगत ज-2.

अनिनस्मन्ग्रहणान्यर्थवता चानर्थकेन च तदन्तविधिं प्रयोजयन्ति॥16॥

'येन विधिः' (1.1.72) इत्यत्र भाष्ये वचनरूपेण पठितैषा। तेन राज्ञा साम्नेत्यादावल्लोपो, दण्डो वाग्मी इत्यादौ 'इन्हन्' (6.4. 12) इति नियमः, सुपयाः, सुस्रोता इत्यादौ 'अत्वसन्तस्य' (6.4.

राज्ञासाम्नेतयादा[1]विति। ननु अल्लोपोऽन[2] इति सूत्रेऽदितिवर्ण[3] ग्रहण[4]सत्वेनार्थवत् परिभाषाया अप्रवृत्तेरेवेष्ट सिद्धा[5]वस्योपादानमसंगतमिति चेन्न[6]। वर्णग्रहणेत्यस्य[7] वर्णमात्रग्रहणे इत्यर्थः। अत एवौदिति सूत्रेऽर्थ[8]वत्परिभाषा[9]मूलक[10] गौणमुख्य परिभाषाया अप्रवृत्तिमाशंक्य निपातपदानुवृत्या[11] विशिष्टस्योद्देश्यत्वेन[12] वर्णग्रहणमित्युक्तम्। अयमर्थः निपात एकाज नाङि्त्यत्रापि स्पष्टो विवरणे लस्येति भाष्यादपि तथैव प्रतीतैश्च[13]। इतीतिपरेति। एवञ्च ज्ञापकमसंगतमिति[14] भावः।

---

1. 'दा' नाऽस्ति अ-4.
2. अल्लोपीड नः 6/4/134; अल्लोपीन ज-1 अलोपीन ज-2, अ-1; अलोप न अ-2, अ-4.
3. अत इति अ-2, अ-4.
4. ग्रहण इति अ-2; इति प-1; ग्रहणसे इति अस-4.
5. सिद्धिवस्यो ज-2.
6. चन्न अ-1, अ-3.
7. ग्रहणेत्येस्य अ-4.
8. सूत्रोऽर्थवत् -4.
9. परिभाषाया प-1.
10. मूलकै अ-2, अ-4.
11. निपातनापदानवृत्या प-1; यदानवृत्या अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
12. उदेश्यत्वेन अ-2, अ-4; विशिष्ठो विवरणे लस्येति भाष्यादपि इति पाठोपलभ्यते अ-3.
13. प्रतीश्च ज-2, अ-1, अ-3; प्रतितेश्च अ-4.
14. असत्तमिति ज-1; असंगत इति ज-2.

14) इति दीर्घः, सुशर्म्मा सुप्रथिमेत्यादौ 'मनः' (4.1.11) इति ङीब्निषेधश्च सिद्धः।

अन्ये तु परिवेविषीष्वमित्यत्र ढत्वव्यावृत्तये क्रियमाणात् 'इणः षीध्यम्' (8.3.78) इत्यत्राङ्गग्रहणादर्थवत्परिभाषाऽनित्या तत्मूलकमिदमित्याहुः। 'विभाषेटः' (8.3.79) इत्यत्रानर्थकल्यैव षीध्वमः सम्भवादत्रापि तस्यैव ग्रहणमिति भ्रमवारणायाङ्गादिति परे॥16॥

ननु 'उश्च' (1.2.12) इतयत्र 'लिङ्गसिचो' (1.2.11) इत्यत आत्मनेपदेष्वित्येव संबध्येतानन्तरत्वादत आह-

एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः॥17॥

वाशब्द एवार्थे। परस्परान्वितार्थकपदानां सहैवानुवृत्तिनिवृत्ती इत्यर्थः। एककार्यनियुक्तानां बहुनां लोके तथैव दर्शनादिति भावः।

यत्त्वत्र ज्ञापकं 'नेडवशि' (7.2.8) इत्यत इडित्यनुवर्त्तमाने 'आर्धधातुकस्येट्' (7.2.35) इत्यत्र पुनरिड्ग्रहणं तद्धि नेत्यस्या-

---

यत्वत्र कैय्यटा[1]नुयायिनःऽनोऽर्थवद्[2] ग्रहणे कार्मादावन[3] इत्यस्य प्रकृतिभावस्याप्रवृत्तौ नस्तद्धिते इति टिलोपे सिद्धे[4] कार्म[5] इति निपातनमेतज् ज्ञापकमित्याहुस्त[6]त्तु विशेषविषय[7]कत्वरूप कुठारपातेन[8] छिन्नमितिनादरणीयं भाष्यानुयायिभिः॥16॥

---

1. कैयटा ज-2, अ-4.
2. अतोऽर्थवत् ज-2, अ-3.
3. कार्मादावन् ज-2, प-1; कार्यादावन् अ-1, अ-3; कार्यदावन अ-2, अ-4.
4. सिधे ज-1.
5. कार्य अ-2.
6. इत्याहस्त तु अ-2, अ-3.
7. विशेष यकत्वकुठार अ-2, अ-4.
8. कुटारपात्तेनुछिन्नं प-1.

सम्बन्धार्थमिति, तन्न।

दीधीवेबीटाम् (1.1.6) इति सूत्रे भाष्ये तत्रत्येड्ग्रहण-प्रत्याख्यानायेड्ग्रहणेऽनुवर्त्तमाने पुनरिड्ग्रहणस्येटो गुणरूपविकारा-भावार्थकत्वस्योक्तत्वेन तद्विरोधात्। नञो निवृत्तिस्तु क्वचिदे कदेशोऽप्यनुवर्त्तत इति न्यायेन सिद्धा।

वस्तुतस्तु 'दीधीवेवीटाम्' (1.1.6) इति सूत्रस्थभाष्मेकदेश्युक्तिः 'आर्द्धधातुकस्य' (7.2.35) इति सूत्रस्थेड्ग्रहणस्यनेड्वशि (7.2. 8) इति सूत्रे भाष्ये प्रत्याख्यानात्। तत्करणेन गुरुतरयत्नमाश्रित्यै-तत्प्रत्याख्यानस्यायुक्तत्वात्॥17॥

नन्वलुगाधिकारः प्रागनङ् उत्तरपदाधिकारः प्रागङ्गाधिकादित्यनु-पपन्नमेक योगनिर्दिष्टत्वात्। तथा 'दामहायनान्ताच्च' (4.1.27) इत्यादौ 'संख्याव्ययादेः' (4.1.26) इत्यतः सङ्खयादेरित्यनु-वर्त्ततेऽव्ययादेरिति निवृत्तमिति चानुपपन्नमत आह-

क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्त्तते ॥18॥

पक्षात्तिरिति[1] सूत्र इति। तत्र हि तस्य पाकमूले पील्वादिकर्णादिभ्यः कुणब्जाहचाविति। सूत्रान्मूल इति वर्तते[2] इत्युक्ते पाकेपि स्यात् इति शंकतेऽनेन[3] न्यायेन मूले इत्यनुवर्तते[4] पाके[5] इति निवृत्तमिति सिद्धान्तिनोक्तम्। तत्र कथ[6]मेकदेशानुवृत्तिरिति[7] पूर्वपक्षभाष्यमादाय[8] तथातेनोक्तम्।

---

1. सं. पाठः, 5/2/24 अष्टा.
2. पाठोऽयं प-1, अ-2; वर्तत ज-1, ज-2; प्रवर्तते अ-4.
3. शंकितेनेन प-1.
4. इत्यानुवर्तते ज-2.
5. पाठोऽयं ज-2, अ-3, अ-4; पाठे ज-1.
6. कथमेके अ-2, अ-4.
7. 'ति' नाऽस्ति अ-1, अ-3.
8. भाष्यमादाये प-1; भाष्यामादाय अ-2, अ-4.

एकत्रार्थे योगः सम्बन्धस्तेन निर्दिष्टयोः समुदायाभिधायिद्वन्द्व-निर्दिष्टयोरित्यर्थ इति 'पक्षात्तिः' (5.2.25) इति सूत्रे कैयटः। तावन्मात्रांशे स्वरितत्वप्रतिज्ञाबल्लाल्लभ्यमिदम्। स्पष्टा चेयं 'दामहायनान्ताच्च' (4.1.27) इति 'औतोऽम्शसोः' (6.1.93) इति सूत्रे च भाष्ये पूर्वा च॥18॥

ननु 'त्यदादीनामः' (7.2.102) इत्यादिनेममित्यादावनुनासिकः स्यादत आह-

भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न॥19॥

'अणुदित्' (1.1.69) सूत्रेऽप्रत्ययः इत्यनेन सामर्थ्यात्सूत्रप्राप्तं जातिपक्षेण प्राप्तं गुणाभेदकत्वेन च प्राप्तं नेत्यर्थः। अत एवाणुदित्सूत्रे प्रत्ययादेशागमेषु सवर्णग्रहणाभावं प्रकारान्तरेणोक्त्वैवं तर्हि सिद्धे यदप्रत्यय इति प्रतिषेधं शास्ति तज्ज्ञापयति भवत्येषा परिभाषा 'भाव्यमानेन सवर्णानां ग्रहणं न' इति।

किञ्च 'ज्याद ईयस' इत्येवान्तर्यतो दीर्घे सिद्धे 'ज्यादादीयसः'

औतोऽम्शसोरिति[1]। तत्र हि वासुपीत्यतस्सुपीत्य[2]नुवर्ततेवेति निवृत्तमनेन न्यायेनोक्तम् एते न **पक्षात्तिरिति**[3] पूर्वपक्ष[4]भाष्याशयमादाय कैयटार्थसमर्थनं कुर्वन्तः कैय्यटानुयायिनः[5] परास्ताः। अत एव स्थलांन्तर[6]भाष्यविरोध सूचनायावतरणे[7]ऽलुगधिकार[8] इत्युक्तमन्ते चौतोम् इत्यप्युक्तमिति बोध्यम्॥18॥

---

1. सं. पा. 6/1/93; औतोऽम् शसो-इत्यारभ्य न्यायेनोक्तम् इत्यन्तं अ-4 नाऽस्ति.
2. पीत्यत्वं ज-2, ज-1, अ-3.
3. पक्ष्यातिरिति अ-4.
4. पक्ष्य अ-4.
5. यायिना अ-1.
6. स्थलान्तर ज-2, अ-1, अ-3.
7. सूचमायावतरणे अ-4.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4 अधिका ज-1.

(6.4.130) इति दीर्घोच्चारणमस्या ज्ञापकम्। 'अणुदित' सूत्रे 'ज्यादात्' इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टैषा। 'चोः कुः' (8.2.30) इत्यादो भाष्यमानेनापि सवर्णग्रहणम्, विधेये उदित्करणसामर्थ्यात्। एतदेवाभिप्रेत्य 'भाव्यमानोऽण्' सवर्णान्न ग्रहणाति इति नव्याः पठन्ति॥19॥

नन्वेवं 'अदसोऽसेः' (8.2.80) इत्यादिना अमू इत्यादौ दीर्घविधानं न स्यादत आह-

भाव्यमानोऽप्युकारः सवर्णान् गृह्णाति॥20॥

'दिव उत्' (6.1.132) 'ऋत उत्' (6.1.111) इति तपरकरणमस्या ज्ञापकम् 'तित्स्वरितम्' (6.1.185) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टैषा॥20॥

ननु गवे हितं गोहितमित्यादौ प्रत्ययलक्षणेनावाद्यादेशापत्तिरत आह-

वर्णाश्रये नास्ति प्रत्ययलक्षणम्॥21॥

वर्णप्राधान्यविषयमेतत्। तत्त्वं च 'प्रत्ययलोपे' (1.1.62) इति सूत्रे 'स्थानिवत्' (1.1.56) इत्यनुवृत्त्यैव सिद्धे प्रत्ययलक्षणग्रहणं प्रत्ययस्ये तरा विशेषणत्वरूपं यत्र प्राधान्यं तत्रैव प्रवृत्त्यर्थमित्येतत्सिद्धम्। वर्णप्राधान्यं च वर्णस्येतराविशेषणत्वरूपं प्रत्ययनिरूपित विशेष्यतारूपं च। तेन गोहितमित्यादाववादिर्न चित्रायां जाता चित्रा इत्यादावण्योऽकारस्तदन्तान् ङीबिति ङीप् च न। इयमल्विधौ स्थानिवत्त्वाप्राप्तावपि प्राप्त प्रत्ययलक्षणविधेर्निषेधिकेति स्पष्टं भाष्ये॥21॥

ननु 'अतः कृकमि' (8.3.46) इत्यत्र कमिग्रहणेन सिद्धे कसंग्रहणं व्यर्थमत आह-

उणादयोऽव्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि॥22॥

इदमेवास्या ज्ञापकमिति कैयटादयः। कंसेस्तु न कंसोऽनभिधानात्। 'प्रत्ययस्य लुक्' (1.1.61) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टा। एवं 'ण्वुल्तृचौ'

(3.1.133) इत्यादौ भाष्ये व्युत्पन्नानीत्यपि। इदं शाकटायनादिरीत्या। पाणिनेस्त्वव्युत्पत्तिपक्ष ऐवेति शब्देन्दुशेखरे निरूपितम्। 'आयनेयी

वर्ण[1]प्राधान्येति। वार्त्तिककारमते विशेषणतयालाश्रयणे[2]ऽनल्विधाविति निषेधे प्राप्ते तत्रापि प्रत्ययलक्षणेन[3] कार्यविधानार्थं प्रत्ययलक्षणसूत्रं विधायक[4] अत एवातृणे ङित्या[5]दिसिद्धिः। एवञ्च गवे हितमित्यत्रापि[6] प्राप्ते प्रत्ययलक्षणे तन्मते परिभाषया वार्य्यते[7]। यदीयमपि वर्णस्या प्राधान्येचेत्प्रवर्तेत तर्हि प्रत्यय लक्षणसूत्रं व्यर्थमेव[8] स्यादिति न्यायसिद्धमेतत्। परिभाषासिध्युपायमाह। **तत्वञ्चेति।** अप्रत्ययलक्षणत्वञ्चेत्यर्थः। अस्येत्येतावदित्यत्रान्वयः[9]। तस्य च इत्येतेनेत्यर्थः। क्वचित्तु इत्ये[10]तत्सिद्धमिति[11] पाठो दृश्यते। तत्राप्ययमेवार्थः। यत्त्वत्र कैय्यटानुयायिनः[12] प्रसंगादनल्विधावित्यस्य[13] स्थान्यल् वृत्ति स्थान्य वयवाल्[14] वृत्ति धर्माश्रयेन[15] स्थानिवत्त्वमिति नवीनोक्तार्थमनू[16]द्य-

---

1. 'वर्ण' नोपलभ्यते अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, अ-1; लाश्रये ज-1, आश्रये प-1 ऽलाश्रयणे अ-2, अ-4.
3. लक्षणेण प-1.
4. विधायको अ-2; विधायकां अ-4.
5. ङित्यादित्यादि प-1.
6. इत्यादित्रापि प-1.
7. परिभाषयार्य ते ज-2, अ-1; परिभाषांयायते अ-3; परिभाषाया वार्यते अ-2, अ-4.
8. व्यर्थमित्यस्यादिति न्यायं अ-2.
9. अस्येत्येतावादित्यत्रान्वयः अ-2, अ-4.
10. इत्येत् प-1.
11. सिद्धिमिति पाटो ज-2.
12. कैयटा ज-2, अ-1, अ-3, कैःयटानुः अ-4.
13. इत्यस्या अ-3; इत्य.
14. स्थान्यवयववाल्वृत्ति अ-1, ज-2, अ-3.
15. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
16. नवीनोक्तमर्थमनूद्य प-1.

(7.1.2)' इति सूत्रे भाष्ये स्फुटमेतत्॥22॥

ननु देवदत्तश्चिकीर्षतीत्यादौ देवादेः सन्नन्तत्वप्रयुक्त-धातुत्वाद्यापत्तिरत आह-

प्रत्ययग्रहणे यस्मात्स विहितस्तदादेस्तदन्तस्य ग्रहणम्॥23॥

'यस्मात्प्रत्ययविधिः' (1.4.13) इति सूत्रे 'यस्मात्प्रत्ययविधि स्तदादि प्रत्यये' इति योगो विभज्यते। गृह्यमाण उपतिष्ठत इति शेषः। तैन तदाद्यन्तांशः सिद्धः। तदन्तांशस्तु 'येन विधिः' (1.1. 72) इत्यनेन सिद्धः। स च शब्दरूपं विशेष्यमादाय विशेष्यान्तरासत्त्वे।

यत्तु प्रत्ययेन स्वप्रकृत्यवयवकसमुदायाक्षेपात्तद्विशेषणत्वेन तदन्त विधिरिति तन्न। इयानित्यादौ तस्य तादृशसमुदायेन व्यभिचारेणाक्षेपा सम्भवात्। यत्र प्रत्ययो निमित्तत्वेनाश्रीयते तत्र तदादेरित्यन्तांश-

---

वृक्ष[1]स्तत्र इत्यादौ सोरुत्वे रेफस्य स्थानिवद्भावात्सुप्त्वात्तदन्ते पदत्वात् तन्निबंधनो विसर्गो न स्यात्। साम्नीत्यादौ प्रथमाद्विवचनस्य[2] शी[3] आदेशे कृते तस्य स्थानिवद्भावादौ वृत्तिस्वादिप्रत्ययत्वमाश्रित्य[4] भत्वाज्जायमानो विभाषाङिश्[5]योरित्यल्लोपो न स्यात्। आरतु[6]रित्यादावुरतः स्थानिवद् भावे नाभ्यासत्वादत[7], आदेरिति जायमानोऽभ्यासस्य दीर्घो न स्यादित्याद्यनेक-दूषणमभिदधुरिति। सर्वेसर्वपदादेशा[8] इति न्यायेन आदेशो स्थानिवद्भावेन

---

1. सं. पाठः, वृक्षप्लक्ष इत्यादौ ज-1, ज-2, प-1; वृक्षः इत्यादौ अ-2, अ-4 प्लल इत्यादौ अ-3.
2. प्रथमाद्विर्वचनस्य अ-2; प्रथमद्विवचनस्य अ-3.
3. शीआदेशे ज-2.
4. वृत्तिस्वादय प्रत्ययमाश्रित्य अ-2, अ-4.
5. 6/4/136 अष्टा.
6. आरलुः प-1; अरतुरित्यादावुरतः अ-3, अरितुरित्यादौ वुरतः अ-4.
7. भावेनाताभ्या ज-2.
8. यदादेशा अ-4.

मात्रापस्थितिरिति 'अङ्गस्य' (6.4.1) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः। एवं यत्रापि पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्यय आश्रीयते तत्रापि तदादीत्यन्तांशोपस्थितिः, परन्तु तत्र पञ्चम्यन्तताः। अतएव 'एङ्ह्रस्वात्' (6.1.69)

इति सूत्रे एङन्तादित्यर्थलाभः। अस्याः परिभाषायाः प्रयोजनान्तरं 'येन विधिः' (1.1.12) इत्यत्र भाष्य उक्तम्। परमगार्ग्यायण इति

यथो[1]द्देशे भ सञ्ज्ञया पुनरभ्यास सञ्ज्ञया च तदुक्तदोषदुर्भिक्षेतन्मत[2]मनालोच्य वृथैव दूषयन्तः[3] कथं महत्पदवीं[4] प्रापिताः पंडितैरिति महदाश्च[5]र्य्यम्। स्पष्टश्चायमर्थः[6] स्थानिवत्सूत्र भो भगो[7] इत्यादि सूत्रेषु विवरण[8] शेषरादाविति[9] स्थाप्य[10]तामयमति प्रसङ्ग इतिदिक्॥21॥

आक्षेपा[11] संभवादिति। यत्त्वत्र कैय्यटानु[12]यायिनः प्रक्रियाज्ञानवता[13] व्यभिचाराभावादिति कैय्यटाशय[14]वर्णनमूचु[15]स्तच्चिन्त्यम्।

---

1. पाठोऽयं ज-2; यथोदेशे ज-1, प-1, अ-1.
2. मनमनालोच्य ज-2; मतन्मनोलोच्य अ-4.
3. दूषयेत् अ-1., अ-3.
4. पदवी प-1, पदवी अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; महाश्चर्यम् ज-1, प-1.
6. स्पष्टः चायामर्थ ज-2.
7. भभगो अद्यो अपूर्वस्य योऽशि- 8/3/17.
8. विवरण अ-1, अ-3.
9. शेखराविति प-; शेखरादिविति अ-4.
10. स्थाप्यनामयमिति ज-2; स्थापितामयमति अ-2.
11. आक्षपासंभवादिति अ-4.
12. कैयटा ज-2, अ-4.
13. ज्ञानवता ज-2, आ-4.
14. वर्णानमृचुः अ-4.
15. स्वचिन्त्यम् ज-2.

परमगार्ग्ययापत्यमिति विग्रहेऽपि गार्ग्यशब्दादेव प्रत्ययो न विशिष्टात्। निष्कृध्य तावन्मात्रेण एकार्थीभावाभावेऽपि वृत्तिर्भवत्येव। अत्र चेदं भाष्यमेव मानमित्यन्यत्र विस्तरः। प्रत्ययमात्रग्रहणे एषा न तु प्रत्यया-प्रत्ययग्रहण इति 'उगितश्च' (4.1.6) इति सूत्रे भाष्ये। इयमङ्गसंज्ञासूत्रे (1.4.13) भाष्ये स्पष्टा॥23॥

'येन विधिः' (1.1.72) इति सूत्रे भाष्य एतद्धटक-तदन्तविध्यपवादः पठ्यते-

प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्याः॥24॥

अत्र पञ्चम्यन्तात्परः प्रत्ययः कार्यान्तरविधानाय परिगृह्यते,

प्रक्रिया[1] ज्ञानवतां तादृशसमुदाये संज्ञाप्रवृत्ति ज्ञानस्यापि[2] संभवेनात्र[3] तत् वुद्धौ संज्ञाप्रवृत्तैः पुनर्यर्थतैव[4] स्यात्। न च कार्य्यकाल[5] पक्षे इदमिति वाच्यम्। तावत्तापि शब्दानुशासन प्रस्तावादन्तर[6] गोपस्थितशब्दरूपं विशेष्य[7]-मादाय तदन्त[8]विधेरुचितत्वात्। अत एव **येनविधिरिति** सूत्रे इह कस्मान्न भवति इको यण चीति[9] भाष्यमादाय शब्दानुशासनप्रास्तावाच्छब्दरुपमिका[10] विशेष्यते[11] इति त्वदीयकैय्यट-

---

1. प्रक्रित्य अ-1.
2. संज्ञानस्यापि अ-2, अ-4.
3. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3 संभवेननात्र ज-1, प-1, अ-4.
4. पुनर्व्यतैव प-1; पुनर्वैयश्यमेव स्यात् अ-2, अ-4.
5. 'प' नोपलभ्यते अ-1, अ-3, अ-4.
6. प्रस्तावादेतरंगोपस्थित प-1, अ-3.
7. विशेषमादाय अ-2.
8. तदन्त विधेयत्वात् अत एव येन इति पाठः अ-2, अ-4.
9. इति नोपलभ्यते प-1.
10. प्रस्तावाच्छाब्द अ-2; प्रस्तावाशब्द प-1; प्रास्तावाछब्द ज-2; प्रास्तावावाच्छशब्द अ-3.
11. पाठोऽयं अ-4; विशेष्यत ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3.

तत्र तदन्तविधिर्नेत्यर्थः। यथा 'रदाभ्यां निष्ठातो नः' (8.2.42)

ग्रन्थश्च संगच्छते[1]। ननु सुपि[2]चेत्यादौ सुपीति प्रत्ययसत्वेन तदन्त विधौ[3] तदन्ते कार्य्यं[4] सूयादत आह। यत्रेति। सुबन्ते परतोङ्गसंज्ञाया[5] वाधा[6]त्तत्र तदन्तग्रहणं नेति भावः। **एङन्तादित्यर्थ इतीति।** एङन्तं[7] ह्रस्वान्तं यत्तदादि[8] ततः परस्यलोप इत्यर्थेनाति[10] कतरदित्यत्र[11] न[12] लोप इति भावः[13]। अनुपपत्यभावेनांगाक्षेपस्तुनेत्यन्यत्र विस्तरः। इत्यन्यत्रविस्तर इति। उद्योते[14] शेखरादौ चेत्यर्थः। कैय्यटानु[15]यायिनस्तु कैय्यटोक्तं प्रकारं स्थापयन्तः[16] प्रकृत[17] परिभाषा प्रयोजनन्तु यदीयं न स्यात्तदा परमगार्ग्य शब्दादपि फक्[18] स्यादित्येतावतान्यायव्युत्पाद[19]नार्थन्तु परमगार्ग्यायण-

1. पाठोऽयं ज-3; संगछते ज-1, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
2. सुपि च 7/3/102.
3. तदन्त विधौ नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
4. कार्यम् ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
5. परतोंसंज्ञाया अ-1.
6. वाधा तत्र अ-1, अ-3.
7. एङन्त ज-2, अ-1, अ-3.
8. य तदादि ज-2, अ-1.
9. लोपो प-1.
10. इत्यर्थेनेति प-1.
11. पाठोऽयं ज-2, अ-2, अ-3, अ-4; अ-2, अ-3, अ-4, कतरदित्यादित्र ज-1; कतरदिति प-1.
12. 'न' नोपलभ्यते ज-2.
13. भाः अ-1, अ-3
15. कैयटानुयायिस्तु अ-1, अ-4.
16. कैयटोक्तप्रकारस्थापयितः अ-2, अ-4.
17. प्रकृति अ-2, अ-4.
18. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-4; शब्दषि फ् फ् ज-1 शब्दादयकक ज-2, अ-1; परमणार्ग्यहस्ततुच्छ गिरि कुवेरस्य इति पाठोपलभ्यते अ-3.
19. न्यायमुत्पादनार्थं तु प-1; व्युत्पादेनार्थेन अ-4.

इत्यत्र। तेन दृषत्तीर्णेत्यादौ धातुतकारस्य न नत्वम्। तदन्तेत्यंशानुपस्थितावपि तदादीत्यंशस्योपस्थितौ रेफदान्तात्परस्य निष्ठातस्येत्यर्थ इति न दोषस्तदं शानुपस्थितौ मानाभावात्। तदन्तांशोपस्थितौ तूभयोरेकविषयत्वमेव स्यादिति दृषत्तीर्णेत्यादौ दोषः स्यादेव। 'स्यतासी लृलुटोः' (3.1.33) इत्यादौ लृलुटोः परयोरित्यर्थे नियमेनावधि साकाङ्क्षत्वेनोपस्थितधातोरित्यस्यावधित्वे नान्वयान्न तदन्त विधिः। 'हल्ङ्याब्भ्यः' (6.1.68) इत्यादौ तु न दोषस्तत्र कस्मादिति नियतावध्याकाङ्क्षाया अभावेन पञ्चम्यन्तस्य प्रत्यय विशेषणत्वा भावात्। अङ्गसंज्ञासूत्रे (1.4.13) तु तदादेः प्रत्यये पर इत्यर्थे पञ्चम्यन्तस्य विशेषणत्वं स्पष्टमेव। अत एव 'उत्तमैकाभ्याम्' (5.4. 90) इत्यादि निर्देशाः सङ्गच्छन्ते॥24॥

इत्येत[1]दुपात्तमित्याहुस्तत्तुच्छम्। गिरिं[2] कुवेरस्य गतोथबालयं [3] सभांगतो वा[4] वरुणस्य राज्ञः[5]। असंशयं[6] दाशरथेर्न मोक्ष्यसे इति[7] न्यायेन युक्ति[8]शतैरपि परिभाषा[9] प्रयोजन प्रतिपादक भाष्यविरोध[10]स्त्वया परिहर्त्तुमशक्य[11]त्वेन लघु[12] भांडस्थचणकवद्ध[13]मर्कटमुष्टितुल्यत्व[14]पातात्॥23॥

---

1. इत्येतु तदुपात्तम् ज-2.
2. गिरि प-1, अ-1, अ-4.
3. गतोप्यवालं अ-3.
4. 'वा' नोपलभ्यते ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
5. राज्ञा प-1.
6. आसंशयम् प-1.
7. र्नमोक्ष्यस इति ज-2; दाशरथेर्नमाक्ष्येत इति प-1.
8. मुक्तिशतैरपि अ-2, अ-4; युक्तिशनेरपि अ-3.
9. 'परि' नोपलभ्यते अ-2, अ-4.
10. विरोधस्य त्वया ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
11. परिहर्तुमश्यकतवेन ज-2, अ-3.
12. लघुभाडस्य प-1.
13. चणकवत् ज-2.
14. तुल्यत्वापातात् अ-2, अ-4.

नन्वेवं कुमारीब्राह्मणिरूपेत्यादौ 'धरूप' (6.3.46) इति ह्रस्वापत्तिरत आह-

उत्तरपदाधिकारे प्रत्ययग्रहणे न तदन्तग्रहणम्॥25॥

'हृदयस्य हृल्लेखयदण् लासेषु' (6.3.50) इत्यत्र लेखग्रहणात्। तत्र लेखेति न यं धनन्तमनभिधानात्। इयं च 'हृदयस्य' इति सूत्रे एव भाष्ये स्पष्टा॥25॥

ननु सूत्रे पंचम्यन्ताभावेन तदन्त विद्या[1]वनिष्टं स्यादत आह। **नियमेनैति।**

ननु ङ्याप्ष्य[2] इत्यनेन प्रातिपदिकादित्या[3]क्षेपे ङ्या[4]बन्तादित्यर्थो न स्यादत[5] आह। ङ्याप्ष्य[6] इत्यादाविति। तत्रेति आदेशे[7] इत्यर्थः। पंचम्यन्तस्येति[8]। आक्षिप्त प्रातिपदिकादित्यस्य[9] प्रत्ययविशेषणाभावादिति। नियमेन[10] ङ्याविति प्रत्यय विशेषणाभावादित्यर्थः। एवं च यत्र[11] नियमेन -

---

1. विद्या च निष्टम् अ-2, अ-4; विधावनिष्ट प-1.
2. आव्म्य ज-2; ङ्याशय अ-2, अ-4; आभ्यः अ-3.
3. प्रतिपदिकादित्यस्याक्षेपे ज-2, अ-1; प्रातिपदि कादित्यस्याक्षेपे अ-2, अ-4; प्रीतिपदिकादित्यास्याक्षेपे अ-3.
4. ङ्यावला दित्यर्थो प-1; ङ्यावेषणमातादिसार्थो न अ-1; ङग्रबदितादित्यर्थो अ-2; आवेशणामातादिरर्थो न ज-2; आदेशस्याभावात् अ-3.
5. नस्यादतज्जाह अ-3.
6. पाठोऽयं अ-1, अ-3; डयास्य ज-1; आभ्यः ज-2, प-1; ङ्याविति अ-2, अ-4.
7. पाठोऽयं सं.; प्रावेंशे ज-1; ङ्यावंशे ज-2; आवंशे प-1; ङ्यावंश अ-1, अ-3 डग्रवंर्शे अ-2, अ-4.
8. पंचम्यंतस्ये ज-1, पव-1.
9. प्राप्नादिकादित्यस्य ज-2; प्रातिपदिकादित्य आह प-1.
10. नियमन अ-2, अ-4.
11. यत्तु अ-1, अ-3.

नन्वेवं परमकारीषगन्धीपुत्र इत्यत्रेवातिकारीषगन्ध्यापुत्र इत्यत्र ष्यङः सम्प्रसारणं पुत्रपत्योः (6.1.13) इति स्यादत आह-

---

पंचम्यन्त[1]स्तत्रैव निषेध इति भावः। सुतीसीत्यंशे[2] तु निषेधः प्रवर्तत[3] एव।

वस्तु[4]तस्तु ङ्याभ्यः[5] परस्य सोर्लोप इत्यर्थेपि न दोषो मास्तु तदन्तता। तथापि[6] पूर्वापेक्षया[7] विशेषप्रतिपादना[8]येदमुपात्तमिति बोध्यम्[9]। ननु पंचम्यन्तस्य[10] प्रत्यय विशेषणत्वाभावात्य[11]स्मात्प्रत्यय[12] इत्यंग संज्ञासूत्रेपि तथैव स्यादित्यत आह। अंगेति। तत्रस्थिततदी[13]त्यस्यान्वय इति भावः। अत्र तु न तथेति[14] वैषम्यं निर्द्देशाः[15] संगच्छन्ते[16] इति। अन्यथाङ्ग[17] संज्ञायाऽभावेन सुपीति दीर्घो न स्यादिति भावः॥24॥

---

1. पंचम्यंत तातत्रैव अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. सूतीसीत्यंशे प-1, अ-1, अ-3.
3. प्रवर्तते प-1.
4. वस्तुनस्तु अ-3; वस्तुतङ्यापरस्य सोर्लोप इति पाठोपलभ्यते अ-4.
5. ङ्याप्भ्यः प-1, अ-1, अ-3; ङ्यापरस्य इति पाठः अ-2, अ-4.
6. तथोपि अ-4.
7. पूर्वोपेक्षया ज-2, अ-1, अ-3.
8. प्रतिपादनां यदमुपात्तम् अ-4.
9. वोऽध्यम् अ-1, अ-3.
10. पंचंतस्य अ-4.
11. विशेषणत्वाभायस्मात् इति पाठोपलभ्यते ज-1, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
12. परा ज-2, अ-1, अ-3.
13. तदादीत्यस्यान्वयः ज-2, प-1, अ-1 त्यदादोत्यस्यान्वयः अ-2; दादोत्यस्यान्वय अ-4.
14. तथैति अ-3.
15. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-4; निर्देशः ज-1, अ-3; निर्द्देशः ज-2, अ-1.
16. संगच्छते ज-2; संगछेते अ-1, अ-3; संगछेत अ-2, अ-4.
17. अन्यथागसंज्ञाया अ-1, अ-3.

स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न ॥26॥

विषयसप्तमो। यः स्त्रीप्रत्ययः स्त्रियं प्राधान्येनाह तत्र तदादिनियमो न। यस्त्वप्राधान्येनाह तत्र तदादिनियमोऽस्त्येवेत्यर्थः। प्रत्यासत्त्या यस्य समुदायस्य स्त्रीप्रत्ययान्तत्वमानेयं तदर्थं प्रत्युनुपसर्जनत्वमेवैतत्परिभाषा-प्रवृत्तौ निमित्तम्।

तेनातिराजकुमारिरिप्यादौ राजकुमारीशब्दार्थस्यातिशब्दार्थं

पुत्र इत्यत्रेवेति। ननु प्रत्यय[1]ग्रहणपरिभाषासत्वेपरमकारीष[2] **गन्धीपुत्र** इत्यत्र सम्प्रसारणस्यैव[3] वक्तुमशक्यत्वेन तस्य दृष्टान्तत्वेनोल्लेखो[4]ऽनुचित इति चेन्न दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैपरीत्येनादोषात्[5]। तथा हि इव[6] शब्दो भिन्नक्रमः पत्योरितीत्यस्यानंतरं[7] बोध्यः। एवञ्चातिकारीष[8]गंध्या पुत्र इत्यत्र[9] ष्यङ् सम्प्रसारणं[10] पुत्र[11]पत्योरितीव परमकारीषगन् धीपुत्र इत्यत्र स्यादिति[12] योजना तथा च यथा[13] तत्र प्रत्ययग्रहणनियमेन सम्प्रसारणं तथात्रापि[14]

---

1. प्रत्ययलाक्षण प–1.
2. परमारिष ज–2, अ–1, अ–3; परमकारोष अ–2, अ–4.
3. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; सम्प्रसारणस्येव ज–1.
4. दृष्टान्तत्वेनोल्लेखो इत्यारभ्य शेषः तदेवोपपादयति। तेनेत्यादिना इत्यन्तं अ–4 नोपलभ्यते.
5. दृष्टांतदादांर्ष्टातिकयोः ज–2.
6. द्रव अ–1, अ–3.
7. पाठोऽयं प–1, अ–2, अ–3; पसोरित्तोयस्यानन्तरं ज–1, ज–2, अ–1.
8. कारिष ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3.
9. इत्यत्रस्यादिति प्रयोजन तथा च ग्रथा तत्र प्रत्यय ग्रहण नियमेन संप्रसारणं तथात्रापि स्यादिति- भावः इति पाठोपलभ्यते प–1.
10. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
11. पुत्रपत्योरिति च ज–2.
12. नस्यादिति अ–2; स्यादिति अ–3.
13. यथा तत्र तथात्रापि नैति फलितम् इति पाठोपलभ्यते अ–2.
14. तथापि अ–1, अ–3.

प्रत्युपसर्जनत्वेऽपि तदर्थं प्रत्यनुपसर्जनत्वात्तदादिनियमाभावेन ह्रस्वसिद्धिः। अत एवात्र परिभाषायां न शास्त्रीयमुपसर्जनत्वम् असम्भवात्। अस्याः प्रत्ययग्रहणे (प.-23) इत्यस्यापवादत्वात्तदेक-वाक्यतापन्नत्त्वाच्चात्रापि ग्रहणपदसम्बन्धेन-स्त्रीप्रत्ययासामान्यग्रहणे तद्विशेषग्रहणे च प्रवृत्तिर्नतु स्त्री प्रत्यया स्त्रीप्रत्ययग्रहणे। ध्वनितञ्चेदम् ' अर्थवत्' (1.2.45) सूत्रे भाष्ये। इयञ्च वाचनिकक्येव 'व्यङः' (6.1.13) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा॥26॥

नन्वेवं 'तरप्तमपौ धः' (1.1.22) इत्यादिना तरबन्तादेः संज्ञा स्यादत आह-

संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे तदन्तग्रहणं नास्ति॥27॥

स्यादिति भावः। यथा तत्र न तथात्रापि नेति फलितम्। ननु अतिराज कुमारी[1]त्यादावत्यर्थं प्रतिराजकुमारीति[2] स्त्री-

प्रत्ययस्यो[3]पसर्जनत्त्वेनानुपसर्जन इति निषेधादस्या अप्रवृत्ता[4] वुत्सर्ग-प्रवृत्याराजकुमारीत्यस्यस्त्रोप्रत्ययान्तत्वाभावेऽति[5] राजकुमारीरित्यस्य[6] स्त्री प्रत्ययान्ता[7] तत्त्वाभाावेनोपसर्जन स्त्री प्रत्ययान्ते[8] विधीयमानो[9] ह्रस्वो न

---

1. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, प-1; राजकुमारित्यादावत्यर्थं ज-1.
2. कुमारीत्यस्य स्त्री अ-2.
3. उपसर्जनत्वेनत्येनानुपसतो न ज-2; उपसजनष्वेपि नानुपसर्जन प-1; उपसर्जनत्वेनत्येनानुपरतिन इति अ-1, अ-3; प्रत्ययांतत्वाभावेनोपसर्जन स्त्रीप्रत्ययांतांते विधीयमानो इति पाठोपलभ्यते अ-2.
4. अप्रवृत्तावत्सर्ग अ-1.
5. भावेपि प-1; प्रत्ययांतां चोभावेति अ-3.
6. राजकुमारीत्यस्य प-1, अ-3.
7. प्रत्यया तत्वाभावेन ज-2; स्त्रीप्रत्ययांतीतत्त्वा अ-1, अ-3.
8 प्रत्ययांतांते ज-2, प-1, अ-2, अ-3; पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
9. विधीयमानो ज-1.

'सुप्तिङन्तम्' (1.4.14) इत्यन्तग्रहणमस्या ज्ञापकम्। न च प्रत्यययोः पदसंज्ञायामपि प्रत्ययग्रहणपरिभाषया तदन्त ग्रहण-सम्भवाज् ज्ञापितेऽपि फलाभाव इति वाच्यम्, पदसंज्ञायाः 'स्वादिषु' (1.4.17) इति विषये प्रकृति निष्ठतया पदग्रहणस्य प्रत्ययमात्र-

---

स्यादत आह। **प्रत्यासत्वेति।** साचेत्थं[1] राजकुमारी[2]त्यस्य स्त्री प्रत्ययान्तत्वमानेयं तत्रानुपसर्जन[3] इति निषेधो वक्तव्यः। स चान्यनिरुपितमुपसर्जनत्वं[4] विहाय स्त्रीप्रत्ययांतोपसर्जनत्वे[5] एव प्रवर्तते इति। **यस्य समुदायस्येति।** राजकुमारिरित्यादौ[6]। तदर्थं[7] प्रतीति[8]राजकुमारीत्यादि[9]। शब्दार्थं प्रतीत्यर्थः अनुप सर्जनत्वमिति। स्त्री[10]प्रत्ययस्येति शेषः।

तदेवोपपाद[11]यति। तेनेत्यादिना। अतिकारीष[12] गन्ध्यापुत्र[13] इत्यत्र तु विशिष्टस्यैव तदन्त[14]त्वमानेयं तत्र तदर्थं प्रतिकारीष गन्ध्य इति स्त्रीप्रत्ययस्योप-

---

1. स चेत्यस्य अ-2; साचेत्यम् अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3; कुमारीरित्यस्य ज-1.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1; तत्रोनुपसर्जन ज-1.
4. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-3.
5. प्रत्ययंतनिरूपितोपसर्जनत्वे ज-2, प-1, अ-2.
6. पाठोऽयं अ-2, अ-3 कुमारिरित्यादैः ज-2; कुमारीत्यादैः प-1, अ-2 कुमारिरित्यादे ज-1.
7. तदर्थ ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.
8. पदार्थं अ-2.
9. प्रत्यर्थः अ-2.
10. त्वतिस्त्री अ-2.
11. तदेवोपपादयसि अ-2.
12. कारिष अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
13. यत्र अ-1, अ-2, अ-3.
14. विशिष्टस्यैवदंतत्वमानेर्यं अ-1, अ-3.

ग्रहणात्वाभावात्। 'सुप्तिङन्तम्' (1.4.14) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा॥27॥

नन्ववतप्तेन कुलस्थितमित्यादौ नकुलस्थितशब्दस्य क्तान्तत्वाभावात्समासो न स्यादत आह-

कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्॥28॥

अस्याश्च कर्मणि क्तान्त उत्तरपदेऽनन्तरो गतिः प्रकृति स्वर इत्यर्थके गतिरनन्तरः (6.2.49) इति सूत्रेऽनन्तरग्रहणं ज्ञापकम्। तद्भि अभ्युद्धतमित्यादावतिव्याप्तिवारणार्थम्। प्रत्ययग्रहणपरिभाषयोद्धृतस्य क्तान्तत्वाभावादेवाप्राप्तौ तद्व्यर्थं सदस्या ज्ञापकम्।

न चाभ्युद्धमित्यादौ परत्वाद् 'गतिर्गतौ' (8.1.70) इत्यनेनाभेर्निधात एवेति वाच्यम्, पादादिस्थत्वेन पदात्परत्वाभावेन च तदप्राप्तेः। अनन्तर ग्रहणे कृते तु नत्सामर्थ्याद्गत्याक्षिप्तधातुनिरूपितमेवान्तर्यं गृह्यत इति न दोषः।

सर्जनत्वेन[1] निषेधः। प्रवर्तित[2] एवति हृदयम्[3]। नन्वेवमपि[4] राजकुमारीत्यस्यैक विभक्तीत्युपसर्जनत्वस्य[5] सत्वेन न दोषस्तदवस्थ एवेति अत आह। अतएवेति। प्रत्यासत्तेराश्रयणा[6]देवेत्यर्थः। असंभवादिति। एक विभक्तीत्यनेनोपसर्जनत्व[7] विशिष्टस्य परिभाषायान्तु[8] स्त्रीप्रत्ययनिष्टं तदित्येकत्रद्वयोरभावादिति भावः[9]॥26॥

---

1. उपसर्जनत्वं न निषेधः ज-2, अ-1.
2. न प्रवर्तित अ-2; न प्रवर्ति एवेति अ-4.
3. हृद्यम् प-1.
4. नन्वेमपि प-1.
5. उपसर्जनस्यतवस्य अ-4.
6. प्रत्यासक्षेराश्रयणदेवेत्यर्थः अ-1, अ-3; आश्रयणाद वेत्यर्थः प-1.
7. उपसर्जनत्व अ-2, अ-4.
8. परिभाषा भावेद्य संज्ञायां तर वाद्यत ग्रहणे इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
9. श्रीप्रत्यय इत्यारभ्य इति भावः इत्यन्तं नाऽस्ति अ-2, अ-4.

न चाभ्युद्धृतमित्यादावभिना समासेऽनन्तरस्योदः पूर्वपदत्वा-भावेऽपि स्वरार्थं तदिति वाच्यम्, 'कारकाद्दत्त' (6.2.148) इति सूत्रे कारकादिति योगं विभज्य गतिग्रहणमनुवर्त्य कारकादेव पर गतिपूर्वपदं क्तान्तमन्तोदात्तमिति नियमेन थाथादिस्वराप्राप्त्या कृत्स्वरेणोद उदात्तत्वसिद्धेः। तस्मादनन्तरग्रहणं व्यवहितनिवर्त्यर्थमेवेति ज्ञापकमेव।

नन्वेवं तरप्तमेति[1]। नन्वेतत्परिभाषा[2] भावेघ संज्ञायांतर[3]वाद्यन्त ग्रहणे विधौ तस्यैवोपस्थित्या तरवाद्यन्ते[4] परतः[5] कुमारी ब्राह्मणीतरेत्यादौ[6] ह्रस्वे उत्तरपदाधिकारे[7] च प्रत्ययग्रहणे[8] तदन्तग्रहणंनेति परिभाषाव्यर्था स्यादिति[9] चैन्न। रुप[10]वादौतस्याश्चारितार्थ्यात्। अत्र संज्ञाविधा[11]वित्यस्य सम्बन्ध सामान्यषष्टया संज्ञा सम्बन्धि[12] विधावितिनार्थस्तथासतिनिष्ठेति विधीयमानो निष्ठान्तस्य[13] पूर्व निपातो न[14] स्यात् तदन्तनिषेधादपितुभाव[15] क्वि[16]

1. सं. पाठः.
2. परिभावेद्य ज-2, अ-1, अ-3.
3. संयांतरं वाघत प-1, संज्ञायांतरबदंत ज-2; संज यांतरवदंत ज-1, अ-2, अ-3, अ-4.
4. वाद्यन्त प-1.
5. परजः अ-1, अ-2, अ-3.
6. व्राह्वीप्तरेत्यादौ प-1.
7. पदादिकारे अ-1, अ-3.
8. प्रत्ययग्रहणेनेति परिभाषाव्यर्थस्यादिति चेन्न इति पाठोपलभ्यते अ-4.
9. व्यर्थस्यादिति प-1; व्यर्थादिति ज-2.
10. रूपवादै अ-4.
11. संज्ञाविधं प-1; विधत्यस्य अ-4.
12. संज्ञा शब्दो नोपलभ्यते प-1.
13. अनिष्ठांतस्य ज-2, अ-1, अ-3.
14. न स्यत्तदेत अ-1; नस्यतदत अ-3.
15. निषेधादपितुभाभावाः अ-1, अ-3; भावि अ-4.
16. किम् ज-2; कि अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.

यत्र गतिकारकसमभिव्याहृतं कृदन्तं तत्र कृदग्रहणे तद्विशिष्टस्यैव

प्रत्ययान्त विधिशब्दयोग[1] कर्मषष्ट्यां संज्ञाकर्मके विधावित्यर्थः। न च द्य रुपादौ[2] सप्तमीनिर्देशेन[3] पंचम्यंताक्षेपे[4] **प्रत्ययग्रहणे चापञ्चम्या**[5] इत्यनयैव गतार्थ[6]त्वादुत्तरपदेति परिभाषा व्यर्थेति[7] वाच्यम्।

आक्षेपे आक्षिप्तस्य शाब्दान्वये[8] वा[9] मानाभावात्[10]। पूर्वोक्तस्य तासीत्यादौ[11] तु धातोरित्यधिकारादेव[12] न[13] दोषः। न च भवन्मते आक्षेपाभावेनापंचम्या[14] इति निषेधाप्रवृत्तेः संज्ञाविधौ[15] तदन्ता ग्रहणेपि विधिप्रदेशे ह्यादौ[16] तदन्तग्रहणं दुर्वारम्। न चोत्तरपदेति[17] निषेधान्नेति वाच्यम्।

---

1. योगे कर्मषष्टया अ–2, अ–3, अ–4.
2. मधरूपादौ अ–4.
3. सप्तमी निर्देशन प–1; सप्तमी नोर्देशेन अ–1; अ–3.
4. पंचम्यंतां क्षेपे प–1; पंचम्यंतक्षेपे अ–4.
5. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–4.
6. गतार्थत्वातरपदेति, अ–2, अ–3, अ–4.
7. व्यर्थमेवेति वाच्यम् प–1.
8. शब्दान्वये प–1.
9. 'वा' नोपलभ्यते अ–2द्व अ–4.
10. पाठोऽयं अ–2, अ–4; मानाभावा तु ज–1; मानावात् ज–2, प–1, अ–1, अ–4, अ–3.
11. 'स्यतासोलृलुटोः' 3/1/33, स्यलासीत्यादौ ज–2, प–1, अ–2, अ–4.
12. अधिकारादे न दोषः प–1.
13. 'न' नाऽस्ति अ–3.
14. आपेक्षा भावेनां पंचाया अ–1, अ–3; आक्षेपाभावेना पंचाया ज–2.
15. संज्ञा विधा ज–2, अ–1, अ–3.
16. पाठोऽयं अ–4; प्रदेशेत्यादौ अ–2; प्रदेशेद्यादौ ज–1; प्रदेशेद्यादौ प–1; प्रदेशेद्यादो अ–1द्व अ–3.
17. वोत्तरपदेति ज–2, अ–1, अ–3.

ग्रहणमपि शब्दात्तदसमभिव्याहृतस्य केवलस्यापीति तदर्थः। अन्यथा

लाघवरुपान्प्रानाद् गत्याक्षिप्त[1]धातुनिरुपित इत्यग्रिमपरिभाषायां त्वयापि तदंगीकारा[2] च्चाक्षेपं स्वीकृत्या पंचम्या। इति निषेधानु[3]वादकत्वस्योत्तरपदे इति निषेधे[4] स्वीकारादिति वाच्यम्। संज्ञाविधावित्यस्यवैय्यर्थ्येन[5] विधौत-दन्ताग्रहणात्[6]। न च निष्ठा[7] संज्ञायां चारितार्थ्यम्। तत्र तदन्त ग्रहणेपि न दोषः। निष्ठेत्यादि पूर्वनिपातादि[8] विधायके तदन्तग्रहणस्येष्टत्वात्। ननु असत्यामेव[9] तस्यां संज्ञासूत्रे तदंतस्य संज्ञाया[10] विधिदेशेतदन्तस्योपस्थितौ तस्योत्तरपद[11] विशेषणे तरवाद्यन्ते[12] गौरी परमब्रह्म[13]णितरेत्यत्र गौरीत्यस्य ह्रस्वः स्यात्। सत्यामेव[14]तस्यान्तु प्रत्ययमात्रस्य संज्ञायां विधिप्रदेशे[15] तस्योपस्थितौ

---

1. लाघवान्मानादत्याक्षिप्तधातु प-1; लाघवरुपान्प्रानारूत्याक्षिप्त धातु ज-2, अ-1, अ-3; लाघवरुपाद् मानाङ्गत्याक्षिप्तै धातु अ-2, अ-4.
2. पाठोऽयं अ-1, अ-2, अ-3, -4; तदन्तांगीकाराच्चक्षेपं ज-1; आक्षेपे ज-2, प-1.
3. निषेधातुादकत्वास्योत्तर ज-2, अ-1, अ-3; निषेधानुवादकत्वेस्योत्तर अ-2, अ-4.
4. निषेध प-1.
5. वैयर्थेन प-1.
6. ग्रहणात् ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
7. निष्टां संज्ञाया अ-1, अ-3.
8. पूर्वपातादि ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
9. असत्यामेतस्यां ज-2, अ-1, अ-3.
10. संज्ञायो अ-1, अ-2, अ-3.
11. तस्योत्तर अ-1.
12. विशेषणेत्तरबंत्तत्तगोरे प-1; पदाविशेषणेतरवतांते गौरी अ-2, अ-4.
13. ब्राह्मणीत्तरेत्यत्र प-1.
14. गसत्यमेतस्यां ज-2, अ-3; सत्यामेतस्यां अ-1, अ-2, अ-4.
15. विप्रदेशे अ-2 अ-4.

तरवाद्यंते इत्यर्थेन पूर्वोक्तोदाहरणे ह्रस्व वारणेनैव चारितार्थ्ये[1] कथं वैय्यर्थ्यमिति चैन्न तदन्तस्य संज्ञायामपि विधिप्रदेशे तदुपस्थितौ विशेषणविशेष्येकाम-चारा[2]दुत्तरपदरुपेतरबन्ते[3] इत्यर्थात्पूर्वोक्तो[4]दाहरणे[5] प्राप्तेरेवा भावेन[6] तद्वैय्यर्थस्य स्पष्टत्वात्। न चैतावतापिरूपवादौ दोष एवेति चैत्तर्हि हृद[7]यस्येति सूत्रस्थ[8] ज्ञापक परभाष्येणानु[9]वादकताया वक्तुमशक्यत्वात्। एतेन संज्ञाविधावित्यत्र कर्म षष्ठयाकरण तृतीयान्तेन सम्बन्ध सामान्यषष्ठ्या वा समासे विधि प्रदेशेत्तर[10] वाद्यंतग्रहणं संज्ञाविधौ निषेधाप्रवृत्ति[11]र्निष्ठेति पूर्वनिपाते च क्रमेण दोषमुद्भाव्यात्र शेखरः संज्ञा[12] कर्मके विधानेन तावदयं निषेधः। संज्ञाया[13]विधौ घ रूपेत्यादौ त्वेतन्निषेध[14] सामर्थ्यात्तदन्त[15] विधिर्न भविष्यतीति शेखरं संज्ञासूत्रे आपाद्य[16] इदन्तु –

---

1. चारित्तार्थे प-1, अ-2, अ-4.
2. कामदुत्तर प-1.
3. रूपेतरबंवे ज-2, अ-1, अ-3.
4. इत्यथी प-1.
5. पूर्वोक्तो अ-1, अ-3.
6. प्राप्तेरेवभावेन ज-2; प्राप्तैरेवाभावो न अ-3.
7. हृदयस्यहृल्लेख यदणलासेषु 6/3/50.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 सूत्रस्था ज-1.
9. भाव्येणावादकताया ज-2, अ-1, अ-3.
10. प्रदेशत्तबोरेद्यंत ग्रहणं प-1.
11. पाठोऽयं प-1; प्रवृत्तिनिष्टेति ज-1. संज्ञाविधौ निषेधौ निषेधा प्रवृतिनिष्टेति इति प-1 पुस्तके पाठः.
12. संज्ञा कर्मविधानेन अ-3.
13. संज्ञया ज-2, प-1, अ-2, अ-4.
14. त्वेन्निषिध अ-1; त्वेन्निषिध अ-3; वतन्निषेधा अ-4.
15. सामर्थ्यातदंत प-1, अ-2, अ-3, अ-4.
16. सं. पाठः, शेखर मुख्ये संज्ञा सूत्रे पपाद्य इति पाठोपलभ्यते ज-2, शेखरमुपपाद्य प-1; शेखरमुसंज्ञासूत्रेपपाद्य अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; शेखरं संज्ञासूत्रेपपाद्य ज-1.

अनया कृद्ग्रहणविषये परत्वात् प्रत्ययग्रहणपरिभाषाया बाध एव स्यादित्यपिग्रहणम्।

अत एव साङ्कूटिनमिति 'गतिकारकोपपदानाम्' (प. 75)

प्रदीप[1] कृदुक्त[2] दूषणविस्मरणमूलकम्। तथाहि। यदि संज्ञाविधिदेशे संज्ञाया-विधौ[3] संज्ञाया[4] विधौ चोभयत्रापितदन्तविधिः स्यात्तर[5]बंतान्ते गौरी परम ब्राह्मणितरेत्यत्र ह्रस्वः[6] प्रसज्येत[7] समाभूत्संज्ञया[8] विधावेव तु तदन्त विधि नातरवन्ते परतो[9] गौरी ब्राह्मणितरेत्यादौ ह्रस्वार्थं निषेध सार्थक्येन[10] सामर्थ्याभावात्। तर्हिते ह्रस्वः कस्मान् न[11] भवति **प्रत्ययग्रहणे[12] चापंचम्या** इति निषेधादिति ब्रूमः। परसप्तमी[13]निर्देशेन हि योग्य पञ्चम्यन्तोवधि[14]-राक्षिप्यते इति उत्तरपदेति निषेधो ना पूर्व इति दूषयन्तः प्रकारान्तरेण

1. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; प्रतीककृदुक्त ज-1.
2. कृदुषण अ-1, अ-3.
3. यदि संविधि देशोज्ञया इति पाठः ज-2, अ-1, अ-3; यदिसंज्ञयाविधौ इति पाठोपलभ्यते प-1; यदि संज्ञा विधिज्ञया अ-2; यदि संज्ञाविधिदेशेज्ञया अ-4.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3; संज्ञाया ज-1; विधौ चोभयत्रापि इति पाठोपलभ्यते अ-4.
5. स्यात्तरवंतंतो गौरी ज-2; स्यात्तरवतां गौरी अ-4.
6. ह्रस्वं ज-2:, ह्रस्व अ-3; ब्राह्मणितरेत्यादौ ह्रस्वार्थ निषेधं सार्थक्येन इति पाठोपलभ्यते अ-4.
7. प्रलज्येत अ-1.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; समाभूतत्संज्ञा ज-1.
9. परतो अ-1, अ-4.
10. निषेधस्यासार्थक्येन प-1; निषेधसास्येन अ-3.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3; त्तर्हि द्यान्ते ह्रस्वः कस्मान्नव भवति ज-1; तर्हि यांते ह्रस्वः अ-2, अ-4.
12. प्रत्ययलक्षणे प-1.
13. परसप्तमीति ज-2.
14. विधिराक्षिप्यते प-1.

इति 'कृदग्रहण' इति च परिभाषाभ्यां कृदन्तेन समासे कृते विशिष्टादेवाणि सिध्यति, न तु सङ्कौटिनमितीति 'पुयोगात' (4.1.48) इति सूत्रे भाष्योक्तं सङ्गच्छते। अन्यथा तत्र केवलं कूटिन्नित्येतस्यापीनुणन्तत्वात्ततोऽणि पाक्षिकदोषो दुर्वार एव स्यात्। स्पष्टं चेदं सर्वं 'समासेऽनञ् पूर्वे' (7.1.37) इति सूत्रे भाष्य कैयटयोः। 'गतिरनन्तरः' (6.2.49) इत्यत्र तु गतेः पूर्वपदस्य क्तान्त उत्तरपदे परे कार्यविधानात्तत्समवधानेऽपि केवलस्य क्तान्तत्वेन ग्रहणं

समाधानं कुर्वन्तः[1] कल्पना[2] दुर्भिक्षाः कैय्यटपृष्ठ[3] चरा अज्ञानांधपदवीं[4] प्रापिता[5] इति दिक्।

वस्तुतस्तु संज्ञाविधाविति निषेध[6] वैय्यर्थ्येन न समाधानम्। **संज्ञाविधा[7]विति।** निषेध सामर्थ्या[8]न्नतदन्त विधिरिति शेखरस्तु[9] पूर्वोक्तरीत्या अत्र विषये यो विप्रतिपद्येत तं प्रति समाधानप्रदर्शकः[10]। वस्तुतस्तदपि रूपवादौ[11] दोषग्रस्तत्वात् न युक्तम्। अत एवात्र सामर्थ्यग्रन्थस्यानुल्लेख[12] इति दिक्॥27॥

---

1. कुर्वत अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2. कुकल्पन्नादुर्भिक्षाः अ-2, अ-4 कल्पनादुर्भिक्षा अ-1, अ-2.
3. कैयटपृष्ठ न चराः प-1; कैयटापृष्टचरा अ-1, अ-3.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; पदावों ज-2.
5. प्रापितां इति अ-4.
6. निषध वैयर्थ्येन ज-2, अ-1, अ-3.
7. संज्ञा विधाविनिषेध प-1, सशविधाविति अ-1, अ-3.
8. सामर्थ्यात्तदंत अ-2, अ-4.
9. शखरस्तु अ-1, अ-3.
10. समाधान वैदर्शकः अ-4.
11. रूपवावादौ अ-3, वस्तुतस्तुदपि अ-3.
12. अनुल्लेख अन्यत्र सामर्थ्यादेव न त विधिः, निष्ठेत्यादौ तदंत विधिस्तु चाहित्ताग्न्यादितिषि सूत्रकार निर्देशादेवत्तिदिक् समासो न स्यादिति इति पाठान्तरं प-1 मातृकायामुपलभ्यते।

बोध्यम्।

इयं च कृत्सामान्यग्रहणे कृद्विशेषग्रहणे च, न तु कृद्कृद्ग्रहण इति 'अनुपसर्जनात्' (4.1.14) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्॥28॥

पदाङ्गाधिकारे तस्य च तदन्तस्य च॥29॥

समासो न स्यादिति। क्ते[1]नाहोरात्रावयवा इत्यतः क्तेने[2]त्यनुवर्त्य **क्षेपेति सूत्रेण** विधीयमानो न स्यादित्यर्थः[3]। कर्मणि क्तान्त इति।

क्ते चेति[4] सूत्रात् क्त ग्रहणं तृतीया। कर्मणीति[5]सूत्रात् कर्मग्रहणं चानु[6]वर्तत इति भावः। **प्रकृति स्वर** इति। इत्थं[7] हि स्वरक्रमः। उच्छब्दस्य हृत[8] शब्देन कुगतीति[9] समासे समासस्येत्यन्तोदात्तः प्राप्तः तं बाधित्वा[10] तत्पुरुषे तुल्यार्थ तृतीयासप्तम्युपमानाव्यय द्वितीया[11] कृत्या इत्यव्ययपूर्वपद[12] प्रकृतिस्वरः ततः कृत्स्वरोगति कारकोपपदात् कृदित्यनेन[13] प्राप्तस्ततोथाऽथ[14]

---

1. क्तेना ज-2; क्तेनाहोरात्रावयवाः 2/1/45 अष्टा.
2. क्तै नित्यार्थे 6/2/61.
3. विधिमाना स्यादित्यर्थः प-1.
4. क्ते च 6/2/42 अष्टा. क्तेवेति ज-2, अ-1; क्तेति अ-2; क्तेनेति अ-4.
5. तृतीया कर्मणि 6/2/48.
6. वानुवर्तत ज-2, अ-3.
7. पाठोऽयं प-1, ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; इतित्थं हि ज-1.
8. हृस्त प-1.
9. कुगतिप्रादयः 2/2/18.
10. वधित्वा अ-3.
11. 'तो' नाऽस्ति प-1.
12. पाठोऽयं प-1, अ-2, अ-4, इत्यच्युयपूर्वपद अ-1; इत्यव्ययपूर्वपद्ध ज-2; कृत्यच्ययपूर्वयह अ-3.
13. गतिकारकोपपदात्कृत् 6/2/139, कृसिनेन ज-2; कृत्यिनेन अ-1, अ-3; कदित्यनेन अ-2, अ-4.
14. सं. पा. थाऽथथनकत्वाऽज बित्रकाणाम् 6/2/144 अष्टा.

पदमङ्गं विशेष्यम् विशेषणेन च तदन्तविधिः। 'येन विधिः' (1.1.72) इत्यस्यायं प्रपञ्चः। तेनेष्टकचितम्, पक्वेष्टकचितमित्यादौ 'इष्टकेषीकामालानां चित' (6.3.65) इति ह्रस्वः महान्, परममहान्, परमातिमिहानित्यादौ 'सान्तमहतः' (6.4.10) इति दीर्घश्च सिद्धः। अत एव तदुत्तरपदस्येति पाठोऽयुक्त इति भाष्ये स्पष्टम्।

अत्र पदशब्देनोत्तरपदाधिकारः केवलपदाधिकारश्च। 'पादस्य

घञ्क्ताऽजबित्रकाणमित्यंतोदात्तः प्राप्तस्तमप्यय[1] स्वरो वाधते। एवञ्चो[2]च्छब्द-स्योदात्तत्वं पर्यवस्यति[3]। **अभिनासमासे** इति। आद्युदात्तोधृत शब्द[4]स्येति शेषः। स्वरार्थमिति। अयं भावः अ[5]नन्तरग्रहणाभावे बहुब्रीहौ प्रकृत्यापूर्वपदमिति[6] पूर्वपदाग्रहणानुवृत्तौ[7] कर्मक्तांते[8] पूर्वपद भूतोगतिः[9] प्रकृत्येति[10] सूत्रार्थे[11] तत्वस्योदो[12] भावेन सन स्यादिति। किन्तु उद्धृत[13] शब्दस्य क्तान्तत्वेन[14] –

---

1. तमव्ययं स्वरो ज-2, तमप्यव्ययस्वरो अ-2; तमप्ययव्यस्वरो अ-4.
2. एवन्चो इत्यारभ्य स्वरार्थीमिति इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4; एवं चोच्छदरयोदात्तत्वं प-1; एवं वोच्छब्दस्यो अ-2.
3. पाठोऽय ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; पर्यववस्यति ज-1.
4. शब्दस्यैति अ-1, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, अन्तर ज-1.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; प्रकृत्या पूर्वपूर्वपदा ज-1'
7. पूर्वपदग्रहणानुवृत्तौ प-1, अ-2, अ-4.
8. कर्मक्ते अ-2, अ-4.
9. भूमोगतिः ज-2; भूमौग्थ्त अ-1, अ-3.
10. प्रकृतैति अ-4.
11. सूत्रार्थं अ-2, अ-4.
12. तत्वल्योदाभावेन अ-4.
13. उधृत्त प-1; उत्धृत अ-1, अ-3.
14. क्तात्तत्वेन प-1; क्रांतत्वेन अ-1.

पदाज्योति' (6.3.52) इत्यत्र न तदन्तग्रहणं लक्ष्यानुरोधादिति सर्व 'येन विधिः' (1.1.72) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम्॥29॥

सति शिष्ट[1]थाथादिस्वरेणान्तोदात्तत्वं[2] स्यात्। उदात्तत्वसिद्धेरिति। गतिकारकोप पदात्कृदित्यनेनाद्युदात्त[3]सिद्धेरित्यर्थः। **ज्ञापकमेवेति।** ननु अनन्तर ग्रहण-स्यान्यार्थत्वं वादी[4] मते परिभाषाया

अभावेनोद्धृतस्य[5] क्रांतत्वाभावादेवान्तोदात्ता[6]प्राप्त्या[7] अनंतरग्रहणस्य तद्वार[8]कताया वक्तुमशक्यत्वेन ज्ञापकत्वस्य सुस्थत्वे शंकासमाधानपरं भाष्यमसंगतमेव। न चापूर्वी परिभाषामादायतत् प्रवृत्तिरितिवाच्यम्। त्वदुक्तरीत्यैवापूर्वं तामादायोधृत शब्दस्य[9] क्तांतत्वेन तस्मिन्परतोऽभीत्यस्य स्वर[10] प्राप्तौ तद भावायानंतरग्रहणस्यावश्यकत्वे ज्ञापकत्वस्यैव वक्तुम-शक्यत्वेन मूलोच्छे[11]दापत्तेः। न च भाष्यकृतस्तत्परिभाषा[12] ज्ञानेपि सूत्रकृतो[13] न ज्ञानमेव च तन्मते विशिष्टस्य क्तांत्तोतर पदत्वाभावेन तस्मिन्परतो-

---

1. पाठोऽयं ज-2 अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; शिष्टथाथीदि ज-1; शिष्टथाथाथादि प-1.
2. हात्तवं अ-1, अ-3.
3. गतिकारकोपपदात्कृत् 6/2/139.
4. पाठोऽयं ज-2; अन्यार्थत्वं वदीमते ज-1; अन्यार्थत्ववदत्तो मते प-1 अ-1; अर्थत्वं वदतां मते अ-2; अन्तरग्रहणस्यान्यार्थत्वं इत्यारभ्य अनन्तरग्रहणस्य इत्यन्तं अ-4 पुस्तके नाऽस्ति.
5. अभावेनाधृतस्य ज-2; अभावे नोधृत्तस्य प-1; अभावेनोत्धृतस्य अ-3.
6. 'उदात्ता' नोपलभ्यते प-1.
7. प्राप्या ज-2.
8. तद्वारकतया अ-2.
9. उत्धृत अ-1, अ-3.
10. 'स्वर' नोपलभ्यते अ-3.
11. मूले छेदापत्ते ज-2.
12. परिभाषाज्ञार्नोपसूत्र अ-1, अ-3;
13. सूत्रकृतौ ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.

नन्वेवमस्यापत्यमिरित्यादावदन्तप्रातिपदिकाभावादिञ् न स्यादत आह-

व्यपदेशिवदेकस्मिन्॥30॥

निमित्तसद्भावाद्विशिष्टोऽपदेशो मुख्यो व्यवहारो यस्यास्ति स व्यपदेशी। यस्तु व्यपदेशहेत्वभावादविद्यमानव्यपदेशोऽसहायः स

ऽभेस्तदप्राप्त्या-नन्तरग्रहणं ज्ञापक[1]मेवेति वाच्यम्। सूत्रकृत् कृत्तथादिस्वर-स्याप्यप्रवृत्तौ भाष्यस्य निर्दलत्वापत्तेः। नहि थाथादि स्वर प्रवृत्तौ सूत्रकृतस्तत्-

परिभाषा ज्ञानमस्मिंस्तु नेति युक्तिमत्[2]। न हि भाष्यकारः स्वातन्त्रयेण प्रवृत्तः किन्तु सूत्रमादायैव। न चानंतरग्रहणेन पूर्वाचार्य[3]पठिता परिभाषा इह शास्त्रे आश्रीयत इति ब्रूमः। नतु[4] तैन साज्ञाप्यते इति ब्रूम इति वाच्यम्। तथासतिभाष्यस्थ शंकासमाधानयोरुज्जीवनेपि अनंतर ग्रहण वैयर्थ्यस्यानु[5] ज्जीवनात्। न हि अत्र पक्षेऽभेः स्वरा[6]प्राप्तिर्येन तद्वैय्यर्थ्यस्योज्जीवनं स्यात्। किन्तु अपूर्वपरिभाषयोत्धृतस्य क्तांतत्वेनतस्मिन्परतोऽभेः प्राप्तस्वरवारणाय तस्य सार्थक्यमेव स्यात्। अनंतर[7]ग्रहणेन परिभाषायां ज्ञापितायां स्वस्मिन् चारितार्थ्यं विना ज्ञापकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। तथाहि उत्धृतस्य[8] क्तांतांतर[9]

---

1. ज्ञापकत्वेमेवेति चेन्नयं सूत्रकृत इति पाठोपलभ्यते अ-4.
2. युक्तमत् अ-2.
3. पूर्वाचार्यापटिता अ-2, अ-4.
4. पाठोऽयं प-1, अ-2; ननु तेन साज्ञाप्यत अ-4; न तु तेन स्याज्ञाप्यते ज-2, अ-1, अ-3; त्येन तु तेन सा ज्ञाप्यते ज-1.
5. ऽनुज्जीववान् अ-2, अ-4.
6. स्वर प्राप्ति अ-2, अ-4.
7. अनंतर ग्रहणं ज्ञापयतीति भाष्याक्षरस्वारस्य चोल्लंधित स्यादिति चेन्न, अनंतरग्रहणैन परिभाषायाम् इति पाठोपलभ्यते अ-2, अ-4.
8. उद्धृतस्य अ-1, अ-3, ज-2.
9. क्तांतोतरत्वेन अ-2, अ-4.

पदत्वेन तस्मिन्परतोभे: स्वरप्राप्त्यो[1]ऽनंतर ग्रहणेन न भवतीति वक्तव्यम्। तदेव[2] न। सत्यामपि परिभाषायामभे:[3] स्वरो नैव स्यात्। एकगतिके कर्मक्तांते चरितार्थ[4] स्यगतिरनंतर इत्यस्यान्यार्थक क्तांते। चरितार्थेन थाथादिसूत्रेण गतिद्वय[5] क्तेपरत्वाद् गतिरनंतर इत्यस्य बाधात्। एवं चाभे: स्वरो नैव प्राप्त इति। अनंतर ग्रहणस्य स्वस्मिन्चारितार्थ्यं दुर्निरूपं[6] किन्तु अन्यदेव ज्ञापकं स्यात् तच्चार्थ[7] परेण थाथादि स्वरेण बाधाद भे: स्वराप्राप्त्या अनंतरग्रहणं व्यर्थ[8] तेन था थादि स्वरो वारणीय:। विशिष्ट[9]स्य क्तांतत्वा भावेन सत्तु न[10] प्राप्नोति इति व्यर्थं सदस्या ज्ञापकम्। ज्ञापिते तु थाथादि स्वर प्राप्त्या-नन्तरग्रहणेनापूर्वपदत्वेपि तद्बाध[11] इति स्वस्मिन् चारितार्थ्यम्। योग विभागेन थाथादि स्वर[12]वारणे तु तस्य फलान्तराभावेन निष्पत्तिपक्ष[13] प्राप्ताभिस्वर वारणायानंतरग्रहणे[14] ज्ञापकञ्च[15]। सच्चरितार्थं तस्माच्चारितार्थ्यं विघटितैव[16]

---

1. प्राप्तो प-1, अ-2, अ-4.
2. तदपि न अ-2, अ-4; तदेवेन ज-2.
3. पाठोऽयं ज-2 अ-2, अ-4; परिभाषाममे ज-1, प-1, अ-1; परिभाषायमे: अ-3.
4. चारितार्थ्यस्य अ-2, अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 गतिद्वयक्ते ज-1.
6. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; लुर्निरूपं ज-2; लुनिरूपं ज-1.
7. तच्चार्थ परेणा ज-2.
8. व्यर्थते स्पष्टश्चायमर्थोऽन्यत्र अत एव नांतादसंख्यादेरितीति इति पाठोपलभ्यते अ-4.
9. विशिक्तांत्तत्वाभावेन प-1.
10. 'न' नास्ति अ-3.
11. तद्बाधरति ज-2, अ-1.
12. स्वरणेतु ज-2, अ-1.
13. निष्प्रति अ-1, निटप्रतिपक्ष ज-2, अ-2, अ-3.
14. ग्रहणम् ज-2, अ-1, अ-3.
15. 'च' नोपलभ्यते अ-3, अ-4.
16. विटिकैवं ज-2, अ-1.

तेन तुल्यं वर्त्तते कार्यं प्रतीत्येकस्मिसहायेऽपि तत्कार्य कर्त्तव्यमित्यर्थः। तेनाकारस्याप्यदन्तत्वान्न क्षतिः। एकस्मिन्नित्युक्तेः सभासन्नयन आकारस्य नादित्वम्, दरिद्राधाताविकारस्य नान्तत्वम्। अन्यथा सभासन्नयने भव इत्यर्थे 'वृद्धाच्छः' (4.2.114) दरिद्रातेरिवर्णान्तलक्षणोऽच्च स्यात्। अत एव हरिष्वित्यादौ सोः पदत्वं न। लोकेऽपि बहुपुत्रसत्त्वे नैकस्मिन् ज्येष्ठत्वकनिष्ठत्वादिव्यवहारोऽयं मे ज्येष्ठः कनिष्ठो मध्यम इति किन्त्वेकपुत्रसत्त्व एव। अनेन चाशास्त्रीयस्याप्यतिदेशः। अत एव इयायेत्यादावेकाच्त्वनिबन्धन कार्यकालपक्षे तद्धितान्तत्वनि बन्धन प्रातिपदिकत्वं च सिध्यति। अन्यथा यस्माद्विहितस्तदादित्वाभावान्न स्यात्।

यत्तु योऽर्थवांस्तत्रार्थस्य त्यागोपादानाभ्यामेकाज्व्यपदेशो यथेयायेत्यादावर्थवतो धातोरयं वर्णरूप एकोऽजिति कैयटस्तत्र।

शंका न तु ज्ञापकत्वाभाव[1] प्रतिपादिकापूर्वोक्तयुक्तैः। ननु अनन्तर ग्रहणं किमर्थमित्युपक्रम्य शंकासमाधानादिकं कृत्वा सूत्रशेषे[2] एव सिद्धेतीति[3] ज्ञापकमुक्तं भाष्ये भवदुक्तरीत्या तु पूर्वं ज्ञापकमेव वक्तव्यं स्यात् इति भाष्यविरोध इति चेन्न पाठक्रमादर्थक्रमो बली[4]यानिति न्यायात्तद्भाष्यविरोधस्य सुखेन सुपरि[5]हरत्वात् इति संक्षेपः। **पुंयोगादितीति**[6] तत्र हि कृद्ग्रहण-परिभाषामुपक्रम्य तत् फलमुक्तं साङ्कुटिनम् इति। पश्चादेवमपि[7] एकदेशस्येनुणं तत्व[8] नैकदेशा देवाणि[9] नुणिनुणित्यण्स्यादिति शंकितेऽनया समहितम्॥28॥

---

1. ज्ञापकत्वभाव अ-1.
2. सूत्रशषे प-1, अ-1, अ-2, अ-3.
3. शिद्धेतीति प-1.
4. बलीयामिति अ-1, अ-3, बलीनिति अ-2.
5. सुपरिहारत्वात् प-1.
6. पुंषोगादितीति ज-2, अ-1, अ-3.
7. पश्चादेवमपित्यकदेशस्येणं ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.
8. तत्विनेक् ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.
9. नुणित्यण् स्यादिति प-1.

तस्यैकपदा ऋगित्यत्र भाष्योक्तरीत्या मुख्यव्यवहारसत्त्वात्। एकपदा ऋगित्यत्रार्थेन युक्तो व्यपदेश इति भाष्य उक्तम्। ऋक्त्वादेरर्थशब्दोभय-वृत्तित्वेन तस्याः शब्दमात्ररूपं पदमेकोऽवयव इत्यर्थ इति तदाशयः। तस्मादेकस्मिस्तत्तद्धर्मारोपेण युगपद्यथा ज्येष्ठत्वादिव्यवहारो यथा च शिलापुत्रकस्य शरीरमित्यादावेकस्मिन्नारोपितानेकावस्थाभिः समुदाय-रूपत्वाद्यारोपेणैतस्य शरीरमित्यादिव्यवहारः तथात्रैकाच्त्वादिव्यव-हारोपपत्तिरिति लोकन्यायसिद्धेयम्।

न चासहाय एवैतत् प्रवृत्तो भवतीत्यत्र भू इत्यस्याङ्गत्वानापत्तिः, ससहायत्वादिति वाच्यम्, शपमादायाङ्गत्वे कार्ये यस्माद्विहितस्तदादित्वे तस्य ससहायत्वाभावात्; लोके विजातीयकन्यादिसत्त्वेऽप्येकपुत्रस्य तस्मिन्नेवायमेव ज्येष्ठ इत्यादिव्यवहारवत्।

न चैवं 'निजौ चत्वार एकाच' इति भाष्य सङ्गतिः, इकारस्यासहायत्वाभावेन तत्रैकाच्त्वानुपपादनादिति वाच्यम्, एकस्मि-न्नित्यस्यापर्यालोचनया तत् प्रवृत्तेः। अर्थवता व्यपदेशिवद्भाव इत्यत्रार्थवत्पदेनाप्यसहायत्वमुपलक्ष्यते। अर्थबोधकेन शब्देन व्यपदेशि-सदृशो भावः कार्यं लभ्यते इति तदर्थः। प्रायोऽसहाय एवार्थवत्त्वात् कुरुत इत्यादौ तशब्दाकारोऽचामन्त्य इति व्यवहारे, स आदिर्यस्येति व्यवहारे, असहाय एवेति तत्र व्यपदेशिवद्भावेन टिसंज्ञासिद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः॥3॥

ननु गर्गादिभ्यो विहितो यञ् तदन्तविधिना परमगार्गादिभ्योऽपि स्यादत आह-

---

पादस्य पदाज्या[1]तीति। विशेषण विशेष्ययोः कामचारा[2]दुत्तरपदेत्य स्यैव सूत्रोपात्त[3]विशेषणत्वस्वी[4]कारादिति भावः॥29॥

---

1. पादस्य पदाज्जातीति प-1.
2. कामाचारादुतर अ-3.
3. सूत्रे पात ज-2.
4. स्वीकारादितिति भावः अ-1.

ग्रहणवता प्रातिपदिकेन तदन्तविधिर्नास्ति॥31॥

इयं च 'समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः' 'उगिद्वर्णग्रहणवर्जम्' इति वार्त्तिकस्थप्रत्यांशानुवादः। अत एवायं प्रत्ययविधिविषय एव। अत एव 'येन विधिः' (1.1.72) इति सूत्रभाष्ये प्रत्ययविधिभिन्ने 'अप्तृन्'

यत्तु योऽर्थ[1]वानिति। अयं कैयट[2] आद्यंतव[3]त्सूत्रस्थः **एकपदा ऋगितीति[4]**। तत्र हि[5] आद्यन्तवदतिदेशे कृतेपि इयायेत्यादि[6] सिद्धये व्यपदेशिवद्वचनं कर्त्तव्यमित्युक्ता[7] तस्यलोकन्यायसिद्धत्वबोधनाय यथा तर्हि वर्णसमुदायः[8] पदं पदसमुदायऋक्। ऋक् समुदाय[9]स्सूक्तमित्युच्यते। भवति चैतदेतद्देकस्मिन्नेक[10]वर्णग्रह[11] एकपदा ऋक् एक[12]र्चं सूक्तमिति। अत्राप्यर्थेन सूक्तो[13]व्यपदेशः पदं नामार्थः ऋङ् नामार्थः सूक्तं नामार्थ इत्युक्ता[14]युदृष्टान्तेनेयं साधिता। तत्राप्यर्थेनेति समाधान भाष्यमादाय पदादीना[15]–

---

1. सं. पाठः, यतुयोर्थवानितिज ज–1, ज–2, प–1, अ–2, अ–3.
2. कैयटा ज–2; नोपलभ्यते ज–2.
3. पाठोऽयं अ–2; आद्यंतवृत्सूत्रेस्थ ज–1; आद्यंत सूत्रेस्थ ज–2; आद्यातवत्सूत्रस्थ प–1.
4. ऋगित्तेति प–1.
5. 'हि' नोपलभ्यते अ–2.
6. सं. पाठ ययाचे व्यौदा ज–1, ज–2, प–2, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
7. कर्तव्यमित्युक्त्वा अ–3.
8. समुदायपदम् ज–2; वर्णसमुदाय क् इति पाठोपलभ्यते प–1.
9. पाठोऽयं ज–2, अ–2, अ–4; पदं पद समुदाय नोपलभ्यते प–1; पदसमुदाय ऋक् ज–1.
10. चैत्तदेकस्मिन्नेक प–1, अ–1, अ–3.
11. पाठोऽयं अ–1, अ–2 वर्ग पद् ज–1, वर्णपदं ज–2, प–1; वर्णपदं ज–2.
12. एकर्च ज–2, अ–1; अ–2, अ–3; एकच प–1.
13. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2 सुक्तोपदेशः अ–4; युक्तोव्यपदेश ज–1.
14. इत्युक्त्वायद् दृष्टान्तेन ज–2; इत्युक्तापुत्र दृष्टान्तेन प–1.
15. पदादीना प–1; यदादीनां अ–1, अ–3.

(6.4.11) इत्यादौ गृह्यमाणप्रातिपदिकेनापि तदन्तविधिप्रतिपादनं स्वसा, परमल्वसेत्याद्युदाहरणं च सङ्गच्छते। अत एव च तदन्तविधि सूत्रे भाष्ये समासेत्त्यादिनिषेधस्य कथनवदस्य न कथनम्। सोऽपि निषेधो विशिष्ट तत्तद्रूपेण ग्रहीतप्रातिपदिकसूत्र एव। ध्वनितं

योऽर्थः सोऽन्य[1]पदार्थः अभे[2]दोपचाराच्चार्थ एव पदादि[3]भिरभि घीयते इति कैय्यटेन[4] व्याख्यातः[5]। तत्र तदुक्तार्थो[6] न लोके प्रतीयते[7] इति भाष्यार्थमाह[8]। **ऋक् त्वादेरित्यादिना**। किं तेनेति। वस्तुतस्तु अस्मात् ज्ञापकात्समास[9] प्रत्यया विधा[10] वित्येतत् घटकप्रत्ययांशो नापूर्वः[11]। किन्तु ज्ञापक सिद्ध इति बोध्यते[12]। स्पष्टश्चायमर्थोन्यत्र। अत एव नान्ता[13]द-संख्यादेरितीति। ननु इयं ग्रहणवतेति च। परिभाषाप्रत्यय[14]विधि विषयैवेति वक्ष्यमाणस्वोक्तया[15] प्रकृते तत्वाभावेन निषेधाप्रवृत्या व्यपदेशिवद्भावस्य दुर्वारत्वेन-

1. पाठोऽयं ज-2, अ-2; योर्थः सोऽयपदार्थ ज-1, प-1, अ-3.
2. अभिदोष अ-2.
3. पदादिरभिधीयते ज-2, अ-3.
4. कैयटेन ज-2, अ-1 कैयटेन अ-3.
5. व्याख्यातम् प-1.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3; तदुक्तार्थेन ज-1.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, प्रतीयत ज-1.
8. भाष्ययार्थमाह ज-2; भाष्यस्यार्थमाह अ-3.
9. ज्ञापकता नोपलभ्यते प-1; वस्तु अस्मात् ज्ञापकात् ज-2, अ-1, अ-2, अ-3.
10. पाठोऽयं प-1; प्रयविधावित्येतत् ज-1 अ-1, अ-2, अ-3.
11. तापूर्वकः अ-1, अ-3.
12. बोधयन्ते अ-2; पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4, नान्तादसंख्यादेः 5/2/49; अतएवानान्तादसंख्यादेः ज-1, ज-2.
14. प्रत्यविधि ज-2, अ-1, अ-3.
15. स्वांतयः ज-2; स्वोतया अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 वक्षयमाणस्योक्तया प-1.

चेदम् 'असमासे निष्कादिभ्यः' (5.1.20) इति सूत्रे भाष्ये।

अत्र च ज्ञापकं 'सपूर्वाच्च' (5.2.87) इति सूत्रम्, अन्यथा 'पूर्वादिनिः' (5.2.86) इत्यत्र तदन्तविधिनैव सिद्धे किं तेन॥31॥

नन्वेवं 'सूत्रान्ताठ्ठक' (4.2.60), 'दशान्ताड्डः' (5.2.45) एकगोपूर्वात् (5.2.118) इत्यादेः केवलसूत्रशब्ददशन् शब्दैक-शब्दादिष्वपि प्रवृत्तिर्व्यपदेशिवद्भावात्स्यादत आह-

व्यपदेशिवद्भावोऽप्रातिपदिकेन॥32॥

पूर्वात्सपूर्वादिनिरित्येकयोग एव कर्त्तव्ये पृथग्योगकरणमस्यां ज्ञापकम्।

दोषाभावात्[1]। कथमत्र[2] परिभाषासंचारेण चारिता[3]र्थ्यमुच्यते। न च प्रत्ययविधि विषयेत्यस्या[4] प्रत्ययो[5]द्देश्यकविधि विषयेत्यर्थः। प्रकृतपूर्वोत्तर परिभाषयोरेकविषयत्वेन पूर्वपरि[6]भाषाया अप्रवृत्तेः॥30॥

गर्गादिभ्यो यञित्यादौ[7] प्रत्ययस्य[8] तत्त्वाभावेन तदन्ते यञो दुर्वारत्वात्। न च तत्र यथश्रुतार्थकत्वमेव प्रकृते तु पूर्वोक्ता[9]र्थकत्वमिति वाच्यम्। तावत्तापीयं ग्रहणवतेत्यादि मूलोच्छेदापत्तेः॥31॥

---

1. सं. पाठ. धौव्यातु ज-1; श्रौव्यात् ज-2, प-1; ध्रौव्यात् अ-1, अ-2, अ-3; ध्रौव्यान् अ-4.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; कथमसत्र ज-1.
3. चारितार्थमुच्यते प-1.
4. विषेयत्यस्य प-1, अ-2 अ-4.
5. प्रत्ययोदेश्य कत्वविधि अ-3.
6. 'पूर्व' नोपलभ्यते अ-2, अ-3, अ-4.
7. 4/1/105 अष्टा.
8. प्रत्ययस्थ ज-2.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; तुर्वोक्तार्थकत्वमिति ज-1.

न च 'इष्टादिभ्यः' (5.2.88) इति सूत्रेऽनुवृत्त्यर्थं तथा पाठोऽन एवानिष्टीत्यादिसिद्धिरिति वाच्यम्, ज्ञापकपरभाष्यप्रामाण्येनानिष्टीत्यादि प्रयोगाणामनिष्ठत्वात्; एकयोगेऽपि तावत उत्तरत्रानुवृत्तौ बाधकाभावाच्च। अत एव 'नान्तादसङ्ख्यादेः' (5.2.49) इति चरितार्थम्। अन्यथा पञ्चम इत्यादावपि व्यपदेशिवद्भावेन सङ्ख्यादित्वात्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव।

इयं च प्रातिपदिकग्रहण एव, न तु प्रातिपदिकाप्रातिपदिक ग्रहणे। तेन 'उगितश्च' (4.1.6) इत्यत्र न दोष इति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम्।

इयं 'ग्रहणवता' (पं-31) इति च परिभाषा प्रत्ययविधि विषयैवेति 'असमासे निष्कादिभ्यः' (5.1.20) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोः स्पष्टम्। तेन 'अहन्' (8.2.68) इत्यादेः परमाहन्शब्दे केवलाहन्शब्दे च प्रवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः।।32।।

ननु 'वान्तो यि' (6.1.79) इत्यादौ यादौ प्रत्यय इत्यर्थः कथमत आह-

---

किञ्च ससजुषोरुरित्यादि सूत्रस्थ[1] शेखरमनोरमादि सकलग्रन्थ[2] विरोधाच्च। तत्र हि[3] एतस्याः प्रत्ययविधिविषयत्वेनाप्रवृत्तौ व्यपदेशिवद्भावेन[4] सजूः[5] शब्दस्यापि रुत्वा[6]सिद्धिरित्युक्तम्। न च प्रत्ययत्वरूपं सामान्यधर्मेण[7] तद्व्याप्य धर्मेण वा यत्रोद्देश्यतेति[8] न दोष इति वाच्यम् **उगितश्चेत्यादौ** एतदप्रवृत्तेः।

1. सूत्रस्य ज-2.
2. शेखरमादिसकल इति पाठोपलभ्यते प-1.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-2, अ-4; त्तर्हि ज-1.
4. व्यपदेशिवद्भान अ-1.
5. सङ् ज-2; सजुः अ-3.
6. रूत्वसिद्धिः प-1; रूत्वासिधिः प-1, अ-3.
7. धर्मणत्तव्याप्यधर्मेण प-1; धर्मेणतथाप्यधर्मेण अ-2.
8. यत्रोद्देश्यतिति अ-1, अ-3; उगितश्च 4/1/6; 6/3/45 अष्टा.

यस्मिन्विधिस्तदादावल्ग्रहणे॥33॥

तदन्तविधेरपवाद इयम्। वाचनिक्येषा 'येनविधिः' (1.1.72) इत्यत्र भाष्ये पठिता। अस्याश्च स्वरूपसती सप्तमी निमित्तम्। अत एव 'नेड्वशि कृति' (7.2.8) इत्यादौः वशादेः कृत इत्याद्यर्थलाभः।

इयं च आर्द्धधातुकस्येट् (7.2.33) इति सूत्रे वलादेरित्यादिग्रहण सामर्थ्याद्विशेष्यविशेषणयोरुभयोः सप्तम्यन्तत्व एव प्रवर्त्तते। तेन 'ङः सि धुट्' (8.3.29) इत्यादौ सादेः पदस्येति नार्थः। 'तीषसह' (7.2.48) 'सेऽसिचि' (7.2.57) इत्यादौ यथा सादेरित्याद्यर्थलाभस्तथा शब्देन्दुशेखरे निरूपितम्॥33॥

घटपटं घटपटावित्यादिसिद्धये आह-

त्वदुक्तरीत्यैव सिद्धौ[1] तत्रैतत्परिभाषा[2] प्रवृत्यर्थमिय[3] **प्रातिपदिकग्रहणे एवेत्यादि**[4] मूलकृत यत्न वैफल्यात्[5]। अत एव प्रत्ययमात्रस्यैव यत्रोद्देश्यता तत्रैवेयमित्यपि नेति बोध्यम्। न च प्रत्ययस्योद्देश्यत्वं[6] वा विधेयत्वं[7] वास्तु उभयत्रापि प्रवृत्तिः स्वीक्रियते[8] इति वाच्यम्। **ससजुषोरुरित्या**[9]**दावेव** दोष[10] ध्रौव्यात्। न च प्रतिलक्ष्यं[11] वाक्योपप्लवे सजुः शब्द-

---

1. सिंधौ ज-2.
2. तचैतत् अ-2.
3. अप्रवृत्यर्थमिमं अ-2, अ-4.
4. एकेत्यादि ज-2, अ-1, अ-2.
5. यत्प्रवैफल्यात् अ-1, अ-3.
6. सं. पाठः, प्रयस्योद्देश्यत्वम् ज-1; प्रत्ययस्योदृष्टत्वम् ज-2, प्रत्यस्योदेश्यत्वं प-1, अ-2, अ-4; प्रत्ययस्योदृश्यत्वम् अ-1, अ-3.
7. विधेयत्वस्य अ-3; विधेयत्व प-1.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; स्वेक्रियत्त ज-1.
9. ससजुषोरूः 8/2/66.
10. घोष ज-2.
11. प्रतिवक्ष्यं प-1.

सर्वो द्वन्द्वो विभाषैकवद्भवति॥34॥

'द्वन्द्वश्च प्राणि' (2.4.2) इत्यादिप्रकरण विषयः सर्वो द्वन्द्व इत्यर्थः। 'चार्थ द्वन्द्वः' (2.2.29) इति सूत्रेण समाहारेतरे-

---

विषयक[1] वाक्ये प्रत्यय[2]स्योद्देश्यत्वस्य विधेयत्वस्य चाभावेन तदप्रवृत्ति रुक्तायुक्तै[3]वेति वाच्यम्। मूल[4] शैथिल्यात्। तथाहि परिभाषा बोधक विभक्त[5] पूर्वादिनिरितिसूत्रे प्रत्ययस्य विधेयत्वेन[6] ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षत्वाद् यत्र प्रत्ययस्य[7] विधेयता तत्रैवेत्यर्थस्यौचित्येन त्वदुक्तार्थस्य कल्पयि[8]तुमशक्यत्वात्। न च पूर्वादिनिरिति ज्ञापकं प्राचामनुरोधि इदं चावश्यमप्युपेयम्[9]। अत एव शेखरे स्त्रीप्रत्यये उगितश्चेत्यत्र भवतीति प्रतीकमादाय व्यपदेशिवद्भावो प्रातिपदिकेनेति निषेधस्तु सूत्रोपात्तांतादि[10] शब्द विषयक इत्युक्तं[11] संगच्छते[12]। अन्यथा पूर्वोक्तज्ञापकेन तथा कल्पनमसंगतं स्यात्। एवं चासंख्यादि ग्रहणमेव ज्ञापकमित्याशयः। तत्र च[13] प्रत्ययस्योद्[14]देश्यत्वेन[15] न दोषः। उगितश्चेत्यादिशंका।

---

1. विषयं अ-2.
2. प्रत्ययस्योदर्देश्यत्वस्य ज-2, अ-3.
3. युक्तौवेति ज-2, अ-1, अ-3.
4. फलशैथिल्यात् अ-4.
5. विभक्ति अ-4.
6. विधेयत्वे च अ-1, अ-3.
7. प्रत्यय प-1.
8. कल्पयत्तुम प-1; कल्पयितु प्रशक्यत्वात् अ-3.
9. वावश्यमभ्युपप ज-2, अ-1, अ-3.
10. सूत्रोपात्यतादि ज-2; सूत्रोपांतां तादि अ-1 अ-3.
11. इत्युक्त ज-2, अ-1, अ-3.
12. पाठोऽयं अ-3, अ-4; संगछते ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-2.
13. 'च' नोपलभ्यते ज-2, अ-1, अ-2, अ-4.
14. प्रत्ययस्योदृश्यत्वेन ज-2, अ-1; प्रवत्ययस्योदृश्यत्वेन.
15. नु दोशः अ-1, अ-3.

समाधान[1] सर्वमपि प्राचामनुरोधेनेति[2] वाच्यम्। सूत्रान्ता[3]ठ्ठक् दशान्ताड्ङ[4] इत्यादि वैय्यर्थ्यस्यासो ढव्यत्वात्। न चोभाम्यामंशद्वयमपि कल्प्यत इति वाच्यम्। विनिगमनाविरहेणा[5]स्यैव प्राचामनुरोधित्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। स्त्री[6]प्रत्ययशेखरस्तु परिभाषाप्रत्याख्यानफलि[7]तार्थ प्रदर्शक इति चैन्न। मटः प्रत्ययत्वस्य वृहन्मंजू[8]षासंगोपितत्वेनादोषात्। न च मटः[9] प्रत्ययत्वे मडादिषु यस्यादिस्तन्नि[10]र्देशः कर्तव्यः। इति मट[11] आगमत्वबोधक[12] नान्तादसंख्याथादे र्मडिति सूत्रस्थ भाष्यव्याकोप[13] इति वाच्यम्। तदग्रिमभाष्ये मट्थट्थुकोऽनुदा[14]हृत्यविंशतितम[15] इति तमाडागम[16] मात्र घटितोदाहरणेन मट्थुकथुकां[17] प्रत्ययत्वेपि न क्षतिरिति बोधनेन[18] तस्य शांतेः। अन्यथा

---

1. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–2, अ–4; समाधां ज–1.
2. पाठोऽयं अ–2, अ–3 अनुरोध्यं चेति ज–1; अनुरोधे चेति ज–2; अनुरोधेवेति प–1; अनुरोध्ये चेति अ–1, अ–3.
3. सं. पाठ 4/2/60.
4. सं. पा. 5/2/45.
5. पाठोऽयं ज–2, प–1; विरहेणास्येव ज–2, प–1, अ–1, –2, अ–3, अ–4; स्त्रीप्रत्य ज–1.
7. कलितार्थ अ–2, अ–4.
8. पाठोऽयं अ–2, हृन्मंजूषा ज–1, ज–2, प–1, अ–3.
9. मठः अ–1, अ–3; मृढ ज–2.
10. तन्निर्द्देशः अ–4.
11. 'ट' प–1; मठ अ–3.
12. बोधनांताद अ–1, अ–3 बोधनात्ताद प–1.
13. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1 अ–2, अ–3; व्याकीय ज–1. वाकोप अ–4.
14. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–2, अ–3, अ–4; ऽनदाहृत्य ज–1.
15. विंत्तितम इति प–1.
16. पाठोऽयं ज–2; तमडागम प–1; अ–1, अ–2, अ–3, अ–4.
17. मट् थट् थुकां प–1, अ–1, अ–2, अ–3, ज–2.
18. बोधेन अ–2, अ–4.

क्रमेणोदाहरणीय[1] स्यात्।

उ[2]भयोमणिरुमयेदेवमनुष्या इति भाष्यो[3]दाहरणेन द्विव[4]चनानां तत्वाभाव कल्पक ग्रन्थाश्चात्रानु[5]कूला:। अत एव मट् थट् थुकामागमत्व प्रत्ययत्वयो[6]र्विशेषा भाव:। तमट:[7] प्रत्ययत्वेत्वाद्युदात्तत्वं स्यात्। आगमत्वेत्वनु[8]दात्तो भवतीति डट् स्वरेण विंशतितम इत्यंतोदात्तत्वं भवतीति कैयटोपि[9] संगच्छते[10]। ननु मडादिषु प्रत्ययत्वागमत्वयोर्विशेषा[11] भावेपि आगमप्रकरणानुरोधिभिया[12] आगमत्व[13] पक्ष एव उचित[14] इति चेन्न। आगमत्ववादिनोपि[15] द्वेस्तीय: त्रै: संप्रसारणं चेत्यत्र डटो[16]ऽसंबंधेनागम-विधायकत्वा[17]भावात् प्रकरणविरोधस्य सोढव्यत्वात्। किं चानुवृत्त डट:[18]

---

1. अन्यथोक्रमेणोदाहरणीयं ज-2, प-1,; क्रमेणोदाहरणीयं अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2 ऽभयोमणिरूभयोदेव ज-2; भयोमणि अ-1, अ-4.
3. 'भा' नाऽस्ति प-1.
4. द्विवचनांतत्वाभावात्कल्पक प-1; तत्वाभावं कलपक अ-4; तत्वाभावं कल्प्यक अ-2.
5. ग्रन्थाश्चानुकुला: ज-2, अ-3, अ-4.
6. थुका मागमत्वयोविशेषा भाव अ-3, अ-4.
7. तमठ: अ-1, अ-3.
8. आगमत्वेत्वनुदोत्तो अ-1, अ-3 आगमेस्तु उदातो अ-2, अ-4.
9. कैय्यटोपि प-1.
10. पाठोऽयं ज-2, अ-3; संगछते ज-1.
11. विंषाभावेपि प-1; विंशेषाभावोपि अ-3.
12. अगमप्रकरणानुरोधामिया प-1; प्रकरणाननुरोधिभिधा ज-2.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; आगमयत्व ज-1.
14. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; उचीत ज-1.
15. वाहिनोपि अ-1, अ-3.
16. इटो ज-2, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
17. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4 छपकत्वा भावात् ज-1
18. उट: ज-2, अ-1, अ-3 अ-4.

षष्ठयं तत्व[1]सम्पादनार्थं तस्मादित्युत्तरस्येति परिभाषाया: संचार्यत्वेन थुक् विधायक[2] तस्यैव सप्तम्यंतत्व कल्पनेन चागमपक्षस्यगौरव[3]ग्रस्तत्वाच्च[4]। अनुवृत्तप्रथमांतस्य डटो नान्तादसंख्यादेरिति पञ्चमी षष्ठीं कल्पयतीत्यागमत्व प्रदर्शक शेक्षरादिग्रन्थास्तु प्राचां मतानुयायिन इति। नास्माकं प्रतिकूल[5]तामावहन्ति। मडादिषु यस्यादिस्तन्निर्देश:[6] कर्त्तव्य:। अक्रियमाणे[7] प्रत्ययाधिकारात्[8] प्रत्ययोयं विज्ञायते[9] तत्र को दोष: प्रत्ययान्तरे[10] च स्वरे दोष इति भष्येणैव प्रत्ययान्तरत्व बोधनात्। मट्थटो:[11] कृतयो: पंचमपंचथयो:[12] सिद्धावपि[13] षष्ठासिद्धि[14]रिति तु न शंकाकलंक:। सार्वधातुके परतो विकरण[15]विधानवत्। डटिपरतस्तेषां[16] विधान[17]मिति भाष्याशय:। ननु प्रत्ययत्वे[18] आगमत्व[19]बोध

---

1. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-3, अ-4.
2 विधायके अ-4.
3. कल्पनेन वा पक्षणमपक्षस्य ज-2; कल्पनेन वागम पक्षस्थ अ-4.
4. ग्रस्ततवात् नोपलभ्यते प-1.
5. प्रतिकूतामावहन्ति प-1; प्रतिकूला भवति अ-4.
6. यस्यादिनिर्देश: प-1.
7. आक्रयमागी ज-2, अ-1, अ-3.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4. प्रत्ययाधिकारा ज-1.
9. विज्ञाये ज-2, अ-1, अ-3. विज्ञायेत प-1, अ-4.
10. प्रत्ययांतरेण च अ-3; प्रत्ययांतरे च स्वरे च इति अ-4; मातृकायां पाठ:.
11. मट थटो ज-2, अ-1, अ-3; मट् थुटौ अ-4.
12. पंचथथो अ-4.
13. सिधा ज-2.
14. षष्टासिर्द्धिरित्तुनशंकलंक प-1; षष्टासित्धिरिति तु न शंकालकलंक: अ-1, अ-3; षष्टसिधिरिति ज-2.
15. विकारण विधानेवत् ज-2.
16. 'टि' परत: अ-1.
17. परिभाष्याया अ-4; विधानपरिभाषाय: ज-2, विधानमि भाष्याय: अ-3.
18. पाठोऽयं प-1, अ-4; प्रपत्वे ज-1; प्रयत्वे अ-1, अ-3.
19. आगमत्वे अ-1, अ-3.

तरयोगयोरविशेषण द्वन्द्व विधानान्यायसिद्धेयम्। 'तिष्यपुनर्वस्वोः' (1. 2.63) इति सूत्रस्थं 'बहुवचनस्येतिग्रहणमस्यां ज्ञापकम्'। तद्धीदं तिष्यपुनर्वस्वित्सत्र तद्व्यावृत्यर्थम्। न चैवमप्यत्र 'जातिरप्राणिनाम्' (2.4.6) इति नित्यैक वद्भावेन बहुवचनाभावादिदं सूत्रं व्यर्थमिति वाच्यम्, तद्वैकल्पिकत्वस्याप्यनेन ज्ञापनात्। नचैते प्राणिन इति वाच्यम्, 'आपोमयः प्राणः' इति श्रुतेरद्भिर्विनाग्लायमान प्राणानामेव प्राणित्वात्। स्पष्टं चेदं 'तिष्यपुनर्वस्वोः' (1.2.63) इति सूत्रे भाष्ये। अत एव द्वन्द्वश्च प्राणि (2.4.2) इत्यादेः प्राण्यङ्गादीनामेव समाहार इति विपरीतनियमो न।।34।।

सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्प्यन्ते।।35।।

'व्यत्ययो बहुलम्' (3.1.85) इति सूत्रे भाष्ये बहुलमिति-

कं लिंगाना[1] वैय्यर्थ्यमिति चेदिष्टापत्तेः। नांता[2]दसंख्यादे र्मट् थट् चच्छन्दसि[3] षट्कतिकतिपय[4]चतुर्भ्य इति न्यासानामभिमतत्वात्[5]। टित्व प्रयुक्तं कार्यन्तु यथान्यासे षष्ठीत्यादाविव डटष्टित्वमादायात्रापि सिद्धं एतेन थुकः[6] प्रत्ययत्वे किति वृद्धौ[7] विशेष[8] सत्वादागमत्वप्रत्यय[9] त्वयो विशेषाभाव इति कैय्यट[10]ग्रंथा संगतिरपि निरस्ता। ननु थ प्रत्ययस्वीकारे पंचथ इतयत्र थे परे स्वादिष्विति पदत्वेन नकार लोपेपि षष्ट इत्यत्र थे परे षकारस्य जश्त्वं चतुर्थ इत्यत्र

---

1. बोधककलिंगानां ज-2.
2. 5.2.45.
3. सं पाठ. 5/2/50, थश्छन्दसि ज-1, अ-4, प-1.
4. 5/2/51 षट्तिकतिपय ज-1.
5. न्यास्यानामाभि अ-4.
6. युक्तः ज-2.
7. सिद्धौ प-1.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1. विशेषि ज-1.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1., प्रयत्वये ज-1
10. कैयटाग्रन्था ज-2, प-1, अ-2, अ-3, अ-4.

रेफस्य विसर्गश्च स्यात्। ततश्च षट् थुको:[1] पृथक्[2]करणं पदान्तविधि प्रतिषेधार्थमिति वार्त्तिकभाष्य विरोध इति चेन्न। षष्ठाष्टमाभ्या[3] चतुर्थतुर्याणीत्यादि[4] निर्देशैस्तद्वारणात्[5]। यथा श्रुतन्यासे नान्तान्मडित्युक्तौ सूत्रे डट इति षष्ठी[6] निर्देशाभावेनागमत्वस्यवक्तु माशक्यत्वे न प्रत्यय:[7] परश्चेत्यत्रस्य[8] प्रवृत्तो पश्चात् प्रथमान्तत्तो[9] डटमनुवर्त्य[10] तस्मादित्युत्तरस्येति परिभाषा प्रवृत्या प्रथमान्तत्वस्य षष्ठयन्तत्वकल्पने नाद्यंता[11] वित्यस्य सूत्रस्य मट घट विधायक[12] सूत्रयो: प्रवृत्तिकरणेन थुग्विधायके डट:[13] सप्तम्यन्तत्वकरणेन विंशत्यादिभ्य इत्युत्तरत्र षष्ठयं तत्व[14] कल्पनेनाग मत्व[15]बोधाकवर्णत्रयकरणेन[16] पृथक् थुक्[17] करणेन च बहुक्लेशान्नि र्देशाश्रयणमेव[18]लघ्वीति[19] बोध्यम्। मट् थट थुकामिति–

---

1. षट् थुकी ज–2.
2. पृथकारणम् ज–2; पृथकरणं अ–4.
3. षष्ठाष्टमाया ज च 5/3/50 अष्टा; षष्टोष्टमाभ्यां अ–1, अ–3.
4. तृषीमीत्यादि ज–2 चतुर्थाणीत्यादि अ–3; चतुर्थतुयोगित्यादि अ–4.
5. पाठोऽयं ज–2, प–1 अ–1, अ–3; अ–4; तद्वारणत् ज–1.
6. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–4; ठठी ज–1; षष्टो निर्देशा अ–1, अ–3.
7. प्रत्यत्य: ज–2, अ–3; प्रत्यत्व अ–1.
8. परश्रेयस्य ज–2; परंश्चेख्यत्ये प–1; परश्चेत्यस्य अ–1, अ–3, अ–4.
9. प्रत्ययांत अ–4.
10. उठ मनुवर्त्य अ–1, अ–3; उटांमनुवर्त्य अ–4.
11. कल्पनेनादयंता चित्यस्य ज–2, अ–3.
12. मट् थट् विर्धयक अ–1, अ–3 मटथुट् विधेयक अ–4.
13. पाठोऽयं प–1, उट ज–1, उटा ज–2, उठा अ–1, अ–3, अ–4.
14. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–3, अ–4; षष्टंतेत्व ज–1.
15. आगत्वबोधाक ज–2; आगमत्वबोधक प–1.
16. कारणेन ज–2.
17. थुक् नोपलभ्यते अ–3, अ–4; थक् प–1.
18. निर्देशाश्रयणामेव अ–1, अ–3.
19. पाठोऽयं प–1; लष्विति ज–1, ज–2, अ–1, अ–3, अ–4.

योगाविभागेन 'षष्ठीयुक्तश्छन्दसि' (1.4.9) इति सूत्रे वेति योगविभागेन चैषा साधिता। तेन प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यतीत्यादि सिद्धम्।

कैय्यटे[1]ऽपपाठः। थुकः[2] प्रत्ययत्वे चतुर्थ इत्यादावकारश्रयणाना[3]पत्तिर्विसर्गा श्रवणानापत्तिर्विसर्गश्रवणापत्तिश्चेति विवर[4]णन्तु थुकः प्रत्ययान्त[5]रत्वं निर्देशाश्रयणं[6] चानाश्रित्य प्रवृत्तमिति न दोषा[7] विधानकम्। इदं सर्वं मडादिषु[8] यस्यादिस्तन्निर्देशः[9] कर्त्तव्य इत्युक्ता तदुदाहरणानुदानेन[10] ध्वनितम्। अग्रे नान्ता[11]दित्येषा पंचमी डट् इति प्रथमायाः षष्ठीं[12] कल्पयतीति इत्यादि[13] भाष्यन्तु पूर्वोक्त सिद्धान्तमजानत[14] एकदेशिन[15] इति दिक्। यद्वा ननु वक्ष्यमाणरीत्यानया प्रत्यय[16] विधौ व्यपदेशि[17]वद्भाव बोधनेपि नान्ताद-

1. पाठोऽयं प-1, अ-4; कैय्येटऽपपाठः ज-1; कैयटैः ऽयथाठः ज-2; कैयटेः यथाटः अ-1, अ-3.
2. थुकः नाऽस्ति ज-2, अ-1, अ-3.
3. पाठोऽयं प-1; श्रवणानोपत्तिः ज-1; श्रवणानापतिः अ-1, अ-3.
4. इत्यादावकार इत्यारभ्य विवरणन्तु इत्यन्तं प-1 नोपलभ्यते.
5. प्रत्यांतरत्वं ज-2, अ-1, अ-3; प्रत्यायांतरत्वं प-1.
6. निर्देशाश्श्रयणं अ-1, अ-3.
7. दोषाधायकम् ज-2, प-1, अ-4; दोषाधायके अ-1, अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3, अ-4; मर्ठोषु ज-1; मडादि ज-2.
9. तन्निर्देशः अ-4.
10. पाठोऽयं प-1; तदुदाहरणादानेन ज-1, अ-1, अ-3; तदुदाहरणदानेन अ-4 तदाहरणादानेनं ज-2.
11. अग्रेनांतादित्येषाम् अ-1, अ-3.
12. षष्टी ज-2, प-1, अ-4.
13. कल्पप्रतीत्यादि भाष्यंत ज-2; कल्पयतीतित्यादि अ-4 प-1; कल्पप्रतीत्यिादि अ-1, अ-3.
14. अग्रजानत ज-2; अजानतः अ-4.
15. एकदेशिना ज-2, अ-1, अ-3.
16. प्रत्ययविधो प-1, ज-2.
17. पाठोऽयं प-1, अ-4; व्यपदेशिवद्भावाभाव ज-1, ज-2.

युध्यत इति प्राप्नोति॥35॥

ननु क्षियः (6.4.49; 8.2.46) इत्यादाविङ्कथमत आह-

सङ्ख्यादेरित्यत्र तद्भावात्तन्निषेधा[1] प्राप्त्या केवलस्यापि संख्या[2]दित्वे नासंख्यादेरिति[3] निषेधे पंचमाद्य सिद्धिरत[4] आह। **अत एवेति।** सर्व नाम्ना[5] बुद्धिस्थ[6] परामर्शकत्वेन वैय्यर्थ्यानुपपत्या[7] एतद्विषये व्यपदेशिव[8]द्‌-भावानाश्रयणा[9]देवेत्यर्थः। यद्यत्रव्यपदेशिवद्भावः[10] प्रवर्तेत[11] तदा केवलेपि निषेधे उदाहरणसंभवेन सूत्रवैय्यर्थ्यमित्याशयः[12]। अन्यथेत्यस्योक्तरीत्या[13] व्यपदेशिवद्भावा[14] प्रकृत्य[15] स्वीकारे इत्यर्थ[16] इतीद[17] सर्वं[18] मात्सर्यमुत्सार्य[19] विचार्य्यमार्य्यैरिति दिक्॥32॥

---

1. निषेधाप्त्या प-1.
2. संख्यादेरिति निषेधे इति पाठोपलभ्यते अ-4.
3. नोपलभ्यते अ-4; नासंख्यदेरिति ज-2, प-1.
4. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3; सिधिरत ज-1; सिधिरिति ज-2, अ-4.
5 सर्वनाम्ना ज-2.
6. बुद्धिःस्थ ज-2, अ-1, अ-4.
7. अनुपपत्याद्यं ज-2.
8. व्यपदेशिवाद्भावा ज-2.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-4; अनाश्रयणादेवेत्यर्थ ज-1, अ-1, अ-3.
10. प्रवर्त्तते अ-4.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4. उदाहरणीसाभवेन ज-1.
12. मूत्रे ज-2, अ-1, अ-3.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-3, अ-4; रीत्य ज-1.
14. व्यपदेशिवाद्भावा ज-2, अ-1, अ-3.
15. प्रवृत्य ज-2, अ-1, अ-3, अ-4. प्रवृत्यर्थ प-1.
16. इत्यर्थ ज-2.
17. इतीदं प-1; इतिदं ज-2.
18. मात्सर्यविचार्यमार्ये अ-1, अ-3.
19. सर्व ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.

प्रकृतिवदनुकरणं भवति॥36॥

'तोषसह[1]' 'सेऽसिचि[2]' इत्यादाविति आर्द्ध[3]धातुक स्येड् वलोदेरित्यतो बलादेरित्यनुवर्त्य प्रथमार्थकतीति सप्तम्यन्तस्य तदेक[4]देशवल् पदार्थे[5] विशेषणात्[6] तद् रुपो यो बल तदादेरित्यर्थ लाभ[7] इति निरूपितम्। यत्तु वृद्धया:[8] पूर्वोक्तार्थे[9] क्लेशं मन्वानास्तकारपरके छत्याद:[10] परस्यार्द्ध धातुकस्येडि त्यर्थेऽथात्तकारादेरित्यर्थः। लाभ इति व्याचख्यु:[11] तत्तुनादिन्या[12] क्रोशे पुत्रस्येति सूत्रस्थादिनी[13] शब्दे परे यः पुत्रशब्दस्तदवयवा चः परस्य[14] यरो न द्वित्वमित्यर्थः क्वाप्यदोषेपि आदिनी[15] शब्दे इत्युद्देश्यत्वात्प्राधान्येन-

---

1. तोधसह 7.2.48; तोधषसह ज-2, अ-1, अ-4; तोपसह प-1.
2. सं पाठ. सेऽसिचि 7.2.57; सेसिचि ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
3. 7.3.35.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4.
5. पदेकदेशवल् अ-3; पदार्थे ज-2, अ-1.
6. सं. पाठ., विशेषणात्तत्युरूपो ज-1; विशेषणात् रूपो ज-2; विशेषणात्तरूपो प-1; विशेषणातरूपो अ-1, अ-3; विशेषणतरूपरूपो अ-4.
7. लाभा अ-1, अ-3.
8. पाठोऽयं प-1; वृद्धा ज-1, अ-1, अ-3, अ-4; वुधाद्वा ज-2.
9. पाठोऽयं प-1, अ-4, पूर्वोक्तार्थऽकेशं ज-1; पूर्वोक्तार्थो क्लेशं ज-2; पूर्वोक्लेश अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3; छेत्यादे: अ-4; छत्यदे: ज-1.
11. व्याचख्य: ज-2; व्याच्यख्यु अ-1, अ-3.
12. तत्तुनादिभ्याक्रोशे प-1 ततनादिन्यां क्रोशे अ-1, अ-3; तत्तुनादित्याक्रोशे अ-4.
13. सूत्रस्थादिनो शब्दे परेष: पुत्रशब्द: ज-2; सूत्रस्थादिनि शब्दे य: पुत्रशब्द: प-1; सूत्रस्थादिनीशब्दे षरेय: पुत्र अ-1, अ-3.
14. परस्परो य द्वित्वमित्यर्थे अ-4.
15. आदिनि प-1.

क्षिय इतीयङ्निर्देशोऽस्या ज्ञापकः। तत्रैव प्रातिपदिकत्वनिबन्धनविभक्तिकरणादनित्या चेयमिति 'क्षियो दीर्घात्' (8.2.46) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्॥36॥

ननु रामवित्यादौ वृद्धौ कृतायां कार्य्यकालपक्षे कथं पदत्व-

पर[1] एव विशेषणमुचित इत्यर्थक शेखरेण तत्रत्य स्वोक्त्या[2] च प्रकृतेपि उद्देश्यत्वेनाद्र्ध धातुकस्यैव प्राधान्यात्तीत्यस्य[3] तद्विविशेषणत्वापत्तौ इच्छत्यादेः[4] परस्य तकार परकार्धधातु[5]कस्येडित्यर्थे एषितृतीती[6]र्षति कुलमिति तृजन्ते[7] तकार परक तृच[8] इडागम सिद्धावपि लुडन्त एषितेत्यत्र तकार[9] परकान्यार्द्ध धातुके चाव्याप्त्यति[10] व्याप्तिग्रस्तम्। यदि तीत्यस्य[11] प्रकृत्यंशे उत्थिताकांक्षत्वेन[12] तत्रैव विशेषणमित्यप्युच्यते[13]। तथापि तकारापरक इच्छत्यादेः परस्यार्द्ध[14] धातुकस्ये डित्यर्थे मूलोक्तरीत्यातदादिविधेरभावेन[15] नाव्यवधानमिति न्यायेनार्द्धधातुक। यवधानस्यासोढव्यत्वेन पूर्वोक्त सकल-

---

1. पर प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
2. पाठोऽयं प-1; स्वो तथा च ज-2, अ-1, अ-3.
3. प्राधान्यातित्यस्य प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
4. इच्छतीत्यादो ज-2, इछत्यादैः अ-1; इछात्यादेः अ-3; इध्वत्यादेः अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, परकाध्देधातुकस्ये ज-1; परकां धातुकस्ये ज-2, अ-1, अ-3.
6. पाठोऽयं अ-1, अ-3; एषितृतित्तीर्षति ज-1 एंधि लृतीतार्षति ज-2; एषितृतितीयति प-1.
7 लृजंतकार ज-2; तृजंतीते तकार अ-1; तृंजंजीते अ-3.
8. रडागम ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
9. तकार अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं प-1चाव्याप्तति ज-1.
11. उत्थिताकाक्षत्वेन ज-2, प-1, अ-1.
13. विशेषणमित्युपयुज्यते ज-2; विशेषणत्वमित्युच्यते प-1, अ-3, अ-4.
14. परस्यार्धधातुकव्यवधानस्य सोढव्यत्वेन पूर्वोक्त इति पाठोपलभ्यते प-1.
15. विधरभावेन ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.

मुभयत आश्रयणेऽन्तादिवत्वाभावाद्यस्माद्विहितस्तदादितदन्तत्वाभावादत आह-

एकदेशविकृतमनन्यवत्॥37॥

अनन्यवदित्यस्यान्यवन्नेत्यर्थः। तत्रान्यसादृश्यनिषेधेऽन्यत्वाभावः

दोषानुद्धारः। किञ्चतीत्यस्य प्रत्यय[1]ग्रहणस्याभावेन तथाकांक्षा यावक्तुमशक्यत्वाच्च। अव्यवहित तकारपरक इच्छत्यादेः[2] परमार्द्धधातुकं तकारादिरेवेत्याग्रहस्तर्हि मूलशैथिल्यमंगीक्रियताम्। तथाहि [3]अनयैव दिशा अव्यवहितवल् परकधातोः परस्यार्द्धधातुकस्येडित्यर्थेऽर्थाद्वलादेरेवेट् सिद्धावादि ग्रहणस्य[4] दत्त[5]जलाञ्जलित्वपातात्। तस्माच्छेखरोक्त प्रकार एक सम्यक्। इदमेव ध्वनयितुं[6]। वृद्धैरपि[7] वस्तुतस्त्वीति[8] तु रुचिबोधकः प्रयुक्तः। वस्तुतस्तु विशेषण विशे[9]ष्ययोः सप्तम्यन्तत्वे सत्येव तदादि विध्यंगीकारे गोत्रेऽलुगचीत्युत्तर सूत्रा[10]दचीत्यपकृष्य अनुवृत्ततद्धितस्य विशेषणे[11]ऽजादेस्तद्धितस्येत्यर्थप्रति[12]-

---

1. व्यवधानस्य ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
2. प्रयग्रहणस्याभावेन तथाकांक्षत्वेनतत्रैवविशेषणत्वमित्युच्यते तथापि तकारपकारकक्षाया- वक्तुमशक्यत्वाच्च इति पाठान्तरमुपलभ्यते प-1.
3. पाठोऽयं प-1; अनयौवदिशा ज-1; अनयौवटिशा ज-2, अ-1, अ-3.
4. ग्रहणस्य ज-2, प-1, अ-1, अ-2, अ-4.
5. जलंलित्वपातात् ज-2, जलांलित्वयांतात् अ-1, अ-3, अ-4.
6. ध्वनायुतं अ-1, अ-3, ध्वनवितुं अ-4.
7. वृत्धेरपि अ-1, अ-3; वृक्षेरपि ज-2; वृधैरपि प-1.
8. पाठोऽयं प-; वस्तुतस्वितितुररूचि ज-1, वस्तुतस्त्विततितुररूचि बोधक ज-2, अ-1; वस्तुतस्तितितुररूचि अ-3; वस्तुतस्तिवति तु रूचि अ-4.
9. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, अ-4 वस्तुतस्तु विशेविशेषणविशेष्ययोः ज-1; वस्तु वस्तु विशेषण प-1.
10. सूत्रादत्ययकृष्य प-1.
11. विशेषणेऽतादे ज-2, अ-1, अ-3.
12. प्रतिपादाक प-1; प्रातैपादक ज-2.

पादक द्विगोरिति[1] सूत्रस्थायादि[2]ग्रहणं च कर्त्तव्यमिहमाभूत पञ्च[3]गर्गरुप्यं यं च गर्गमयमिति भाष्येण कारनाम्नि[4] च प्राचां[5] हलादौ एक हलादौ पूरयितव्ये[6]ऽन्यतरस्यामिति सूत्रस्थादिग्रहणेन च विरोधाच्चिन्त्यमिदम्। न चावी[7]त्यपकर्षे[8] येनविधिस्त[9]दन्तस्य तद्वहतीति सूत्रस्थ द्विरथेत[10]स्येदमित्यधि कारविहित[11] यत्तो लुक् भाष्यसंमतो न स्यादिति वाच्यम्। वा[12]ग्रहणमनुवर्त्य भाष्य[13]तात्पर्य विषयीभूतं व्यवस्थितविभाषां[14] चाश्रित्य समाधातुं[15] शक्यत्वात्। अजादि[16] ग्रहणञ्च कर्त्तव्यमिति भाष्यविरोधेनाचीत्यनपकृष्यान्यत्रानभिधानं चाश्रित्य[17] व्याख्यानं[18] तु न युक्तं उभयोः सप्तम्यन्तत्वे एव प्रवृत्तिरित्यत्र

---

1. द्विगोरति ज-2; द्विगौरति अ-3; द्विगौरिति अ-1.4. सूत्रस्याजिदि ग्रहण प-1.
2. सूत्रस्याजिदि ग्रहण प-1.
3. पंचर्गमयमिति भाष्येकारनाम्नि च इति प-1; पंचगर्गरूपां च अ-3; पंचगर्गरूपां च अ-3; पंचगर्भरूप्यं पंचमगर्ममर्यमिति अ-4.
4. नाम्नि त्वं अ-1, अ-3.
5. प्राचां हठलादौ ज-2, अ-1, अ-3.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4., पूरणि त्तप्येऽन्यतरस्यामिति ज-1, अ-3.
7. चावारोधाच्चित्यमिदम् ज-2, अ-1, अ-3.
8. न चा वित्युपकर्धे प-1; नच चात्यपकर्षे अ-4.
9. येनविस्तदंतस्य ज-1, अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4 द्विरर्थतस्येदं ज-1.
11. विहिततोयलुभाष्यं समतो न प-1, अ-1.
12. पाठोऽयं प-1; वाग्रहमनुवर्त्य ज-1, वारग्रहणम् ज-2, अ-1, अ-3.
13. भातात्पर्य प-1.
14. भाषां ज-2, अ-1, अ-3.
15. चाशक्यत्वात् प-1; समाधातु ज-2, अ-1, अ-3.
16. अतादि ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
17. वाश्रित्य ज-2.
18. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4; व्यानं तु न ज-1; चाश्रित्यख्याव्योनं तु न अ-3.

भाष्य[1]न्तूदासीनं किञ्च ङ्मोह्रस्वादिति सूत्रस्थ पदावयव[2] ङ मः परस्याचिङ[3] मुदिति भाष्यानुरोधेन पूर्वत्रापि विशेषण[4]विशेष्यभावव्यत्यासेन पदा[5]वयवस्य धुडित्यर्थ एव उचितः[6] अत एव शेखरे वैय्यधिकरण्य[7]मेवाश्रितम्। उञिच[8] पदे इति पद ग्रहणन्तु नात्र संबध्यते। ङ्मोह्रस्वादचीत्युत्तरसूत्रे एव प्रयोजन[9]कथन परभाष्यादिति उञि च पदेति सूत्रे शेखरे स्पष्टमिति सुमनीषि[10]भिरालोच्यम्। यदि क्वचित्तदादि[11] विधिरनिष्टस्तदा प्राचां हलादेरित्याद्यादि[12] ग्रहणादेतत् परिभाषाया अनित्यत्वा[13]श्रयणेन परिहरणीयः। अत्रत्य ग्रन्थस्तु[14] प्राचामनुरोधेनेति[15]। **इयञ्चेति।** चकारेण[16] मूलकृतैव सूचित[17]मिति दिक्।

---

1. पाठोऽयं अ–1, अ–4; भाष्यन्तुदासीनं ज–1; भाष्यतृदासीनं ज–2, अ–3.
2. पदावयवस्य धुडित्यर्थ ए उचितः इति पाठान्तरम् प–1; पदाव्यवङमः ज–2, अ–1, अ–3; पदावय उचितः अतएव शेखरे वैय्याधिकरण्यमेवाश्रितं इति पाठोपलभ्यते अ–4.
3. परस्य चोङमुङिति अ–1, अ–3; परस्यवोङ सद्धिति ज–2.
4. विशेषणरवशेष्यभाव अ–1, अ–3.
5. पदावयवस्थ ज–2, प–1.
6. उनीतः ज–2; उचोतः अ–1द्व अ–3.
7. वैयविकरणम् ज–2, वैय्यधिकरण्यम् अ–1, अ–3.
8. उनिवचपदे अ–1, संवध्यत अ–1, अ–3, प्रयोजनं ज–2, अ–1, अ–3, अ–4 प्रयोजनं प–1.
10. सुमनामीशलोच्यं ज–2; सुमनिपि भिरालोच्यं प–1; सुमुनीमीरालोच्यं अ–1, अ–3.
11. पाठोऽयं प–1; क्वचिदादिविधिः ज–1, ज–2, अ–1, अ–4.
12. पाठोऽयं अ–1, अ–3, अ–4; हलादेरित्यां द्यात्द्यदिग्रहणदेतत् ज–1; हलादेरित्यादि प–1.
13. अनित्यत्वान्नयणो न परहिणीयः ज–2; अनित्यत्यश्रयणेन परीहभूणीयः प–1; गंन्थंस्त ज–2, अ–1, अ–3, अ–4.
15. पाठोऽयं अ–4; अनुरोधिनेति ज–1, ज–2, अ–1, अ–3; हनुरोधेनेति प–1.
16. मृलकृतैय ज–2, अ–1, अ–3; मूलकृतैधसूचितं अ–4.
17. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–3, अ–4, प–1; सूत्रचितमिति ज–1.

यद्वा ननु अल्बोधकविशेषण[1]वाचकसप्तम्यन्ते[2] एतत्परिभाषा प्रवृत्तावपि विशेष्य[3]वाचके किं समान[4] विभक्तिकत्वमुत विभिन्न विभक्तिकत्वं नियतमित्यत आह-**इयं चेति**, सप्तम्यन्त एवेत्य[5]स्याग्रे प्राये[6]णेति शेषः। शेष पूरण[7]फलन्तु द्विगोरिति सूत्रस्थ[8] भाष्यविरोधपरिहारः। ननु विभक्तिकस्थलेपिपरिभाषाप्रवृत्तौ डःसिधुटीत्यादावति प्रसंग[9] इत्यत आह। **तैनेति**। तच्छब्दस्य बुद्धिस्थ[10] परामर्शकत्वात् तेनेत्यस्य विशेषण विशेष्यभाव[11] व्यत्यासे पदावयवस्ये[12]त्यर्थे नेत्यर्थः। नन्वेव[13]मपि विभक्तावेतत् अप्रवृत्तौतीषसहेत्यादावेतत्प्रवृत्यैव तादेरित्यर्थलाभेतत्संपादकतत्सूत्रस्थशेखरविरोध इत्यत आह। **तीषसहेति**[14]। शब्देन्दुशेखरे वान्तो[15]यीति सूत्रे तस्मान्नु[16]-

1. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, अ-4; अलबोधक विधेशेषर्णवाचक ज-1; बोधकं प-1.
2. सस्यंते ज-2, सत्यंते अ-1, अ-3; संस्यते अ-4.
3. विशषवाचके प-1.
4. कि समाधान विभक्तिभ्कत्वं नियतमित्यत आह इति प-1 मातृकायां पाठः.
5. एकेत्यस्याग्रे प-1.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; पायेणेत्ति ज-1.
7. पूरणं फलं अ-1, अ-3; पूर्वणफलं अ-4.
8. सूत्रस्थ ज-2, अ-3.
9. प्रत्यंग ज-2, अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; वुद्धिपरामर्श ज-1.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4; व्यत्यासि ज-2; व्यत्यासै अ-1, अ-3; विशेशण विशेमालव्यत्यासेज ज-1.
12. पाठोऽयं ज-2; पदावयवस्यैत्यर्थे ज-1, अ-1, अ-3; पदावस्येत्यर्थे प-1, अ-4.
13. नन्वेमपि विविभक्तितावेत ज-2, अ-1, अ-3, प-1; नन्ववमपि विभक्तावेतत् अ-4.
14. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4; तोष सहतीषसहेति अ-3; तोषेसहति ज-1.
15. वान्तोपि प्रत्यये इति ज-2, प-1, अ-3, अ-4.
16. पाठोऽयं प-1; तस्मन्नडची ज-1; तस्मान्नङचोत्या ज-2, अ-3.

सुतराम्। अत एव तादृशादर्थबोधः। अन्यथा शक्ततावच्छेदकानुपूर्व्य-ज्ञानात्ततो बोधो न स्यात्। एवं च रामिति मान्तस्य यस्माद्विहितस्तत्त्वम्

डचीत्याद्यर्थमावश्य[1]कयेत्यादि पद ग्राह्यत्वेन निरूपितम्। **तीषसहेति**[2] सूत्रस्थ शेषरस्तु[3] प्रौढयेति न क्वचिच्छंका पंककलंक[4] लेशोपीति इति संक्षेपः। अत्र पक्षे[5] प्राचां हलोदेरित्याद्यादि ग्रहण[6] स्पष्टार्थम्। एतेन वस्तु[7]तस्तु वल्यार्द्धधातुकस्येत्युच्यमानेंगाक्षेप पूर्वकं षष्ठी प्रकल्पनया यावत् सामानाधि[8]करण्यावगमेन तदादि ग्रहणं प्राप्तं ततः पूर्वमेव तस्मिन्नित्यनेन वलि[9] परे यदार्द्धधातुकं तस्येङी[10]त्यर्थ प्रसंगाद्भविष्यतीत्यादावेव स्यान्न तु भवितेत्यादा[11]विति कथ[12]मादिग्रहणवैय्यर्थ्यशंका[13]। तीषसहेत्यादौ तु साक्षात्पंचम्यन्तोपादानादेव[14] न दोषः। यदपि अत्र परिभाषायां ज्ञापकमुक्तम्। तथापि द्युमास्थेत्यत्र हलीति[15] सप्तम्यन्तेनापि विशेषणे न चेत्त[16]दन्तविधि

1. पाठोऽयं अ-4; आवशियकये त्यादि ज-1, ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
2. तोषसहसेति ज-2.
3. शेखरस्तु अ-1, अ-3.
4. पाठोऽयं प-1, न कश्चित् धक कलंककलेशोपिति ज-1, ज-2, अ-4; प्रौढर्यति न कच्चिच्छंक कल्पलं कलेशोपीति अ-1, अ-3.
5. पेक्षे प्राचां अ-1; पेक्षेपाचां अ-3.
6. ग्रस्तणं स्पष्टार्थं अ-1 छादिग्रहस्तगं स्पष्टार्थं अ-3.
7. वस्तुस्तु ज-2, अ-1, अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, अ-4; समानाधि ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
9. वलपरे प-1.
10. तस्येडित्यर्थ प-1; तस्येदुरत्यर्थ ज-2.
11. भवित्यादावितिक प-1.
12. आदिपहण अ-1, अ-3.
13. शंक अ-1, अ-3, अ-2.
14. उपादाना दोषः ज-2; उपादानां दोषाः अ-3; उपादानां दोष अ-1.
15. हसीती ज-2; हलि हि प-1; हलीती अ-3.
16. चेतविधिस्तदाल्यपिपरतः ज-2, अ-1, अ-3; चेत्तदतविस्तदादिल्यप्यापि प-1, ज-2, अ-1, अ-3; परत्वं न.

औ इत्यस्य परादिवत्त्वेन सुप्त्वमिति तदादितदन्तत्वमार्थसमाजग्रस्तम्। छिन्नपुच्छे शुनि श्वत्व व्यवहारवन्मान्ते तत्त्वं लोकन्यायसिद्धम्। अत एव 'प्राग्दीव्यतः' (4.1.83) इति सूत्रे भाष्ये दीव्यतिशब्दैक-देशदीव्यच्छब्दानुकरणमिदमित्युक्त्वा किमर्थं विकृतनिर्देशः? एतदेव ज्ञापयत्याचार्य्यो भवत्येषा परिभाषैकदेशविकृतमनन्यवदित्युक्तम्। एतेनायं न्यायः शास्त्रीयकार्य्य एव शास्त्रीयविकार एवेत्यपास्तम्। विकृतावयव-निबन्धनकार्य्ये तु नायम्, छिन्नपुच्छे शुनि पुच्छवत्त्वव्यवहारवद्विकृता-वयवव्यवहारस्य दुरुपपादत्वात्। एवमक्तपरिमाणग्रहणेऽपि नायम्, उक्त युक्तेः। एतन् 'येन विधिः' (1.1.72) इत्यत्र भाष्यकैयट-योर्ध्वनितम्। यत्र त्वदर्घं तदधिकं वा विकृतं तत्र जातिव्यञ्जक-भूयोऽवयवदर्शनाभावेन तत्त्वाप्रतीतौ कार्य्यसिद्ध्यर्थ विकृताद्वलरुपा-वयवत्वप्रतीत्यर्थं च स्थानिवत्सूत्रम्। कचित्तु लक्ष्यानुरोधान्न्यायानाश्रयणम्। तेनाभीयादित्यादिसिद्धिः।

स्तदाल्यप्यपि परत[1] इत्वं न प्राप्नोतीति तन्निषेधक[2] नल्यपीतिव्यर्थ[3] सतज्ञापकम् एवं च तदादिविधेरभावेपीतवानित्यादौ[4] हलंते एव इत्वं स्यान्नपीत[5] मित्यादाविति तदादिविधिसत्वे तु न दोष इति वदताङ्कैप्यटानुयायिना[6] कोहल[7]निर्भरः प्रशमितः। किञ्च[8] इड्विधायक स्यांगाधिकार[9]स्थत्वेन तस्याक्षये किम्वीजमिति रहसि प्रष्टव्यत्वाच्च। किञ्च तदुक्तं ज्ञापकत्वमपि न सम्यक्। ल्यपि

---

1. पाठोऽयं प्राप्नोतीति ज-1.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; तन्निषेध नं ज-1.
3. व्यर्थे ज-2.
4. पीतवासान्नित्यादौ प-1.
5. स्यान्नपीतिमित्यादाविति प-1, अ-1, अ-3.
6. अनुयायिना अ-1, अ-3, अ-4.
7. कोलाहलं प-1.
8. किंचेड् विधायक ज-1, अ-3; किं चेउ निवायकः ज-2.
9. अधिकार स्थलेन ज-2, अ-3, अ-4, प-1.

परत[1] इत्व विधिप्रवृत्ति ज्ञापनेनाजन्ते किति[2] क्वचिदित्व प्रवृत्ति ज्ञापनेन तत्सार्थक्यस्य वक्तुं शक्यत्वात्[3]। अत एव भगवता ज्ञापकत्वं नोक्तम्। अत एव मूलकृता च वाचनिकेषु[4] इत्युक्तमिति दिक्॥33॥

कार्यकाल पक्षे कथमिति। यथो[1]द्देशस्याप्युपलक्षणमिदम्। तत्रापि पदत्वस्यात्तिदेशे[2] नैव वाच्यत्वात्। ननु अपादानमुत्तराणि कारकाणि[3] बाधन्त[4] इत्याकडारीयभाष्यानु[5]सारात्तदधिकारपठित[6] संज्ञासु यथोद्देशपक्षस्यैवसिद्धान्त[7] संमतत्वेन स्वैनापि पूर्वं तथैवानुदितत्वेन[8] च कार्य्यकाल[9]पक्षोपक्रमेण शंका[10]ऽसंगतेति चेन्न। भाष्यस्य विशेषविषयत्वेन तत्रादोषात्[11]। तथाहि तदधिकारपठितं यत्र[12] संज्ञाद्वयं प्रसक्त[13] तत्रैव सनियमः अत एव तत्र तत्र भ पदसंज्ञा[14] विषये तु इति संज्ञा द्वयोल्लेखः[15] संगच्छते[16]।–

1. क्ङिति प–1.
2. क्ङिति प–1.
3. शक्यत्वाच्च अ–4.
4. सं. पाठः; वाचनिक्येषेतयुक्तमिति ज–1; वाचक्येषेत्युक्तम् प–1.

1. यथोदेशस्याप्युप लक्षणणं इदम् प–1.
2. पदतवस्यादतिदेशेनैव अ–3; यदतवस्पादिशतिदेशेनैव अ–4.
3. कारकानि प–1.
4. वाधंते अ–4.
5. भाष्यनुसारातदधिकार ज–2, अ–1, अ–3.
6. पठितं यत्र संज्ञा द्वयं प्रसक्त इति अ–4 पुस्तके पाठः.
7. सिद्धांसंमत प–1.
8. तथैवातुदितस्वेन अ–3.
9. कार्यकाल ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4.
10. शंकासंगतेतिचेत्र प–1, अ–1, अ–3, अ–4.
11. तत्र दोषात् ज–2.
12. यज्ञैत्र संज्ञाद्वयं ज–2.
13. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–3, अ–4; प्रसक्तुं अ–1.
14. तत्र तत्र उभय पद संज्ञा विषयं तु अ–4.
15. द्वयोलेखेः प–1.
16. सं. पाठः, संगच्छते ज–1, ज–2, प–1, अ–3, अ–4.

यथा राज्ञ[1] इत्यत्र नलोपस्यासिद्धत्वात् पूर्वमल्लोपोऽन इति लोपे पश्चात्प्राप्त न लोपैकवाक्यतापन्न[2]पदत्वस्य तदेकवाक्यतापन्न भत्वेन[3] बाधायोगान्न लोपापत्तिः। भाष्योदाहरणत्तथैव लाभाच्च। वस्तुत[4]स्तत्र भपद-

संज्ञा विषये[5] यथोद्देश[6] पक्ष एवेत्यत्र मानाभावः। न चोक्त[7] भाष्यमे[8]वमानं तस्यान्य[9]थासुयोजत्वात्। तथा हि अग्नी इतीत्यत्र प्लुते कृते कार्य[10]कालपक्षे प्रगृह्यसंज्ञाया अणो प्रगृह्यस्येत्येतदेक वाक्यतापन्न[11]त्वेन तद् दृष्ट्या प्लुतस्या[12]सिद्धत्वेन सूत्रे[13] त्रिमात्रस्याग्रहणाद प्रगृह्यत्वे अनुनासिक-प्रवृत्ति भियालक्ष्यानुसारि यथोदेश[14]पक्षावलंवकं ईदूत्सूत्र[15]स्था भाष्यवत् प्रकृते[16]पि तस्यैवांगीकारात्[17]। एवं च सर्वथा कार्य्यकालपक्षाभाव बोधनं तु

---

1. रज्ञा इत्त्रत्यनलोपस्या सिद्धत्वात् प-1.
2. वाक्यतापन्नम् प-1; वाक्यतापत्तुपदत्वस्य अ-1, अ-3 वाक्यतापन्नत्वेनवाधा.. .ए इति अ-3. पाठोपलभ्यते.
3. भत्येन अ-3.
4. वस्तु तत्र सभ पद ज-2, अ-1, अ-3; वस्तुतस्तु तत्रत्य भ पद प-1; वस्तुतस्तत्र भय पद अ-4.
5. विषयो ज-2.
6. यथौद्देश ज-2, अ-4.
7. चोक्तं प-1.
8. मानां ज-2, अ-1, अ-3.
9. तस्यांन्यथा ज-2, अ-3.
10. कामकालपक्षे अ-4.
11. वाक्यता यत्रत्वेन ज-2, अ-1, अ-3.
12. प्लुतस्यरसिद्धत्वेन अ-1, अ-3.
13. सूत्रे मात्रस्याग्रहणाद् ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
14. यथोद्देश ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
15. इदत् ज-2, अ-4.
16. प्रकृतैपि अ-4.
17. पाठोऽयं अ-4; तस्यैवांगीकारोकारात् ज-1, ज-2; तस्यैवांगिकारात् प-1; तस्यैवांगोकोरोकारात् अ-1, अ-3.

न किंचिदेतत्[1]। अत एवाथादिवत्वे कानि प्रयोजनानि[2] इत्युपक्रम्य सुप् तिङादिषु[3] विधिषु प्रयोजनमिति[4] वार्त्तिक व्याख्या[5]वसरे-

वृक्षेतिष्ठतीति सुप् विधिमुदाहृत्य कार्यकालपक्षे पदत्वप्रतिपाद-कान्तादिवत् सूत्रस्थ भाष्यं संगच्छते[6]। संगच्छते च भाष्यानुवादक आदेश[7]प्रत्यययोरिति सूत्रस्थ शब्दरत्नश्च न चाकडाराधिकारस्थ[8] पदसंज्ञा विषयेत्यादि पूर्वग्रन्थ[9] विरोधः। शेखरविवरणादि[10] विरोधश्चेति[11] वाच्यम्। तत्र एव स्य[12] भिन्न क्रमिकत्वमंगीकृत्य विषये इत्यस्यानंतरं योजनादोषात्[13]। एवञ्च यत्र संज्ञाद्वयं प्रसक्तं[14] तत्रैव सनियम इत्याशयः। द्वितीये[15] तु विषये[16]त्वित्यस्यानंतरं लक्ष्यानुरोधेन प्राय इति शेषो बोध्यते। **इति तत्त्वं।**

---

1. किंविदेतत् ज-2, अ-1, अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; प्रयोनानि इत्यपक्रम्य ज-1.
3. पाठोऽयं प-1; सुप् तिङ्गाविधिषु ज-2, अ-1, अ-3, अ-4; सुपितिङ्डाविधिषु ज-1.
4. प्रयोजनामिति अ-4.
5. व्यावसरे प-1, अ-4.
6. पाठोऽयं प-1; भाष्यसंगछते ज-1, ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
7. आदेश प्रत्ययोरिति ज-2, अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3, अ-4 वाकडाराधि ज-1.
9. पूर्वग्रन्थाविरोधः अ-4.
10. विचरणादि.
11. एव ख्यभिन्नम् प-1 एव स्य भिन्नकमकित्वम् ज-2; क्रमीकतवं अ-3; क्रमोकत्व संगीकृत्ये अ-4.
12. प्रयोजनेनादोषात् अ-4.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
14. द्वितीये प-1.
15. पाठोऽयं ज-2, प-1; विषयत्विस्यानंतरं ज-1; विषयितुत्यस्यानन्तरं अ-3; विषयेत्वेत्यस्यानंतरं अ-4.
16. पाठोऽयं प-1; बोध्य ज-1, ज-2; शषो बोध्य अ-1, अ-3 बाध्य अ-4.

स्पष्टं च काचिन्न्यायाप्रवृत्तिः प्रथमयोः पूर्वसवर्णः (6.1. 102) इत्यत्र कैयटेन दर्शितेत्यन्यत्र विस्तरः॥37॥

इति शास्त्रत्वसम्पादनोद्देशं नाम प्रथमं प्रकरणम्।

इदं सर्वं कार्यकालपक्षे इति वदता मूलकृता बोधित[1]मिति दिक्। **उभयत आश्रयण इति।** ननुवति घटित शास्त्रस्याहार्यारोप[2]बोधकत्वेन तस्य च विरुद्ध[3] विषयस्यापि युगपत्संभवेनांन्तादिवत्सूत्रे यथाद्वयोरेकः प्रेष्यो भवति। ताभ्यां[4] युगपद्भिन्नदेशे प्रेषितोऽविरोधार्थे[5]। कस्यापिकार्यं न करोति[5] इति लोकन्यायसिद्धममु[7]न्यायमुक्तादनुदाहरणे च न पदान्तादि[8] सूत्रस्थ[9] भाष्योल्लिखिते न्याये[10] एकदेश्युक्तित्वं स्वस्याभिमतमिति कथं तदुल्लेख इति चेन्न। येषां क्वापि इति न्यायेनास्य प्राचीनानुसारित्वात्। वस्तुतस्तु उपसर्गस्यायताविति सूत्रेऽयति[11] परस्योपसर्गावयवस्य रेफस्य[12] लत्वमित्यर्थे[13] प्लायत इत्यादावेकादेशे[14] कृते व्यपदेशा भावाल्लत्वं न स्यादिति शंकितेतत्रैक

---

1. बोधितमिरति दिक् ज–2, अ–1, अ–3.
2. आहायारोप प–1.
3. विरल ज–2.
4. द्वाभ्याम् ज–2, प–1.
5 ऽविरोधार्थी ज–1, प–1, अ–1; ऽविरोधार्थे अ–3.
6. कराति प–1; न करो इति अ–3.
7. सिद्धमुन्याय अ–4.
8. पदातादि ज–2, अ–1, अ–3; पदांतादिति अ–3, प–1.
9. सूत्रस्य अ–4; सूत्रे प–1.
10. न्यायेन अ–3.
11. सूत्रेक्षपति अ–4.
12. रेकस्थ ज–2; रेकस्य अ–1, अ–3; सर्गायवस्य रेफस्य प–1.
13. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1; लत्वमित्यथै प्लायत ज–1; लत्वमित्यर्थेदनायत अ–3, लत्वमित्यथ्रे प्लावतो अ–4.
14. एकादशे प–1.

अथ बाधवीजन्नाम द्वितीयं प्रकरणम्।

पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः॥38॥

पूर्वात्परं बलवत्। विप्रतिषेधशास्त्रात्पूर्वस्य परं बाधकमिति यावत्॥38॥

दैशिनांतादिवद्भावेन उपसर्गा[1] इत्युत्तरिते परणैक[2]देशिनोभयत इति निषेध[3] इत्युक्ते अचः परेति स्थानिवद्भावात् व्यपवर्ग[4]साधकसिद्धान्त भाष्येणांतादिवद्भावेन[5] व्यपवर्गाभावबोधानादपदत्वे प्रकृतोदाहरणे[6] तदभावसाम्य[7]मादायोभयत इत्यस्योल्लेखो न तु वस्तुतस्तदाश्रयणे[8]नेति बोध्यम्। **विकृतावयवेति।** पचत्वित्या[9]दाविति भावः। **एवमक्तेति।** सर्वकादाविति भावः। अत एव भाष्ये यन्मध्येति[10] न्यायेन सर्वादित्वमुक्तं तदेव भाष्यमाह एतद् येनेति॥37॥

॥इति शास्त्रत्वसम्पादनोद्देश नामक प्रथमं प्रकरणम्॥

---

1. पाठोऽयं प-1; व्ययवणो ज-1, ज-2; व्ययवगीरसूत्तरिते अ-1, अ-3; व्ययवगो इत्युरिरते अ-4.
2. परेणेकदेशि अ-3; वर्णकद्वेशिनो अ-4.
3. नाऽस्ति प-1.
4. व्यपवर्ग अ-1, अ-3.
5. अन्तादिवद्भाव निबन्धन प-1.
6. प्रकृतौदहरणे ज-2, अ-1, अ-3.
7. तदभाव सप्तम्यमादायो ज-2; तदभावसाम्यमादेयो भयत अ-3.
8. तदाश्रयेणेनेतिति भावः अ-4.
9. पचत्वत्याविति प-1.
10. न्यान्येन प-1.

नन्वेवं 'भिन्धि' (भिन्तात्) इत्यत्र परत्वात् तातङा बाधितो धिः। न स्यादत आह-

पुनः प्रसङ्गविज्ञानात्सिद्धम्॥39॥

अथ बाधबीजन्नाम द्वितीयं प्रकरणम्

नन्वेवं भिंधीत्यत्रेति। नन्वेयं भिंधकीत्यत्र परत्वा[1]धिनावाधितोऽकज् न स्यादिति[2] पाठः। अत एव अचश्चेति[3] सूत्रस्थ यत्र हि पूर्वोविधिः। परं न बाधते तत्र पुनः प्रसंग विज्ञानमिति। कैय्यटस्थ[4] यत्र हीति[5] प्रतीक[6]मादाय यथा भिंधकीत्यत्र परत्वाद्धौ कृतपुनः[7] प्रसंगविज्ञानाद[8]कच इति विवरणं संगच्छते[9]। एतेन सकृद् गतिन्यायाश्रयेण भिंधीत्यत्र परत्वात्तातङाबोधितोधि र्नस्यादिति शेखरोक्तमिष्टापत्तिग्रासान्स्थानिवत्सूत्रभाष्या ननु गुणत्वाच्च[10] बाल[11]प्रतारणमात्रमिति मंतव्यं भिंधीत्यादेस्तातङ् भावपक्षे सिद्धत्वादिति दूषयन्तः[12] कैयटानुगावाल[13] प्रतारणाविषयत्वं प्रापिताः॥39॥

---

1. परत्वाहिनावाधितेऽकज् प-1; परत्वात्विनात्वधित्तोकजत्न ज-2; परत्वात्धि नात्वाधितेऽकतु न अ-1, अ-3; भिधंकीत्यत्रे यत्वाधिनावाधितेऽकच न अ-4.
2. स्यादि अ-1, अ-3.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; अश्चेति ज-1.
4. कैटस्थ ज-2, अ-1; कैटस्य अ-3; कैयटस्थ अ-4; कैयटस्य प-1.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4; होति ज-1; यत्राहीति अ-3.
6. प्रतिकमुपादाय प-1.
7. परत्वातादौ कृते ज-2; परत्वात्धौ कृतै अ-1; पाठोपलभ्यते प-1 मातृकायां अतः परत्वाद्धौ इत्यारभ्य भिंधोत्यत्र इत्यन्तं नाऽस्ति प-1 मातृकायां.
8. विज्ञाना इकत्व इति ज-2; विज्ञाना इकच् अ-1, अ-3.
9. पाठोऽयं अ-4; संगछते ज-1.
10. गणत्वाच्च अ-4.
11. बालप्रतारणमिमंतव्य ज-2, अ-1, अ-3; कैटानुणावालप्रतारणविषयत्वं प्रापिताः इति प-1.
12. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3; दूषणयन्तः ज-1; दूषषंतः अ-4.
13. कैयटानु मावालप्राप्तरणाविषयत्वं ज-2.

नन्वेवं तिसृणामित्यत्र परत्वात्तिस्त्रादेश पुनस्त्रयादेशः स्यादत आह-

सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद्बाधितं तद्बाधितमेव।।40।।

लक्ष्यार्थयोरिति। लक्ष्योपकारयोरित्यर्थः[1]। परस्परा समभिव्याहारेणान्यत्र[2] लक्ष्ये चरितार्थयोरिति भावः। अत एव दृष्टान्तेऽपि अन्य[3]कार्यकारणेन तोषितयोः[4] स्वामिनो भृत्यः कस्मिश्चि[5]द्विरोधे कार्यं न जनयतीति संगच्छते[6]। एवं चात्रापि विरोधात्तन्न स्यात्तदेवाह। **क्वचिल्लक्ष्य[7]** इति। अनेन न[8] चरितार्थसूत्रयो[9]र्युगपत्प्राप्तिः किन्तु एकत्र पूर्व दृष्टान्तः परत्रान्य इति सूचितम्। न **जाति पक्षे** इति। ननु जाति पक्ष इति वदताप्राचासर्वलक्ष्यविषये[10] कत्वमन्त[11]राजातिपक्षस्यैव वक्तुमशक्यतया कथं न सर्वलक्ष्यविषय-कत्वमिति चैत्सत्यम्। अन्यत्र चरितार्थयोर्यादृशलक्ष्ये उभयोः[12] प्राप्तिस्तल्लक्ष्य-स्याप्येतद्विषयान्तः याति[13]त्वात्तन्निर्मोकेनान्यत्र प्रवृत्ते र्वक्तुमशक्यत्वादित्याशयात्।

---

1. पाठोऽयं प-1; लक्ष्योपवादरकयोः ज-1; लक्ष्योपचारकऽसौरित्यर्थः ज-2, अ-1, अ-3; लयोपवादक अयौरित्यर्थः अ-4.
2. समभि व्याहारेणेत्यर्थः प-1.
3. श्रमकार्यकारिणेन ज-2, अन्यका कार्यरणेन प-1; अन्यकार्याकारणेन अ-4; तोषितायोः अ-1, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3; कस्मिश्चिरोधे ज-1, अ-4.
6. सं. पाइः, संगछते ज-1, ज-2,
   प-1, अ-1, अ-3, अ-4; प्रतितिः संगछते इति पाठान्तरं प-1 पुस्तके.
7. क्वचिल्लक्ष इति अ-4 क्वविल्लक्ष्य अ-1 अ-3.
8. 'न' नोपलभ्यते प-1, अ-3, अ-4.
9. सूयोर्युगपत अ-1, अ-3.
10. विषयकत्वम् ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
11. अंतरो प-1.
12. उभयोः नाऽवलोक्यते प-1.
13. विशेषतः यायातिज्वात्तन्निमोकेन प-1; धातित्वात्र ज-2; विषर्यता यातित्वात् अ-4.

तत्र क्वच्चिरितार्थयोरेकस्मिन् युगपदुभयोः कार्ययोरसम्भवेन बाधकाभावात्पर्यायेण तृजादिवच्छास्त्रद्वयप्रसङ्गे नियमार्थं विप्रतिषेध-सूत्रमिति सकृद्गतिन्यायसिद्धिः।

यथा- तुल्यबलयोरेकः प्रेष्यो भवति, स तयोः पर्यायेण कार्यं करोति। यदा तमुभौ युगपत्प्रेषयतो नानादिक्षु च कार्यं तदोभयोर्न करोति योगपद्यासम्भवात्। तथा शास्त्रयोर्लक्ष्यार्थयोः क्वचिल्लक्ष्ये योगपद्येन प्रवृत्त्यसम्भवादप्रतिपत्तौ प्राप्तायामिदं परविध्यर्थं, तत्र कृते यदि पूर्वप्राप्ति स्तदपि भवत्येवेति पुनः प्रसङ्गविज्ञान सिद्धिरिति विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये स्पष्टम्।

तत्र[1] पक्षे उद्देश्यतावच्देदका वच्छिन्ने प्रवृत्तेरभ्युपगमात्तदेव[2] दर्शयति[3]। **न ब्राह्मणेत्यादिना।** शास्त्रोक्तमिति। येन वाक्येनैकेन[4] द्रव्यालंभः[5] कृतस्तेन-

वाक्ये[6]नान्यालंभे अशास्त्रोक्तम्। भिन्नवाक्येनान्येनालंभे तु शास्त्रोक्त[7]मेवेति बोध्यम्। अत एवनैकः पूर्वपरयो[8]रिति। अत्रस्थो गैरिको शुद्धसूत्रस्थ भाष्यविरोध इति ध्येयम्। **न कल्पयतीति।** शास्त्रद्वयमपि न **कल्पयतीत्यर्थः।** एतेन तन्मतेऽपि **पूर्व शास्त्रानु[9]पप्लव** एवेति इदमयुक्तमिति न शंकाकलङ्कः। एवं भिंधीति। अत्रत्यं तत्वं पूर्वमुक्तम्॥40॥

---

1. यत्र पक्षे अ-4.
2. अभ्युपगमातेदेव ज-2, प-1ख अ-1, अ-3, अ-4.
3. पाठोऽयं अ-1, अ-3, अ-4; दृशेयति ज-1; दर्शेयति ज-2; दर्शय प-1.
4. येनवाक्येनैकेन प-1; येनवाक्येनैकेनैकेन अ-4.
5. द्रव्यारंभः ज-2.
6. वाक्येन्येनान्याल्लंभे ज-2; वाक्येन्येनान्यलंभे अ-1, अ-3; वाक्येनान्येनान्यालंभे प-1; वाक्येऽनान्यालंभे अ-4.
7. शाक्तमेवेति ज-2, अ-1, अ-3; शाक्तमैवेति अ-4 पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-3, अ-4.
8. पूर्वपरयोरिति ज-1.
9. शास्त्रावपस्नवं ज-2; प्लवं अ-1, अ-3.

यत्तु कैयटादयो व्यक्तौ पदार्थे प्रतिलक्ष्यं लक्षणोपप्लवादुभयोरपि शास्त्रयोस्तत्तल्लक्ष्यविषययोरचारितार्थ्येन पर्यायेण द्वयोरपि प्राप्तौ परमेवेति नियमार्थमिदमिति सकृद्गतिन्यायसिद्धिः। अत्र पक्ष एतन्नियमवशादेतल्लक्ष्यविषयकपूर्वशास्त्रानुपप्लव एव। जातिपक्षे तूद्देश्यतावच्छेदकाक्रान्ते क्वचिलक्ष्ये चरितार्थयोर्द्वयो : शास्त्रयोः सत्प्रतिपक्षन्यायेन युगपदुभयासम्भवरूपविरोधस्थलं उभयोरप्यप्राप्तौ परविध्यर्थमिदमिति पुनः प्रसङ्गविज्ञानसिद्धिरित्याहुस्तन्न। व्यक्तिपक्षे सर्वं लक्ष्यं शास्त्रं व्याप्नोति न जातिपक्ष इत्यत्र मानाभावात्। न ब्राह्मणं इन्यादित्यादौ जात्याश्रयसकलव्यक्तिविषयत्वार्थमेव जातिपक्षाश्रयणस्य भाष्ये दर्शनात्। अत एव सरूपसूत्रे भाष्ये जातौ पदार्थेऽनवयवेन साकल्येन विधेः प्रवृत्तगौरनुबन्ध्य इत्यादौ सकल-गवानुबन्धनासम्भवात्कर्मणो वैगुण्यमुक्तम्। द्रव्यवादे चासर्वद्रव्या-वगतेगौरनुबन्ध्य इत्यादावेकः शास्त्रोक्तोऽपरोऽशास्त्रोक्त इत्युक्तम्।

किञ्च न हि भाष्योक्ततृजादिदृष्टान्तस्य व्यक्तिपक्ष एव सर्वविषयत्वं न जातिपक्ष इत्यत्र मानमस्ति। अपि च व्यक्तिपक्षेऽप्य-न्यव्यक्तिरूपविषयलाभेन चरितार्थयोरियं व्यक्तिर्विरोधात् स्वविषयकत्वं न कल्पयतीति वक्तुं शक्यम्। जातिपक्षेऽपि तज्जात्याश्रयतद्व्यक्ति-विषयकत्वमेव नैतद्व्यक्तिविषयकत्वमित्यत्र विनिगमकाभवः। तत्र लक्ष्यानुसारात् क्वचिच्छास्त्रीयदृष्टान्ताश्रयणं क्वचिल्लौकिक दृष्टान्ताश्रयणमिति भाष्यसम्मतमार्ग एव युक्त इति बोध्यम्। द्वयोः कार्य योर्यौगपद्येनासम्भव एव विप्रतिषेधशास्त्रोपयोगी। इदम् 'इको गुणे' (1.1.3) इति सूत्रे कैयटे स्पष्टम्। यथा शिष्टादित्यादौ तातङ्शाभावयोर्युगवत्प्रवृत्तौ स्वस्वनिमित्तानन्तर्यासम्भवः।

यद्पि तातङादेः स्थानिवत्त्वेनास्त्येव तत्, तथाप्यादेश-प्रवृत्त्युत्तरमेव स न तु तत्प्रवृत्तिकाले। एवं नुम्तृज्वत्त्वयोः प्रियक्रोष्टूनीत्यादौ युगपदसम्भवो यदागमाः (प० 11) इत्यस्य नुम्प्रवृत्त्युत्तरं प्रवृत्तेः एवं भिन्धीत्यत्र तातङ्धिभावयोर्युगपदेकस्थानि-सम्बन्धस्वाङ्गरूपनिमित्तानन्तर्यस्य चासम्भवो बोध्यः। नुम्नुटोरपि

नुट्यजातिविभक्त्यानन्तर्यबाधो नुमि ह्रस्वान्ताङ्ग बाध इत्यसम्भवाद्वि-प्रतिषेधः। क्वचिदिष्टानुरोधेन पूर्वशास्त्रे स्वरितत्वप्रतिज्ञा बलात् स्वरितेनाधिकं कार्यमित्यर्थात् पूर्वमेव भवति। तेन सर्वे पूर्वविप्रतिषेधाः संगृहीता इति 'स्वरितेन' (1.3.11) इति सूत्रे भाष्ये। विप्रतिषेध सूत्रस्थपर शब्दस्येष्टवाचित्वात् तत्संग्रह इति विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये।।40।।

नन्वेवमेधत इत्यादौ परत्वाद्विकरणे 'अनुदात्तङितः' (1.3. 12) इत्यादि नियमानुपपत्तिस्तेन व्यवधानादत आह-

विकरणेभ्यो नियमो बलीयान्।।41।।

अत्र 'वृद्भ्यः स्यसनोः' (1.3.92) इति सूत्रेण स्ये विभाषातङ्

इत्या[1]दीति। आदिना स्वरितञित इत्यादि संग्रहः[2]। अत एव पचते[3] इत्युक्तं संगच्छते[4]। नन्वत्र पक्षे पूर्वं ल स्थानिकत्वाभावेनात्मने[5] पद परस्मै पद संज्ञयोरभावेन[6] तेषां संज्ञाया विधाने इतरेतराश्रयः। भिन्नवाक्यतया विधाने तु पूर्वमष्टादशानां[7] ल स्थाने जातत्वेनतयोस्तत्संज्ञायांनेतरेतरा-श्रयोऽत[8] आह। **आत्मने पदेति।** ननु सञ्ज्ञया[9] हि विधिर्विहितानाञ्च संज्ञेत्याकारो[10]ऽन्योन्या-

---

1. त्यादीति अ-1, अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3; संग्रहे ज-1 स्वरित इत्यादि संग्रहः इति पाठाऽवलोक्यते अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3, अ-4; पयते ज-1; पवते ज-2.
4. पाठोनयं ज-2; संगछते ज-1, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
5. आत्मन प-1.
6. अभावेनतया संज्ञाया ज-2, अ-3, अभावे न धांते संज्ञा विधाने इति पाठः प-1; अभावेन तथा संज्ञाया अ-1.
7. पाठोऽयं प-1, अ-4; अष्ट ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
8. सं. पाठः नेतरेतराश्रयोत आह ज-1, ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
9. संज्ञाया हि अ-4.
10. संज्ञेत्याकरो अ-4.

विधानं ज्ञापकम्। अन्यथा स्यव्यधाने नियमाप्रवृत्तौ सामान्य-शास्त्रेणोभयसिद्धौ विकल्पविधानं व्यर्थं स्यात्। अत्रार्थे ज्ञापिते तु स्य इति तत्र विषयसप्तमी बोध्येति 'अनुदात्ताङितः' (1.3.12) इत्यत्र भाष्यकैयटयोः स्पष्टम्। विकरणव्यवधानेऽपि नियमप्रवृत्तेरिदं ज्ञापकमिति 'शदेः शितः' (1.3.60) इत्यत्र भाष्ये ध्वनितम्।

वस्तुतोऽस्माज्ज्ञापकात् 'अनुदात्तङितः' (1.3.12) इत्यादि-प्रकरणं तिबादिविध्येकवाक्यतया विधायकम्। अत्र 'धातोः' (3.1.51) इति विहित पञ्चमी, 'तत्समानाधिकरणम्' अनुदात्तङितः (1.3.12) इत्यादि विहितविशेषणमेव। एवं च लावस्थायां स्येऽपि तद्व्यवधाने तङ्सिद्धिः। शबादिभ्यस्तु पूर्वमेव नियमः।

यद्वा लमात्रापेक्षत्वादन्तरङ्गा आदेशा लकारविशेषा-पेक्षत्वात्स्यादयो बहिरङ्गा इति दिग्योगपलक्षणपञ्चम्यामपि न दोषः। अत्र पक्षे 'वृद्भ्यः स्य' (1.3.62) इति सूत्रं स्वविषय इति व्याख्येयम्। आत्मनेपदशब्दादौ भाविसंज्ञाश्रयणीयेति तत्त्वम्। भिन्नवाक्यतया सामान्यशास्त्रविहितानां नियमे तु लुगादिनेव नियमेव जातनिवृत्ति-रङ्गीकार्या। भुक्तवन्तं प्रति मा भुङ्क्था इति ब्रूयात् किं तेन कृतं स्यादिति न्यायस्तु नात्र शास्त्र आश्रयितुं युक्तः नियमादिशास्त्राणां वैयर्थ्यापत्तेः। ध्वनितं चेदं 'स्थानेऽन्तरतमः' (1.1.50) इति सूत्रे

श्रयस्य तत्र संज्ञया विधानेपि[1] संज्ञाविधायके ल स्थानिकस्य निर्दिश्यत्वा[2] भावे न कथमितरेतराश्रय इति चेन्न। चानशस्तत् संज्ञा[3]वारणायात्मने पद संज्ञा विधायके लकारानुवृत्तेः सिद्धान्त[4]संमत्वात्॥41॥

---

1. विधाने पदसंज्ञा इति पाठः अ-4; विधाने संज्ञाविधायके इत्यारभ्य संज्ञावाराणायात्मने इत्यन्तं नोपलभ्यते अ-4.
2. स्थानि कस्योद्देशत्वभावेन ज-2, प-1; स्थानिकस्योदेश्यत्वाभावेन अ-1, अ-3.
3. तत् संज्ञया विधाने वारणायात्मने इति पाठः प-1; तत् संज्ञा करणायात्मने तपद ज-2, अ-1, अ-3.
4. सिद्धांति संमतत्वात् ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.

भाष्ये। शास्त्रानर्थक्यं तु वृद्धिसंज्ञासूत्रे भाष्ये तिरस्कृतम्। सामान्य शास्त्रेणोत्पत्तिस्तु सरूपसूत्रस्थ कैयटरीत्या प्रधानानु रोधेनगुणभेदकल्पना तावत् प्रकृतिकल्पनया कार्या, प्रत्ययनिवृत्तौ च तत्कल्पितप्रकृतेरपि निवृत्तिः कल्प्येति गौरवमित्यन्यत्र विस्तरः॥41॥

(परानिन्नत्यं बलवत्)

कृताकृतप्रसङ्गित्वात्। तत्राक्लृप्ताभाव कस्याभावकल्पनापेक्षया क्लृप्ताभावकस्यैव तत्कल्पनमुचितमिति नित्यस्य बलवत्त्वे बीजम्। तदाह-कृताकृतप्रसङ्गिनित्यंतद्विपरितमनित्यम्। अत एव तुदतीत्यादौ परादपि गुणान्नित्यत्वात् शप्रत्ययादिर्भवति॥

एतत्[1] तुल्यन्यायेति। यदव्यक्ती[2]तितुल्यन्यायेत्यर्थः। **शब्दान्तरे चेति**। अत्रेद[3] बोध्यम् कृताकृतेति परिभाषाया आद्यंशस्यैव[4] प्रपञ्चः। क्वचित् कृताकृतेति वक्ष्यमाण परिभाषा तदुदाहरणन्तुदतीत्यादि। **तद्विपरीत[5]** नित्यमित्य स्य तु शब्दान्तरस्य शब्दान्तराच्छब्दान्तरे चेति[7] प्रपञ्चः। आद्यो[8]दाहरणन्तु मूल एव स्पष्टम्। द्वितीयोदाहरणन्तु[9] दतीत्यादि। गुणे कृते शब्दान्तरात्तत्प्राप्तेः[10] लक्ष्यानुसारात्तु वक्ष्यमाण क्वचिदित्यनयाबाधः। तृतीयो[11]दाहरणन्तु करिष्यते[12] -

---

1. यततुल्य ज-2; एते तुल्य अ-1, अ-3; एततुल्य अ-4.
2. य वक्तीति ज-2.
3. अत्रदं प-1; अत्रोदे अ-3.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; आद्यांशस्यैव प्रचं क्वचित् ज-1.
5. तद्विपरितम् अ-4 तद्विपरितमनित्यम् इति पाठान्तरं प-1.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4 वेति ज-1; चेति नोपलभ्यते अ-3.
8. आद्योच्चारणं तु प-1; आदोदाहरणं ज-1, अ-1; आदौदाहरणं अ-3.
9. पाठोऽयं अ-4; द्वितियोदाहरणं ज-1; द्वितीयोदाहरणं प-1, ज-2, अ-1, अ-3.
10. शब्दान्तरातत् प्राप्ते प-1, अ-1, अ-4.
11. लृतृतीयो ज-2, अ-1,; तृततीयो अ-4.
12. कष्यतीत्यादि प-1; तुकरीत्यादि अ-3; करिष्यः त्तीत्यादि अ-4.

कृताऽकृतप्रसङ्गि नित्यम्, तद्विपरितमनित्यम्।।42।।

यद्व्यक्तिसम्बन्धितया पूर्वं प्रवृत्तिस्तद्व्यक्तिसम्बन्धितयैव पुनः प्रवृत्तौ कृताकृतप्रसङ्गित्वमित्याशयेनाह-

शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति।।43।।

इदं 'शदेः शितः' (1.3.60) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। तत्र हि न्यविशतेत्यत्र विकरणे कृते तदन्तस्याडकृते धातुमात्रस्येत्यडनित्य इत्युक्तम्।।43।।

एतत्तुल्यन्यायेनाह-

शब्दान्तरात् प्राप्नुवतः शब्दान्तरे प्राप्नुवतश्चानित्यत्वम्।।44।।

एतन्मूलकमेवाह-

इत्यादि लादेशे कृते स्यादीनां[1] शब्दान्तरे प्राप्तत्वेन न नित्यत्वम्। किन्तु परत्वात्तिवादयः[2]।।44।।

असिद्धवत्सूत्रे इति। तत्र हि तत्सूत्रप्रत्याख्याने दोषोद्भा[3]वक भाष्य व्याख्यापरे कुर्व[4] इत्यत्र नित्यत्वात्पूर्वमुकारलोपः। पश्चात् गुणे कृते ह्युकार[5] लोपे प्रत्ययलक्षणमिति गुणे न भाव्यम्। ततो **लक्षणान्तरेण** च प्राप्नु[6]वन् विधिरनित्य इति गुणस्या[7]नित्यत्वमुक्तम्। सति तु सूत्रे गुणे कृते सार्वधातुक

---

1. स्थादीनां ज-2; स्यादीना प-1.
2. किंत्व परत्वातिवादयः ज-2, प-1, अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, अ-4; दोषोद्भवक ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
4. कुर्वान्नित्यत्र अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, अ-4 गणः कृतेह्युकार लोपे ज-; गुर्णेः कृते ह्यिय उकार लोपे ज-2; गुर्णे कृतेत्द्युकारलोपे अ-1, अ-3.
6. प्राप्नुवान् ज-2; प्राप्नुचेन् अ-1, अ-3; प्राप्नुवत् अ-4.
7. गुणस्य नित्यत्वं ज-2.

लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन्विधिरनित्यः।।45।।

अतिदेशविषय इयमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेनोक्ता।।45।।

यदा तु शास्त्रव्यतिरेकेण तद्विधेयकार्ययोरेव नित्यत्वादि-विचारः, यदापि व्यक्तिविशेषाश्रयणाभावस्तदाह-

क्वचित् कृताकृतप्रसङ्गमात्रेणापि नित्यता।।46।।

कृते द्वितीये नित्यत्वेनाभिमतस्य पुनः प्रसङ्गमात्रं नित्यत्वव्यवहारे प्रयोजकं न तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्गोऽपि तथेति भावः।।46।।

तदाह-

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते न तदनित्यम्।।47।।

क्वचित्तु बाधकाबाधितफलोपहितप्रसङ्ग एव गृह्यते। तदाह-

यस्य च लक्षणान्तरेण निमित्तं विहन्यते तदप्यनित्यम्।।48।।

सप्तमे कैयटे नैतदुपष्टम्भकं लोकव्यवहारद्वयमुदाहृतम्। वालिसुग्रीवयोर्युध्यमानयोर्भगवता वालिनि हतेऽपि सुग्रीवस्य वालिनः प्राबल्यं न व्यवहरन्ति, भगवत्सहायैः। पाण्डवैर्जये लब्धेऽपि पाण्डवानां प्राबल्यं व्यवहरन्ति चेति। सर्वं चेदं लक्ष्यानुरोधद्वयवस्थितम्।।48।।

परे[1] उकारो विधीय[2]माना ते उदित्युकारः प्रव[3]र्तते। कुरुत इत्यादावुत्वार्थं तथार्थस्यावश्यकत्वात्[4]। स्थानिवत्वन्तु न अकारस्यादिष्टादचः पूर्वादिति ध्येयम्॥45, 46॥

---

1. पाठोऽयं प-1, ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
2. पाठोऽयं प-1; उकारे विधीयमानात ज-1; उकारिविधियमानो त ज-2, अ-1, उकारे.
3. उदित्युकारऽप्रवर्त्तते अ-4.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-4; अवश्यतवात् ज-1; अवस्यत्वात् अ-1; अवस्यात्वात् अ-3.

'लुटः प्रथमस्य' (2.4.85) इति सूत्रे भाष्ये-

स्वरभिन्नस्य प्राप्नुवन्विधिरनित्यो भवति॥49॥

इति पठ्यते। यत्र त्वेकस्यैव कार्यस्य परत्वं नित्यत्वं च तत्रेच्छयान्यतरत् तदुभयं वा तस्य बलवत्त्वे नियामकमुल्लेख्यम्। अत एव तत्र तत्र परत्वान्नित्यत्वाच्चेति भाष्य उच्यते। वस्तुतस्तत्र परत्वादित्युक्तिरेकदेशिनः। स्पष्टं चेदं विप्रतिषेधसूत्रे कैयटे। 'णो चङि' (7.4.1) इति ह्रस्वापेक्षया नित्यत्वान्तरङ्गत्वप्रयुक्तद्वित्वस्य

सप्तमे इति। तत् कुलमित्यत्रात्वलुकोः सम्प्रधारणायां[1] परत्वा दत्वं नित्योलुक्[2] कृतेप्यत्वे प्राप्नो[3]त्य कृतेऽपि अनि[4]त्योलुक्। न हि कृते[5] अत्वे प्राप्नोति अतोम्[6] इत्यम् भावेन[7] भवितव्यमिति भाष्यमादाय तेनोक्तम्। एवञ्च पूर्वाक्वचिदित्यस्याः[8] प्रपञ्चः। अपरा तु यद्[9] व्यक्तीत्याद्यर्थक कृताकृतेत्यस्या इति तत्त्वम्। तत्र प्रथमस्योदाहरणन्तु तुदतीत्येव[10] द्विती यस्य स्योन इति मूले एवाग्रिम परिभाषाव्याख्यायां स्पष्टम्[11]। क्रमेणोपष्टं- भकमाह।[12]

---

1. पाठोऽयं अ-1, अ-3; सम्प्रधारणयाम् ज-1; संप्रधानरणायां ज-2; संप्रधारणीयां प-1; आत्वलुसोऽसंप्रसारणायाम् अ-4.
2. नित्ये अ-1, ज-2.
3. प्राप्नोत्य प-1.
4. अनित्योक्लु प-1.
5. कत्वे ज-2; कते अ-1, अ-3.
6. अतो नित्यम् अ-3.
7. भावेनं अ-1; भाविनं अ-4.
8. क्वचिदित्यस्य अ-3, अ-4.
9. यथोक्तोत्याद्यीकिकृताकृते प-1; यद् व्यक्तोत्पाद्यर्थककताकतेत्यस्या ज-2, अ-1, अ-3.
10. तदतीत्येव अ-3.
11. स्पष्टाम् ज-2, अ-1, अ-3.
12. वालीत्यादि वा प-1; वालीसादिना तु ज-2, अ-1, अ-3.

प्रथमतः प्रवृत्तौ नित्यत्वादित्येव भाष्य उक्तम्। एवं नित्यान्तरङ्गयोर्बलवत्त्वमपि यौगपद्यासम्भव एवेति बोध्यत्॥49॥

(नित्यादप्यन्तरङ्गं वलीयः)

नित्यादप्यन्तरङ्गं बलीयः, अन्तरङ्गे बहिरङ्गस्यासिद्धत्वात्।

तदाह-

असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे॥50॥

अन्तर्मध्ये बहिरङ्गशास्त्रीयनिमित्तसमुदायमध्येऽन्तर्भूतान्यङ्गानि निमित्तानि यस्य तदन्तरङ्गम्। एवं तदीयनिमित्तसमुदायाद् बहिर्भूताङ्गकं बहिरङ्गम्। एतच्च 'खरवसानयोः' (8.3.15) इति सूत्रेऽसिद्धवत्सूत्रे च भाष्यकैयटयोः स्पष्टम्। अत्राङ्गशब्देन शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यते, शब्दशास्त्रे तस्यैव प्रधानत्वात्। तेनार्थनिमित्तकस्य न बहिरङ्गत्वम्। अत एव 'न तिसृचतसृ' (6.4.4) इति निषेधश्चरितार्थः। अन्यथा स्त्रीत्वरूपार्थनिमित्तकतिस्त्रपेक्षयान्तरङ्गत्वात्त्रयादेशे तदसङ्गतिः स्पष्टैव। अत एव त्रयादेशे स्रन्तस्य प्रतिषेधः 'इति स्थानिवत्सूत्रस्थ भाष्यवार्तिकादि संगच्छते। एतेन गौधेरः, पचेरन्नित्यादावेयादीनामङ्गसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वाद्वलिलोपो न स्यादिति परास्तम्, एयादेशादेरपरनिमित्तकत्वेनान्तरङ्गत्वाच्च।'

वालीत्यादी[1]नाम्॥48॥

लुटः प्रथमस्येति। तत्र हि श्वः[2] कर्त्तेत्यादौ तस्यानु[3]दात्तेन्ङिति निधातः[4] डादेशयोः[5] प्रधारणायां डादेशा नित्यत्वमुक्तम्॥49॥

---

1. वालीत्यादिव प-1; वालीसादिनां ज-2, अ-1, अ-3.
2. स्वः अ-3, अ-4.
3. सं. पाठ. 6/1/186 लास्यनुदात्तेदिति प-1; नुस्यानुदात्तेहिति ज-2; नस्यानुदात्तेः रूति अ-1; नस्यानुदात्तेरु निधातः अ-3; नस्यानुदात्तेदिति अ-4.
4. निचातः ज-2.
5. पाठोऽयं प-1; डादेशवेस्यानित्यत्वम् ज-1, ज-2, अ-1, अ-3 डादेशेवस्यानित्यत्वं अ-4.

ननु 'येन विधिस्तदन्तस्य' (1.1.72) इति सूत्रे भाष्ये 'इको यणचि' (6.1.77) इत्यादावपि तदन्तविधौ स्योन इत्यत्रान्तरङ्गत्वाद्यणो गुणबाधकत्वमिष्यते तन्न सिद्ध्येत्, ऊनशब्दमाश्रित्य यणादेशो न शब्दमाश्रित्य गुण इत्यन्तरङ्गत्वाद्गुण एव स्यादित्युक्तम्।

अत्र कैयटः- सिवेर्बाहुलकादौणादिकं न प्रत्यये गुणवलोपोठां प्रसङ्गे ऊडपवादत्वाद्वलोपं बाधते गुणं त्वन्तरङ्गत्वाद्बाधते। गुणो ह्यङ्ग सम्बन्धिनीमिग्लक्षणां लघ्वीमुपधामादर्धधातुकं चाश्रयति। उठ् तु वकारान्तमङ्गमनुनासिकादिञ्च प्रत्ययमित्यल्पापेक्षत्वादन्तरङ्गः, तत्र कृतेयणगुणो प्राप्नुत इति एवं च संज्ञापेक्षस्यापि बहिरङ्गत्वं

अत एव नतिसृ[1]तीति। ननु इदं ज्ञापकं कि[2] सूत्रकाररीत्या उतवार्त्तिककाररीत्या भाष्यकाररीत्या वा[3] नाद्यः समर्थग्रहणेन परिभाषाया अनित्यत्वज्ञापनेन तत्सार्थक्यात्[4]। न च षत्वतुकोरसिद्ध[5] इति सूत्रस्थ तुक् ग्रहणं ज्ञापक[6]मस्त्येवेतिवाच्यम्। समानकालप्राप्तिकस्य जातस्य[7] वा वहिरंगस्यासिद्धत्व[8] प्रतिपादक परिभाषावाच्यांशद्वये[9] क्रमेणाङ् ग्रहणोठ्[10] ग्रहणयोर्ज्ञापकत्ववदंश[11]द्वयेप्यनित्यत्वस्यावश्यं वाच्यतया तन्मध्ये-

---

1. पाठोऽयं ज-2; नतिस्त्रितीति ज-1, प-1; नस्तितीति अ-1, अ-3.
2. कि ज-2, अ-1, अ-3.
3. चानायऽऽसमर्थ ज-2; चानाद्यऽसमर्थ अ-1, अ-3; वानद्यः समर्थ अ-4.
4. तत्सार्थकात् अ-3.
5. तकोरसिद्धं अ-4.
6. ज्ञापकात्तस्येवेति ज-2.
7. तातस्य ज-2, अ-1, अ-3.
8. असिद्धत्वं अ-4.
9 वाच्यांशद्वये ज-2; वाच्यांशेद्वये प-1.
10. पाठोऽयं प-1; ग्रहणेठ् ज-1; ग्रहणोढ ज-, अ-1; ग्रहणोङ् अ-4.
11. ज्ञापकत्वदंशद्वयेप्यनित्यत्व अ-4; वदंशद्वयेप्यति नित्यत्वस्यावनृपवाच्यतपतिन्मध्ये इति अ-3.

स्पष्टमेवोक्तमिति चेत्? न तदन्तविधावपि बहुपदार्था पेक्षत्व-रूपबहिरङ्गत्वस्य गुणे सत्त्वेन तत्र दोषकथनपरभाष्यासङ्गतेः। बहिरङ्गणान्तरङ्गशब्दाभ्यां बह्वपेक्षत्वाल्पापेक्षत्वयोः शब्दमर्यादयाऽ-लाभाच्च।

तथा सत्यसिद्धं बह्वपेक्षमल्पापेक्ष इत्येव वदेत्। अत एव 'विप्रतिषेध' सूत्रे भाष्ये गुणाद्यणादेशोऽन्तरङ्गत्वादित्यस्य स्योन इत्युदाहरणं न तु गुणादूडन्तरङ्गत्वादित्युक्तम्। त्वद्रीत्या तदपि वक्तुमुचितम्। प्राथम्यात्तदेव वा वक्तुमुचितम्। मम त्वन्तरङ्ग परिभाषया तद्वारणासम्भवात्तनोक्तम्। किं च सिद्धान्ते नित्यत्वाद् गुणात्पूर्वमूठ् गुणस्तु ऊठि यणा बाधितत्वादनित्यः। ऊनशब्दमाश्रित्येत्यादिभाष्येण च परिभाषायामङ्गशब्देन सप्तम्याद्यन्ततयोपात्तं शब्दरूपं निमित्तमेव गृह्यत इति स्पष्टमेवोक्तम्।

यत्तु कैयटेन तदन्तविधिपक्षे परत्वाद्गुणः प्राप्नोतीत्युक्तं तत्तुनशब्दमाश्रित्येत्यादिभाष्यासङ्गत्या चिन्त्यम्। बलि लोपेऽन्त-रङ्गपरिभाषा न प्रवर्तत इति तु न युक्तम्, तत्सूत्रे भाष्य एव ब्रश्चादिषु लोपातिप्रसङ्गमाशङ्क्योपदेशसामर्थ्यान्नः न च वृश्चतीत्यादौ

द्विती[1]यांशस्य षत्वतुकोरसिद्ध इति सूत्रस्थ तुक्[2] ग्रहणस्य ज्ञापकत्वाद नित्यत्वेनाक्षधूरित्[3]यादि सिद्धावपि द्वितीयांशस्यानित्यत्वाभावेन[4] तिसृणमित्याद्यसिध्यापतेस्तस्याप्यनित्यत्वस्यावश्यकत्वेन तदनित्यत्वस्यानेन बोधनात्। **किञ्चनाजानन्तर्य। इति** परिभाषायाऽभावे[5] प्रमाणाभावस्याग्रेतत्-परिभाषाव्याख्यावसरे वक्ष्यमाणतया तत् ज्ञापकत्वे न तु[6] ग्रहणस्योपक्षीणत्वात्-

---

1. द्वतीतीयां प-1.
2. त्वकग्रहणस्य ज-2.
3. अनित्यत्वेनाक्ष घरित्यादि ज-2, अ-1, अ-3 अनित्यत्वेनाद्यूसित्यादि प-1.
4. अभावेनितिसृणाम् ज-2, अ-1; अभावेनेतिसृणाम् अ-3
5. अभावेनतिसृणाभिद्यसिद्धयायतत्वांतेस्तस्या अ-4; ज्ञापकत्वेन नुग् ग्रहणस्य अ-1, अ-3.
6. ज्ञापकत्वेन तुग् ग्रहसाम्यो पक्षीणतवात् अ-4.

चारितार्थ्यम्, बहिरङ्गतया संप्रसारणस्यासिद्धत्वेन पूर्वमेव तत्प्राप्तेरिति भाष्योक्तेः।

परिभाषा[1]ऽनित्यत्वे एतस्यैवाश्रयणीयत्वात्। वर्णो[2]वर्णेनेतिसूत्रे विप्रतिषेध प्रक्रमे[3]वीरपुरुषकोग्राम इत्यादौ समानाधिकरण समासाद्बहुब्रीहि विप्रतिषेधेनेति[4] विप्रतिषेध खंडकनैषयुक्तो[5] वि[6]प्रतिषेधः अन्तरंगः कर्मधारयः कान्तरंगता-स्वपदार्थे[7] कर्मधारयः अन्यपदार्थे[8] बहुव्रीहिरिति[9] भाष्येण पंचगावो यस्य[10] सन्ति पंचगुरित्यत्र मतुप् प्राप्नोतीत्यांशक्य **अन्तरंगत्वाद्बहुव्रीहिः** कान्तरंगता? अन्यपदार्थे बहुव्रीहिः अस्तित्वविशिष्टेऽन्यपदार्थे[11] द्विगुरिति भाष्येण चार्थकृतवहिरंगत्वादेर्बोधनात्। प्रकृतेपूर्वोक्त निषेधेनार्थकृतवहिरंगत्वा[12] भाव बोधन समर्थ ग्रहणेन परिभाषाया अनित्यत्वबोधनं चेत्यत्र[13] विनिगमकाभाव इति तु न[14] शंकाकलंकः।[15]

---

1. परिभाषानित्यत्वे अ-3, अ-4.
2. वर्णीवर्णेन 2/1/69; वर्णीतेति सूत्रे ज-2, अ-1, अ-3; ववर्णेवर्णेनेति अ-4.
3. प्रकृते अ-4.
4. विप्रतिषेधेनति नाऽवलोक्यते अ-3.
5. षडंक ने कैषयुक्तौ अ-4.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
7. स्वपदर्थि ज-1, अ-1, अ-3; स्व पदार्थो अ-4.
8. आन्यपदार्थे ज-2, अ-1, अ-3.
9. 'इति' नोपलभ्यते प-1 इति भाष्येण अन्तरंगत्वाद्वहुव्रीहिः इत्यन्तं नाऽति प-1 मातृकायाम्.
10. पंचगाचोमस्य सति अ-1, अ-3; पंचाविगमस्या संति ज-2.
11. विशिष्टोन्यपदार्थे ज-2, अ-1, प-1, अ-3.
12. बहिरंगभावबोधनम् प-1.
13. वेत्यत्र ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
14. शङ्कावलंकः अ-2'
15. कालं ज्ञापरिभाषस्ये अ-4; कालं संसारिभाषं अ-1, अ-3;कालं संसारभाषं ज-2.

यत्तु न लोपस्य षट्संज्ञायामसिद्धत्वात्पञ्चेत्यत्र 'न षट्' (4. 1.10) इति निषेध इति तच्चिन्त्यम्। नलोपस्य हि पदसंज्ञासापेक्षत्वेन बहिरङ्गत्वं वाच्यम् तच्च न, संज्ञाकृतबहिरङ्गत्वस्यानाश्रयणात्। पञ्चेत्यत्र निषेधस्तु स्त्रियां यत् प्राप्नोति तन्नेति व्याख्यानसामर्थ्येन भूतपूर्वषट्त्वमादायेति बोध्यम्।

अत एव कृति तुग् ग्रहणं चरितार्थम्। वृत्रहभ्यामित्यादौ पदत्वनिमित्तकत्वेऽपि न लोप बहिरङ्गत्वाभावात्। भ्यामः पदसंज्ञा-निमित्तत्वेऽपि न लोपस्य बहिरङ्गत्वाभावात्। भ्यामः पदसंज्ञा-निमित्तत्वेऽपि नलोपस्य तन्निमित्तकत्वाभावात्। परम्परया निमित्त-त्वमादाय बहिरङ्गत्वाश्रयणे तु न मानम्। ध्वनितं

चेदं 'न लोपः सुप्' (8.2.2) इति सूत्रे भाष्य इति तत्रैव भाष्यप्रदीपोद्योते निरूपितम्।

अन्तरङ्गे कर्त्तव्ये जातं तत्कालप्राप्तिकं च बहिरङ्गमसिद्धमित्यर्थः। वृश्चेत्यादिषु पदसंस्कारपक्षे समानकालत्वमेव द्वयोरिति बोध्यम्। एतेनान्तरङ्ग बहिरङ्गाद्वलीय इति परिभाषान्तरमित्यपास्तम्। एनामाश्रित्य विप्रतिषेधसूत्रे भाष्ये तस्याः प्रत्याख्नाच्च।

कार्यकाल[1] संज्ञापरिभाषं भस्येत्युपस्थितमिदं भवति यचि भमित्येक देशि[2]भाष्यस्य कार्यकालपक्षे संज्ञा[3]शास्त्राणां वाक्यैकवाक्यता बोधकत्ववत्। पूर्वोक्तमतुप् सूत्रस्थ भाष्यस्यैक देश्युक्तित्वेपि[4] तत् बोधकत्वं बोध्यम्[5]। किञ्चवर्णो वर्णेनेति सूत्रस्थ भाष्यस्य तु सिद्धांत भाष्यत्वेन तत् बोधकत्व मव्याहतमेवेति दिक्।

1. देशिमष्टयस्य अ-3.
2. संज्ञा अ-3 'स्त्रा' नो पलभ्यते प-1.
3. देशयुक्तित्वोऽपि अ-1, अ-3, अ-4.
4 बोध्याम् अ-3.
5. सूत्रस्य ज-2, अ-1, अ-3.

न दिवतीयः नुमचि[1]रतृज्वद्भावगुणेभ्योनुटः पूर्वविप्रति[2]षेधेनेति वार्त्तिकेचतस्त्रचिरेत्यनु[3]क्तासामान्यतोऽचिरनुटोः[4] पूर्व विप्रतिषेध[5] प्रतिपादक[6] वार्त्तिक कृतापि समर्थग्रहणेन तदभ्युपगमात्। अन्यथाति[7]स्त्रभावेरादेश-स्यैवा प्राप्तेः पूर्व विप्रतिषेधोक्ति[8] कथनमसंगत[9] स्यात्। न तृतीयः बाध्य विशेष चिंतायां मध्येऽपवादन्यायेन दीर्घोत्वयोरेव[10] बाधः[11] स्यान्न गुणस्येत्यवश्याश्रयणीयायां बाध्य सामान्यचिंतायां अविशेषात् स्वविषये प्राप्त नुटोपिरेफ[12] बाधे नुमचिरेति[13] वार्त्तिकेरादेश नुटोः पूर्व विप्रतिषेधोऽसंगत[14] इत्याशंक्य नतिस्त्रितिज्ञापकान्नुडिति तृज्वत्सूत्रस्थ भाष्येण तद[15] नित्य-त्वाभ्युपगमात्। न चार्थकृत बहिरंगस्या[16] नाश्रयणेन भाष्यवार्त्तिकयोः प्रवृत्त्या न तद नित्यत्वे[17] ज्ञापकत्वमिति वाच्यम्[18]। वर्णोवर्णेनेत्यादि[19] सूत्रस्थ

1. नुमचिरतृज्वादावगुणेभ्यो ज-2, अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4 व्रिप्रतिषेधेति ज-1.
3. अनुक्त्वा अ-3, अ-4.
4. अचिरष्टो अ-4; अविरनुठो अ-3, अ-1.
5. विप्रतिषेधे प-1, अ-3.
6. प्रतिपाक अ-3.
7. तिसस्त्रज-2.
8. प्रतिषेधोक्ति अ-1, अ-3.
9. असंगत ज-2, अ-3, अ-4.
10. दीर्घोतयोरेव ज-2, अ-4.
11. वाधस्यात्र ज-2, अ-1, अ-3.
12. पाठोऽयं प-1.
13. नुटोपिरेण ज-1, ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
14. असंयत ज-2.
15. नित्यत्वा अ-4.
16. पाठोऽयं अ-1, ज-2, अ-3, अ-4; बहिरंगत्वस्या ज-1, प-1.
17. तत् नित्यत्वे ज-2.
18. वाच्य ज-2, अ-1, अ-1, अ-3.
19. वर्णोनेत्यादि ज-2.

अन्तरङ्गशास्त्रत्वमस्या लिङ्गम्। इयं च त्रिपाद्यां न प्रवर्त्तते, त्रिपाद्या असिद्धत्वात्। अस्याञ्च 'वाह ऊठ्' सूत्रस्थमूठ्ग्रहणं ज्ञापकमित्येषा सपादसप्ताध्यायीस्था। अन्यथा संप्रसारणमात्रविधानेन लघूपधगुणे 'वृद्धिरेचि' (6.1.88) इति वृद्धौ विश्वौह इत्यादि-सिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। सत्यां ह्ययेतस्याबहिरङ्गसम्प्रसारणस्या-सिद्धत्वाल्लघूपधगुणो न स्यात्। न च 'पुगन्त' (7.3.86) इति सूत्रे निमित्तमिको विशेणमत एव भिनत्तीत्यादौ न गुणः, एवं च 'नाजानन्तर्ये' (प. 51) इति निषेधात्कथं परिभाषाप्रवृत्तिरिति वाच्यम्। प्रत्ययस्याङ्गांश उत्थिताकाङ्क्षत्वेन तत्रैवान्वयात्। पुगन्तेत्यादौ कर्मधारयाश्रयणेन प्रत्ययपराङ्गावयवलघूपधारूपेको गुण इति 'इको गुणवृद्धी' (1.1.3) इति सूत्रभाष्यसम्मतेऽर्थे भिनत्तीत्यादावदोषाच्च। अकारान्तोप-सर्गेऽनकारान्ते चोपपदे वहेर्वाहेर्वा ण्विविचावनभिधानान्न स्त एव। वार्य्यूहेत्यादि तूहतेः क्विपि बोध्यम्। धातूनामनेकार्थत्वान्नार्थासङ्गतिः। प्रौह इत्याद्यसाध्वेव, वृद्धेरप्राप्तेः। अस्योहस्यानर्थक्यात् न 'प्रादूहोढो'

भाष्य[1]विरोधे न तथा कल्पयितुमशक्यत्वात्। पूर्वोक्त भाष्यवदर्थकृत-बहिरंगत्वाभावबोधकप्रत्यक्ष- भाष्यस्यानुपलंभाच्च[2]। अत एव वक्ष्यमाण[3] स्थानिवत्सूत्रस्थ[4] भाष्यविरोधोपि नेति चेन्न। अत्रांन्तरङ्गशब्दे[5] नेत्यस्याग्रे प्राय इति शेषेण सर्वसामंजस्यात्। तेनेत्यस्य[6] प्रायः शब्द[7]रूपनिमित्तत्वाश्रयणे[8] नेत्यर्थः अर्थनिमित्तकस्येत्यस्य सर्वं वाक्यमिति न्यायेनार्थानिमित्तकस्यैवेत्यर्थः।

---

1. भाविरोधेन प-1.
2. अनुपलंभाव ज-2,; अनुलभाच्च प-1.
3. वक्ष्यमाणः ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
4. सूत्रस्था भाष्या विरोधोपि अ-1, ज-2.
5. अत्रांगशब्दनेत्यस्या प-1; अत्रांतरस्येशब्दनेत्यस्य अ-4.
6. तेनत्यस्य ज-2, अ-1, अ-3; तेन्नेत्यस्य अ-4.
7. तेनत्यस्य ज-2, अ-1, अ-3; तेन्नेत्यस्य अ-4.
8. रूप निमित्तत्वा ज-2; रूपनिमित्त कल्येत्यस्य अ-1, अ-3.

(6.1.89 वा 3) इत्यस्यापि प्रवृत्तिः।

न च कार्य्यकालपक्षे त्रिपाद्यामेतत्प्रवृत्तिदुर्वारेति वाच्यम्, पूर्व प्रति परस्यासिद्धत्वादन्तरङ्गाभावेन पूर्वस्य तन्निरूपित-बहिरङ्गत्वाभावात्तया तस्या सिद्धत्वप्रतिपादनासम्भवात्।

न चानया पूर्वस्यासिद्धत्वात्तदभावेन तं प्रति परासिद्धत्वं 'पूर्वत्र' (8.2.1) इत्यनेन वक्तुमशक्यमिति वाच्यम्, एवं हि विनिगमना-विरहादुभयोरप्यप्रवृत्त्यापत्तेः।

किं च पूर्वत्रेत्यस्य प्रत्यक्षत्वेन तेनानुमानिक्या अस्या बाध

ननु अर्थ निमित्तक[1]बहिरंगत्वाश्रयणे वर्णोवर्णेनेत्यादि भाष्यवत्। संज्ञाकृतशब्द[2]निमित्त कृतबहिरंग[3]त्वाश्रयणे न मानमित्याशंक्याह। **नतिस्त्रितोति।** अन्यथा इत्यस्यार्थकृतबहिरंग[4]त्वस्यैवाश्रयणे इत्यर्थः। अत एवैकाजिति[5] कर्मधारयो वर्त्तिपदार्थ प्रधानत्वेनान्त रंगत्वादित्याद्यर्थकृतबहिरंगत्वाश्रयक[6] निपात एकाजनाङित्यादि सूत्रस्थ शेखरग्रन्थः संगच्छते[7]। अत्रांग[8]शब्देन शब्दरूप[9] निमित्तमेव गृह्यते[10]–

---

1. निमित्तत्वाश्रयणे अ–4.
2. संज्ञाकृतं ज–2.
3. बहिरंगात्वाश्रयणेन अ–4.
4. बहिरंगत्वाश्रयणे प–1.
5. अत एव एकानिति अ–1, अ–3; अत एवेकातृतिकर्म अ–4; अत एव एकाजिति इत्यारभ्य 'निपात' इत्यन्तं प–1 मातृकायां नावलोकयते.
6. बहिरंगत्वोश्रयक अ–4.
7. सं. पाठः, संगच्छते ज–1, ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4 संगच्छते संज्ञकृततदाश्रयणे दीर्घोकित इति सूत्रस्थं भाष्यमग्रे स्फुटी भविष्यति किन्च अत्राङ्ग इति पाठान्तरं प–1.
8. आत्राङ्ग अ–1.
9. 'श' रूपम् ज–2, अ–3.
10. गृह्यति ज–2.

एवोचितः। अतः कार्य्यकालपक्षेऽपि त्रिपाद्यामस्य। अनुपस्थितिरेव। अत एव कार्य्यकालपक्षमेवोपक्रम्योक्तयुक्तीरुक्त्वा 'अतोऽयुक्तोऽयं परिहारो न वा बहिरङ्गलक्षणत्वात्' इतीत्युक्तं विसर्जनीयसूत्रे भाष्ये सिद्धान्तिना। त्रिपादीस्थेऽन्तरङ्गे कर्तव्येऽयं परिहारो न युक्त इति तदर्थः, किं तु वचनमेवारब्धव्यमिति तदाशयः। अत एव निगाल्यत इत्यादौ लत्वार्थ 'तस्य दोषः' इति वचनमेवारब्धम्। अन्यथान्तरङ्गत्वाण्णि लोपात्पूर्वं वेकल्पिकलत्वे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। येऽपि लक्ष्यानुरोधादानुमानिक्याप्यन्तरङ्गपरिभाषया प्रत्यक्षसिद्धस्य पूर्वत्रेत्यस्य बाधं वदन्ति

इत्यनुक्ता[1]शब्दरूपं निमित्तं गृह्यत[2] इत्युक्तमपि संगच्छते[3]। ननु इदं सर्वमसत्[4]। तथाहि अन्तरंगत्वाज्जातेऽपि त्रयादेशे[5]ऽन्तरंग प्रवृत्त्युतरं बहिरंगशास्त्रप्रवृत्तेः सर्वसंमतत्वेन पश्चात्ति[6]स्रदेशे न तिस्रित्यस्य सार्थक्यात्[7]। कथं ज्ञापकत्वोपपादनमिति[8] चेन्न। अर्थकृतबहिरंगत्वस्यै[9]वाश्रयणेस्त्र्यर्थ निमित्तक तिस्रु पेक्ष[10]याप्यंतरंगत्वात् त्रयोदेशे[11] पश्चात्तिस्रादेशेपि नामीति दीर्घदृष्ट्यास्त्र्यर्थ निमित्तकत्वेनतिस्रा[12]देशस्य बहिरंगत्वादसिद्धत्वे दीर्थस्यैवा प्राप्तौ[13] निषेधवैय्यर्थेन तत् ज्ञापकत्वमित्याशयात्। एतेन–

---

1. इत्यनुक्त्वा अ–3, अ–4.
2. गृह्यते अ–4; अनुपलब्धोऽयं गृह्यत शब्दः प–1.
3. सं. पाठः, संगछते ज–1, ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4.
4. न ननु इदं अ–1, अ–3.
5. त्रयादेशेतरांग अ–4; अ–1, अ–3.
6. पश्चातिस्रादेदो जाते ज–2, अ–1, अ–3.
7. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3; सार्थक्ये ज–1; सार्थकरात् अ–4.
8. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4; उपपादानम् ज–1.
9. बहिरंगत्वाश्रयस्यैवाश्रयणे प–1.
10. पाठोऽयं प–1; तिस्रपेक्षयान्तरंगत्वात् ज–1, ज––2, अ–1, अ–3, अ–4.
11. त्रयादेशश्चतिस्राादेशे पि अ–3.
12. पश्चात्तिस्रादेशे जाते नतिस्रित्यस्य सार्थपि नामीति दीर्घः इति पाठान्तरं अ–4.
13. बहिरंग त्वारासिद्धत्वे अ–4.

तेऽपि लक्षणैक चक्षुर्भिर्नादर्तव्या इति दिक्।

त्रिशब्दार्थ समवेत[1] संख्या समर्थके[2] आमित्रयादेश[3] इत्यर्थकस्य[4] त्रैस्त्रय इत्यस्य माधवमते[5] गौणे अप्रवृत्या[6]प्रिय तसृणामित्यादो निषेधस्य चरितार्थत्वात्[7]। अन्तरंगप्रवृत्त्युत्तरं बहिरंग प्रवृत्तेः सर्वसंमतत्वेन त्रयादेशे कृते स्थानिवद् भावात्तिस्रादेशेऽदोषा[8]च्चेति भाष्या[9]नारुढ्मार्गमवलम्ब्य ग्रन्थार्थं[10] चाविज्ञाय दूषणगणावभासं[11] प्रयुञ्जाना आधु[12]निकतराः प्रत्युक्ता[13] इति दिक्।

एवमेव सर्वत्रार्थसंज्ञाकृतबहिरंगत्वानाश्रयकग्रन्थायोजयितुं शक्या इति मात्सर्यमुत्सार्य[14]सुधिभिरुह्यम्। **एतेनगौधेरः** इति। ऐतेनेत्यस्यार्थसंज्ञाशब्द रूप निमित्तकृतान्तरंग बहिरंगत्वाश्रयणेनेत्यर्थः तदेवाह। एयादेशादेरितिः चोहेतौ[15] अयन्भावः धियतीत्यादौ[16] प्रक्रियाक्रमेणपूर्वोपस्थित[17] निमित्तकत्वं

1. समवेतस्व्यासंसभकेय प-1; संभवेत संख्या अ-1, अ-3.
2. पाठोऽयं अ-3, अ-4; समर्यके ज-1, ज-2.
3. आमित्रायादेश अ-3.
4. इत्यर्थकस्य अ-4.
5. माधवसत्ते ज-2, अ-1, अ-3.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; अप्राप्त्या प्रिय ज-1.
7. चरितार्थाचात् ज-2, अ-1, अ-3; चरितार्थत्वा अ-4.
8. अदोषोच्चेति प-1, अ-1.
9. भाष्यानरुहलमार्गमधलव्यम् अ-2, अ-3.
10. पाठोऽयं प-1, अ-4; ग्रन्थार्थ ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
11. दूषणावभास प-1; दूषणगणावभाष अ-4.
12. आधुनिकतरा प-1.
13. प्रयुक्ता ज-2, ऽप्रयुकता अ-1, अ-3.
14. इतिमात्समार्यमुत्सार्य प-1.
15. विहितौ ज-2; चहितौ अ-1, अ-3, अ-4.
16. ध्रियतीत्यादौ प-1; व्रिपतीत्यादौ ज-2.
17. पूर्वेपस्थित ज-2.

रूपांतरंगत्वस्यगुणे[1]सत्वेऽपि लक्ष्यानुसारात्तदा छाद्य[2] प्रयोगीयो[3]च्चारण-क्रमेणपूर्वस्थितत्व रूपांतरङ्गत्वमादायेयङ् प्रवृत्तिवत्[4]। प्रकृतेपि[5] संज्ञाकृत-बहिरंगत्वस्य एयादेशे[6] सत्यपि तदाछाद्यापरनिमित्तकत्व रूपांतरंगत्व-मादायेष्टसिद्धौ संज्ञाकृतबहिरंगत्वेनेयादेरसिद्धत्वे लोपाप्राप्तौ परिभाषाया अनि[7]त्यत्वाल्लोपविषये[8] तद प्रवृत्तेरवश्यं वाच्यतया लोपविधायक सूत्रस्थ वृश्चतीत्यादिषु परिभाषाया[9] संप्रसारणस्यासिद्धत्वेन प्राप्तलोपवारकव[10]कारोप-देशसामर्थ्यप्रतिपादक भाष्य[11] विरोध सहनन्त्वनुचित्तमिति। यथाश्रुतन्तु न साधु। दीर्घोकित इति सूत्रस्थ छोच्छेदन[12] इत्यस्मादात्वे लिटि[13] छाशब्दस्य[14] द्वित्वे छा छा[15] इत्यवस्थायां[16] अंतरंगत्वात्तुकि अजन्ताभ्यासाभावेन ह्रस्वाप्राप्तिमाशंक्य यंयस्येत्य[17]त्रदीर्घवारणायकृताकित् ग्रहणस्याजन्ताभ्यासस्य पूर्वोक्तोदाहरणे[18]ऽसत्त्वात्तदप्राप्तौ वैय्यर्थ्येनाकिद्वचन मन्यत्र किदन्तस्यालोंत्य

---

1. गुणसत्वेपि ज-2, अ-1, अ-3.
2. तदाछाज ज-2.
3. प्रयोगोच्चारण ज-2.
4. प्रवृस्तवत् ज-1, अ-1, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-4; कृतेपि ज-1.
6. एयाद्यादेशे ज-2.
7. अनित्वाल्लोप ज-2, अ-3; अनित्यत्वालोप प-1.
8. विशेषयेतद ज-2 अ-1, अ-3; विषयते तद अ-4.
9. पाठोऽयं प-1, अ-4; परिभाषया ज-1, ज-2, अ-1.
10. बार ककारोपदेश अ-4; वकारोपद्देश ज-2.
11. भाष्याविरोध ज-2.
12. 'छो' नाऽस्ति अ-4.
13. लिटो प-1.
14. शब्दस्याद्वित्वे अ-4.
15. 'छा' नाऽस्ति अ-4.
16. इत्यवस्था प्राक् अ-3.
17. यम्येत्यत्र दीर्घ अ-1,अ-3, अ-4.
18. उदाहरणोऽसत्यातद अ-1, ज-2, अ-3.

अत एव 'ओमाङोश्च' (6.1.95) इत्याङ्ग्रहणं चरितार्थम्। तद्धि षट्वा आ ऊढेत्यत्र परमपि सवर्णदीर्घंबाधित्वा अन्तरङ्गत्वाद्गुणे कृते वृद्धिप्राप्तौ पररुपार्थम्। साधनबोधकप्रत्ययोत्पत्त्यनन्तरं पूर्वं धातोरुपसर्गयोगे पश्चात् खट्वाशब्दस्य समुदायेन योगाद्गुणस्यान्त-रङ्गत्वमिति 'सम्प्रसारणाच्च' इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। एहीत्यनुकरणस्य शिवादिशब्दसम्बन्धे तु नास्य प्रवृत्तिर्ज्ञापकपर 'सम्प्रसारणाच्च' इति सूत्रस्थभाष्यप्रामाण्येनानित्यं प्रकृतिवदनुकरणमित्यतिदेशमादाय लब्धाङ्गत्वे एतदप्रवृत्तेः।

यत्तु पूर्वं धातुरूपसर्गेणे युज्यते पश्चात्साधनेन। उपसर्गेण=

निवृत्यर्थमिति[1] ज्ञापकेन समाधाय विप्रतिषेधात् सिद्ध[2] नैतानि सन्ति। प्रयोजनानीत्युक्त[3]याऽकिद् ग्रहण ज्ञापितांशस्य पूर्वोक्तस्यनावश्यकत्वं बोध यित्वा वर्णाश्रयत्वात्तुकोन्तरंगत्वेन ह्रस्वस्याचांगत्वेन बहिरंगत्वादयुक्तो[4] विप्रतिषेध इत्यर्थक[5] कैय्यटविवरणावतारित[6]तदंताग्रहणाद्वा अथवा[7] नैवं विज्ञायतेऽभ्यासस्याजंतस्येति कथं तर्हि अभ्यासस्य योऽच् इति भाष्येण तदनुवादक कैय्यट विवरणा[8]भ्यामे तद्भाष्यानुवादक ह्रस्व इति सूत्रस्थ शेखरग्रन्थेन च संज्ञाकृततत्वस्याश्रयणात्। अभ्याससंज्ञाप्रवृत्तिकाले स्थानि द्वारा–

---

1. निकृत्यर्थमिति अ–1, अ–3.
2. सिंध ज–2, अ–1, अ–3.
3. पाठोऽय अ–1, ज–2, अ–4; इत्युक्तयऽकिग्रहण प–1, ज–2.
4. पाठोऽयं प–1अ–1, अ–3; युक्तो अ–4; अयुक्तै ज–1; अयुक्तो ज–2.
5. इत्यर्थ अ–1, अ–3 इत्यर्थे अ–4.
6. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4; विवरणमवतारिता तदंणाग्रहणाद्वा ज–1.
7. अधवाने चं ज–2, अ–3.
8. विचरणाभ्यामेतभ्यामेतभ्यामेतादाभाष्यानुवादक ज–2, अ–1, अ–3; विवरणाभ्यासेतद्भाष्यानु अ–4.

तत्संज्ञक शब्देन, साधनेन=कारकेण तत्प्रयुक्तकार्य्येण च। अत एवानुभूयत इत्यादौ सकर्म्मकत्वात् कर्म्मणि लकारसिद्धिरिति तन्न। क्रियायाः साध्यत्वेन बोधात् साध्यस्य च साधनाकाङ्क्षतया तत्सम्बन्धोत्तरमेव निश्चितक्रियाबोधेन साधनकार्य्यप्रवृत्त्युत्तरमेव क्रियायोग- निमित्तोपसर्गसंज्ञकस्य सम्बन्धौचित्यात्। अत एव 'सुट्कात् पूर्वः' (6.1.35) इति सूत्रे पूर्वं धातुरूपसर्गेणेत्युक्त्वा नेतत् सारं पूर्व धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेत्युक्त्वोक्तयुक्त्या अस्यैव युक्तत्वमुक्तं साधनं हि क्रियां निर्वर्त्तयतीत्यादिना भाष्ये। उपसर्ग-

---

साक्षाद् वा संनिहितानां[1] हलामेवनुगत इति नुग्विधानात्। निवृत्तेर्ज्ञापितत्वेन[2] न दोष इति समाधिस्य विवरणे न वार्णादाङ्गमित्यस्य[3] चोभयोरादेशत्वे एव प्रवृत्तिरित्याग्रहपूर्वक ह्रस्वा[4]भाव प्रतिपादक ह्रस्व इति सूत्रस्थ शेखरग्रन्थेन च समाधानात्[5]। तुकि कृतेपि हलादिः शेषेणतन्निवृत्तौ[6] ह्रस्व सौलभ्येन वार्णपरिभाषया ह्रस्व सौलभ्येन च तद्भाष्यमेकदेश्युक्तमिति तु नाशंकनीयम्। किञ्चान्तरंगत्वाद्यादेशापेक्षयापदद्वय[7]निमित्तसमास[8] संज्ञाप्रयोज्यप्रातिपदिक संज्ञासापेक्षत्वेन[9] बहिरंगलुकः प्राबल्यप्रतिपादकभाष्येण अन्तरंग ईत्वापेक्षया समाससंज्ञासापेक्ष बहिरंगल्यपः प्राबल्यबोधक[10]भाष्येण प्रकृतपरिभाषा ज्ञापक

---

1. संविहितानाम् ज-2.
2. ज्ञापितत्वेन दोष इति प-1; ज्ञापितत्वेननु दोषः ज-2; ज्ञापितत्वेनुनदोष अ-1, अ-3; निवृत्तेर्तापितरित्यसाग्रहपूर्वकहुत्वाभाव इति पाठान्तरं उपलभ्यते अ-4.
3. वर्णदांगायस्य ज-2, अ-1, अ-3.
4. हुत्वाभाव अ-4.
5. समाधातनां तुकि प-1.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-4 शेषेणतन्निवृत्ता अ-1, ज-2, अ-3.
7. पदद्वयानिमित्तसमासंज्ञा अ-3; यवृद्धयो नैमित्तसमास ज-2.
8. समाससंज्ञा इत्यारभ्य ईत्वापेक्षया इत्यन्तं अ-4 मातृकायां नोपलभ्यते.
9. संज्ञापेक्षत्वेन प-1; संज्ञासापेक्षत्वेमबहिरंग ज-2, अ-1, अ-3.
10. प्राबल्यप्रतिपादकभाष्येण प-1.

द्योत्यार्थान्तर्भावेण धातु नैवार्थाभिधानादुक्तेषु कर्म्मणि लकारादिसिद्धिः। पश्चाच्छ्रोतुर्बोधाय द्योतकोपसर्गसम्बन्धः। एवं च अन्तरङ्गतरार्थ-कोपसर्गनिमित्तः सुट् संकृतीत्यवस्थायां द्वित्वादितः पूर्वं प्रवर्त्तते ततो द्वित्वादि। अत एव प्रणिदापयतीत्यादौ णत्वं 'यदागमाः' (प.- 11) इति न्यायेन समाहितं भाष्ये। अत एव प्रत्येति प्रत्ययः इत्यादि सिद्धिः। अन्यथान्तरङ्गत्वात् सवर्णदीर्घे रूपासिद्धिः। यदुपसर्गनिमित्तकं कार्य्यमुपसर्गार्थाश्रितं विशिष्टोपसर्गनिमित्तकत्वात्तदन्तरङ्गम्। यत्तु न

पर[1] वाहऊठ् सूत्रस्थ भाष्येण[2] च तत्वाश्रयणबोधनाच्च। अपि च एङ् ह्स्वात्संबुद्धेरुस्य[3] पदान्तादित्यादि सूत्रस्थ शेखर ग्रंथादपि[4] संज्ञाकृतान्तरंगबहिरंग भावा[5]श्रयणलाभाच्चेति तत्प्रदर्शनानुसरण्येक दिक्।

विद्यमान[6]मपि संज्ञा[7] कृतान्तरंगबहिरंग भावमाछाद्यलक्ष्यानुरोध्यन्तरंग बहिरंगभावग्रहणे भाष्यान्तरमुपपादयन् तदुपपादिकामन्यथा कैय्यटोक्ति-मनुवदति[8]। अत्र कैय्यट इत्यादिना संज्ञापेक्ष[9]स्यापीति। अपि शब्दोक्त[10] ऊन शब्दमाश्रित्य यणा[11]देशो न शब्दमाश्रित्यगुणे इत्यंतरंग बहिरंगभावस्य[12] समुच्चायकः:-

---

1. वाह ऊठ् 6/4/132; परिवाहाउठ् ज-2; परहावा ऊठ् प-1.
2. भाष्ये रगवतत्वा ज-2, अ-3; भाष्येण चत्वारश्रयण प-1.
3. एङ् ह्स्वारं सम्बुद्धेः 6/1/69.
4. गुंदारि पि अ-4.
5. भावो अ-3.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; विद्यमानपि ज-1.
7. संज्ञादि प-1; संज्ञाम् अ-4
8. अनुवेदिति अ-4.
9. साज्ञापेक्षस्यपिति अ-1, ज-2, अ-3.
10. शब्दौ अ-3; शब्दा अ-4.
11. यगादेशो इत्यारभ्य ऊठमंगी कुर्वतः इत्यन्तं प-1 मातृकायां नाऽवलोक्यते.
12. इत्यन्तरंगभावस्य अ-4.

तथा तत्र पूर्वागतसाधननिमित्तकमेवान्तरङ्गम्। अत एव 'न धातु' (1.1.4) इति सूत्रे प्रद्ध इत्यत्र गुणो बहिरङ्ग इति भाष्य उक्तम्।

किञ्च पूर्वमुपसर्गयोगे धातूपसर्गयोः समास ऐकस्वर्य्याद्-यापत्तिरिति 'उपपदमतिङ्' (2.2.19) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। भावार्थप्रत्ययस्यापि पूर्वमेवोत्पत्तिः। अतएव 'णेरध्ययने' (7.2.26) इति निर्देशः सङ्गच्छते। इदं च सामान्यापेक्षं ज्ञापकं भावतिङोऽपि

तद समुच्चायकत्वे तद्व्याख्या[1]नेऽप्रवृत्यापत्तेः। **भाष्यासंगतेरिति।** गुणे संज्ञा कृतबहिरंगत्वमाश्रित्यान्तरंग त्वादूठ[2]मंगी कुर्वतः कैयटस्यान्त-रंगत्वाद्यणपेक्षया गुणे एव स्यादिति दोषप्रतिपादक भाष्यविरोधा-पत्तैरवश्यमूठ्विषये[3] विद्यमानमपि गुणे[4] संज्ञाकृत बहिरंगत्वमाच्छाद्य मदुक्त रीत्या नित्यत्वे[5] नैव पूर्वमूठ[6] सम्पा[7]द्याग्रिमभाष्येपि गुणे तत्वमाछाद्य भाष्यस्य सुयोजत्वादिति भावः। एवञ्च लक्ष्यानुरोध्य[8]न्तरंगबहिरंगभाव इति फलितम्[9]। ननु लक्ष्यानु रोध्यन्तरंगभावस्यावश्यकत्वे ऊठ[10] विषये गुणशास्त्रे संज्ञाकृतबहिरंग[11]त्वमाश्रियोत्तरभाष्येगुणे तदनाश्रित्य

---

1. तद्वयाने अ–1; तसमुच्चयकत्वे न आनेऽप्रवृत्यापनेः अ–3; तद्वानिऽप्रवृत्यापत्ते ज–2, प–1.
2. ऊठूमंगी अ–3; अंगीकुवतःअ–4.
3. विषयेविषये अ–3.
4. विद्यमानमपि गुणे माछाद्य भाष्यसुयोजत्वादिभावः एवन्चलक्ष्यानुणे संज्ञाकृतबहिरंगत्वमाछाद्यमदुक्तरीत्या नित्यत्वैनैव पूर्वमृडं इतिपाठोप लभ्यते अ–4. संज्ञाकृत इत्यारभ्य अग्रिम भाष्येपि इत्यन्तं अ–1 नास्ति.
5. नित्यानित्यत्वे नैव अ–4.
6. पूर्वमूढम् ज–2, अ–1; पूर्वमृडं अ–3.
7. संधायाग्रिम ज–2 अग्रिमभापि अ–4.
8. रोध्यंतरं बहिरंग प–1.
9. फलिताम् ज–2, अ–1, अ–3.
10. उठ अ–3.
11. बहिरंगमाश्रित्योत्तर प–1.

पूर्वमुत्पतेः। अन्यथा तत्र समासापत्तिः। तिङित्वतिङिङतिषेधात्र तत्र दोषो यदि भावतिङ्युपसर्गयोगोऽस्तीत्यलम्।

यत्तु विशेषापेक्षात्सामान्यापेक्षमन्तरङ्ग विशेषापेक्षे विशेषधर्म्मस्याधिकस्य निमित्तत्वात्। यथा 'रूदादिभ्यः सार्वधातुके' (7.2.66) इत्यत्र रूदादित्वं सार्वधातुकत्वं च। तत्र सार्वधातुकत्वज्ञानाय प्रकृतेर्धातुत्वज्ञानं प्रत्ययस्य प्रत्ययत्वज्ञानं चावश्यकमिति यासुडन्तरङ्गः।

एतेन यद् 'अनुदात्तङितः' (1.3.13) इति सूत्रे कैयटेनोक्तं 'लमात्रापेक्षयाऽन्तरङ्गास्तिवादयः, लकारविशेषापेक्षत्वाद्बहिरङ्गाः

भाष्यं[1] सुयोजमिति क्व[2] कैयटस्य विरोध इति चैत् वाढ़[3] मदुक्तरीत्या नित्यत्वेनैव गुण[4] वाधसिद्धौ वैरुप्येण भाष्य[5] योजनस्य परिभाषया वाधनस्य चानुचित[6]त्वात्। स्पष्टश्चायमर्थो नित्यत्वांतरंगत्वयुक्त[7]त्वेपि चङीत्यस्य नित्यत्वेनैव णौचङ्युपेत्यस्य बाधने भाष्ये तथैत्येधत्यूठ[8]स्विति सूत्रे शब्दरत्ने अत्रैव[9] पूर्वं मूले च[10]। एतेन संज्ञाकृत्तान्तरंग बहिरंग[11]त्वस्य गुणे सत्वेनेति। मूलग्रन्थं प्रत्याहार[12]त्रयं तददि–

1. भाव्ये ज–2, अ–1, अ–3.
2. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4; स्वयं कैयटस्य ज–1.
3. चैद्वटं अ–4.
4. गुबाध ज–2, अ–1, अ–3.
5. भाष्ये.
6. चामुचितत्त्वात् प–1.
7. अन्तरंगत्वसूक्तत्वेपि ज–2; अन्तरंग प्लुकृत्वेपि अ–1; अन्तरंगत्वदनुक्रत्वेपि अ–3.
8. तथेत्येधारूढस्विति ज–2. तथैवत्येधत्यूदत्विति अ–4.
9. अत्रैक प–1.
10. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4, प–2; मूलैव ज–1.
11. बहिरंगभावनाश्रयेकं ग्रन्थार्थं बुध्यातदंतविधापि बहुपेदार्थापेक्षत्वरूप बहिरंगत्वस्य गुणे सत्वेवेति इति पाठोपलभ्यते प–1 मातृकायां.
12. प्रत्यहरत्रय प–1, प–3; प्रत्याहारं त्रयम् अ–4.

स्यादयः' इति तत्परास्तम्। विशेषापेक्षत्वेऽपि तस्य सामान्यधर्म्म-निमित्तकत्वाभावेन तत्त्वस्य दुरुपपादत्वात्, परनिमित्तकत्वेन स्यादीनां बहिरङ्गत्वाच्चेति तन्न। विशेषस्य व्याप्यत्वेन व्यापकस्यानुमानेनोपस्थितावपि तस्य निमित्तत्वे मानाभावेनाधिकधर्म्म निमित्तकत्वानुपपादनात्। भाष्य एवंविधान्तरङ्गबहिरङ्गभावस्य क्वाप्यनुल्लेखाच्च।

यत्तु मतुप्सूत्रे भाष्ये पञ्च गावो यस्य सन्ति स पञ्चगुरित्यत्र मतुप्प्राप्तिमाशङ्कय प्रत्येकमसामर्थ्यात् समुदायादप्रातिपदिकत्वात् समासात् समासेनोक्तवादिति सिद्धान्तिनोक्ते नैतत्सारमुक्तेऽपि हि

तदन्तेविधी[1] च द्वे इत्येवं यणोपि पंचकाश्रयत्वात् पुनरपि समत्वादिति ग्रंथेन दूषयित्वा च केयटभूषण[2] कुर्वन्तो भकारे दकारमंगीचक्रुः केचित्। किञ्च यथाश्रुतेपि गुणेंण इक लघु उपधा[3] आर्द्धधातुक गुणानां षण्णां[4] सत्वेन कथं साम्यप्रतिपादनमिति[5] तु एवे[6]कान्ते प्रष्टव्या इति दिक्।

वह्वपेक्ष[7]त्वाल्पापेक्षत्वयोरिति। सर्वं वाक्यं सविधारणमिति न्यायेन तयोरेवेत्यर्थः[8]। एवं चान्य विधस्यापि अंतरंग बहिरंग[9]भावस्य ग्रहीतु[10]

---

1. पाठोऽयं प-1; तदन्त विधोचर्द्वे ज-1; तदेत्व विधीवद्वेत्येव ज-2, अ-1, अ-3.
2. भूषण कुर्व मकारे दकारे प-1.
3. उपधाजार्ध धातुक अ-1, अ-3; उपधातुक गुणानां प-2.
4. पाठोऽयं प-1, प-2; षणां सत्वेन ज-1, ज-2, अ-1, अ-3; षणत्षंगसत्वेन अ-4.
5. साम्यमतिपादनम् प-2.
6. तदावैकांते ज-2.
7. सं. पाठः.
8. न्यायेनतयोरेनेत्यर्थः ज-2, अ-1, अ-3; न्यायोरेवेत्यर्थ प-2.
9. बहिरंग नाऽवलोक्यते प-1, प-2, अ-4.
10. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-3, अ-4; गृहीतुं ज-1, ज-2.

प्रत्ययार्थ उत्पद्यते द्विगो स्तद्धितो यथा पान्चनापितिरिति पूर्वपच्युक्तिर्भाष्ये। 'द्विगोर्लुगनपत्ये' (4.1.88) इति लुग्विधाना-त्तद्धितार्थद्विवगोस्तद्धितो तद्धितो भवति पञ्चगुशब्दश्च द्विगुरिति तदाशयं कैयटः। ततो द्वैमातुरः, पाञ्चनापितिः, पञ्चसु कपालेषु संस्कृत इत्यादौ सावकाशद्विगोर्बहुव्रीहिणा प्रकृते परत्वाद्बाध इत्याशयेन नैव द्विगुः। कस्तर्हि? बहुव्रीहिरिति सिद्धान्तिनोक्ते तमवकाशमजानानोऽपवादत् वाद् द्विगुः प्राप्नोतीति पूर्वपक्षी। अन्यपदार्थैः सुबन्तमात्रस्य विधीयमानबहुब्रीहेः संख्यायास्तद्धितार्थे विधीयमानो द्विगुर्विशेष विहितत्वाद्बाधकः प्राप्नोतीति कैयटः। ततः सिद्धान्त्येक-देश्याह, अन्तरङ्गत्वाद्बहुब्रीहिः। कान्तरङ्गता? अन्यपदार्थे बहुब्रीहि-विशिष्टेऽन्यपदार्थे द्विगुस्तस्मिश्चास्य तद्धितेऽस्तिग्रहणं क्रियत इति। अधिकास्त्यर्थापेक्षमत्वर्थनिमित्तो द्विगु र्बहिरङ्ग इति कैयट इति। नेषा

शक्यत्वेन संज्ञाकृत[1] तत्वमाश्रित्य भाष्यविरुद्धान्तरंगबहिरंग कल्पनातवानुचितेति भावः[2]। अङ्ग[3]शब्दे नेति। प्रकृत विषये इत्यर्थः। यथाश्रुतन्तु न साधु[4]। पूर्वोक्त रीत्या अनेक विधांतरंगबहिरंगभावमध्ये शब्दरूपं निमित्त[5]मादाय भाष्यप्रवृत्तिरित्युक्तया प्रथमदूषणस्य तवाप्यंग[6]शब्देन शब्दरूपं[7] निमित्तं ग्राह्यमित्यत्र मदुक्तानेकपूर्वोक्त भाष्य[8]विरोधादवश्य माश्रयणीयेन[9] संज्ञादि कृतांतरंग बहिरंगभावेन द्वितीयदूषणस्य ऊठो नित्यत्वेनापि -

---

1. संज्ञा कृत्यव प-1.
2. भाः अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, अ-1, अ-3, अ-4; अन्तरंग शब्देने प्रकृत ज-1; अंतरंगशब्देनेति ज-2.
4. साध ज-2.
5. निमित्तं ग्राह्यमित्यत्रमदुक्तानेक पूर्वोक्त इति प-1 मातृकायां पाठो पत्यते.
6. तवाप्यंवा शब्देन ज-2, अ-1, अ-3.
7. शब्देरूपं मितं ज-2, अ-1, अ-3.
8. भाविरोधाद प-1.
9. 'न' नास्ति अ-4.

सिद्धन्त्युक्तिरेतावताप्यपवादत्वाहानेः। अच् सामान्यापेक्षयणो विशिष्ट-सवर्णाजपेक्षदीर्घेण बाधदर्शनात्।

किञ्च उक्तरीत्या परत्वेनैव बाधसिद्धेः। किञ्च अत्राधि कापेक्षत्वेनैव बहिरङ्गत्वम्; न केवलविशेषापेक्षत्वेनेति नैतद्भाष्यारूढं विशेषापेक्षस्य बहिरङ्गत्वम्। अतएव सुबन्तसामान्यापेक्षो बहुब्रीहि-स्तद्विशेषापेक्षो द्विगुरिति नोक्तं भाष्ये। न चार्थकृतबहिरङ्गत्व-स्यानाश्रयणादिदमयुक्तम्, एकदेश्युक्तित्वेनादोषात्। अत एवास्तिग्रहणं नोपाध्यर्थं, किन्तु अस्तिशब्दान्मतुबर्थमिति त्वदभिमतं बहिरङ्गत्वमपि

गुणस्य वारयितुं[1] शक्यत्वेन तृतीय दूषणस्यानयैवयुक्त्या चतुर्थस्य तदादितदन्त[2] विध्युपक्रमा[3] दूनशब्दमाश्रित्येत्युक्तं भाष्ये इत्युक्तया[4] मूलोक्त पञ्चमदूषणस्य च क्रमेण-

परिहर्तुं शक्यत्वात्। किञ्च संज्ञा[5]कृततत्वानाश्रयणे पूर्वोक्ता नेक भाष्यकोपाच्चेति दिक्। **संज्ञा कृतबहिरंगत्वस्येति।** अस्य प्रकृते इति शेषः। एतत्परिभाषाविषये यथोद्देश[6]पक्षस्यैववक्ष्यमाण[7]त्वादेतत्। षष्ट्या[8] न लोपस्या सिद्धत्वेनानयालोपस्यासिद्धत्व[9] प्रतिपादना योगादिति भावः। किञ्चा[10]नंतरस्येति न्यायेन ङीप[11] एव निषेध इति शंकायाः भाष्योक्त

---

1. वारयित्वम् ज-2, अ-1.
2. तदादिरतदन्त प-1.
3. क्रमादून ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
4. उक्तभाष्यो प-2, ज-2, अ-1, अ-3.
5. संज्ञोकृत अ-1, अ-3.
6. यथोदेश अ-1, अ-3; यथोद्देशपक्ष्यस्यैव अ-4.
7. माणत्वादतदृष्ट्या अ-1, अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4, दृष्ट्या न ज-1, ज-2.
9. असिद्धत्विप्रति ज-2, अ-3; असिद्धत्वे नानयसालोपे अ-1, अ-4.
10. किं चानंतस्येति प-1, प-2.
11. ङिप एव प-1 ङी एव अ-4.

द्विगोर्नास्तीति प्रतिपाद्य सिद्धान्तिना 'मत्वर्थे द्विगोः' प्रतिषेधो वक्तव्यः इति वचनेनैतत्सिद्धमित्युक्तम्। अत एव 'तदोः यः सौ (7.2.106)' इति सूत्रेऽनन्त्योरिति चरितार्थम्। अन्यथा प्रत्ययसामान्यापेक्षत्वेनान्तरङ्गत्वादन्त्यस्यात्वेऽनन्त्यस्यैव सत्वे सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। 'पादः पत्' (6.4.130) इति सूत्रे भाष्यकैयटयोरप्येतदन्तरङ्गत्वाभाव एव सूचित इति सुधियो विभावयन्तु।

नन्वेवमसुस्नुवदित्यत्र लघूपधगुणादुवङोऽल्पनिमित्तत्वाभावादुवङ्

व्याख्याने नैव वारणीयत्वाच्चेत्यप्याशयः। अत एव वृद्धैरपि[1] अन्यत्र संज्ञा[2] कृततत्वाश्रयणेपि अत्र तदनाश्रयणमित्युपसंहारोऽस्यकृत इति ध्येयम्[3]। **अत एव कृतीति।** अत एवेत्यस्य न लोप विषये संज्ञाकृत बहिरंग[4]त्वानाश्रयणादेवेत्यर्थः। **नमानमिति।** अत्र विषयेत्यर्थः। यथाश्रुतं तु न साधीयः[5]। परिभाषा ज्ञापक परभाष्येण[6] संज्ञाकृतबहिरंगत्वस्य लाभेन[7] पूर्वोक्तानेकभाष्येण[8] च प्रथम दूषणस्य अपर[9] निमित्तकत्वांतरंगत्वस्य[10] न लोपे सत्वात् परिभाषया तुग्वारणस्य कर्त्तुं[11]मशक्यत्वेन कृति तुग्ग्रहणस्य सार्थक्यात्। द्वितीय[12]दूषणस्य-

---

1. वृद्रेरपि प-1; कृद्धेरपि प-2; वृद्यैरपि अ-4.
2. संज्ञाकृत बहिरंगत्वातत्वाश्रयणेपि प-1, प-2.
3. ध्येयः प-2; ध्येयाम् अ-4.
4. रंगत्वनाश्रयणाद् प-2; बहिरंगत्वस्यानाश्रयणाद् अ-4.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; सध्वीयः ज-1.
6. परिभाष्येण ज-2; ज्ञापकर भाष्येण अ-4.
7. सामनेज-2, अ-1; लाभौ न प-1; भावेन अ-3; लाभेन इत्यारभ्य कृत्वांतरंगत्वस्य इत्यन्तं अ-4 मातृकायां नाऽस्ति.
8. भाष्ये नण च प-1.
9. अपहनिमित्त ज-2.
10. कत्वातपरंगत्वस्य अ-3.
11. कतु प-1.
12. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; द्वितीय ज-1.

न स्यादिति चेत्? न। तत्रान्तः कार्य्यत्व रूपान्तरङ्गरङ्गत्वसत्त्वात्। अन्तः कार्य्यत्वं च पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वमङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वात्। इदमन्तरङ्गत्वं लोकन्याय सिद्धमिति मनुष्योऽयं प्रातरुत्थाय स्वशरीरकार्य्याणि करोति, ततः सुहृदाम्, ततः सम्बन्धिनाम्। अर्थानामपि

चोद्धर्त्तुं[1] शक्यत्वात्। पदार्थमुक्त्वा[2] वाक्यार्थमाह। **अंतरंगे कर्त्तव्ये**[3] इति। **त्रिपाद्यां न प्रवर्त्तते इति।** यत्तु कैय्यटानुयायिनः अनया अतरंग[4] बलीय इत्यस्याः प्रत्याख्यानेपि[5] प्रत्यगवर्तीति लोकन्यायसिद्धाच:[6] परस्मिन्निति सूत्रभाष्योक्त परिभाषायाः प्रत्याख्यानाभावे[7]नास्यात्रिपाद्यां प्रवृत्तौ न बाधक[8]मित्यूचुस्तत्त्वनबधानग्रस्तम्[9]। पूर्वप्रदर्शिता चः परस्मि[10]न्निति सूत्रभाष्यात्प्रत्यंगवर्त्तिलोकन्याय[11] सिद्धोऽयमर्थ इति। यत्र युगपदु[12]भयप्रसंगस्तत्रैव प्रवर्तमानो वाहऊठ्[13] सूत्रीयासिद्ध परिभाषाया[14] न संग्राहक इति पूर्वमुक्ता[15] अग्रे च लोकन्याय सिद्धायाः त्रिपाद्यां प्रवृत्ति स्वीकारेण परस्पर[16] विरोधात्।

---

1. वोद्धतुम् ज-2.
2. पदार्थमुमुत्कवाक्यार्थम् प-2; पदार्थमुत्का प-1; पदार्थ मुक्ता अ-1, अ-3, अ-4.
3. कर्त्तव्य ज-2, अ-1, अ-3.
4. अंतरंग बलिय ज-2, अ-1; अंतरवलिय अ-3, अ-4.
5. प्रत्याख्यानोपि प्रत्यंगवतीति प-2; प्रत्याख्यानेपि प्रत्ययर्गतीति अ-4.
6. सिद्धाव: ज-2, अ-1, अ-3.
7. भावेनस्याः ज-2.
8. न बाधके प-2.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; ग्रस्ते ज-1; वधातग्रस्ते प-2.
10. परस्मिंति प-2.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1 अ-3, अ-4; न्याये ज-1.
12. युगपद भय ज-2, अ-1; युगपदभाय अ-3.
13. उठ अ-3 ऊह ज-2.
14. परिभाषया अ-4; उट् प-2.
15. पूर्वमुक्त्वा अ-1, अ-3; पूर्वक्त्वा अ-4.
16. स्वीकारेण परेण परस्पर प-2.

जातिव्यक्तिलिङ्गसंख्याकाराकाणां बोधक्रमः शास्त्रकृत्कल्पितस्तत्क्रमेणैव च तद्बोधकशब्दप्रादुर्भावः कल्पित इति तत्क्रमेणैव तत्कार्य्याणीति षट्व्येत्यादावन्तरङ्गत्वात् पूर्वं पूर्वयणादेशः परयणादेशस्य बहिरङ्गतया असिद्धत्वादित्यनेन 'अचः परस्मिन्' (1.1.57) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। तदपि युगपत्प्राप्तौ पूर्वप्रवृत्तिनियामकमेव। यथा पट्व्येत्यत्र पदस्य विभज्यान्वाख्याने न तु जातस्य बहिरङ्गस्य तादृशेऽन्तरङ्गेऽसिद्धतानियामकं प्रागुक्तलोकन्यायेन तथैव लाभादिति 'वाह ऊठ्' (6.4.132) सूत्रे कैयटे स्पष्टम्। अत एव वाय्वोरित्यादौ वलि लोपो यणः स्थानिवत्त्वेन वारितो 'अचः परस्मिन्' इत्यत्र भाष्यकृता। क्रमेणान्वाख्याने तु उक्तोदाहरणे पूर्वप्रवृत्तिकत्वमप्यन्तरङ्गत्वं बहिरङ्गत्वासिद्धत्वमपि निमित्ताभावादप्राप्तिरूपं बोध्यम्।

यत्तु एवं रीत्या पूर्वस्थानिकमप्यन्तरङ्गमिति तच्चिन्त्यम्, स्रजिष्ठ इत्यादौ विन्मतोर्लुकि टिलोपस्थापवादविन्मतोर्लुक् प्रवृत्त्या जातिपक्षाश्रयणेन वारण प्रयासस्य 'प्रकृत्यैकाच' (6.4.163) इति सूत्रप्रयोजनखण्डनावसरे भाष्यकृत्कृतस्य नैष्फल्यापत्तेः। त्वदुक्तरीत्या विन्मनोर्लुको बहिरङ्गासिद्धत्वेन अनायासतस्तद्वारणात्। भाष्य ईदृशरीत्या बहिरङ्गासिद्धत्वस्य क्वाप्यनाश्रयणाच्च। परिभाषायामङ्गशब्दस्य निमित्तपरत्वाच्च।

इयं चोत्तरपदाधिकारस्थबहिरङ्गस्य नासिद्धत्वबोधिकेति 'अच एकाचोऽम्' (6.3.68) इति सूत्रे भाष्ये पूर्वपक्ष्युक्तिरिति सा नादर्त्तव्या। परन्तप इत्यादावनुस्वारे नासिद्धत्वं मुमस्त्रिपाद्यामेतदप्रवृत्तेः। नव्यमतेऽपि यथोद्देशपक्षात्रयणेनान्यथासिद्धोदाहरणदानेन तस्य तदुक्तित्वमावश्यकमित्याहुः।

आभीयेऽन्तरङ्ग आभीयस्य बहिरङ्गस्य समानाश्रयस्य नानेनासिद्धत्वमसिद्धत्वादित्यसिद्धवत्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। एवं सिचिवृद्धेर्येन नाप्राप्तिन्यायेनान्तरङ्गबाधकत्वमूलकं न सिच्यन्तरङ्गमस्तीति 'इको गुणो' (1.1.3) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्।।50।।

नन्वेवमक्षद्यूरित्यादौ बहिरङ्गस्योठोऽसिद्धत्वादन्तरङ्गो यण् न स्यादत आह-

नाजानन्तर्य्ये बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिः॥51॥

अत्र 'षत्वतुकोः' (6.1.86) इति सूत्रस्थतुग्ग्रहणं ज्ञापकम्। अन्यथाधीत्य प्रेत्येत्यादौ समासोत्तरं ल्यप्प्रवृत्या पूर्वं समासे जाते तत्रसंहिताया नित्यत्वाल्ल्यबुत्पत्तिपर्यन्तमप्संहितयावस्थानासम्भवेनैकादेशे

तथा हि त्रिपादिस्थ पूर्व परशास्त्राणां यद्यु[1]गपदेकत्र प्रसंगस्तदाप्रवृत्तिर्युक्ता स्यात्तदेव[2]। पूर्व प्रतिपरासिद्धत्वेन युगपत्प्राप्त्याभावात्[3]। किञ्च पूर्वत्रेत्यनेन शास्त्रसिद्धायाः परिभाषायाः यादृश विरोधेनबाधस्तादृश विरोधस्यात्रापि सत्वात्। अनुमिताया अपि बाधने[4] लोकन्यायसिद्धाया बाधने[5] तस्य श्रमाभावाच्चेति[6] दिक्। यथा गुरुवत् गुरुपुत्र[7] इति लोकन्यायेन हंते[8] कार्यं वधेः स्यात्तत्किं स्थानिवत्सूत्रेणेत्याशंक्य[9] स्वरुपेति परिभाषणात्धंतेः[10] कार्यं वधेर्नस्यादिति तदित्युक्तं तथा[11] प्रकृते भावः। बहिरंगसंप्रसारणस्यासिद्धत्वादिति। एऐन संज्ञाकृत बहिरंगत्वस्य परंपरया प्रत्ययनिमित्तकबहिरंगत्वस्य च ग्रहण[12]

---

1. शास्त्रानामयुगपद् ज-2.
2. स्यातदेव ना ज-2, अ-1, अ-3.
3. युगपप्राप्त्यभावात् प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
4. वाधेन अ-1; बाधेने अ-3.
5. वधने ज-2; वाधिते अ-4.
6. तस्यश्रन्या भावाच्चेति अ-4.
7. गुरपुत्र प-2.
8. हंनकार्यवधेः ज-2; हने अ-1, अ-3; हंतेः प-1, अ-4; हंतः प-2.
9. आशक्यम् प-2.
10. परिभाषगाद्वतेः ज-2, स्वेतेवधेन प-1; परिभाषणात्धतेऽकार्य अ-1, अ-3; परिभाषधंतेः अ-4.
11. तथा प्रकृतेति भावः ज-2, अ-1, अ-3, अ-4; तथा प्रकृतेपीति भाव प-1, प-2.
12. ग्रह परिभाषायां प-1, प-2.

ल्यपि तुगपेक्षया पदद्वयसम्बन्धिवर्णद्व यापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्ग-तयाऽसिद्धत्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। पदद्वयसंम्बन्धिवर्णद्वयापेक्षैकादेशस्य बहिरङ्गत्वमिति प्रेद्ध इत्यादौ गुणो बहिरङ्ग इति ग्रन्थेन 'न धातुलोप:' (1.1.4) इति सूत्रे 'संयोगान्तस्य लोप:' (8.1.23) इति सूत्रे च भाष्ये स्पष्टम्।

यत्तु षत्वग्रहणमपि ज्ञापकम्, अन्यथा कोऽसिचदित्यादौ पदद्वयसम्बन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वेन बहिरङ्गस्यैकादेशस्यासिद्धत्वेन

परिभाषायां सूचितम्।

अत्र देवानां प्रिय:[1] कश्चित्। अत्र सम्प्रसारणपदेन संप्रसारण[2]स्थानी लक्ष्यते। एवञ्च सम्प्रसारणस्यासिद्धत्वात् इत्यस्य सम्प्रसारण[3] स्थानिकपूर्वरूपस्यासिद्धत्वादित्यर्थ:। तथा च नवीन[4] मतेन संज्ञाकृत[5] बहिरंगत्वस्य न वा परम्परया[6] प्रत्ययनिमित्तक बहिरंगत्वस्य प्राप्तिरित्याह। तत्तु[7] विप्रतिषेध सूत्रस्थ पदयं वाहऊठ् इति ऊठ[8] शास्तीति[9] परिभाषाज्ञापकपरभाष्य[10]स्थ ज्ञापकोपपादक[11] कैय्यटग्रंथीयगुणेकृते वृद्धौ कृतायामिति ग्रन्थ व्याख्या[12] परसत्यां च परिभाषायां विभक्ति निमित्तक[13]

---

1. प्रिय ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
2. संप्रसारण पद स्थानी अ-4.
3. संप्रसारणम् अ-4.
4. नविन प-1; नवनमतेन अ-3.
5. संज्ञकृत अ-4 यज्ञाकृत प-2.
6. परम्पराया प-2.
7. यत्तु ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
8. उठम् अ-3.
9. शास्तिति प-1; शास्तोति ज-2.
10. परिभाष्यस्थम् ज-2; ज्ञापकरं भाष्यस्थं अ-1, अ-3.
11. उपपादूक प-1.
12. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; ग्रन्थव्यापार सत्यां च ज-1.
13. निमित्तकम् प-1, प-2.

षत्वाप्रवृत्तौ किं तेनेति तन्न। इणः पूर्वपदसम्बन्धित्वेन षत्वस्यापि पदद्वयसम्बन्धिवर्णद्वयापेक्षत्वेन उभयोः समत्वात्। एकादेशस्य परादिवत्त्वेनौसिचदित्यस्य पदत्वेन सस्य पदादित्वाभावान्न 'सात्पदाद्योः' (8.3.111) इत्यनेन निषेधः। त्रैपादिकेऽन्तरङ्गे कार्यकालपक्षेऽपि

सम्प्रसारणस्यासिद्धत्वाद्। गुणाभावे रुपासिद्धौ ऊठ् ग्रहण[1]मिति विवरणग्रन्थेन लघुभांडस्थित[2] लघु[3]मर्कटबद्धमुष्टिस्थ चणक[4]तुल्यत्वं प्रापितमिति न मत्कृत यत्न[5]मपेक्षते। एवञ्च मन्मता ज्ञानपूर्विकायुक्तिरिति बोध्यम्। न च वाह ऊठ् सूत्र[6]भाष्यस्थसंप्रसारणपदे[7] लक्षणेति मदाशय[8] इति चैत्तर्हि प्रापित[9]स्त्वदीयनवीनग्रन्थाभिनिवेश[10] स्त्यैवदत्तजलाञ्जलित्वम्। किञ्च[11] नवीनप्राचीनो[12]भयमार्गभ्रष्टस्य तव[13]जनैरसंभाव्यतैवायातीति कथं न पर्या[14]लोचये नहि–

---

1. गुणमिति प–1, प–2.
2. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2; भांडस्थिलघुमोड स्थित अ–3; लघु भांडस्थे अ–4; भांडास्थित ज–1.
3. कर्मट प–1.
4. चणकि ज–23, अ–1, अ–3.
5. पाठोऽयं अ–4; कृतपलमपेक्षते ज–1; कृतज्ञमपेक्ष्यते प–1; कृतलमपेक्षति प–2; कृतपलमपक्षते ज–2 कृतज्ञमपेक्ष्यते प–1; कृतलमपेक्षाते प–2; विवरणग्रंथेन इतयारभ्य अपेक्षते इत्यन्तं पुन रावृत्तिरस्ति प–2.
6. सूत्रस्थभाष्यसंप्रसारणे प–1, प–2, अ–4.
7. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; पदलक्षणेति ज–1.
8. मादाशय रति ज–2, अ–1, अ–3; तदाश इति अ–4.
9. प्राप्तितस्त्वदीय अ–4.
10. निविशस्त्वयेव अ–1, अ–3, ज–2.
11. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–3.
12. प्राचीनोभयम् ज–1; प्रावीन प्राचीनोभय प–2.
13. तवननैरसभाष्यतेवाद्यानीति कथं ज–2; जनैरसंभाव्यतैवायानीति अ–1, अ–3.
14. पर्यालोचये: ज–2, अ–4; पयौलोचये: अ–1, अ–3; प्रयालोचये:, प–1.

प्राचीन[1]नवीनैः सम्प्रसारण[2]पदस्य भाष्यस्थ तादृशोर्थः[3] कृतः। ननु भाष्यस्थ[4] संप्रसारणपदेऽवश्य[5] लक्षणाऽभ्युपेया विभक्तिनिमित्तक सम्प्रसारण-स्यासिद्धत्वादिति विवरणस्य[6] त्वयमर्थः विभक्ति निमित्तक सम्प्रसारण स्थानि[7]कस्येति एवञ्च न[8] विरोधः[9]। अन्यथा[10]पूर्वंसम्प्रसारणे पश्चात् पूर्वरूपेण सम्प्रसारण[11]पहारे सम्प्रसारणाभावेनांतरंगगुणदृष्टया सम्प्रसारणस्यासिद्धत्वं वक्तुमशक्यं स्यात्। पूर्वस्य परस्य वा कार्याभावेन[12] सम्प्रसारणस्याल् वृत्तित्वे नाल् मात्रवृत्तित्वेन परिभाषा[13]प्रवृत्तिरुपा[15] शास्त्रोपकायेऽतिदेश प्रवृत्यभावेन[16] चाचः परस्मिन् स्थानिवदादेश[17] अंतादि वच्चेत्यन्यत्तम सूत्रेणाति[18]दिष्टे इति[19] –

1. प्राचिन प–1.
2. पदस्या ज–2; संप्रसारपदस्य प–1.
3. तादृशोर्थतः ज–2, अ–3.
4. भाष्यस्थं अ–1, अ–3.
5. अचश्यं ज–2, अ–3, पदऽवश्य प–2.
6. विवरणास्य अ–4.
7. स्थासिद्धत्वादिति कल्येति एवं च न विरोध इति पाठः अ–4.
8. 'न' नोपलभ्यते प–1, प–2.
9. विराधः अ–1, अ–3.
10. जन्यथा ज–2, अ–1, अ–3.
11. पाठोऽयं अ–1; सम्प्रसारणापहारि ज–1, सम्प्रसारणस्यापद्वारे ज–2; सम्प्रसारणाभावेनांतरंग प–2, अ–3, अ–4, प–1.
12. कार्याभावतसम्प्रसात्वस्याल् प–2.
13. परिभाषाया ज–2.
14. रूप अ–3.
15. पाठोऽयं ज–2, प–1, अ–1, अ–3; शास्त्रीय कार्येऽति ज–1, अ–4; शास्त्रीय कार्योऽति प–2.
16. अभावेन व अवः ज–2, अ–1, अ–3.
17. देशे प–1.
18. सूत्रेणादितिष्टे अ–4.
19. रष्टसिद्धिरिति ज–2, अ–1, अ–3, अ–4; अष्टसिद्धिरिति प–2; इष्टसिद्धित्वेरिति प–1.

बहिरङ्गपरिभाषाया अप्रवृत्तेः पूर्वमुपपादित्वाच्च।

परिभाषार्थस्तु- अचोऽन्यानन्तर्यनिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्त्तव्ये जातस्य बहिरङ्गस्य बहिष्ट्वप्रक्लृप्तिर्न। बहिष्पदेन बहिरङ्गम्, तस्य भावो बहिष्ट्वम् (बहिरङ्गत्वम्) तत्प्रयुक्तासिद्धत्वस्य न प्रक्लृप्तिः न प्राप्तिरिति। असिद्धं बहिरङ्गमित्युक्त्वा नाजानन्तर्य इति वक्ष्यामीति भाष्योक्तया तत्रत्यस्यान्तरङ्ग इत्यस्यानुवृत्तिसूचनात्। तेन पचावेदमित्यादौ न दोषः। अन्तरङ्गस्याच्स्थानिक कार्यस्यैत्वस्यान्यानन्तर्यनिमित्तकत्वाभात्। जातस्य बहिरङ्गस्येत्युक्त्याऽयजे इन्द्रं धियतीत्यादौ बहिरङ्गीर्ध-गुणादेरसिद्धत्वं सिद्धम्। अत एव 'इण् ङिशीनामाद्गुणः सवर्ण-दीर्घत्वाच्चङन्तस्यान्तरङ्गलक्षणत्वात्' इत्यादि संगच्छते। अत एव 'ओमाङोश्च' (6.1.95) इत्याङ्ग्रहणं चरितार्थम्। तद्धि शिव आ

सिद्धिरिति तु नाशंक्यमिति चेन्न। बाह ऊठ् इत्यस्यांगाधिकारस्थत्वेन तदन्त[1]विधौ वाहान्तं पदंगंतस्य[2] सम्प्रसारणमित्यर्थे गावयव[3] यण् द्वयस्यापि युगपत्सम्प्रसारण[4] प्राप्तौ न सम्प्रसारण इति निषेध ज्ञापकेन परस्य यणः पूर्वं[5] सम्प्रसारणे तदानीं[6] पूर्वरूपेण कर्तव्ये द्वितीयसम्प्रसारणस्याप्राप्तौ निषेधस्याप्राप्त्या[7] पूर्वरूपे अचः परस्मिन्निति स्थानिवत्वेन परत्वात्[8]-

---

1. ददंतविध ज-2; तदंविधौ अ-2.
2. वांहते यतदंगंतस्य अ-4.
3. ऽगावगायणद्वय ज-2, अ-3जावयव यण प-2; अगावयवयण प-1; ऽणावयण् अ-1, अ-4.
5. सम्प्रसारणे अ-4.
5. पूर्व प-2.
6. तदपूर्वरूपे नित्यत्वात् कर्त्तव्ये प-1, प-2. पूर्वरूपेकर्तव्ये अ-1, अ-3, अ-4.
7. सौ निषेधस्याप्य प-2, प-1.
8. पाठोऽयं प-1, प-2 पूर्वे ये अचः ज-1; पूर्व ये अवः ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.

प्राप्तगुण[1] प्रतिबंधे पश्चात्प्राप्त द्वितीयसम्प्रसारणस्य[2] न सम्प्रसारण इति निषेधे कर्त्तव्येऽचः परस्मिन्नित्यनैनातिदिष्ट[3] सम्प्रसारणत्वमादाय तस्यापि निषेधेपश्चात् परिभाषयाऽसिद्धत्वे[4] बोध[5]नीये वाक्य संज्ञापक्षे सम्प्रसारणाच्चेत्यस्याऽरोपित सम्प्रसारणादित्यर्थे[6]स्यावश्यकतया संप्रसारणत्वस्य वाक्य वर्णोभय[7] वृत्तित्वेनाल् मात्रवृत्तित्वाभावेनांतादिवत्सूत्रस्थापि[8] वंतीत्यत्रान्तरंगत्वात् शवकारांत्याकारयोरेकादेशेन पूर्वांतत्त्वेनातिदिष्ट शित्वमादायपिवादेश प्रवृत्तिकरणवत् प्रकृतेप्यतिदेशकरणेना[9]दोषात् हूतं इत्यत्रा सम्प्रसारणत्वाद्दीर्घो न स्यादित्यांशक्य दीर्घ विधि सामर्थ्यादंतवत्वाद्वेति भाष्यव्याख्यान परहल[11] इति सामर्थ्यात् वर्णवृत्तिधर्मस्याप्यतिदेश इति विवरणं[12] तु वर्णसंज्ञापक्षमाश्रित्य प्रवृत्तमिति[13] नास्माकं प्रतिकूलतामावहति[14]। किं च भाष्येपि मदुक्तरीत्यैव व्याख्योचिता। अन्यथा पक्षयो[15]र्भेदो न[16] स्यादिति दिक्।

---

1. गुणप्रवृत्तिप्रतिबंधे ज-2, अ-1, अ-3, प-1.
2. संप्रसारणे इति प-1.
3. तादि दिष्ट अ-4; दिष्ट प-2.
4. परिभाषाऽसिद्धत्वे प-2.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; बोधनीयाक्य संज्ञा ज-1.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-21, अ-1, अ-3, अ-4; सम्प्रसारणादित्यर्थे स्याऽस्यकतया ज-1.
7. वणाभय प-1; वणीभय प-2.
8. सूत्रस्थपि ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
9. कारणेनादोषात् ज-2.
10. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, प-1; वृत्त ज-1; हल प-2; दत अ-4.
11. परहंता ज-2.
12. विवर्णतु प-1.
13. प्रवृत्तित्ति प-2.
14. प्रतिकूलताभाव इति ज-2.
15. अन्यथा भेदोन प-1.
16. पक्षयो र्भेक्ष्येन अ-1, अ-3.

एहीति स्थिते परमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा घातूपसर्गकार्यत्वेनान्तरङ्ग-त्वादगुणे वृद्धिबाधनार्थम्।

न चाक्षद्यूरित्यत्र यणि कृते ऊठोऽसिद्धत्वाद्वलि लोपापत्ति-रिति वाच्यम्, अचोऽन्यान्तर्यनिमित्तकेऽन्तरङ्गे कर्त्तव्ये कृते च तस्मिन् यदन्तरङ्गं प्राप्नोति तत्र च कर्त्तव्ये नासिद्धत्वमित्येतदर्थात्। असिद्ध-परिभाषाया अनित्यत्वेन तद्वारणे त्वस्या वैयर्थ्यम्, तेनैव सिद्धेः। अत एव 'न लोपः सुप्' (8.2.2) इति सूत्रे कृति तुग्ग्रणं चरितार्थम्। अन्यथा वृत्रहभ्यामित्यादौ बहिर्भूतभ्याम् निमित्तकपदत्वाश्रयत्वेन बहिरङ्गतया नलोपस्यसिद्धत्वेन सिद्धेस्तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। मम तु तुक्यजानन्तर्यसत्त्वान्न दोषः।

न चैवं सति 'ह्रस्वस्य पिति' (6.1.71) इति सूत्रस्थभाष्य-विरोधः- तत्र हि ग्रामणिपुत्र इत्यत्र 'इको ह्रस्वोऽङ्य' (6.1.61) इति ह्रस्वे कृते तुकमाशङ्क्य ह्रस्वस्य बहिरङ्गासिद्धत्वेन समाहितम्। 'नाजानन्तर्य' इत्यस्य सत्त्वेवे तत्र तदप्राप्तेरसङ्गतिः स्पष्टैवेति वाच्यम्। तेन भाष्येणास्य अनावश्यकत्वबोधनात्। एतज्ज्ञापकेनान्तरङ्गपरिभाषाया अनित्य त्वबोधनस्यैव न्याय्यत्वात्। अत एव 'अचः परस्मिन्' (1.1. 57) इति सूत्रे भाष्ये पटु ई आ इत्यत्र परयणादेशस्य तया-सिद्धत्वात्पूर्वयणादेशः साधितः। अत एवैषा परिभाषा भाष्ये पुनः क्वापि नोल्लिखिता। अत एवान्तरङ्गपरिभाषामुपक्रम्य विप्रतिषेध सूत्रेऽस्या बहूनि प्रयोजनानि -

---

निषेधसूत्रस्य व्यथव्यपिव्यध्यादौ अव्यवहिते चारितार्थ्यात्। युड[1] अन् अस् इत्यत्रांतरंगपरिभाषायाः[2] अनित्यत्वेन दीर्घाप्रवृत्तौ पूर्वरुपे पश्चादेकादेशे पूर्वस्य यणः सम्प्रसारण[3] निषेधे कर्तव्ये सवर्णदीर्घस्याचः परस्मिन्निति स्थानिवत्वेन सम्प्रसारणत्वेपि-

---

1. यूड आन अस् प-1; युः अ-2 अस् अ-4.
2. परिभावायाम् ज-2; परिभाषाया प-1, प-2; अ-1, अ-3.
3. संप्रसारण नोपलभ्यते अ-4.

पुनः पूर्वोक्ताति[1]देशेनैव उकार व्यवधानेपि निषेधो[2] न स्यादित्याशंक्य व्यश्च[3] इति सूत्रेपग्रहणेनैव सिद्धे[4] व्यडः सम्प्रसारणमिति सूत्रात्। संप्रसारणपदेऽनुवर्तमाने पुनः सम्प्रसारणपदस्य[5] व्यवहित व्यथ इत्यादि सूत्र[6]विहित संप्रसारणनिषेध फलस्य[7] वैय्यर्थ्यात्[8]। व्यवहितेपि निषेधः सिद्ध इति न यून इत्यादावनुपपत्तिरित्यर्थस्यान्यत्र स्पष्टतया प्रकृते[9] वकारोत्तराकारव्यवधानेपि निषेधस्या प्राप्त्या कथं निषेध संचार इति तु न वाच्यम्। न च निर्दिश्यमान परिभाषया वाह एव स्थानिवत्वेन[10] पूर्व यणः सम्प्रसारणस्य प्राप्तरेवाभावादेतावान्पूर्वोक्तः[11] सर्वोपि प्रबन्धो निष्फल एवेति वाच्यम्[12]। सूत्रेषष्टयंततयोच्चार्यमाण सजातीय[13] स्थानि[14] निरुपित संबंधेन युज्यते[15] इत्यर्थे निर्दि्दश्यमान परिभाषाया अत्रानवतारात्। यत्सूत्रे साक्षात्षष्टयंततयोच्चार्यमाणं वाह इति न[16] तस्य स्थानि निष्टं यस्य चार्थिकं

---

1. पूर्वोक्तादेतिशेनैव प–1.
2. निषेधे ज–2, अ–1, अ–3.
3. व्यश्च 6/1/3 पाठोऽयं ज–1, अ–1, अ–3; व्यथ इति ज–1, प–1, प–1.
4. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; युनः सम्प्रसारणस्य व्यवहित ज–1.
6. सूत्राहितं ज–2, अ–1, अ–3.
7. पाठोऽयं प–1, प–2.
8. वैयर्थ्यात् ज–2.
9. प्राकृते ज–2, अ–1, अ–3.
10. स्थानि चत्वेन ज–2, अ–1.
11. पूर्वोक्तऽसर्वोपि अ–4.
12. वाच्यम् नोपलभ्यते अ–3.
13. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–3, अ–4; सजातियं ज–1; सजातीय प–1, प–2.
14. स्थानिरूपत ज–2, अ–1, अ–3.
15. प्रत्यने इत्यर्थ फ निर्दिश्य परिभाषाया ज–2; युज्यते इत्यर्थक निर्दिश्यमान प–1, प–2, अ–4 यत्येन इत्यर्थक् निर्दिश्यमान अ–1, अ–3.
16. न तस्य यस्य चार्थिकं इति पाठः प–1.

सन्ति तदर्थमेषा परिभाषा कर्त्तव्या प्रतिविधेयं च दोषेषु इत्युक्तं 'सम्प्रसारणाच्च' (6.1.108) इति सूत्रे भाष्ये। प्रतिविधानं च परिभाषा-विषयेऽनित्यत्वाश्रयणमेवेति ध्वनितमित्यलम्॥51॥

नन्वेवं गोमत्प्रिय इत्यादौ पदद्वयनिमित्तकसमासाश्रितत्वेन बहिरङ्गं लुकं बाधित्वान्तरङ्गत्वाद्धल्ङ्यादिलोपे नुमादयः स्युरत आह-

अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग्बाधते॥52॥

अत्र च 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' (7.2.98) इति सूत्रं ज्ञापकम्। त्वत्कृतमित्यादौ लुगपेक्षयान्तरङ्गत्वाद्विभक्तिनिमित्तकत्वेन 'त्वमावेक-वचने' (7.2.97) इत्यनेन सिद्धे इदं व्यर्थं सदेतज्ज्ञापकम्।

ननु तव पुत्रस्त्वत्पुत्र इत्यादौ तवममादिबाधनार्थं तदावश्यकमिति चेत्? एवं तर्ह्यत्रत्ययपर्यन्तग्रहणानुवृत्तिस्तज्ज्ञापिकेति भाष्यकृतः। युष्मदादिभ्य आचारक्विप् तु न, सम्पूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतापरभाष्य-प्रामाण्याद्; ह्रस्वनद्यापः (7.1.54) इति नुड्विधायकसूत्रस्थ-भाष्यप्रामाण्येन हलन्तेभ्य आचारक्विबभावाच्च। एवमेवैकार्थकाभ्यां प्रातिपदिकाभ्यां प्रातिपदिकणिचोप्यभिधानं बोध्यम्। एतेन तत्रादेशार्थं प्रत्ययग्रहणं चरितार्थमित्यपास्तम्।

स्थानिवत्वं[1] वकारस्य नासौ सूत्रे षष्टयंततया निर्दिर्दष्टः[2]। अत एव वाहो वा शब्दस्य सम्प्रसारण मूठ स्यादिति प्राचीनोक्त[3]मर्थमनुद्य नासौ सूत्रार्थः। किंतु यथा कथंचित्फलितार्थ कथन[4]परतया[5] योज्यमिति मनोर[6]मोक्तं संगच्छते[7]।

---

1. न तस्य स्थानित्वं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
2. निर्दिष्टः प-1, प-2, अ-4.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
4. परताया योज्य इति प-1, प-2.
5. मनोरमोक्त ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3.
6. सं. पाठः।

न[1] च कार्यकालपक्षे वाह उठित्यादि सूत्रेषु सम्प्रसारण विधायकेषु इत्यण इत्युपस्थित्या वाहोऽवयव[2] यण् इत्याद्यर्थेऽवयव षष्ठी[3] निर्देशेपि निर्दश्यमानपरिभाषाया स्वीकारेणोक्त दोषतादवस्थ्यम्। किञ्च सम्प्रसारण निमित्तस्थ उपस्थितयण्विशेषणत्वेन येन नाव्येति[4] न्यायात् परस्यैव[5] सम्प्रसारण प्राप्तेर्न सम्प्रसारण इति सूत्रमपि[6] व्यर्थमिति वाच्यम्। तन्मतेष्यड:[7] सम्प्रसारणमित्यादि[8] सूत्रस्थ भाष्यप्रामाण्येन संज्ञा सूत्राणां वाक्यैक वाक्यताया: स्वीकार[9] इत्यादोषात्। न च संज्ञाकृत[10] वहिरंगत्वस्याश्र[11]यणे तव बहिरंगत्वेनाभिमत सम्प्रसारणापेक्षया अनेकसंज्ञा[12] सापेक्षत्वस्य गुणे सत्वेन[13] ज्ञापकोच्छेदापत्तिरिति वाच्यम्। संज्ञाकृत[14] तत्वानाश्रयवादिनापि परम्परया बहिर्भूतप्रत्ययनिमित्तत्वेन[15] तत्त्वाश्रयणवत्। मयापि तत्त्वस्य वक्तुं शक्यत्वेन[16] वहिर्भूत[17] प्रत्ययनिमित्तकसंज्ञा सापेक्षत्वात्तत्वस्य वक्तुं –

---

1. ननु कार्यकाल प–1.
2. वाहोवयव अ–3.
3. षष्टौ ज–2, अ–1, अ–3.
4. नाच्चेति अ–3; नाप्येति ज–2; नाव्योति प–2; नाद्येति अ–3, अ–1.
5. यस्यैव प–1, प–2.
6. सूत्रमपि न्यर्थमिति ज–2.
7. एतन्मते ज–2, अ–1, अ–3, अ–4.
8. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4.
9. पाठोऽयं ज–2, अ–1, अ–3; स्वीकारे दोषात् ज–1; स्वीकार इत्यदोषात् प–1, प–2, अ–4.
10. कृतम् प–1; कृतां प–2.
11. बहिरंगत्वस्याप्याश्रयणे ज–2, प–2, अ–2, अ–1.
12 संज्ञयासापेक्षत्वस्य प–1.
13. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; मुखने सत्वेन ज–1.
14. तत्वानाना प–1; तत्त्वानाना अयवादिनापि प–2.
15. निमितत्वेतत्वाश्रयणवत् प–2.
16. शाक्यत्वेन अ–3.
17. वहिर्तप्रत्यय प–1, प–2; बहिर्भू प्रत्यय, अ–1, अ–3.

शक्यत्वेन च ज्ञापकस्य सुस्थत्वादित्येक दिक्। **एवञ्च नाजानन्तर्य इतीति।** अनेन परिभाषाश्रयणं[1] सूचितमिति बोध्यम्। अन्यथातदसत्वेनैव समाधीत्[2]। किंतु वचनमेवारब्धव्यमितीति। तच्च[3] विसर्जनीयोऽनुत्तरपद इति वक्तव्यमित्या कारकम्। उत्तरपद निमित्तकरेफस्य न विसर्जनीय इति तदर्थः। सर्पिष्याशादौ तु पाशादे[4]रुत्तरपदत्वाभावादेव न दोषः। दास्याः पुत्र इत्यलुक् समासे तु पुत्रस्योत्तरपदत्वेपि न रेफस्तन्निमित्तकः (किंतु पदांत[5] निमित्तकः) नार्कु[6]टादौ तु रेफ उत्तरपद निमित्तक ऋकार[7]स्य तद्धित निमित्तकवृद्धौ आद्य[8]त्वस्यापेक्षणात्। तच्च कुटावयवोकारापेक्षयैव[9] वाच्यम्। ततश्चोत्तरपदनिमित्तकत्वं[10] नार्कुटादौ रेफस्य स्पष्टमेवेति[11] वाच्यम्[12]। **येपीति।** कैय्यटादयः विसर्जनीयसूत्र शेषे कैय्यटेन यदा तु लक्ष्य[13]दर्शनवशात्। बहिरंग परिभाषयाश्रीयते[14] यथा रामस्तिष्ठतीत्यादौ रुत्वविसर्ग चक्रके[15]

1. परिभावाश्रयणं अ–3.
2. पाठोऽयं प–1, प–2 समादधित् ज–1; समादधीत ज–2, अ–1, अ–3, अ–4.
3. तत्त्वच्च विसर्जनीयोऽनन्तरस्पद ज–2, अ–1, अ–3.
4. पाठोऽयं प–1, प–2; तु याशादौ हुतपरपदत्वा भावादेव न प्लुः पुत्र इति ज–1.
5. पदत्वा नाऽस्ति अ–1 शशादौ ज–2 कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु ज–2, प–2, अ–1, अ–3, अ–4 अनुपलब्धोऽयं पाठः ज–1, प–1.
6. नार्कटादौ ज–2, अ–1, अ–3.
7. ऋकारस्य प–2.
8. आद्यतवस्यापेक्षयत् प–2; अद्यत्वस्यापेक्षणात् प–1; आद्यज्ञ त्वस्यापेक्षणात् अ–4; आद्यच्चस्यापेक्षणात् अ–1, अ–3.
9. कुटककारापेक्षयैव प–2; ऊठावपववोरापेक्षणैव ज–2.
10. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; निमित्तकत्वे ज–1.
11. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; स्पष्टमेति ज–1.
12. बोध्यम् ज–2, प–1, अ–1, अ–3, अ–4; बाध्यम् प–2.
13. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; लक्ष्यादर्शन ज–1, प–2.
14. परिभाषाश्रीयते ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3.
15. चकके प–1, प–2.

ननु मपर्यन्तानुवृत्तिरपि सर्वादेशत्ववारणाय चरितार्था। न च 'उत्सर्गसमानदेशा अपवादाः' इतिन्यायेनासिद्धत्सूत्रस्थभाष्यसम्मतेन मपर्यन्तस्यैवादेशे सिद्धे तदनुवृत्तिर्व्यर्थेति वाच्यम्, तस्य श्नम्बहुजकजादौ व्यभिचारादिति चेत्?

न, श्नमि मित्त्वेन बहुचि पुरस्तादग्रहणेनाकचि प्राकटेर्गहणेन तस्य बाधेऽप्यत्रोत्सर्गस्य त्यागे मानाभावात्। अत एव 'तस्मिन्नणि च' (4.3.2) इत्यनेन युष्माकाद्यादेश विधानं चरितार्थम्। अन्यथा आकङादेशमेव विदध्यात्। आकङि तव काद्यादेशयोरेतदपवाद-योरुक्तन्यायेनान्त्यादेशत्वापत्तिः, अतस्तद्विधानमिदमेव च तज्ज्ञापकम्।

यद्यपि विरोधे बाधकत्वमिति वार्तिकमतेऽयं न्यायो भाष्यकारस्तु विनापि विरोधं सत्यपि सम्भवे बाधकत्वमिच्छतीत्यनभिहित-सूत्रस्थकैयटरीत्या नायं नियमस्तथापि युष्माकाद्यादेशविधानज्ञापित उत्सर्गः स्वीक्रियत एवेति प्रकृते न दोषः। एतद्भाष्यमपि तत्स्वीकारे

इष्टतोऽवस्था तदायुक्त एव परिहारो न वा बहिरंग लक्षणत्वादित्युक्तम्[1]। **लक्षण चक्षुभिरिति**[2]। ननु भाष्यकारस्य लक्ष्य चक्षुष्कत्वेन[3] तन्मते तदादरो[4] युक्त इति चेन्न। नासूया[5]कर्त्तव्येति भाष्येण लक्ष्यानुरोधस्य[6] सर्वत्राप्रयोजकत्व-बोधनादित्याशयात्। अत्र तु भगवता[7] वार्त्तिककारेणानुगमस्य कृतत्वात्[8]। अन्यथा सर्व-

---

1. इत्युक्तः अ-3.
2. चक्षुर्भिरिति ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
3. लक्ष्यलक्षणत्वेन ज-2; लक्ष्ययलक्षुष्कत्वेन अ-1; लक्ष्य च तुकत्वेन प-1, प-2.
4. पाठोऽयं ज-2, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; तददारीयुक्त प-1; त्तपत्तदेशयुक्त ज-1.
5. नासूर्याव्येति भाष्येण प-2.
6. लक्ष्यानुरोधेनस्य प-2.
7. भवावता प-2; भागवता अ-4.
8. कृतस्यत्वत् प-2.

मानम्। एवं च मपर्यन्तानुवृत्तिस्त्वत्कृतमित्यादौ मपर्यन्तस्यदेशविधानार्था। तत्र चान्तरङ्गत्वात् 'त्वमौ' (7.2.97) इत्येव सिद्धे व्यर्था सैतज्ज्ञापिका। ज्ञापिते त्वस्मिन्नेतद्विषये तवादीनामप्राप्त्या तदपवादत्वाभावे मपर्यन्तस्यैवादेशार्थं सा चरितार्थेति तदाशयः।

यत्तु हरदत्तेनान्तरङ्गप्रवृत्तौ प्रत्यय उत्तरपदे च मपर्यन्तासभवेन तदनुवृत्तिव्यर्था सती तज्ज्ञापिकेत्युक्तं तन्न। अन्तरङ्गाणामप्यपवादबाध्यत्वेन तद्विषये तदप्रवृत्तेः। वस्तुत इदं ज्ञापकं वार्तिकरीत्येव, भाष्यरीत्या तु वाचनिक एवायमर्थः-इत्याहुः।

शास्त्रस्यैवोन्मज्जन प्रसंगः कृतेपि[1] नवेति सूत्रे ह्क्रोरन्यतरस्यामित्यन्यतरस्यां पदे[2]नान्तराभावेन क्वचित्[3] विधिमुखेन[4] प्रवृत्ति क्वचित्[5] निषेधमुखेन प्रवृत्तेर्वाक्यभेदस्य चावश्यकतया लक्ष्यानुरोधादेव सर्वत्रेष्ट सिद्धौ सूत्रं मास्त्वित्याशयान्न तत्सूत्रस्थ लक्ष्यानुरोध[6] दिशापि वार्त्तिकमकर्त्तव्यतापदवीं प्राप्तेति[7] दिक्।

ननु एहीत्ये[8]तत्तिङतपदघटक एहीत्युभयोः परस्परसमभिव्याहृतयोः प्रत्येकमनुकरणे पश्चाच्छि[9]वशब्द संबंधे पश्चादनु[10]कार्येण देवेत्यस्य[11]

---

1. कृतोपि अ-4.
2. पदेगत्यंतराभावेन प-1, प-2; पदेनात्यंतराभावेन अ-4, ज-2, अ-1, अ-3.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4, क्वविधि ज-1.
4. विधीमुखेन ज-2, अ-1, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-4; क्वनिषेध ज-1.
6. लक्षानुरोध अ-3.
7. प्राप्नोतीति ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; एहित्युभयोः ज-1.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; परत्वाछिव ज-1.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; पर त्वादनुकार्येण ज-1.
11. देवेत्यपद हीत्यस्य संबंधेऽनु इति पाठोपलभ्यते अ-4.

इयं 'सुपो धातु' (2.4.71) इति लुग्विषयैवेति केचित्। 'एङ्ह्रस्वात्सम्बुद्धेः' (6.1.69) 'न यासयोः' (7.3.45) इति सूत्रस्थाकरप्रामाण्येन लुङ्मात्रविषया। आद्ये हे त्रपु इत्यादावनेन न्यायेन लोपं बाधित्वा लुग्भवतीति भाष्य उक्तम्। अन्त्येऽन्तरङ्गांश्च विधीन् सर्वोऽपि लुग्बाधते न तु सुब्लुगेव। अत एव 'सनीस्रंस' इत्यादौ न लोपो न भवति। पञ्चभिः षट्वाभिः क्रीतः पञ्चषट्व इत्यादावेकादेशात् प्रागेव टापो लुक्। अन्यथा कृतैकादेशस्य

संबंधेऽनुकार्य्ये पूर्वान्तवद्भावेनाङ्त्वात्पररुप प्राप्तौ संहिताया अविवक्षया संध्यभावे पश्चात्तत्र विद्यमानाङ्गत्वस्य[1] प्रकृतिवदित्यति देशेनातिदेश[2] वृद्धिवाधनार्थं तस्यावश्यकत्वेन कथं भाष्योक्त ज्ञापकमत आह[3]। **एहीत्यनु-करणस्येति[4]।** एहीत्येवं यत्प्रत्येकमनुकरणं तस्येत्यर्थः। हीत्यस्यानुकरणे फलं तु तिङता[5]वयवस्यए इत्यस्येदमनुकरणमिति[6] बोधक[7]त्वमेवेति बोध्यम्। एवं च वस्तुतस्तु[8] आङ्त्वस्य तस्य[9] तत्रैकदेश[10] निष्टत्वेपि समुदाया निष्टत्वेन प्रकृत्य धर्मत्वात् पररुपस्याङ्मात्र कार्य्यत्वाच्चात्रातिदेशस्य वा संभव इति भाष्यं सम्यगेव। एवं[11] चेदं प्राचामनुरोधेनेति-

---

1. विद्यमानाङत्वस्य ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
2. देशे ज-2, अ-1, अ-3.
3. अह् ज-2, अ-3, अ-1.
4. एहीत्य मुकरणस्येति ज-2, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4, तिर्जतावयवस्य ज-1.
6. अनुकरमिति प-1.
7. 'वो' नाऽस्ति ज-2, अ-1, अ-3.
8. वस्तु आङत्वस्य ज-2, अ-1, अ-3.
9. तस्य नाऽस्ति प-2.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4., तत्रैकनिष्ठत्वेपि ज-1; देशनिष्टत्वोपि प-2.
11. एवं चेदं इत्यारभ्य बोध्यम् नोपलभ्यते प-1 मातृकायाम्.

लुक्यकारश्रवणं न स्यादिति कैयट उक्तम्। एतद्विरोधाद्यत 'तद्राजस्य' (2.4.62) इति सूत्रे कैयटेनोक्तमङ्गानतिक्रान्तोऽत्यङ्ग इत्यत्र सुपो लुकि बहुवचनपरत्वाभावात् 'तद्राजस्य' इति लुक् न स्यादिति शङ्कापरभाष्यव्याख्यावसरेऽन्तरङ्गानपीति न्यायेनायं लुक् सुब्लुको बाधकः स्यादित्याशङ्क्य सुब्लुक एवानेन बलवत्त्वं बोध्यत इति तत् प्रौढ्येति द्रष्टव्यम्। लुको बलवत्त्वस्य वक्तुमशक्यत्वादिति तदाशङ्कासमाधानं वक्तुं युक्तम्। अनेन न्यायेनान्तरङ्गनिमित्तविनाशकलुकस्तत्प्रयोजक-समासादीनां च प्राबल्यं बोध्यत इत्यन्यत्र विस्तरः॥52॥

बोध्यम्[1] इति ग्रन्थे दूषणन्तु न चमत्काराधायकमिति बोध्यम्। अनुकार्य्ये फलाभावेनाङ्त्वस्य तत्रातिदेष्टुमशक्यत्वेनायमसंगतो ग्रन्थ[2] इत्यपि कैश्चिदुक्तं न सम्यक्। ननु संध्यर्थमति[3] दिष्टस्याङ्त्वस्य संहिताया[4] अविवक्षया संधेर्निवृतो तत्र सत्वेमानाभाव इति चेन्न। ऋलृक् सूत्रस्थ भाष्यविरोधात्[5]। प्रकृति[6]वदित्यतिदेशस्य द्विपंचत्वित्याह अग्नीत्या हेत्युदाहरण-मुक्तम्। तत्र भवदुक्तरीत्याऽनुकार्ये पंचत्वित्यादावतिदेशेनतिङ्त्वे पदत्वे[7] तिङ्त्वस्य निवृत्तौ[8] पूर्वोक्तातिदेशेन कथमनुकरणेऽतिदेष्टु[9] शक्येतेति तद्विरोधः स्पष्ट एव। ननु अनुकरणे[10] परम्परया[11]ऽतिदेश इति भाष्यता पर्यमिति चेत् समं प्रकृतेपीति दिक्।

---

1. बोध्यम् नोपलभ्यते प-1; वाध्यमिति अ-4.
2. ग्रन्थरत्यपि ज-2, अ-1, अ-3.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; संबंध्यर्थमति ज-1.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; संहितया ज-1.
5. भाष्ये विरोधातु अ-1, अ-3; भाष्येविरोधात् ज-2.
6. विदित्यतिदेवस्य द्विः ज-2, अ-3; पदत्वे च तिङ्त्वस्य अ-4.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; निर्वृत्तौ ज-1.
9. दिष्टम् ज-2, प-1, अ-3.
10. अनुकारेणे प-1.
11. पारंपरयाऽतिदेश अ-4.

नन्वेवं सोमेन्द्रेऽन्तरङ्गत्वाद् आद्गुणे पूर्वपदात् परेन्द्रशब्दाभावेन 'नेन्द्रस्य परस्य' (7.3.22) इति वृद्धिनिषेधो व्यर्थः, अन्ताद्विवद्-भावस्तूभयत आश्रयणे निषिद्धः।

किञ्च वृद्धिरप्यत्र न प्राप्नोत्यन्तादिवत्त्वोभयाभावेऽपि पूर्वान्त-वत्त्वेनैका देशविशिष्टे पूर्वपदत्वेन न्द्रशब्दस्यैकदेशविकृतन्यायेन उभयत आश्रयणे नान्तादिवदित्य स्याभावेन तदाश्रयणे चोत्तरपदत्वेऽपि तस्यानच्कतवादेकस्यैकादेशेन परस्य नित्येन 'यस्य' (6.4.146) इति लोपेनापहारात्।

न च परादिवद्भावेनैकादेशाविशिष्टस्योत्तरपदत्वमेवास्त्विति तत्सम्भव इति वाच्यम्, उत्तरपदाद्यचस्थानिकत्वाद् वृद्धेस्तद-भावेनाप्राप्तेस्ताद्रूप्यानतिदेशात्। अन्यथा खट्वाभिरित्यादावपि पूर्वान्त-वत्त्वेनादन्तत्वे भिस ऐस्त्वापत्तिरिति भाष्ये स्पष्टम्।

अंतरंगत्वाद्बहुब्रीहिरिति। इदमपि भाष्यमर्थकृतबहिरंग[1] त्वाश्रयणे मानमुक्तम्[2]। ननु सिद्धान्तिना[3] प्रकृतेऽर्थकृतांतरंगभावस्यानाश्रयणात् पूर्वोक्त किं चाधि[4]पेक्षेत्यादिनांतरंगबहिरंगभावयोजनमयुक्तमित्याशंक्य समाधत्ते[5]। **च चार्थकृतेत्यादिना।** न चेत्यस्याग्रे[6] सिद्धांतिनेति शेषः। **इदमिति।** पूर्वोक्तांतरंगबहिरंगभावायो[7]जनमित्यर्थः। एकदेश्युक्तित्वेनेति। एक देश्युक्तयाभिप्रायकत्वेनेत्यर्थः। वृहद् विवरणकारोक्तरीत्या आशंकते[8]॥50॥

---

1. बहिरंगत्व स्याश्रयणे ज-2, प-1, प-2, बहिरंगत्वस्या असणी मानम् अ-1, अ-3.
2. मानमित्युक्त ज-2, अ-1, अ-3.
3. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; सिद्धान्तेना प्रकृते ज-1.
4. किं चाधिकापेक्षे प-1, प-2; किंचाधिपेक्षे ज-1, अ-1, अ-3.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3; समाधन्ते अ-4.
6. नवेत्याशे सिद्धंततिनेति ज-2; न चेत्याग्रे सिद्धांतावनेति अ-1, अ-3.
7. भवयोजनम् प-1, प-2, अ-4.
8. अशंकते प-1; आशंक्यते अ-3.

अत एव पूर्वेषुकामशम इत्यादावन्तरङ्गत्वादाद्गुणे वृद्धिर्न स्यादित्याशङ्क्य तम्। तदेकदेशमात्रस्य विकाराभावाच्च। तदुक्तं भाष्य इन्द्रे द्वावचावेको यस्येति लोपेनापहृतोऽपर एकादेशेन ततोऽनच्क

न चैवं सति ह्रस्वस्यपितीति। अनावश्यकत्व बोधनादिति। इदंत्वसत्। नाजानन्तर्य परिभाषा अनंगीकर्तॄणां षत्वतुकोर[1]सिद्ध इति सूत्रस्थ तुक्[2] ग्रहणादसिद्ध परिभाषाया अनित्यत्वेन[3] ह्रस्वस्य पितीत्येतत् सूत्रविषयेऽप्रवृत्ति[4]र्वाच्या। अत एव तुग्ग्रहणं[5] चरितार्थम्। ततश्च ग्रामणि पुत्रो ग्रामणिकुल[6]मित्यत्र तुग्वारण त्वं सिद्धपरिभाषया[7] कर्त्तुमशक्यमिति सन्निपात[8] परिभाषयैव तुग्वारणीयः। एवं चैतत्परिभाषा सत्वेप्यन्यथैव तुग्वारयितु[10] शक्य इति। त्वदुक्त[11] परिभाषाभावसाधक[12]हेत्वसिद्धिः। न च[13] परिभाषया[14] तुग्वारकभाष्यविरोधः। तस्यैकदेश्युक्ति[15]त्वस्याजतनपुंसक–

---

1. तकोर ज–2, अ–3.
2. तुग्रहणीदसिद्ध ज–2, अ–1, अ–3; तुग्रहणादसिद्ध प–1, प–2; तुग्ग्रहणादासिद्ध अ–4.
3. ह्रस्वपितोत्यत्यत् अ–1, अ–3.
4. ऽप्रवृत्तिवाच्यां अ–3, प–2.
5. नुग्ग्रहणं वरितार्थः ज–2, अ–1, अ–3; तुग्रहणणं चरितार्थः प–1.
6. ग्रामणे पुत्रो प–2.
7. परिभाषाया अ–3.
8. सनिपात अ–4.
9. ससत्वेप्यन्यथैव ज–2, अ–1, अ–3.
10. तुश्चारयितुं ज–2; अन्यथैव तु शक्य इति पाठोपलभ्यते अ–3; तुग् वारं तुं प–1.
11. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–3; तदुक्त ज–1; नोपलभ्यते ज–1, ज–2, अ–1, अ–4.
12. परिभाषावभासाधक प–2; परिभाषावज्ञाक अ–4.
13. 'च' नोपलभ्यते अ–3, अ–4.
14. परिभाषया तु तुग् वारक अ–4.
15. तस्यैतादेश्युक्ति ज–2, अ–1.

शेखरांते[1] मूलेपि तदुपन्यास एकदेशिन[2] इति। न तद्विरोध इत्यल[3] मित्यनेन ग्रंथेन बोधनात्[4]। अत[5] एव मूल[6]कृतापि असिद्ध परिभाषाज्ञापकोपपादनसमये गुणैऽजानंतर्य[7]सत्वेन निषेधमाशंक्य[8] परिभाषाया[9] अभावान्न दोष इत्यनुक्ता[10] युगंतेत्यादि कर्मधारयाश्रयणे न भिनतीत्यादौ[11] दोषवारणान्तनिमित्तको[12] विशेषणमित्युक्तम्। एतदसत्वे तथा समाधानपर्यन्तानुधावनम[13]संगतमेव स्यात्। किञ्च विवरणेपि तत्र नाजानंतर्य परिभाषामुक्ता[14] नित्यत्वात्तद[15]सत्वाद्वेति समाधीयते। **अत एवाचः** परस्मिन्निततीति।

---

1. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; शेषरान्ते ज–1; शखराते अ–4.
2. एकदेशेन प–2.
3. इत्येलमित्यनेन अ–3.
4. बोधनात्तु प–2.
5. अन्त ज–2, अ–3.
6. पाठोनयं ज–2, प–1, अ–1, अ–4; मृलापि ज–1, प–2.
7. समयगुणेऽनानन्तर्य ज–2, अ–1, अ–3.
8. निषेधमशक्य ज–2, अ–1, अ–3.
9. पाठोऽयं ज–2, प–1, प–2, अ–1, अ–3, अ–4; परिभाषायामावाच्च ज–1.
10. इत्यनुक्त्वा अ–4.
11. भित्तुनतीत्यादौ ज–2, प–1; तिनतीत्यादौ प–2 भिन्नुनतीत्यादौ अ–1, अ–3.
12. वारणात्तमितको ज–2; वारणान्ननिमित्तकिको प–1, प–2; वारणान्ननिमितको अ–1, अ–3; वारणान्नमितको अ–4.
13. अनुधावतम् अ–4.
14. मुदक्यां ज–2, अ–1, अ–3, अ–4; मुद्दक्या प–1, प–2.
15. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; नित्यतवातरसत्वाद्वेति ज–2, अ–1, अ–3; नित्यत्वात् द सत्वाद्वेति ज–1.

जातस्य बहिरङ्गस्येत्युक्त्या[1] इति। पूर्वोक्त मूल[2]कारोक्तरीत्या जातस्य बहिरंगस्यासिद्धत्व प्रतिपाद[3]कांशस्यैव निषेधलाभात्[4]। ज्ञापकस्य[5] विशेषापेक्षणात्। असिद्ध[6]मिति वाचनिक परिभाषामुक्त्वा नाजानन्तर्ये इति वक्ष्यामीत्युक्तेर्वाचनिकांश निषेधलाभाच्च[7]। प्रकृते[8]ऽस्याप्राप्तौ भाष्यविरोधाभावेन द्वितीय हेतोरप्य[9]सिद्धेः। भाष्ये[10] पुनः क्वापि नोल्लिखितेति। विप्रतिषेधसूत्रे कंठत उक्ताया: परिभाषायाः अपलाप[11] कुर्वतस्तव भाष्यास्पृष्टानेकेषां सूत्राणां विलय[12] प्राप्त्या तृतीयं हेतोरप्यसिद्धिः। अत एव कैय्यटेन[13] तत्र[14] नाजानन्तर्य इति[15] निषेधमांशक्य भाष्येऽनित्यत्वात्[16] समाधीयते[17]।

---

1. सं. पाठः, युक्तेति ज-1, प-1, पव-2; यक्तेति ज-2, अ-3, अ-1, अ-4.
2. मुक्तकारोक्त प-1.
3. प्रतिपादाकांशस्यैव प-1.
4. निषेधलालात् अ-1, अ-3;
5. ज्ञापकल्प ज-2, अ-1, अ-3; ज्ञापकस्य विशेषापेक्षेणात् अ-4.
6. 'द्ध' नाऽस्ति प-1, प-2.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4. लाभाय ज-1.
8. प्रत्यतेऽस्य प्रत्यौ प-2; ऽस्या अप्रत्यो प-1; स्या अप्राप्तौ ज-2, अ-1, अ-3; कृतैऽस्याप्राप्तौ अ-4.
9. द्वितीये हेतोरथ सिद्धः ज-2, अ-1, अ-3; हेतोरथासिद्धिः अ-4.
10. भाष्यो पुन कवपि प-1.
11. अपलापे ज-2, अ-1, अ-3; अपलापकुर्वतः प-2, अ-4.
12. विपलप्राप्त्या प-1, प-2.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4 कैटेन ज-1.
14. तत्रतत्र ज-2, प-1, प-2, प-3.
15. पाठोऽयं प-1, प-2; 'इति' पाठो नावलोक्यते ज-1, ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
16. भाष्ये नित्यत्वात्.
17. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; समाधीयति ज-1.

किञ्च भाष्ये पूर्वमसिद्ध परिभाषामंगीकृत्य तस्याः **अक्षद्यूरि**'**त्यत्र** दोषमुद्भाव्यऽस्या पूर्वं ज्ञापकमुक्त्वा[1] पश्चादसिद्धपरिभाषाया ज्ञापकोक्तया[2] स्यावश्यकतत्वमुचितम्[3]। दृष्टश्चायं प्रकारो लौकिकानां वैदिकानां च पश्पशाह्निक[4] भाष्ये व्यापकवैदिकानां प्राधान्येपि[5] पर निपातो[6] लौकिकानां च[7] आदरसूचनायेति विवरणे। न च तदनित्यत्वेनैव निर्वाहेऽस्याः स्वीकारो गुरुभूत[8] इति वाच्यम्। अन्तरङ्गानपि विधीन्बहिर[9]ङ्गो लुग्बाधतेल्यप् बाधते। वार्णादाङ्गम्बलीय[10] इत्यादे[11]रप्यसत्वात्। किञ्च विप्रतिषेधसूत्रोक्त पूर्वोत्तरपद[12]निमित्तकार्यात्पूर्व[13]मंतरंगोप्येकादेशो नेत्यस्य[14]त्वंगीकारोऽस्या अस्तुनेत्यत्र बीजाभावाच्च[15]। तस्मा[16]दाग्रहमूलकमिदमिति दिक्।

---

1. ज्ञापकमुक्ता ज-2, प-1, अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4, ज्ञापकोक्ते ज-1.
3. आवश्यकमुचितम् प-1.
4. सं. पाठः, चेति यस्याशास्थ प-2; चेतिपस्पशास्थ प-1; चे यस्य शास्थ ज-2; वैदिकानां यणस्थ भाष्य अ-4.
5. धान्येपि अ-4.
6. पर नियांतो ज-2; परनिपाती प-1, प-2; पर निपातौ अ-1, अ-3.
7. लौकिकानामपि ज-2, प-2, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; 'च' नाऽस्ति.
8. गुरुतर प-1, प-2.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3; वोधीन् ज-1; विधान् अ-4.
10. वाणीदंगे बलीय अ-3.
11. पाठोऽयं प-1, प-2; इत्यादिरप्यसत्वात् ज-1; इत्यादेरथसत्वात् ज-2, अ-1, अ-3, अ-4.
12. पूर्वेतर प-2.
13. कार्यापूर्वम् प-1; कायांत् ज-2, अ-1, अ-3.
14. नेत्यस्य यत्वमिकरोऽस्या प-2.
15. वीजानां भावाच्च अ-1, अ-3, अ-4.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4, तस्याराग्र कुन्मैलाकमिदमिति ज-1.

प्रति[1]विधेयं दोषेष्वित्युक्तमिति। आद्ययोगे[2] बहूनि[3] प्रयोजनानि सन्ति यदर्थमेषाकर्त्तव्येति। अंतरंग परिभाषामुपक्रम्य संप्रसारणाच्चेत्यत्र भाष्ये उक्तम्[4]। तत्र आद्ययोग इत्यस्य विप्रतिषेधसूत्र इत्यर्थः। ततः प्रतिविधेयं[6] दोषेष्वित्यप्युक्तम्। तस्यापूर्वमनित्यत्वेन समाधेयमिति नार्थः किंतु प्रतिविधेय-मित्यस्याग्रे उक्तमिति शेषः। एवं च दोषेषु[7] प्रतिविधेयं यत्तदुक्तमित्यर्थः। एवमेकवाक्यतायां सत्या[8] तु परस्पर भाययोर्विरोधो न न्याय्यः। पूर्वोक्त समाधेरे[9]वानुवादो भाष्ये नत्वपूर्व[10] समाधानमिति बोध्यम्। किञ्च[11] भाष्यात्वनुक्ताया अनित्यतायाः स्वीकारे प्रत्युत[12] विपरीत दोष एव अपि च भाष्ये यद्यपूर्व[13]समाधिरभिप्रेतः स्यात्तदा पूर्वोक्तसमाधि[14]- दूरीकरणाय कंठतस्त[15] वदेत् न च गौरवम्।

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2; प्रतिपेधेयम् ज-1; प्रतिषेधेयं ज-2.
2. पाठोऽयं अ-4 आप्ययोगे ज-1; आश्वयोगे अ-2; आच योगे अ-1, अ-3; अद्ययोगे प-1, प-2.
3. बद्धनि ज-2; बहुनी प-1; वहनि अ-4.
4. 'भा' एवोपलभ्यते ज-1.
6. पतिविधियम् ज-2, ततऽपतिविधिर्यदोषं अ-3.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; व दोषे प्रति ज-1.
8. समाधेरेवानुवादो प-2.
10. नत्वपूर्वे ज-2; नत्वपूर्वो अ-1, अ-3.
11. किं च भाष्यानुक्ताया ज-2, प-1ख अ-1, अ-3, अ-4; किन्चानुकताया प-1.
12. प्रत्युत्युत अ-1, अ-3 अ-2; प्रत्युविरोदोष प-1.
13. पूर्व समाधानमिति बोध्यम् इति पाठोपलभ्यते प-1.
14. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; समाधीतरोकरणप्रर्कटतस्तावतस्तरवद् न व गौरवम् ज-1.
15. कंठत संवेदत् अ-1, अ-3; कंठतस्व वदेत् अ-4.

इन्द्रशब्दः सम्पन्नस्तत्र कः प्रसङ्गो वृद्धेरिति। मरुदादिभिरिन्द्रस्य द्वन्द्व इन्द्रस्यैव पूर्वनिपातोऽत आह-

पूर्वोत्तरपदनिमित्तकार्यात्पूर्वमन्तरङ्गोऽप्येकादेशो न॥53॥

अत्र च 'नेन्द्रस्य' (7.3.22) इति निषेध एव ज्ञापक इति 'अन्तादिवच्च' (5.1.85), 'विप्रतिषेधे परम्' (1.4.2) इति सूत्रयोर्भाष्ये स्पष्टम्॥53॥

नन्वेवमपि प्रधाय प्रस्थायेत्यादावन्तरङ्गत्वादित्वाद्दिषु कृतेषु ल्यप् स्यादत आह-

अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो ल्यब् बाधते॥54॥

'अदो जग्धिः' (2.4.36) इति सूत्रे कितीत्येव सिद्धे ल्यब्ग्रहणमस्या ज्ञापकमिति 'अदो जग्धिः' इत्यत्रभाष्ये स्पष्टम्॥54॥

नन्वेवमपीयायेत्यादौ द्वित्वे कृतेऽन्तरङ्गत्वात् सवर्णदीर्घत्वेन तदसिद्धिरत आह-

वार्णादाङ्गम्बलीयो भवति॥55॥

दत्तोत्तरत्वात्[1]। विप्रतिषेधसूत्रस्थ[2] विवरणं तु बृहद्विवरणानुरोधादिति बोध्यम्। एवं चतुर्थ हेतोरथ[4] सिद्धिर्बाध्या एतदनुवादस्तु स्वरूपव्याक्रियेति न्यायेना[5]त्रेति दिक्॥51॥

---

1. दात्तोत्तरत्वात् अ-1, अ-3; दांत्तोत्तधरत्वात् ज-2.
2. सूत्रस्थे अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, प-2; वृहद्विवरणानुरोधीरिति ज-1.
4. चतुर्थ हतोरथ ज-2, अ-1, अ-3.
5. न्यायेति नात्रेति प-1; न्यायेनात्रेति पूर्वप्रसक्त गुणस्येत्यर्थ इति पाठोपल्यते ज-2, अ-1, अ-3.

तेनान्तरङ्गमपि सवर्णदीर्घं बाधित्वा वृद्धिरिति तत्सिद्धिः। 'अभ्यासस्या सवर्णे' (6.1.78) इतीयङ्विधायकसूत्रस्थम-सवर्णग्रहणमस्या ज्ञापकम्। तद्धीषतुरित्यादावियङादिव्यावृत्त्यर्थम्। एतत्परिभाषाभावे त्वीषतुरित्यादावन्तरङ्गेण सवर्णदीर्घेण बाधात्तद्वय्र्थम। इयङुवङौ ह्यभ्याससम्बन्धनिमित्त कत्वाद्बहिरङ्गौ। न चेयडदिरपवादो,

---

भिस[1] ऐसापत्तिरिति। तपरकरणं तु विश्वपाभिरित्यत्रचरितार्थमिति भावः[2]। पूर्वप्रवृत्तगुणस्येति। पूर्वप्रसक्तगुणस्येत्यर्थः। रुपाति[1]देशेऽनपहारे इति छेदः[2] द्विर्वचने चीतिरुपात्तिदेशे सति यो[3] परिहारस्तस्मिन्नसतीत्यर्थः। द्विर्वचनेति[4] निषेधे सतीति यावत्। अत एव द्विर्वचने चीति गुणवृद्धयो[5] र्निषेधे इत्युपपादक विवरणशेखरादिग्रन्थाः संगच्छन्ते[6]। किञ्च अतिदेशपक्षे स्थानिवत्पदादेश-पदानुवृत्ति शब्दाधिकार[7] न पदान्त सूत्रोत्तर[8] सूत्राकरणदोष सहनापेक्षया आदेशपद नञ् ग्रहणमात्रमनु[9]वर्त्याऽनिषेधकत्व स्वीकारस्यैव युक्तत्वादिति दिक्॥52॥

---

1. भिरोसापतिरिति प-2.
2. अयं कोष्ठान्तर्गतपाठस्तु ज-2, अ-1, अ-3 मातृकासु नोपलभ्यते।
1. रूपातिदेशर्न पहारिति प-1, प-2; रूपातिदेशो उनपहार अ-4; रूपातिदेशेऽनुपहारिति ई अनपहारे ज-2, अ-1, अ-3.
2. वेदः ज-2.
3. योऽहारः प-1, प-2.
4. द्विवचने अ-4.
5. वृध्येर्निषेध प-1; वृद्धया निषेधे ज-2.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-3, अ-4; सुगछते ज-1, अ-1; वृद्धया निषेधे ज-2.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4, शब्दाधिकारणोपदान्त ज-1; इष्टधिकारपदान्त प-2.
8. सूत्रोत्तर शब्दो नोपलभ्यते ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4.
9. अनुवर्त्यनिषेधकत्व प-1, प-2; अनुवर्त्यानिषेधकत्व ज-2, अ-3.

'येन नाप्राति' न्यायेनेयर्तीत्यादिसकललक्ष्यप्राप्तयणप- वादत्वस्यैव निर्णयादिति प्राञ्चः।

परे त्वेतत्परिभाषाभावे 'अभ्यासस्य' इति सूत्रमेव व्यर्थम्। न च 'इयाय' इयेषेत्यादौ चरितार्थम्, तयोरपि पूर्वप्रवृत्तगुणस्य

कस्य चिन्म[1]त्तेनाह। **समान[2]कार्यित्व एवेति।** यद्वा एवःस्त्वर्थो[3] धर्मिग्राहकमानादि[4]त्यस्याग्रे योज्यः। धर्मिग्राहकमानात्तु[5] समानकार्यित्वे प्रवृत्तिः। (तत्र[6] तत्र) आकार[7] रीत्या तु तदभावेपीत्याशयः। एवं च न समानकार्यित्वे न वा समाननिमित्तकत्वे आग्रहः। किन्तु परिभाषामात्र[8] ज्ञाप्यते। सा चेयमित्याद्युक्तिस्तु समाननिमित्तकत्ववादिनां मते तदलाभबोधनाय। ननु विषय[9]विशेषमनादृत्य परिभाषायाः प्रवृत्तिस्वीकारे स्योनो न सिद्धेदत आह। **स्योनो इत्यत्र त्विति।** समानकार्यित्व एव परिभाषा[10] प्रवृत्तिवादिनोमते विश्च इति लक्षे तुकादेशयोरेकस्थानि[11]कत्वाभावेन परिभाषाया अप्रवृत्तौ

---

1. कस्य चितेनाह अ-4.
2. समानकायित्व ज-2; समान कार्यित्वे प-1; समानाकार्यित्व अ-3.
3. एवः स्वार्थी ज-2; यद्वासवः स्त्वार्थो अ-3
4. मानाहि यस्याग्रे योज्यः ज-2.
5. मानातु समानातु समानकार्यिवे वे अ-4; मानातुसामान ज-2, प-2, अ-1, अ-3.
6. अयं कोष्ठान्तर्गतपाठस्तु प-1, प-2 पाण्डुलिप्यां एव उपलभ्यते.
7. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4, आकर रीत्यातु ज-1, ज-2, अ-1, अ-3.
8. परिभाषात्र ज्ञाप्यते ज-2, अ-1, अ-3.
9. पाठोऽयं प-1, प-2; ननु विशषय विशेषमाना ज-1; ननु विषयविशेषमाना इत्यपरिभाषायाः ज-2, अ-3.
10. परिभाषाया अप्रवृत्तौ तु ग्रहणात्तः इति पाठोपलभ्यते अ-3.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4 स्थानिभावेन ज-1.

तुग् ग्रहणात्तदनित्यत्वस्य ज्ञापयितुमशक्यत्वेन स्योन इत्यत्र दोषधौव्याद[1] नित्यत्व[2] प्रतिपादनेन पूर्वोक्तलक्ष्ये दोषोद्वारकग्रन्थासंगत्या यथाश्रुतन्तु न साध्विति विभावयामः। एतत्परिभाषा[3] प्रवृत्तिः समानकार्यित्वे एवेति न नियम इति तु वृद्धोक्तेरवसेयम्। किं च पूर्वोक्ताग्रहेतु कुमार्यै[4] इत्यत्रापि आंगवार्णयो समानकार्यित्वाभावे परिभाषायाः अप्राप्त्यैव दोषवारणेऽगसंबंधिन्यांग एवे[5]यमित्यस्य वैय्यर्थ्यं स्यादिति दिक्।

ननु असवर्ण[6]ग्रहणस्यैव ज्ञापकता भाष्याक्षर मर्यादया लभ्यते। न चोपपादन भाष्यविरोधः इयाय इत्यत्र द्वि[7]र्वचनेचीति गुण निषेधेद्वित्वेऽकृतव्यूह[8] परिभाषया दीर्घाप्रवृत्तौ गुणे[9] सूत्र सार्थक्यं मनसि निधाय सिद्धांतिनोक्तं यद[10]यमभ्यासस्यासवर्णे इत्य[11]सवर्णग्रहणं करोती[12]त्युक्तम्। पूर्वोक्तमवकाशम-जानत एकदेशिनः सूत्रमेव ज्ञापकमस्तु इत्यभिप्रायं[13]मनसि कृत्वा सिद्धधांती[14] पृच्छति कथं कृत्वा ज्ञापकमिति। एकदेशि[15] सूत्रस्य ज्ञापकत्वमुपपादयति।

---

1. पाठोऽयं ज-2, प-2, अ-1, अ-3; दोषद्ग्रोग्याद ज-1; दोषव्याद प-2.
2. प्रतिपानेन प-1, प-2.
3. परिभाप्रवृत्ति ज-2, अ-1, अ-3.
4. कुमार्ये प-2, अ-4.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-; एषामित्यस्य वैय्यर्थ्यं ज-1.
6. असवर्णे अ-4.
7. द्विवचनचीति प-1.
8. 'व्यह' नोपलभ्यते प-1.
9. दो प्रवृत्तौ वृद्धौसूत्र प-1, प-2.
10. षदमेपेभ्यासस्या प-1.
11. इत्यसवर्णे अ-4.
12. करोतीत्यंत ज-2, प-1, अ-1, अ-3.
13. इत्याभिप्रायम् अ-4.
14. सिद्धांते ज-2.
15. एकदेशी ज-2, प-2, अ-1, अ-3.

नह्यन्तरेणेत्यादिना। सिद्धधांती स्वाशयं प्रकाशयति। **नैतदस्तीत्यादिना।** अत्य[1]र्थमिति भाष्यमुपलक्षणमियायेत्यादेरिति भाष्यस्य सुयोज[2]त्वात्। न चेदृशी[3]भाष्यकारशैलीति[4] चैन्न। विप्रतिषेधसूत्रे अंतरंगपरिभाषाज्ञापकं यदयं वाह ऊठं शास्तीत्येवोक्तत्वेन तादृश[5] शैलेव्यभिचारात्। किञ्चाग्रे[6] सूत्रोपसंहारेपि असवर्णग्रहणमेव[7] ज्ञापकमित्येवकारस्य भाष्ये दर्शनाच्चेति चेन्न। भाष्ये प्रथमत् इयाय इयपिथेत्यत्रांतरंगत्वादीर्घ स्यादित्याशंक्यवार्णपरिभाषया तं निवार्य ज्ञापकोपपादनेन[8] परिभाषोपसंहारे इयर्तिरुपं नैकमुदाहरणमिति अग्रिमभाष्येण च त्वदुक्त[9]कल्पनाया दत्तजलांजलित्वादित्यवधेयं सुधि[10]भिरिति दिक्॥55॥

अन्तरङ्गत्वाद्दीर्घेकृते इति। पूर्व[11]स्थित निमित्तकत्वरुपमंतरंगत्वम्। कानि[12] संतीत्यादाविव अत्र बोध्यम्। न[13] तु परिभाषयेति भावः। इदमनुपदं

---

1. अत्यर्थमिति प-2, अ-1, अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-4, सुयोगत्वात् ज-1; सुयोजत्वात्तु अ-1, अ-3.
3. न चेदशो ज-2, अ-1, अ-4; न च नेदृशो प-2, प-1, अ-3.
4. पाठोऽयं ज-2, अ-1, अ-3, अ-4; रीतीतिवेन्न ज-1; शैलीलतिवाच्यम् प-1, प-2.
5. तादृशैलया प-2 तादृशशैलया प-1; तादशशैलेर्व्यभिचारात् अ-3, अ-4.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, किन्चात्र सुत्रापहारेपि ज-1; किंचाग्रे सूत्रोपहारे ज-2, प-1, अ-3, अ-4.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3; असवर्णग्रहणमित्येव ज्ञापकं ज-1, अ-4.
8. ज्ञायाकोपपादने ज-2, अ-1, अ-3.
9 पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4 च तदन्तकल्पनाया ज-1.
10. सूरिभिरिति प-1, प-2, अ-3, अ-4.
11. पूर्वोस्थित ज-2; पूर्वोपस्थित अ-1, अ-3.
12. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; कनि संतित्यादाविव अबोध्यम् ज-1.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4; ननु ज-1.

मूलै एव स्फुटम्। समकाल[1] प्राप्तबहिरङ्गस्येति। सुउत्थित[2] इत्यवस्थायां कृतसंधेरभावात्प्रत्यये प्रत्य[3]भावेन तन्निमित्यकवृद्धेरप्य[4]प्राप्त्यापूर्वस्थित-निमित्तकत्व रुपांतरंगत्वमादाय दीर्घे कर्त्तव्ये समानकाल प्राप्त्यभाव इति भावः। अत एव लौकिक[5]न्यास्याप्यत्रानवसरः पदसंस्कारमभ्यु[6]पेत्येदम्। तदा[7]श्रयणे तु वार्णपरिभाषयावृद्धेः प्राबल्ये तत्प्राप्तौ[8] समर्थग्रहणस्य-सार्थक्ये[9]ज्ञापकत्व[10]मंगापत्तिः। **अंतर्भाव**[11] **इति।** स्पष्टं चेदमचः[12] पर स्मिन्निति सूत्रे शब्द कौस्तुभे। **प्रतिपद विधित्वादिति।** च[13] स्वेकेति सूत्रार्थोपस्थित्यपेक्षयावसोः संप्रेत्यस्यार्थस्य[14] शीघ्रोपस्थिते सर्वानुभव[15] सिद्धत्वादिति भावः। **भाष्यकृताऽनाश्रयणादितीति।** ननु निमित्तापाय[16] परिभाषाया अनाश्रयणे तस्थावित्यादौ धात्वादेरित्यादिना सत्त्वादि प्रवृत्तोष्टुत्वादि

---

1. पाठोऽयं प-2; समानकालप्राश बहिरंगस्येति ज-1; सकालप्राप्त अ-1.
2. स उत्थित अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, प-2 वृद्धेरप्यप्राप्त्यां अ-1, अ-3.
4. वृद्धेरप्यप्राप्त्या पूर्वास्यंता ज-2; वृद्धेरप्यप्राप्त्यापूर्वायित ज-1.
5. लौकिकम् ज-2, अ-1, अ-3.
6. संस्कारमनभ्युपेत्येदम् प-1, प-2.
7. मदाश्रयणे तु प-2.
8. प्राबल्येन तत्प्राप्तो प-1.
9. सार्थकोपकत्वमंगापत्ति अ-3.
10. भंगापत्ति ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3.
11. अन्तर्भाव इति नोपलभ्यते ज-1, प-1.
12. चेदमबः ज-2, प-2, अ-1, अ-2, अ-3.
13. 'च' नाऽस्ति; 'व' ज-2, अ-1, अ-3.
14. संप्रेत्य सार्थस्य अ-4; शिघ्रौपस्थिते अ-3.
15. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; असवर्णानुभवसिद्धत्वादिति ज-1.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-4; निमित्ताया परिभाषाया ज-1; निमित्तापाया परिभाषाया प-2; निमित्ताय परिभाषाया अ-3.

निवृत्तिर्नस्यात्। न च तदाश्रयणे लब्धा जोविकाय नेति बहुव्रीहौ गोस्त्रियोरिति ह्रस्वे[1] आयो निवृत्तेः इत्वस्यापि निवृत्या[2] इत्व घटितप्रयोगा[3]संगत्तिरितिवाच्यम्। एनीशब्दात्[4] स्त्रोभ्यो[5] ढकिति ढकि यस्येती[6]कार निवृत्तौ संन्नियोग[7]शिष्टानामिति नकार निवृत्तिमाशंक्याचः परस्मिन्निति सूत्रस्थविधिशब्दस्य भावसाधनतामंगीकृत्य पूर्वस्य विधौ[8] स्थितौ कर्त्तव्यायां स्थानिवदित्यर्थे नकारस्यावस्थितिकरणवत् लब्धा चासौ जीवि[9]काचेति कर्मधारयोत्तरमर्श आद्यचि यस्येति टापो[10] निवृतौ इकारस्य स्थितौ कर्तव्यायां स्थानिवत्वप्रवृत्या[11] तत् स्थिति-करणेना[12]दोषादिति चेन्न। सपाद सप्ताध्यायीस्थकार्यप्रवृत्तियोग्यतायांष्टुत्वाद्य प्रवृत्तेस्तस्थावित्यादीनां निर्वाधत्वात्[13]। एवं च लब्धजीविकेत्यादा[14] वपि न क्लिष्ट कल्पनेत्य पर मनुकूलम्। अकृत[15]व्यूहपरिभाषा स्वीकारेंतरंगानपि विधीन् बहिरंगो लुक्[16] - ल्यप् च बाधते इति ज्ञापक

---

1. ह्रस्वो प-1.
2. निवृत्यतत्त्वघटित ज-2, अ-1, अ-3.
3. प्रयोगसंगवाच्यम् प-1.
4. एनि प-1.
5. स्त्रोभ्यो ढक् 4/1/120.
6. टगिति टकि यस्येति इकार नियोग इति पाठोपलभ्यते प-1, प-2, अ-3.
7. संनियोग अ-1, अ-3 संनियोग अ-4.
8. विधे ज-2.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4 विजि का ज-1.
10. टोपो ज-2; टापो प-1.
11. प्रकृया तत् ज-2, अ-1, अ-3.
12. करणेनादिति चेन्न प-1.
13. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; निर्बाधत्वाच्चत्वात् ज-1.
14. जीविकेत्या वपि ज-2, अ-1; जीविकेत्यवपि अ-3.
15. अल्लत्तव्यूह प-1, प-2.
16. लुक् लुप् च बाधत प-1; लुक् ल्यपश्च बाधत अ-3; लुकल्यचबाधते अ-4.

पूर्वप्रवृत्तवृद्धेश्च 'द्विवर्वचनेचि' (1.1.59) इति रूपातिदेशेनापहारे द्वित्व कृते पुनः प्राप्ते गुणवृद्धी बाधित्वान्तरङ्गत्वात्सवर्णदीर्घापत्तेः। न चेयर्तीत्यादौ तच्चरितार्थम्, तावन्मात्रप्रयोजनकत्वे उरित्येव ब्रूयात्।

परभाष्य[1]विरोधवत् निमितेति[2] परिभाषा स्वीकारेपि तस्य जागरुकत्वात्सर्वथा तद्भावो[3]पिकल्पनीय[4] इति दिक्॥56॥

विशेषशास्त्रोद्देश्येति होढः[5] दादेर्धातोर्घः[6] इत्युदाहरणम्। विशेषशास्त्रे[7] दादधार्तातोर्ध[8] इति शास्त्रे उद्देश्यभूतो यो विशेषधर्मः दादित्वे[9] सति हत्वरुपोधर्मस्तदवच्छिन्न निष्टो[10] यः सामान्यधर्मः[11] हत्वरुपोधर्म[12]स्तदवच्छिन्न मुद्देश्यं यत्र एतादृश शास्त्रस्य होढ इत्यस्य विशेषशास्त्रेण दादेर्घातीर्घ इत्यनेन बाध इत्यर्थः। **अनवकाशा आयादयः**[13]। ननु स्याद्य प्राप्ति-योग्येऽचारितार्थ्येनायादीनां बाधकत्वं[14] वक्तव्यम्। तदेव-

---

1. परिभाष्य प-1.
2. विरोधवत् मित्तेति ज-2, अ-1, अ-3.
3. तदभावोपि ज-2, प-2, अ-1, अ-3, अ-3.
4. पाठोऽयं अ-4; कल्पनी इति ज-1 कल्पनीय इति हिक ज-2, अ-1, अ-3.
5. सं. पाठ. 8/2/31.
6. सं. पाठ. 8/2/32 दादोर्धातो च ज-2.
7. विशेषशास्त्रों.
8. दधिर्धातोर्थ ज-2, अ-3.
9. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; दादिधात्ववयवत्वे सति जस-1.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-1, अ-3, अ-4; निष्टो यम् ज-1.
11. समान्याधर्मः अ-4; सामान्य धर्म प-2.
12. धर्म प्रतिषेधनाधातुके आयादीनां वाध आस्तदवछिन्न मुद्देश्यं यत्र एतादृशशास्त्रस्य इति अ-1, अ-3 पाठोपलभ्यते.
13. आयादयति अ-4.
14. बाधकत्व अ-1, प-2, अ-3, अ-4.

नालिय्याया[1]दीनां स्याद्यप्राप्ति[2] योग्ये चारितार्थ्यादिति चेन्न। तत्रसूत्रे भाष्ये आर्धधातुके इति पर सप्तमीमभ्युपगम्यायादिभ्यो पदार्द्धधातुकं तस्मिन्न वस्थिते विभाषा आयादीनां निवृत्तिर्भवति। आहोस्विदायादिर्यदार्धधातुकं तस्मिन्नवस्थिते विभाषा आयादीना[3]मुत्पत्तिर्भवति इत्याशंकितम्। तत्राद्य पक्षे सामान्य सूत्रेणाय् प्रत्यये तदन्तादामि[4] अ:प्रत्ययादित्यकार प्रत्यये च गोपायांचकार[5] गोपायेत्याय् प्रत्ययानिवृत्तिपक्षे इष्टसिद्धावपि तन्निवृत्ति पक्षे जुगोपगुप्तिरितीष्ट[6] रुपमिष्यते तच्च न प्राप्नोति।

गोपायां चकार[7] गोपेति[8] चानिष्ट[9] प्राप्नोतीति दूषणमुक्तम्[10]। द्विवतीये[11] तु गोपां चकार गोपेत्य निष्ट[12]ऽप्राप्त्यालिटि गुप् धातोराये मध्ये आमि[13] गोपायां चकार गुप्ति[14]र्जुगोपेतीष्ट सिद्धावपि गापायेतीष्टं न दूषणमुक्तम् (योग[15]विभाग सामर्थ्यात् सार्वधातुकेप्यांयागीकारेण गोपाय पतीति तु सिद्धमिति

1. नालिब्द्यायादीनाम् अ-1, अ-3; नलिन्यायादीनाम् अ-4.
2. प्राप्तियोगोपि अ-4.
3. आग्यादीनाम् अ-4.
4. तदंतादिभि अः प-1; तदेतादामि ज-2; तदेतादासि अः अ-1, अ-3
5. गोपयांचकार अ-3.
6. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-1, प-2, अ-1, अ-3; जुगोपगुप्तिरिति सिद्धान्ते रूपमिमिष्यते ज-1; जुगुप्तिरिति इत्यारभ्य गोपांचकार इत्यन्तं अ-4 मातृकायां नाऽस्ति।
7. पाठोऽयं ज-2, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; गोपां चकार ज-1, प-1.
8. कोपेति अ-4.
9. चानिष्टं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4 मातृकासु नोपलभ्यते.
10. दूषणमुक्तः प-2.
11. द्वितीये तु ये प-2.
12. निष्टस्या लिटिगुप प-2; निष्टयप्राप्त्या प-1; निष्टाऽप्राप्त्या अ-4.
13. अमि गोपायाचकार प-1; आमिगोपाय अ-4.
14. गोप्तिर्जगोपीतिष्ट अ-2, अ-1, अ-3, अ-4; गुप्तिर्जुगोर्जुपेतीष्ट प-2, अ-1.
15. कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4 मातुकासु नाऽवलोक्यते.

य्वोरित्यनुर्वत्तते। 'इणो यण्' (6.4.81) इतिसाहचर्याद्व्याख्यानाच्च ऋधातोरेव ग्रहणम्। अर्त्तेरिवर्णस्येङ्ङित्यर्थः। अभ्यासस्यात्ता-वित्यभ्यासस्यार्तेरिति वा गुरुत्वान्न युक्तम्। न च ए ऐ आ औ-शब्देभ्य आचारक्विबन्तेभ्यो लिटीयङाद्यर्थं तत्सूत्रमावश्यकं तथा ओणधातोर्ण्वुलन्तादिच्छाक्यजन्तात्सन्युवोणकीयिषतीत्याद्यर्थ- मावश्यकमिति वाच्यम्, षाष्ठप्रथमाह्निकान्तस्थ भाष्यप्रामाण्येन तेषामनभिधानात्। अन्त्ये द्वितीयद्विर्वचनस्यैव सत्त्वेन त्वदुक्तप्रयोगास्यैव दुर्लभत्वात्। एवं च सम्पूर्णसूत्रस्यैव ज्ञापकता युक्ता।

यद्यपि भाष्ये 'यदयमभ्यासस्यासवर्ण इत्यसवर्णग्रहणं करोति' इति ग्रन्थेन असवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकता लभ्यते तथापि 'न ह्यन्तरेण' गुणवृद्धी असवर्णपरोभ्यासो भवति इति तदुपपादनग्रन्थेन सम्पूर्ण-सूत्रस्यैव ज्ञापकता लभ्यते। अग्रेऽपि नैतदस्ति ज्ञापकमर्त्यर्थमेतत् सूत्रदित्यनेन सूत्रसार्थक्यमेव दर्शितम्। असवर्णग्रहणस्यैव ज्ञापकत्वे तु तद्व्यावर्त्त्यप्रदर्शनेन तत्सार्थक्यमेव दर्शितं स्यात्।

न चाकृतव्यूहपरिभाषयेयेषेत्यादौ सवर्णदीर्घाप्राप्तिर्यदि दीर्घा न स्यात् तर्हि गुणः स्यादिति सम्भावनायाः सत्त्वेन परिभाषाप्रवृत्तेः सूपपादत्वादिति कथं सम्पूर्णसूत्रस्य ज्ञापकतेति वाच्यम्, तस्या असत्त्वात्। सत्त्वे वैतद्भाष्यप्रामाण्येन यत्रान्तरङ्गकार्य्यप्रवृत्तियोग्य-कालोत्तरमेव तन्निमित्तविनाशकबहिरङ्गविधेः प्राप्तिस्तत्रैव तत्परिभाषा-प्रवृत्तिस्वीकाराच्च।

न चान्तरङ्गत्वाद्दीर्घेऽपीयायेत्यादौ पूर्वान्तवत्त्वेनाभ्यासत्वादि-वर्णत्वाच्च णल्यसवर्ण इयङ्विधानेन सूत्रं चरितार्थम्; न च 'अचिश्नु' (6.4.77) इत्यनेन सिद्धिः, वृद्धिबाधनार्थत्वादिति वाच्यम्, प्रत्यासत्त्या सवर्णपदेनाभ्यासोत्तरखण्डसम्बन्ध्यसवर्णा च एव ग्रहणाच्छास्त्रबाध-कल्पनापेक्षया परिभाषाज्ञापकत्वस्यैवौचित्याच्चेत्याशु॥

सा चेयं धर्मिग्राहकमानादाङ्गवार्णयोः समानकार्य्यित्व एव।

यत्तु समाननिमित्तकत्वरूपसमानाश्रयत्व एवैषेति तन्न। ज्ञापितेऽपीयायेयेषेत्याद्यसिद्धः, सूत्रवैयर्थ्यस्य तदवस्थत्वाच्च। स्योन इत्यत्र तु वक्ष्यमाणरीत्यास्या अनित्यत्वादप्रवृत्तौ गुणादन्तरङ्गरङ्ग-त्वाद्यणादेशः।

च चैवमपीयायेत्यादावियङ्दुर्लभस्तत्र कर्त्तव्ये वृद्धयादेः स्थानिवत्त्वेन असवर्ण इति प्रतिषेधादिति वाच्यम्, सूत्रारम्भसामर्थ्यादेव स्थानिवत्त्वाप्रवृत्तेः। तच्च सामान्यापेक्षमभ्यासकार्ये तदुत्तरखण्डादेशस्य तत्कार्यप्रतिबन्धकी भूतं स्थानिवत्त्वं नेति। अत एवारतीत्यादौ यणादेशस्य स्थानिवत्त्वादभ्यासस्य 'ढ्रलोप' इति दीर्घो दुर्लभ इत्यपास्तम्। दीर्घविधौ तन्निषेधाच्च। अरियियादित्यत्र तु स्थानिवत्त्वेनेयङ् भवत्येव, तस्य स्थानिवत्त्वस्याभ्यासकार्यप्रतिबन्धकत्वाभावात्। इयं चाङ्गसम्बन्धिन्याङ्ग एवेति 'स्वरितो वा' (8.2.6) इति सूत्रे भाष्ये। तत्र हि-कुमार्यै इत्यादौ यणुत्तरमाडुक्तः।

इयं चानित्या 'च्छ्वोः' (1.4.19) इति सतुगतिर्देशात्। अन्यथाङ्गत्वात् पूर्व तुकःशादेशे तुकोऽप्राप्त्या तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्यन्यत्र विस्तरः॥55॥

नन्वेवं सेदुष इत्यादौ क्वसोरन्तरङ्गत्वादिटि ततः सम्प्रसारणे-ऽपीटः श्रवणापत्तिरिति? चेत् अत्र केचित्-

अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः॥56॥

न कृतो विशिष्ट ऊहो निश्चयः शास्त्रप्रवृत्तिविषयो यैरित्यर्थः। भावि निमित्तविनाश इत्यध्याहारः। बहिरङ्गेणान्तरङ्गस्य निमित्तविनाशे पश्चात्सभावितेऽन्तरङ्गं नेति यावत्। अत्र न ज्ञापकं 'समर्थानां प्रथमात्' (4.1.82) इति सूत्रे समर्थानामिति। तद्धि सूत्थिततदिभ्यः कृतदीर्घेभ्यः प्रत्ययोत्पत्त्यर्थम्।

अन्यथान्तरङ्गत्वाद्दीर्घे कृत एव प्रत्ययप्राप्त्या तद्व्यर्थता स्पष्टैव। तत्र हि भाविन्यादिवृद्धया सवर्णाचत्वविनाशः स्पष्ट एव। न

चात्रैकादेशप्रवृत्तिसमये वृद्ध्यप्राप्त्यैकादेशे कृत आदेशे वृद्धेः प्राप्तावपि तन्निमित्तविनाशाभाव इति वाच्यम्। तद्द्वारैव तन्निमित्तविनाशसत्त्वे-नाक्षतेः। स च सौत्थितौ बहिरङ्गतया वृद्धेरसिद्धत्वान्न तन्निमित्तविनाश इति वाच्यम्। समर्थग्रहणेनैतद्विषये तस्या अप्रवृत्तेरपि ज्ञापनात्।

नतदनिष्पादनं क्रन्ते) तत सामान्यतः आयादयो वा सार्वधातुके नित्यमिति न्यासभेदेन समाधाय स्यादिवबलीयस्त्वन्तु विप्रतिषेधेनेति। विप्रतिषेधेन सार्वधातुके आयादीनाम्बाध[1] आशङ्कितः पश्चादनवका[2]शैरायादिभिरायादि-विधानानवकाशत्वादितिवार्त्तिक बलात्स्या[3]दीनां बाधमुक्त्वा गोपायिष्यतीत्य-स्यासित्द्यावग्रे यथा न्यासे एवादृर्धधातुके इति विषय सप्तमीमंगीकृत्य तत्सिद्धिरित्युक्तम्। एवञ्च[4] सार्वधातुके नित्यमित्यस्य लिद्य[5] प्राप्त्या आयादेस्तत्र चारितार्थ्यस्य वक्तुमशक्यत्वादिति बोध्यम्। क्वचिन्मूलपुस्तकेषु तद्दानोत्तर[6]मित्यस्याग्रेऽत[7] एवेत्यस्मात्प्राक्[8] आयादय इति पाठो दृश्यते। तत्प्रवृत्युत्तरं चारितार्थ्येऽपीति। न च रामादित्यत्र जश्त्वं वावसाने इति कौमुदी दर्शितक्रमविरोधः। जश्त्वे[9] तस्यासिद्धत्वात्। न च वचनप्रामाण्यम्[10] मथे[11] विलोडने इत्यस्मात्।

---

1. आयादीनां वावाध ज-2, प-2, अ-1, अ-3.
2. अनवकाशेरायादिनिरायदि प-2, प-1
3. बलात् यादीनां वाधमुक्ता ज-2; बलाहयादीनां प-2) वलालस्यादीनानां बाल अ-1, अ-3.
4. एव च प-1, प-2.
5. लिद्य नोपलभ्यते अ-4, प्राप्त्यादेस्तत्र प-1, प-2.
6. तदानोत्तरं ज-2, अ-1, अ-3, तदानात्तरमित्यस्या प-1
7. अत्र प-2.
8. एवेत्यस्मत् ज-2, अ-1.
9. जरत्वेनतस्या प-1, अ-4; जत्येवतस्या अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3; न च न प्रामाण्यम् ज-1; न च क्व न प्रामाण्यम् अ-4.
11. मिथे विलोडने ज-2, अ-1.

यत्तु समर्थग्रहणेनान्तरङ्गपरिभाषाया अनित्यत्वमेव ज्ञाप्यत इति तन्न। असिद्धपरिभाषया समकालप्राप्तबहिरङ्गस्य पूर्वजातबहिरङ्गस्य चान्तरङ्गे कर्त्तव्येऽसिद्धत्वं बोध्यते न तु जातेऽन्तरङ्गे तस्य तत्त्वं बोध्यते, मानाभावात् फलाभावाच्च। एवं च सूत्थितादावेकादेशस्य परिभाषासाध्यत्वाभावेन तदनित्यत्व ज्ञापनासम्भवात्। 'अन्तरङ्गनपि विधीन्' इत्यादेरप्यस्यामेवान्तर्भावः-

एतत्प्रवृत्तौ च निमित्तविनाशसम्भावनापि निमित्तम्। अत एव गोमद्दण्डीत्यादौ हलङ्यादिलोपो न। अन्यथा हल्ङ्यादिलोपकाले सामासिकलुकोऽप्राप्त्या तदुत्तरं चापहार्याभावादप्राप्त्या लोपस्यैवापत्तेः। अस्ति चात्रापि यदि लोपो न स्यात्तर्हि लुक् स्यादिति सम्भावना।

क्विपि[1] बुध अवगमने इत्यस्मात्क्विपि चाग्रिमत्[2] भुत् इत्यादौ स्वप्रवृत्तिप्रदर्शक लक्ष्ये[3] स्वप्रवृत्यवरोधकपूर्वशास्त्र प्रापक स्वोपस्थित पूर्वत्रासिद्धमित्यस्य वचन प्रामाण्यात् बाधेपि[4] स्वप्रवृत्तिप्रदर्शकरत्नमुट्[5] रामात् इत्यादि लक्ष्ये पूर्वशास्त्र प्रवर्तक स्वोपस्थित पूर्वत्रेत्यासौदा[6]सोन्येन बाधकत्वस्यापरिकल्पनेनादोष इत्याशयात्। अत एवाष्ट[7]णांता षट् इत्यादिना निर्देशा[8] तु[9] संगच्छते। एतेन[10] न च रामादित्यत्र-

---

1. क्रिपिवुध प-1.
2. चानीमत् भु प-2; वाग्रिमत् भ्रत्यादो ज-2; वाग्निमत् तुतयादौ अ-3.
3. लक्ष्येस्येरत्वप्रवृत्य ज-2, अ-3; लक्ष्ये स्ववस्व प्रवृत्य अ-4.
4. बाधपिस्या प्रवृत्ति ज-2, अ-3.
5. रलामुट् रमात् इत्वादि लक्षीपूर्व प-2.
6. पूर्वत्रेत्यसौदासोन्यन ज-2, अ-3.
7. एवाष्टगांता षट् ज-2; एवष्ट गांता षट् अ-1, अ-3; एवष्टगांताषट् प-2.
8. निद्र्देशा अ-1, अ-3.
9. तु संगछदे प-2; संगछंदे प-1.
10. 'न' नोपलभ्यते प-1, प-2.

जश्त्वं वावसाने इति कौमुद्युपदर्शित क्रमविरोधः। (तस्यासंभव एव बाध्यबाधक भाव इति वार्त्तिकमतानुसारित्वा दित्यादित्यानुपूर्वापर ग्रन्थ विरोध[1]) इति कैय्यटानुयायिनः परास्ताः। न च जश्त्वं बाधित्वेति शेखर विरोधः तस्य भास्करमतानुसारित्वात्। अत एव ऋधेर्धस्येति[2] प्रतीकस्य शब्दारत्नः[3] संगच्छते[4]। एतेन[5] जश्त्वमिति प्रतीकमुपादायापोद्येति शेष इत्युक्तात्र[6] अत एव पूर्वं[7] चर्त्वं घटितमुदाहरणम् प्रथममुक्तमंते[8] च द्वितीयमिति तदुक्तं स्वारस्य[9] च परास्तम्। रत्न मुडादौ चर्त्वेन षस्यैव च प्राप्त्यारत्नमुट्रत्नमुदितिमूलोक्तटकारघटित[10] प्रयोगे यत्नान्तरस्यास्थे[11] यत्वाच्च अदादेशस्तांत[12] इति तु अथ–

---

1. कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु ज-2, अ-1, अ-3 मातृकासु नोपलभ्यते.
2. ऋद्वेर्ध स्येति ज-2; ऋधेस्येधातिप्रतीकस्य अ-1, अ-3; ज्ञधेर्यस्लेति यतीकस्य अ-4.
3. शब्दरः रलः प-2.
4. संशोधित पाठः, संगछते ज-1, ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.
5. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-1, अ-1,अ-3, अ-4; अत एव जश्त्वमिति ज-1.
6. इत्युक्ता प-2; इत्युक्त्वा अ-1, अ-3.
7. पूर्वघटितमुदाहरणम् प-1; पूर्वेचर्त्वघटितम् अ-4.
8. प्रथमुक्ते मंते अ-4; प्रथममुक्तमंते च द्वितीयामिति प-2; प्रथममुक्तमंतवद्वितीयमिति ज-2, अ-1, अ-3.
9. स्वरस्य च ज-2, अ-1, अ-3.
10. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4, पठित ज-1.
11. यत्नात्तरस्य स्थे व्यत्वाच्च ज-2; यत्नातुरस्य स्थेव्यत्वा च अ-3, अ-4.
12. आदादेश ज-2, प-2, अ-1, अ-3, अ-4.

अल्लोपोऽनः (6.4.134) इति सूत्रस्थ तपरकरणं तु परिभाषाऽनित्यत्व-ज्ञापनेन चरितार्थम्। तद्ध्यान इत्यादौ लोपवारणाय। अन्यथा दीर्घाभावे लोपसम्भावनयैतत्परिभाषा बलाद्दीर्घाप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेत्याहुः।

'समर्थानाम्' इति सूत्र कैयटस्तु समर्थवचनेनेयं परिभाषा ज्ञाप्यते 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' इति, तेन पपुष इत्यादावन्तरङ्गत्वात्पूर्व कृतोऽपीडागमो निवर्त्तत इति वदन् न कृतो व्यूहो विशिष्टस्तर्को निमित्तकारणविनाशेऽपि कार्य स्थितिरूपो यैरित्यर्थमभिप्रैति। 'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपायः' इति यावत्। सूत्थितादिञि वृद्धौ दीर्घनिवृत्तौ सावुत्थितिर्माभूदिति समर्थानामिति। लोकन्याय-सिद्धश्चायमर्थः। तथा हि लोके निमित्तं द्विविधं दृष्टम् कार्यस्थितौ

किमर्थमाहुच्यते न अदेवाचेत[1] कारुप सिद्धिः वृक्षात्। ल्यपात्[2] सवर्ण[3] दीर्घत्वेन न सिद्धं न सिध्यति अतो गुण इति पररुपं प्राप्नोति अकारोच्चारणसामर्थ्यान्नभविष्यतीति भाष्यस्थाकारोच्चारणसामर्थ्यादिति प्रतीकमुपादाय अन्यथा[4] तकार एव विधीयते[5] आदेः[6] परस्येत्यादेः तकारेघटिते[7] संयोगान्तलोपे च वृक्षादिति सिध्यतीति कैय्यटोक्तेऽवसेयः[8]। किंचदांते फलाभावेन सूत्रे[9] प्रक्रिया गौरवस्यानादेयत्वाच्चेति दिक्॥57॥

---

1. अनंदेवोच्येत्तकारूप सिखिः ज-2, अ-1, अ-3, न देवोच्येतकाररूप प-1.
2. वृक्षात् त्युक्षात् सवर्ण ज-2, अ-1, अ-3; वृक्षात् प्लाक्षात् प-1, प-2.
3. वृक्षात् प्लाक्षात् अ-4; सवर्णे अ-3.
4. अन्यथाकार अ-4.
5. विधियेत् प-1.
6. अदेः परस्येत्यादे प-1.
7. विहिते ज-2, प-1, अ-1, अ-4.
8. कैयटोक्तेरवसेयः ज-2, प-1, प-2, अ-3.
9. सूत्र अ-4.

शैषिकोऽण् बोध्यः इति। तस्य विधायकत्वस्यापि स्वीकारादिति भावः। यद्पि मनोरमायां चाक्षुषादीनां तस्येद[1]मित्यणादार्षदादीनां तु संस्कृतं भक्षा इत्यणासिद्धिरिति शेष इति सूत्रस्य[2] लक्षणत्वं व्यर्थम्। आर्द्रकाशालेत्[3]यादयो वृद्धास्तेषां वृद्धाच्छ इत्येव छे सिद्धे चातुरर्थ्यधिकार पठितोत्करादिभ्यश्छः[4] इति उत्कारादिषु तेषां पाठो ज्ञापयति[5] नेति नेतः प्रागर्थेषु द्यादयस्युरिति अनेक ज्ञापकेनापत्यादि[6] चतुर्थीपर्यन्तातिरिक्ते एव द्यादयो भविष्यतीति[7] अधिकारत्वमप्यस्य नोपयुज्यत इत्युक्त[8] तथापि तत्रैव शैषिकान्मतु[9]वर्थीयादित्यस्य विषयविभागलाभार्थं शैषिकत्वप्रयुक्तं कार्यं ध्वनयितुं[11] क्रियमाणशैषाधिकारेण श्लोकस्य ज्ञापनार्थं च अधिकारत्व-स्यावश्यकत्वे विधायकत्वमपि (बोधनात्[12])। तस्य[13] सुवचमिति[14] न तत्र सूत्रे निर्भरः कार्यः इत्युपसंहारेण[15] विधायकत्वस्यापि बोधनात्। अत एव

---

1. अस्येदम् ज-2.
2. सूत्रलक्षणत्वम् अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; व्यर्थं अह आह श्रशालेत्यादि ज-1; आर्छकाशालेत्यादयो ज-2.
4. सं. पाठः (4.2.90).
5. ज्ञापयतिः नेतः प्रागर्थेषु प-1; नत प्रागर्थेषु प-2; ज्ञापयति नेतः प्रागित्यर्थेषु अ-4.
6. ज्ञापकेनाद्यत्यादि ज-2, अ-3.
7. भविष्यन्तीति प-1.
8. इतयुक्तं तथापि षधिकारेप्यश्लोकस्य ज्ञापनार्थं तत्रेव इति पाठोपलभ्यते अ-4.
9. मतुवार्थीयादित्यस्य अ-3.
10. धनयितुं ज-2.
11. शेषाधिकारण ज-2, अ-3; शेषाधिकारे अ-4.
12. पाठोऽयं प-2 मातृकायामेवावलोक्यते.
13. 'तस्य' नाऽस्ति प-2.
14. पाठोऽयं प-1, प-2; सुपंचमिति तत्र अ-1, अ-3; सुयंवमिति ज-2; सुवचत्वमिति न तत्र अ-4.
15. इत्युपसंहारेण विषय लाभार्थं तस्येदमित्यार्थस्या इति अ-4 मातृकायां पाठोपलभ्यते.

नियामकं तदनियामकं च। आद्यं यथा न्यायनयेऽपेक्षाबुद्धिः, तन्नाशे द्वित्वनाशाभ्युपगमात्। वेदान्तिनये प्रारब्धस्य विक्षेपस्थिति नियामकत्वं च प्रसिद्धमेव। द्वितीयं यथा दण्डादि, तन्नाशेऽपि घटनाशादर्शनात्। शास्त्रे लक्ष्यानुरोधाद्व्यवस्था। भाविनिमित्तविनाशे पूर्वमनुत्पत्तौ तु न कश्चिन्नयायो नापि सप्रतिपन्नो दृष्टान्तः। समर्थानामित्यस्यापि लोकसिद्धार्थज्ञापनेन चारितार्थ्य सम्भवे लोकसिद्धापूर्वतादृशार्थज्ञापकत्वे मानाभाव इति तदाशय इति बोध्यम्॥

शेखरेपि[1] पूर्वोक्तानेक ज्ञापकाश्रयणभियैव शेषिकान्मतुवर्थीया[2] दित्यस्य विषयलाभार्थ तस्येदमित्यादावपत्याद्यर्थस्याग्रहणार्थं च लक्षणत्वमधिकारत्वं चावश्यमाश्रयणीयमित्येवोक्त-अत एव वृत्थैर्वृत्थाच्छ[3] इति तु न जाताद्यर्थेष्वेव[4] विशेषरुपेणतत्तत्सूत्रेण विधाना[5]त्तदन्यसंग्रहार्थमेव तस्याविधायकत्वांगी-कारादित्युक्तम्। विचारांतरमपि[6] वृद्धोक्तेरेवावसेयम्। शेष इति सूत्रे भाष्ये तु शेष इति उच्यते। कः शेषो नाम इत्येकदेशिनापृष्टे अपत्यादि चतुर्थी[7] पर्यन्तेभ्यो येऽन्येऽर्थाः सशेष इति सिद्धांतिनोक्ते ततः शेषग्रहणप्रयोजनप्रश्ने राष्ट्रावारपाराद्ध[8]खौ इत्याद्यर्था निर्देशसूत्रविहितप्रत्ययानां स्वार्थिकत्व[9] भियाशेषाधिकार इत्युत्तरिते सिद्धांतिना तत एकदेशिराष्ट्रेत्यादिसूत्रसंघातस्य तत्र जात इत्यत्रानुवृत्तिं स्वीकृत्य सूत्रं प्रत्याख्यातवान्। ततः सिद्धांती

---

1 एव खरेऽपि प-1, प-2.
2. मतवर्थो ज-2, अ-3.
3. पाठोऽयं प-2; वृखैर्वृस्वाच्छ अ-1; वृखैर्वृछाछ ज-2, प-1.
4. जाताद्यर्थोप्येव प-2.
5. विधातात्तदन्य प-1; विधानातदन्यम् अ-4.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; विचारांतमपि अ-1, ज-2, अ-3.
7. चरतुर्थपर्यन्तेभ्यो ज-2, अ-3, अ-4.
8. सं. पाठः (4.2.93 अष्टा).
9. स्वाप्यकत्व ज-2.

परे तु सेदुष इत्यादौ पदावधिकेऽन्वाख्याने सेद् वस् अस् इति स्थिते इट्सम्प्रसारणयोः प्राप्तयोः प्रतिपदविधित्वात्पूर्वं सप्रंसारणे वलादित्वाभावादिटः प्राप्तिरेव नेति तत्सिद्धिरिति 'समर्थानाम्' इति सूत्रे कैयटे 'असिद्धवत्' सूत्रे च कैयटे स्पष्टमेतत्। यद्यपि प्रतिपदविधित्वमनवकाशत्वे सत्येव बाधकत्वे बीजम्; तथापि पूर्वप्रवृत्तौ

यद्यनुवर्तिष्यन्ते[1] तर्हि राष्ट्रेति[2] सूत्रस्योत्तरत्रग्रामाद्यखञावित्यादावनुवृत्तौ ग्रामशब्दादिभ्योऽपि पूर्वं[3] प्रत्यय प्राप्तौधिकार[4] इत्याह तत एकदेशी राष्ट्रावाराद्व तत्र जात इत्यादेः प्रत्ययापेक्षाया[5] अनंतर विभाषा पूर्वाह्ला[6]पराह्लार्द्रामूल इत्यस्यैव संबंधप्राप्तौ च शेषधिकार इत्याह। तत एकदेशी राष्ट्रावार पाराद्धरवौ ग्रामाद्यखञौ[7] राष्ट्रावारपाराद्धरवाविति संबंधानुवृत्ति[8] स्वीकृत्य प्रत्याचष्टे[9] सूत्रम्। एवन्च संबन्धानुवृत्यासूत्रप्रत्याख्यान[10] क्लिष्टमित्येक-देश्युक्तित्वं स्पष्टमेव किं चाधिकारार्थकत्वाभावे[11] तत्र जात इति भाष्य[12] विरोधाच्चैकद्देश्युक्तित्वमस्य तच्च[13] भाष्यमनुपदमेवस्फुटो भविष्यति। ततः

---

1. यद्यनुवर्तिष्यते अ-3, अ-4.
2. राष्ट्रेति प-2.
3. पूर्वपूर्व अ-4.
4. अधिकार इत्यारभ्य राष्ट्रावाराद्व इत्यन्तं प-1, अ-4, प-2 मातृकासु नोपलभ्यते; प्रत्ययप्राप्तौधिका तत्र जात इति पाठोपलभ्यते ज-2.
5. प्रत्यापेक्षाया अ-4.
6. संशो पाठः पूर्वाह्ला पराह्लाद्रामूलप्रदोषावस्कराद्वुन् 4/3/28.
7. राष्ट्रावारपाराद्धरवौ 4/2/93, 15-4/2/94 अष्टा.
8. संवंधानुवृक्षेत् अ-4.
9. प्रयोजष्टे अ-4; मत्याचष्टे ज-2.
10. प्रत्याख्यानुक्लिष्ट ज-2, अ-3; प्रत्यानक्लिष्ट अ-4.
11. कत्वा भवितव्यजात प-1, प-2; कृत्वाभावेने अ-3.
12. भाष्याविरोधात् ज-2.
13. तच्चाभाव्यम् ज-2, अ-3.

राष्ट्रा[1]वारपारेत्यादीनामनुवृत्तौ द्यादीनां विधानेन तेषां स्वार्थिकत्व परिहारेपि[2] अपत्यं समूह इत्याद्यर्थानामिदं तत्वव्याप्यत्वेन तस्येदमिति[3] सूत्रेणापत्यादय:[4] स्युस्तेमाभूवंन्नित्यधिकार इत्यर्थकं अत उत्तरं पठति[5] शेष वचनं द्यादिनाम-पत्यादिष्व प्रसङ्गार्थमिति उपक्रम्याग्रे ज्ञापकेन अधिकारार्थकत्वाभवासाधकं भाष्यं तु एकदेशिनोरुक्ति[6] प्रत्युक्ति परं बोध्यम्। एतत्पूर्वोतर[7] भाष्य[8] पर्यालोचनेऽधिकारार्थकत्वाभव: सूत्रस्येति गम्यते न विधायकत्वाभाव: विधायकत्वं अस्ति वा[9]नवेत्यंशे भाष्ये विचारस्यैव वा[10] भावात्। सर्वथा सूत्र प्रत्याख्यान[11] मनसि निधाय यदि तर्हि शेषग्रहण[12] प्रत्याख्यायते तदा तस्य लक्षणतया[13] यानि शब्दरूपाणि चाक्षुषं रूपं दार्षदा:[14] सक्तव इत्यादीनि तेषां सिद्धि: कथमित्याशंक्य क्वचित्तस्येद[15]मित्यणा क्वचित्संस्कृतं भक्षाइत्यणा[16]

---

1. राष्टावारयोरेत्यादिनाम प-2; राष्ट्रचारपरित्यादीनाम् ज-2.
2. परिपि अपत्य अ-3 परिहारिपि ज-2.
3. तस्येदामेति प-1, प-2, अ-3.
4. सूत्रेणा त्याद्यर्थे द्यादय: स्युस्ते मा भुवम् प-1, अ-4; सूत्रेणापत्याद्यर्थोद्यादय प-2.
5. पटविशेष ज-2, अ-3.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; एकेशिनारूक्ति अ-1, ज-2, अ-3.
7. 'त' नोपलभ्यते अ-3.
8. भाष्यापर्यालोचने प-1.
9. विधायकत्वमस्त्विनानवेत्यंशे प-2.
10. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; भाष्ये वध्विावारस्यैवा भावात् अ-1.; विद्यावारस्यैवा भावात् ज-2; भाष्ये विऽवावारस्येवा भावात् अ-3.
11. प्रत्याख्यान ज-2, प-2.
12. णम् नाऽस्ति अ-4.
13. पाठोऽयं प-1, प-2; निशब्दरूपाणि अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
14. रूपे दार्पदा: ज-2, अ-3.
15. क्वचितस्येदौमित्यणा ज-2; क्वचितस्येदम् प-2.
16. इत्यणावसिद्धिं ज-2, अ-3.

सावकाशत्वेऽपि नियामकं भवत्येवेति तदाशयः। निरूपितं चैतद्

च सिद्धिमाह कैय्यट– सोपि प्रमादिक[1] एव अत एव सूत्रशेषे तत्र जात इत्यत्र तु सूत्रस्य लक्षणत्वमाश्रित्य एतेषां सिद्धिमभि[2]धास्यति नागनाथ[3] इति कैय्यटः संगच्छते। तत्र जात इति सूत्रे भाष्ये तु शेष इत्यनु[4]वृत्त्यैव द्यादीनां स्वार्थिकत्वासिद्धे र्जातादयर्थे[5] निर्देशो व्यर्थ इत्यर्थे[6] कं किमर्थं जाताद्योर्था निर्दिश्यंते इत्युक्तास्त्रघ्न[7] आस्ते इत्यादावपि शेष इत्यस्य लक्षण[8]त्वात् प्रत्ययप्रसङ्ग इति कैयटोक्तार्थक तत्रास्ते तत्र[9] शेते इत्यत्रापि प्रत्ययप्रसंगभियानियमार्थं[10] जाताद्यर्थे निर्देशेति[11] उत्तरं पठति। तत्र जातादिषु वचनं[12] नियमार्थम्। एष्वर्थेषु द्यादयस्युरिहमा[13]भुवन्। तत्रास्ते[14] तत्र शेते इत्युक्तम्। ततः जाताद्यर्थ निर्देशस्य नियामकत्वे निर्दिष्टार्थेषु[15] पिष्ट क्षुण्णाद्यर्था[16]

---

1. पाठोऽयं प–1, प–2; सोपिमादिक एवा आत एव अ–1; सोपियामादिक एवा आत ज–2; सोपिमाद दिक एवा अ–3; सोपिप्रामादिक अ–4.
2. सिद्धिमतिधास्यति अ–3.
3. नागथ इति प–2; नागनाऽस्ति अ–4.
4. इत्यनुत्येव ज–2, अ–3.
5. जान्नद्यर्थ प–1, प–2.
6. इत्यकं किमर्थं प–1, प–2.
7. सुप्त आस्ते ज–2; इत्युक्त्वा सुघ्र आस्ते, अ–4, प–2.
8. लक्षणात्प्रयप्रसंग प–1 लक्षणात्प्रय प–2.
9. तत्र शेते इत्यत्रापि प्रसंगाभियानियमार्थ इति अ–4 पाठोपलभ्यतेः तत्र शेमे प–2; सत्र शेमे प–1.
10. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; नियामार्थं अ–1, अ–2, अ–3.
11. निद्र्देशोत्तर अ–4.
12. वचन निमार्थम् प–1.
13. इहमाभूवत् प–2.
14. तत्रास्ते त्रसेते प–1.
15. निदिष्टार्थेषु अ–3.
16. पाठोऽयं प–1, प–2; पिष्टक्षस्माद्यथा निर्देशेन अ–1, अ–4; पिष्टस्तस्माद्य अ–3; पिष्टत्तस्माद्य ज–2.

बहुशः शब्देन्दुशेखरे। 'समर्थानाम्' इति सूत्रस्थसमथग्रहणं तु विषुण इत्यादावकृतसन्धेः प्रत्ययदर्शनेन सर्वत्र तथा भ्रमवारणाय न्याय-सिद्धार्थानुवाद एव। ध्वनितं चेदं 'विप्रतिषेध सूत्रे' भाष्ये। तत्र हि-

---

निर्देशेन – दार्षदादीना[1] असिद्धि[2]शंकायां संस्कृतमित्यनेन सिद्धिमभिधाय[3] भवेत् सिद्धं दार्षदाः सक्तव इति इद[4] तु न सिध्यति औलूखलो पावक इति। नामतद्[5]भवति यत्त्त् एवापकृष्याभ्यवह्रीयते न च पावक उलूख[6]लादेवाप[7]कृष्याभ्यवह्रीयतै। अवश्यंरधनादीनि प्रतीक्षते[8]-

तस्मान्नार्थो[9] नियमेन कस्मान्न भवति[10]। तत्राते तत्र शेते[11] इति। अनभिधाना[12]दित्याह भगवान्। अग्रेचार्थ निर्देशाभावे समर्थ विभक्ती-नामप्याक्षेपात्[13] लाभे तत्र जातस्तत्र भवेत्यादि[14]सूत्राणां वैय्यर्थेन[15] सिद्धांते प्रावृषष्ठा[16] वितिष्ट[17] यो जातार्थो इष्टस्य प्रावृष एण्य इति एण्यस्य भवार्थे

---

1. दार्ष नाऽस्ति प-2.
2. पाठोऽयं प-2; असिद्धिशंकायो अ-1, अ-3, भवोसिद्ध प-2.
3. इति दं तु न ज-2.
4. तामतांद्भतति पततिरावापनूथाम्यवह्रीयते ज-2;.
5. उलूंखलो प-1.
6. देवाकृष्याव्यवह्यते अ-4.
7. प्रतीक्षंर्ते प-2; प्रतीक्षंते प-1, अ-4.
8. तस्मान्नर्थे नियमेन कस्मत्र प-2.
9. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; भवते अ-1, ज-2, अ-3.
10. तत्र शेशेते इति प-2.
11. अनभिधानादेत्याह प-2. अनभिहानादेत्याह प-1; अनभधानादित्याह अ-4.
12. क्षेपालाभे प-2.
13. भवेत्यादि दि ज-2; भावेत्यादि दि अ-3.
14. संत्राणायेय्यर्थेन ज-2, अ-3.
15. प्रावृषष्ठप् 4/3/26 अष्टा.
16. जातार्थे प-1, प-2.
17. 4/3/17 अष्टा..

वैक्षमाणिरित्यन्तरङ्गपरिभाषोदाहरणमुक्तम्। किञ्च विभज्यान्वाख्याने सु उत्थित अस् इ इति स्थिते 'वार्णादाङ्गं वलीय' इति प्राप्तवृद्धिवारणाय समर्थग्रहणमित्यत्रैव सूत्रे कैयटे स्पष्टम्। अत एव असिद्धवत्सूत्रे-वसोः सम्प्रसारणमज्विधौ सिद्धं वक्तव्यं पपुष इत्यादौवसोः सम्प्रसारणे कृते आतो लोपो यथा स्यात् इति भाष्य उक्तम्। पदस्य विभज्यान्वाख्याने पूर्वोक्तकैयटरीत्या पूर्व संप्रसारणे इटोऽप्राप्तावुसनिमित्तक एवातो लोप इति तदाशयः। अन्यथाऽन्तरङ्गत्वादिटि तन्निमित्तक एवातो लोप इति तदसङ्गतिः। अत एव चौ प्रत्यङ्गस्य प्रतिषेध इति वचनं

इष्टस्य वैपरीत्यापत्तेरसंकरेण प्रत्ययविधानार्थं तावदर्थ निर्देश इति सिद्धांतितं यान्यसंकराणिकृतलब्धक्रीतकुशला इत्यादीनि तानि न कर्त्तव्यानि इति उपसंहृतं च। अस्माद्[1]भाष्या तु उभयार्थकत्वमपि सूत्रस्य प्रतीयते[2] किं चाधिकारार्थकत्वाभावे ज्ञापक[3] साध्ये क्रीताद्यर्थ[4] निर्देशानामनेकेषां कर्त्तव्यत्वापत्या विपरीत[5] गौरवं तत्र जात इति सूत्रे मनोरमायामपि[6] उभयार्थकत्वमुक्तम्। अत्रत्य भाष्यविरोधात्पूर्वापरस्व[7] ग्रंथविरोधाच्च शेष इति सूत्रस्थ मनोरमातु चिंत्यैव। इदं मदुक्तं सर्वं मनसि[8] निधायैवोभयार्थकत्वं सूत्रस्योक्तं स चोपदर्शित[9] प्राक्। शेषे इति सूत्रप्रत्याख्यानपरग्रन्थास्तु लाघवपक्षपाति एतत्सूत्रस्थ[10] भाष्यविरोधादुपेक्ष्या[11] एवेति दिक्।

---

1. अस्माद्भाष्यात् प-1, प-2.
2. प्रतीयाते ज-2, अ-3.
3. ज्ञापक सध्ये प-2; ज्ञापकसंछेह्लीतद्यर्थ प-1.
4. क्रोत्ताद्यर्थ ज-2.
5. विपरीतोतगौरवम् ज-2, अ-3.
6. मनोरममामपि प-2.
7. पूर्वापरस्य ज-2, अ-3, अ-4.
8. मतरिधायैवोभयार्थकत्वम् प-2.
9. सवोपदर्शितं ज-2, अ-3; सचोपदर्शितप्राक् प-2.
10. सूत्रस्य भाष्य प-2; सूत्रस्थभाष्ये प-1.
11. विरोधाह् प्रेक्ष्या एवेति ज-2.

वार्त्तिक कृतारब्धं भाष्यकृता च न प्रत्याख्यानम्। प्रत्यङ्गमन्तरङ्गम्। अस्यां परिभाषायां सत्यां तु तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। अत एव 'च्छ्वोः'

एतेन अत्र नव्यतराः काञ्चनेन[1] निर्मितेत्यर्थे शैषिकेऽणि[2] न कुत्रापि दोष इति तत्रेदं वक्तव्यम्। किं शेषिकोऽण्[3] तस्येदमित्यनेन विवक्षितो[4] निर्माणस्येदमर्थव्याप्यत्वादुत्तशेष[5] इत्यस्य स्वतन्त्रविधायकत्वेनाप्यंगी-कारात्तेनेति[6]। नाद्यः वृद्धाच्छ इत्यनेन वाधादिति[7] भास्करेणैवदूषिततत्वात्[8]। अत एव न द्वितीयः शेष इत्यस्य प्रत्याख्यानाच्च। अधिकारत्वे प्रयोजनानां[9] (ज्ञापकै[10]रन्यथासिद्धे र्भाष्ये प्रदर्शिततत्वात्। स्वतन्त्रविधायकत्वे प्रयोजनानां तु चाक्षुषं रूपमित्यादीनां) तस्येद[11]मित्यनेन सिद्धेः कैयटोपाध्यायैरुक्तत्वात्। अत एव ज्ञापकादानु[12]मानिक वचनकल्पनेन[13] स्थितस्य वचनस्य[14] प्रत्याख्यानं

---

1. सं. पाठः कांचने निर्मिते अ-1, अ-2, अ-3, अ-4; निर्मित प-2; कांचनेनिमित्ते प-1.
2. शैधिके आणि न अ-4.
3. शेषिकौण् अ-3.
4. विवक्षितौ अ-3.
5. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; व्याप्यत्वादुतशेपदस्य प-2 अ-1, अ-3; व्याप्यत्वाद्दुदशेपदस्य ज-2.
6. ते नति ज-2, अ-3.
7. वाबाधादिति प-2.
8. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-3, अ-4; भास्कोरणैव अ-1; भास्कारेणैव प-2.
9. प्रयोजनाम् प-2.
10. कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु प-1, प-2 पुस्तकयोः एव समुपलभ्यते.
11. तस्योदम् अ-3; तस्योहम् ज-2.
12. ज्ञापकादामुमानिक ज-2, अ-3.
13. कल्पनेनास्थ ज-2, अ-3.
14. सं. पाठः, कल्पनेनास्थ तस्ये वचनस्य प-2; कल्पनेनास्थ तस्ये च चनस्य ज-2, अ-3; कल्पनेनास्थितरस्य वचनस्य अ-1; कल्पने नास्थ तस्ये च चनस्य ज-2, अ-3; कल्पनेनास्थितरस्य वचनस्य प-2; प-1.

(6.4.19) इति सूत्रेऽवश्यमत्र तुगभावार्थो यत्रः कार्योऽन्तरङ्गत्वाद्धि तुक् प्राप्नोतीति भाष्य उक्तम्। एतत्सत्त्वे तु तुकोऽप्राप्त्या यत्नावश्यकत्व कथनमसङ्गतमिति स्पष्टमेव। न चैतदनित्यत्वज्ञापनार्थमेव तदिति तदाशयः अवश्यमत्रेत्यक्षरस्वारस्य भङ्गापत्तेः।

किञ्चानयैव 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' (7.2.98) अदो जग्धिर्ल्यप्ति किति (3.4.36) इत्यनयोश्चारितार्थ्येन तज्ज्ञापकवशाल्लुग्ल्यपोरन्तरङ्गबाधकता भाष्योक्ता भज्येत।

किच्चैषा भाष्ये न दृश्यते। तदुक्तमसिद्धवत्सूत्रे कैयटेन-

न सुष्ट्विति[1] अभि[2]संधायाधिकारत्वमस्तु लक्षणत्वं[3] तु नातीवोपयुज्यते इति मिश्रैरुक्तं दीक्षितैरपि शेषिकान्[4] मतुवर्थीयाच्छैषिको[5] मतुवर्थीक इत्यस्य विषयविभागार्थत्वमधिकारस्य व्यवस्थाप्यैवं स्थिते[6] विधायकत्व मपि तस्य सुचमिति[7] नातीव[8] तत्र निर्भरः कार्य इत्युक्तम्। न च काञ्चनीत्यादि सिद्ध्यर्थं विधाय[9]कत्वस्यावश्यकतया तद्वैयर्थ्योक्ति-

---

1. न न सुष्ट्विति प-1; न सुष्ट्ति प-2.
2. अत्रिसंधाया प-1.
3. लक्ष्यणत्वम् ज-2, अ-3, अ-4.
4. 'शे' नाऽस्ति प-1, प-2.
5. पाठोऽयं प-1, अ-4; मतुवर्थीपृच्छैषिकोमतुवर्थिक अ-1, अ-3; अतुवर्थी ज-2.
6. छित ज-2; स्छित अ-3.
7. पाठोऽयं प-2, अ-4; सुवर्कमतिनातीव अ-1, अ-3; सुवणीमतिनातीव ज-2; सुक्वमितिनातीव प-1.
8. नतिव प-2.
9. विधायत्वस्यावश्यतया प-1, प-2, विधायकत्वस्या अ-4; विधायकुत्वस्यावश्यकतया ज-2, अ-3.

'निमित्तापाये नैमित्तिकस्याप्यपाय' इति परिभाषाया भाष्यकृताना-श्रयणादिति पदसंस्कारपक्षे हरित्यादौ विसर्गे कृते ततो गच्छतीत्यादि-सम्बन्धे हरिःगच्छतीत्याद्येव साधु। तद्विषये पदसंस्कारपक्षानाश्रयणं वेति दिक्॥56॥

अन्तरङ्गादप्यपवादो बलीयान्॥

तत्रापवादपदार्थमाह-

येन नाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति॥57॥

प्राप्त इति भावे क्तः। येन नाप्राप्त इत्यस्य यत्कर्तृकावश्यप्राप्ता-वित्यर्थः नञ्द्वयस्य प्रकृतार्थदाढ्र्यबोधकत्वात्। एवं च विशेष-शास्त्रोद्देश्यविशेषधर्मावच्छिन्नवृत्तिसामान्यधमावच्छिन्नोद्देश्यक-शास्त्रस्य विशेषशास्त्रेण बाधः। तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं ह्येतस्य बाधकत्वे बीजम्। अत एव 'आयादयः' (3.1.31) इति सूत्रे गोपायिष्य तीत्यादावायादीन् बाधित्वा पर त्वात् स्यादयः प्राप्नुवन्तीत्या-शङ्क्यानवकाशा आयादयः गोपायती त्यादावपि शप्स्यादिः प्राप्नोति। न च सति शय्यसति वा न विशेषः, अन्यदिदानीमिदमुच्यते नास्ति विशेष इति। यदुक्तमायादीनां स्यादिभिरव्याप्तोऽवकाश इति स नास्त्यवकाश इति भाष्य उक्तम्। एवमत्र तत्प्रवृत्त्युत्तरं चारितार्थ्येऽपि तदव्याप्तोऽवकाशो नास्तीति सममेव।

किञ्चानेन न्यायेन तत्प्रवृत्त्युत्तरमपि चारितार्थ्येऽपि तद्बाध-बोधनम् अन्यथानवकाशत्वेनैव बाधे सिद्ध एतत्कथनस्यैव वैयर्थ्या-पत्तेस्तक्रकौण्डिन्य न्यायप्रदर्शनस्यापि वैयर्थ्यापत्तेश्च। यथा प्रथम-द्विर्वचनस्य तदुत्तरं सावकाशेनापि द्वितीयद्विवचनेन बाधः, यथा चादेरपि प्रवृत्त्या चरितार्थेन 'आदेः परस्य' (1.1.54) इत्यनेन 'अलोऽन्त्यस्य' (1.1.52) इत्यस्य बाधः। तदुक्तं 'मिदचोऽत्यात्' (1.1.47) इति सूत्रे भाष्येसत्यपि सम्भवे बाधनं भवतीति। अन्यथा ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्यायेत्यत्र तक्रदानेन दधिदानस्य

बाधो न स्यात् तद्दानोत्तरं तत्पूर्वं वा तद्दानस्य चारितार्थ्यसम्भवात्।

अत एव विषयभेदेऽप्यपवादत्वम्। अत एवाचि रादेशेन नुटोऽप्यपवादत्वाद्बाधमाशङ्क्य 'न तिसृ' (6.4.4) इति ज्ञापकेन समाहितं तृज्वत्सूत्रे भाष्ये। तेन विषयभेदेऽपवादत्वाभाव एव बोध्यत इति कश्चित् तन्न। विन्मतोर्लुका टिलोपमात्रस्य बाधानापत्तेः।

यत्तु 'दयतेर्दिगि' (7.4.9) इति सूत्रे द्वित्वोत्तरं दिग्यादेशस्य चारितार्थ्यं कैयटेनोक्तं तत् प्रौढ्या। ध्वनितं च तैनापि तस्य तथात्वं तदुत्तरग्रन्थेन। 'असम्भव एव बाधकत्वं' विरोधस्य तद्बीजत्वात् इति वार्त्तिकमतं तु भाष्यकृता दूषितत्वान्न लक्ष्यसिद्ध्युपयोगि॥

तक्रकौण्डिन्यन्यायोऽपि तदप्राप्तियोग्येऽचरितार्थविषय विधेयविषय एव चेति 'तद्धितेष्वचामादेः' (7.2.117) 'धातोरेकाचः' (3.1.22) इत्यादि सूत्रेषु भाष्ये स्पष्टम्। क्वचित्तु सर्वथानवकाशत्वादेव बाधकत्वम्, यथा- ङे रामो याडादिबाधकत्वम्। न हि याडादिषु कृतेषु ङेराम प्राप्नोति, निदिश्यमानस्य व्यवधानात्। तत्र स्वस्य पूर्वं प्रवृत्तिरित्येव तेषां बाधः। तत्र बाधके प्रवृत्ते यद्युत्सर्गप्राप्तिर्भवति तदा भवत्येव। यथा तत्रैव याडादयः। अप्राप्तौ तु न यथा पचेयुरित्यादौ दीर्घबाधके निरवकाश इयादेशे दीर्घाभावः॥57॥

तदेत्पठ्यते-

क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गोऽभिनिवशत इति॥॥58

अपवादशब्दोऽत्र बाधकपरः। तदुक्तं 'गुणो यङ् लुकोः' (7. 4.82) इत्यत्र भाष्ये- अभ्यासविकारेषु अपवादा उत्सर्गान्न बाधन्ते। अजीगणत्। अत्र गणेरीत्वमपबादत्वाद्धलादिः शेषं न बाधते। न गणेनित्वमपवादत्वाद्भलादिशेषं बाधते। किं तर्हि?अनवकाशत्वादिति ग्रन्थेन। गण्रूपाभ्यासान्त्यणस्येत्वमित्यर्थे हलादिशेषेण तन्निवृत्तौ तदनवकाशमीत्वे तु कृते न तस्य प्राप्तिरन्त्यहलोऽभावात्। अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावाभावेन च साधितम्। तस्मिंश्च सति

रप्रमाणिकी[1] अत एव भाष्येऽधिकारत्वस्यैव ज्ञापकाश्रयणादाक्षेपः कृत इति वाच्यम्। भानुः पिताऽस्येत्यर्थे[2] भानव इत्यस्य शेष इत्यणैव[3] सिद्धे तस्येदमित्य[4]पत्येपि बाधनार्थं कृतं भवेत्। उत्सर्गः[5] शेष एवासौ वृद्धान्यस्य प्रयोजनमिति वार्त्तिककृदुक्तस्य तस्यापत्यमिति योग[6] विभाग प्रयोजनस्यासंगति प्रसङ्गादिति[7] मूलमनेक प्रकारैरपोद्[8]यात्रोच्यते। मयड्वैतयो-रित्येव सिद्धे नित्यं वृद्धशरादिभ्य[9] इत्यत्रारंभ सामर्थ्यान्नित्यत्वलाभान्नित्यग्रहणस्य शरादिभ्य[10] इत्यनेनान्व[11]यांगीकारात्क्वचित् वृद्येभ्यो मयड्[12] प्रवृत्या[13] कांचनीत्यस्य साधनीयत्वादिति समापि[14] वदंतः कैय्यटानुयायिनः स्वस्य[15] शेषे इति सूत्रांत मनोरमा मात्राध्ययनमाविष्कुर्वतः परास्ता[16]। किञ्च[17] भानुः

---

1. अप्रमाणकी अ–3, अ–2; अप्रामाणिका अ–4.
2. ऽस्येत्यर्थ भानव ज–2, अ–3.
3. इयणैव प–1.
4. तस्यैदम् अ–3.
5. उछर्णशेषम् प–1.
6. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; योगे अ–1, ज–2, अ–3.
7. असंगात् प–1; संगात् प–1, अ–3.
8. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4 प्रकारैरपोद्योत्रोच्यते अ–1, अ–3; प्रकारेरेरयो वात्राच्यते ज–2.
9. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; वृद्ध शादिभ्य अ–1, अ–3, अ–2.
10. शारादिभ्य अ–3.
11. इत्यने नाचयंकारात् प–1, प–2; इत्यनेनान्ययांगीकारात् क्व अ–4.
12. पाठोऽयं प–1, प–2; ष्टद्वेभ्योमयड अ–1, अ–2, अ–4; ष्टद्वोभ्योमपह अ–3.
13. प्रवृत्वात्या ज–2, अ–3.
14. सामाधिम् अ–3.
15. स्वस्व प–1, प–2.
16. परस्ताः ज–2, अ–3, अ–4.
17. किं च न भानु अ–4.

लोपे कृते सामर्थ्याच्छिष्टस्यान्त्यस्येत्वमिति न दोषः। न च येन नाप्राप्तिन्यायेनापवादत्वमप्यस्य सुवचम्, तस्य चरितार्थ विषयताया उक्तत्वात्। 'इको झल्' (1.2.3) इत्यत्र भाष्येऽपि ध्वनितमेतत्। तत्र हि 'अज्झन' (6.4.16) इति दीर्घेण गुणोत्तरं फलाभावेनानवकाशत्वाद् गुणे बाधिते दीर्घोत्तरं गुणः स्याद् दीर्घविधानं तु मिनोतेर्दीर्घे कृते 'सनि भीमा' (7.4.54) इत्यत्र मीग्रहणेन ग्रहणेऽर्थवत्तत्र पश्चात्प्राप्त-गुणबाधनार्थम् 'इको झल्' इति कित्त्वमित्युक्तम्। अन्यथापवादत्वेन बाधे तद्विषये उत्सर्गाप्रवत्तेर्भाष्यस्य सूत्रस्य चासङ्गतिरिति स्पष्टमेव।

यत्तु काञ्चनीत्यादावपवादमयङ्विषयेऽप्यण् भवति क्वचिद-पवादविषयेऽपीति न्यायादिति तन्न। 'अण् कर्मणि च' (6.3.12) इति सूत्रस्थ भाष्यविरोधात्। तत्र ह्यणः पुनर्वचनमपवादविषयेऽनि-वृत्त्यर्थं गोदायो व्रजतीत्याद्युक्तम्। काञ्चनीत्यादौ काञ्चनेन निर्मितेत्यर्थे शेषिकोऽण् बोध्यः। अत्रेदं बोध्यम्-

---

पिताऽस्येत्यर्थे - भानव इत्यस्य[1] शेष इत्यणासिद्धा[2]वपि भानो[3]रपत्यमित्यर्थे तदसिद्धयायोग[4] विभागसार्थव्ये वार्त्तिकविरोधोद्भावनमपि वार्त्तिकाशयाज्ञान विलसितम्[5]। नित्यग्रहणस्यैकाचो नित्यमिति[6] संग्राहकस्य कथं भवदुक्तार्थ-साधकत्वं स्यादिति समाधानमपि शेखरादिग्रन्थापर्यालोचन मूलकम्। नित्य-ग्रहणस्यैकाचोनित्यमिति संग्राह[7]कत्वे शरादिषु[8]-

---

1. त्य नाऽस्ति प-1.
2. इत्यरंगासिद्धावपि ज-2.
3. मानोरत्यप्यिर्थे अ-3; भानोरपत्यमित्र्थे अ-4.
4. तदसिध्या अ-3; तदसिद्या ज-2.
5. विलासितम् ज-2, अ-4.
6. नित्यमित्यमिति संग्राहकस्य कथं स्यादिति समाधानमपि इति अ-4 मातृकायां पाठोपलभ्यते.
7. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 संग्राहत्वम् अ-1, ज-2, ज-4.
8. शरदिषु ज-2, अ-4.

'येन नाप्राप्त' इत्यत्र येनेत्यस्य यदि स्वेतरेणेत्यर्थः-तदा स्वविषये स्वेतरयद्यत् प्राप्नोति तद्बाध्यम्, विध्यन्तराप्राप्तविषया भावात्। इयमेव बाध्यसामान्यचिन्तेति व्यवह्रियते। अनवकाशत्वेन बाधेऽप्येषा वक्तुं शक्या यद्युदाहरणमस्ति विनिगमनाविरहात्।

यदि तु येनेत्यस्य येन लक्षणेनेत्यर्थो येन कार्येणेत्यर्थो वा तदा बाध्यविशेषचिन्ता। अनवकाशत्वेन बाधेऽप्येतद्बाधेन सार्थक्यमुत तद्बाधेनेत्येवं विशेष चिन्ता सम्भवति यद्युदाहरणमस्तीति॥58॥

तत्र कार्येणेत्यर्थे पररूपत्वावच्छिन्ने कार्य आरभ्यमाणाया वृद्धे स्तद्बाधकत्वे निर्णीते किंशास्त्रविहितस्येत्येवं तद्विशेषचिन्तायामाह-

पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्॥59॥

मृच्छब्दपाठस्य[1] वैय्यर्थप्रसङ्गादिति भवदुक्तमनोरमोक्तदूषणानु[2]वादोपि मृच्छब्दपाठस्तु एकाचो[3] नित्यमित्यस्य नित्यत्वबोधनार्थ इति शेखरेणैव दत्तजलांजलिः[4] तदनित्यत्वे फले तु त्वाचोरोग इत्यादीवौत्[5] सर्गिकोण बोध्यः। एवं च मूलदूषणं तु दूषकत्व[6]स्वभावेनैव न युक्तेति[7] मदुक्ति संक्षेप मात्रांशे मान्या[8] मात्सर्य विचारयं त्विति दिक्॥58॥

---

1. पाटस्य प-2.
2. दृषणानुचादोपि अ-3; दृषणनुक्यदोपिमृछब्द ज-2.
3. ऐकाचो प-1.
4. जलंजलि प-1.
5. इत्यादीत्तौत्सर्गिकोण अ-3; इत्यादावोत्सर्गिकोप्यबोध्यः प-2.
6. दुयकत्व अ-3; द्रयत्व ज-2.
7. न युक्त्येति अ-3; न युक्तो ति ज-2; न युतयेति प-2; न युक्येति अ-4.
8. मात्रांशेमातसार्यविचारयम् प-1; मात्रांशेमात्सर्य मुत्सार्यविचारयं प-2; मात्राशेमान्यामात्सर्यविचारयम् अ-3, ज-2, अ-4.

अवश्यं स्वपरस्मिन् बाधनीये प्रथमोपस्थितानन्तरबाधेन चारितार्थ्ये पश्चादुपस्थितस्य ततः परस्य बाधे मानाभावः। आकाङ्क्षाया निवृत्तेर्विप्रतिषेधशास्त्रबाधे मानाभावाच्चेत्येतस्य बीजम्।।59।।

'नासिकोदरौष्ठजङ्घादन्त' (4.1.55) इत्यस्यौष्ठाद्यंशे ङीष्निषेधत्वावच्छिन्नबाधकत्वे निर्णीतेकिंविहितस्येत्याकाङ्क्षायामाह-

मध्येऽपवादाः पूर्वान् विधीन् बाधन्ते नोत्तरान्।।60।।

तेनौष्ठादिषु पञ्चसु 'असंयोगोपधात्' इति प्रतिषेध एव बाध्यते, न तु 'सहनञ्विद्यमान' (4.1.57) इति 'नासिकोदर' (4.1.55) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम्। पूर्वोपस्थितबाधेन नैराकाङ्क्षयमस्या बीजम्।।60।।

प्रतिपदोक्त[1]त्वमपि निरवकाशत्वे सत्येवेति। यथा ऋग्[2] भिन्नस्त्र्यर्थे चरितार्थस्य पादो[3]न्यतरस्यामित्यस्य ऋचिवाच्ये[4] प्राप्तस्य प्रतिपदविधि[5]त्वेनापवादत्वात् टा[6]बृचीत्यनेन बाधः एवं च सूत्रकारमते[7] ऋग् भिन्नेस्त्र्यर्थे द्विपदी द्विपादिति[8] रूपद्वय[9] ऋचि तु द्विपदेति तृतीयं रूपम्[10]। अत एव टाबृचीत्यस्यापवादोक्तिः-

---

1. प्रतिपदोक्तमपि अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4.
2. ऋण्भिन्ने अ-3; ऋणाभिन्नेस्राप्र्येचरितार्थस्य ज-2.
3. 'पा' नाऽस्ति प-2.
4. ऋचिप्राप्तस्य अ-3; ऋचिवाचेप्राप्त्स्य अ-4.
5. विषिवे ज-2.
6. टाकृचि 4/1/9; यवृचीत्यनेन अ-3; आबृचीत्यनेन अ-4; ट्टावृचीत्यनेन प-1.
7. ऋग्यमित्रेस्प्रर्थे ज-2; सूत्रकारमतैत्रऽणभिन्नोस्त्र्यर्थे प-2.
8. पाठोऽयं प-2; द्विपद्विपात् अ-1, ज-2, अ-3, अ-4, प-1.
9. पाठोऽयं प-1, प-2; रूपद्वयाम् अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
10. रूप ज-2, अ-3, अ-4.

ननु 'वा छन्दसि' (3.4.88) इत्यनेन 'सेर्ह्यपिच्च' (3.4.87) इत्यनन्तरस्यापित्त्वस्येव हेरपि विकल्पः स्यात्। तथा 'नेटि' (7.2.4) इति निषेधोऽनन्तरहलन्तलक्षणाया इव सिचिवृद्धि-मृजिवृद्ध्योरपि स्यात्। अत उक्तन्यायमूलकमेवाह-

अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति॥61॥

अत एव 'संख्याव्ययादेः' (4.1.26) इति ङीब्ग्रहणं चरितार्थम्। तद्ध्यनन्तरस्य ङीषो विध्यभावाय। 'न क्तिचि' (6.4.39) इति सूत्रे दीर्घग्रहणञ्च चरितार्थम्। तद्ध्यनन्तरस्य 'अनुदात्तोपदेश' (6.4.37) इत्यस्यैव निषेधाभावाय। मध्येऽपवादन्यायाद्यपेक्षयानन्तरस्येति न्यायः प्रबल इति अष्टाभ्य (7.1.21) इति सूत्रे कैयटः॥

प्रत्यासत्तिमूलकोऽयम्। लक्ष्यानुरोधाच्च व्यवस्थेत्यपि पक्षान्तरम्। तत्र तत्र क्वचित् स्वरितत्वप्रतिज्ञासामर्थ्येन बाध्यतेऽयं न्यायः। 'टिड्ढ' (4.1.15) इति सूत्रेण डापा व्यवहितस्यापि ङीपो विधिः। 'न षट्' (4.1.10) इत्यादिना द्वयोरपि टाब्ङीपोः प्रतिषेधः। हयञ्च 'शिसर्वनामस्थानम्' (1.1.42) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टेत्यन्यत्र विस्तरः॥61॥

ननु दधतीत्यादावन्तरङ्गत्वादन्तादेशेऽल्विधौ स्थानिवत्त्वाभावाद-दादेशो न स्यादिति तद्वैयर्थ्यापत्तिरत आह-

पूर्वं ह्यपवादा अभिनिविशन्ते पश्चादुत्सर्गाः॥62॥

लक्षणैकचक्षुष्को ह्यपवादविषयं पर्यालोच्य तद्विषयत्वाभाव-निश्चय उतसर्गेण तत्तल्लक्ष्यं संस्कारोति। अन्यथा विकल्पापत्तिरित्यर्थः। अभिनिविशन्त इत्यस्य बुद्धयारूढा भवन्तीत्यर्थः। 'अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थः' (प. 65) इति न्यायस्य तु नात्र प्राप्तिरन्तादेशाप्राप्तिविषये चारितार्थ्याभावात्॥62॥

लक्ष्यैकचक्षुष्कस्तु तच्छास्त्रपर्यालोचनं विनाप्यपवादविषयं परित्यज्योत्सर्गेण लक्ष्यं संस्करोति, तस्यापि शास्त्रप्रक्रियास्मरण-पूर्वकप्रयोग एव धर्मोत्पत्तेः। तदाह-

मनोर[1]मोक्तात्तत्सत्रसंगच्छते। भाष्यकारेण[2] तु ङ्याप्प्रातिपदिकादिति सूत्रेऽथ ङ्याव्ग्रहण[3] किमर्थं इत्युपक्रम्य कुंचे[4]त्यादावेकादेशाभावेना-प्रातिपदिकत्वात्। स्वाद्य[5]नुत्पत्तिशंकायामकारांत[6] क्रुंचे त्यगिकृत्य[7] तत्खंडने कृते इदं तर्हि प्रयोजनं पादोन्यतरस्या[8] आबृचीत्युक्ता[9] तत्रापि पादशब्दसमानार्थ[10] कारांत पद शब्दात् टापि एकादेशास्य पूर्वांतत्त्वेन ग्रहणा[11]त्प्रातिपदिकत्वे स्वाद्युत्पत्तौ[12] सिद्धायां टाबृची न कर्त्तव्यमिति सूचितम्[13]। एवं च तन्मते सूत्रसत्ते ऋचि ङीपो वारणेपि तत्प्रत्याख्याने क्रच्य[14]भिधेयायां ङीपो ङीपोऽवारणात्। तत्रत्यपि[15] द्विपदीति प्राप्तरूपं फलभेदे[16] प्रत्याख्यानासंभवेना नभिधानाद्वारणीयम्[17]। न च भाष्यानुरोधात् सूत्रकारमतेपि पूर्वसूत्रादन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य[18] ऋच्यविधेयाया[19] ङीविष्ट इत्येव कुतो न कल्प[20]नेति

1. उक्त्या तत् सूत्रे ज-2, अ-4; मनोरमौक्ता तत् अ-3.
2. भाष्यकारणतु ज-2, अ-3, अ-4.
3. ग्रहण ज-2, अ-3.
4. कुकत्यादावेका अ-3, कुच पादावेका ज-2.
5. वाधनुत्पत्ति प-2.
6. शंकायामरांतम् प-1, शंकयामकारांत अ-3.
7. पाठोऽयं प-2, ज-2; कुंचेत्यंगि प-1; क्रंचेत्यंगि अ-1, अ-3, अ-4.
8. व्यतरस्याम् प-1.
9. उक्त्वा अ-3.
10. समानार्थककारांत प-1, प-2.
11. पाठोऽयं प-1, प-2; पर्वातत्वन ग्रहणास्तातिप्रदिकत्वे ज-2, अ-3, अ-4.
12. स्वादुत्पत्तौ ज-2.
13. संसचितम् प-2.
14. ऋव्यभिधेयायाम् ज-2, प-1.
15. ऋव्यपिद्विपदोति प-1, प-2 तत्रत्यपि द्विपदोतिशवं रूपं ज-2.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; भेदि अ-1, अ-3; भेद अ-4.
17. वारणोयम् प-1.
18. अनवर्त्य ज-2, अ-3.
19. भिधेयाडीष्टि अ-3.
20. 'क' नाऽस्ति प-1.

प्रकल्प्य चापवादविषयं तत उत्सर्गोऽभिनिविशते॥63॥

तत इत्यस्यापवादशास्त्रपर्यालोचनात् प्रागपीत्यर्थः। परित्यज्येत्यर्थः।

अत एव प्रातिपदिकार्थसूत्रे भाष्यं इदं द्वयमप्युक्त्वा न

वाच्यम्। स्वमते ङीविष्ट इति सूत्रकारेण स्वप्ने[1]ऽनुपदेशात्। किंच भाष्यानुरोधादन्यतरस्यां ग्रहणानुवृत्यासूत्रकारमते ऋचि ङीप्यपि[2] द्विपादित्यस्यापि[3] तन्मतेऽनिष्टस्य तदर्थं[4] आपत्तेश्च त[5]स्यापि तन्मते कल्पनं तु सूत्रकारोपदेशैकगम्यम्[6]। अनभिधानेन दत्तोत्तरत्वात्। पूर्वसूत्रापवादकत्वे[7] ऋच्य[8]भिधेयायां प्राप्त[9]ङीप्बाधनार्थत्वरूप प्रयोजनस्योत्तरसूत्रांशे सत्वेन[10] ङ्याप् सूत्रे टाबृचीत्येतत्[11] प्रत्याख्यानमसंगतमित्युक्तिरपि निरस्ता। अंतादिवत्सूत्रेऽथादिवत्वे कानि प्रयोजनानि इत्युपक्रमोत्तरं आप्श्वद्वा[12]मालो अवभावोरेकादेश आदिवद्भवति यथाशक्येत कर्तुं आंबत्तात् सोर्लोपो भवति

---

1. स्वप्नलुपदेशात् प–1; अनुपदेशात्तु अ–3.
2. देशेकगम्यंअनिभिधानेन दत्तौत्तरत्वात् इति प–2 मातृकायां पाठः1
3. द्वित्यस्यापि अ–3.
4. तदर्थे प–1, अ–4.
5. आपत्तेश्चातस्यापि प–1, प–2.
6. उपेदेशेकांगम्यम् प–1.
7. अपवादकत्वो ज–2, अ–3; अपवादकत्वा अ–4.
8. क्रच्यभिधेयायां ज–2, अ–3.
9. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; प्राप्तगे एवाधनार्थत्वप अ–1, अ–3 प्राप्तने एवाधनार्थस्वरूप ज–2.
10. सत्वेव ज–2, अ–3.
11. इत्येतत् प्राप्ताख्यानम् प–1.
12. पाठोऽयं प–1, आपरवद्वामाला आवनावोरेकादेशेत्यादिवादवति यथाशक्येत् अ–1; आश्रवद्वामाला आवना षोरेकादेशेत्यादि ज–2; आपस्वद्वामाला-आवभावोरेका देश आदिवद् भवति प–2; आपरवद्वामाला अ–3; आप्श्वद्वामाला आवनाचोरेकादेश अ–4.

कदाचित्तावदुत्सर्गो भवत्यपवादं तावत् प्रतीक्षत इत्यर्थकमुक्तम्।।63।। एतन्मूलकमेव नवीनाः पठन्ति-

उपसंजनिष्यमाणनिमित्तोऽप्यपवाद उपसंजातनिमित्तमप्युत्सर्गं-बाधत इति।।64।।

यत्तु अभ्यस्तसंज्ञासूत्रे कैयटेन प्रकल्प्य चेति प्रतीकमुपादाय यथा 'न सम्प्रसारण' (6.1.37) इतिपरस्य यणः पूर्वसम्प्रसारणं पूर्वस्य तु तन्निमित्तः प्रतिषेध इत्युक्तं तत्तु तत उत्सर्ग इत्याद्य-क्षरार्थाननुगुणम्।

यत्तु अपवादवाक्यार्थं विना नोत्सर्गवाक्यार्थइति तदर्थ इति तन्न। अभिनिविशतेऽपवादविषयमित्यादिपदस्वारस्यभङ्गापत्तेः। पदजन्य-पदार्थोपस्थितो वाक्यार्थबोधाभावे कारणाभावाच्च।

यत्र त्वपवादो निधिद्धस्तत्रापवादविषयेऽप्युत्सर्गः प्रवर्त्तत एव। यथा वृक्षावित्यत्र 'नादिचि' (6.1.104) इति पूर्वसवर्णदीर्घनिषेधाद-प्रवर्तमानस्य वृद्धिबाधकत्वाभावाद्वृद्धिः प्रवर्त्तते। अतएव 'तो सत्' (3.2.127) इत्यादि सङ्गच्छते। अत एव निर्देशाद् भ्रष्टावसरन्यायस्यात्र

क्व[1] तर्हि स्यात्। यत्रैकादेशो[2] नास्ति क्रुंचा[3] उष्टिणहादेव विशेति भाष्योक्तया[4] हलंत क्रुंचशब्दप्रसिद्धेस्तस्मादपि[5] ततः सुबुत्प[6]त्यर्थं आबधिकारस्यावश्य-कत्वेऽकारांतं क्रुंचशब्दमंगीकृत्यावग्रहण[7] प्रयोजन खंडनोत्तर[8] अकारांतपद-

---

1. कतर्हि प-2.
2. यत्रैकादिशो नास्ति प-1, प-2.
3. क्रुंचा उष्टिगाहादेव अ-3; श्रुत्वा उष्टिगहादेव ज-2; क्रुंचाल्यिहादेव अ-4.
4. भाष्योक्ता हालांच प-1; भाष्योक्ता हलंत अ-4; भाष्यो तथा हलंत ज-2.
5. तस्मादापि प-1, प-2; तस्मार्दपि अ-3.
6. सुवुत्यतयर्थं ज-2; सुवुत्पत्यर्थं आत् यत्रैकादंवधिकारस्या इति पाठः अ-4.
7. गुण अ-3.
8. खंडनात्तरम् अ-4; खंडानोत्तरम् ज-2.

शास्त्रेऽनाश्रयणम्। ध्वनितं चेदम् 'इको गुण' (1.1.3) इति सूत्रे भाष्य इति भाष्यप्रदीपोद्योते निरूपितम्। अत्र देवदत्तस्य हन्तरि हते देवदत्तस्योन्मज्जनं नेति न्यायस्य विषय एव नास्ति। हते देवदत्त उन्मज्जनं न। देवदत्तहननोद्यतस्य तु हनने भवत्येवोन्मज्जनम्। प्रकृतेऽपि न पूर्वं सवर्णदीर्घेण वृद्धेर्हननं किन्तु हननोद्यमसजातीयं प्रसक्तिमात्रम् प्रसक्तस्यैव निषेधात्। प्रतिपदोक्तत्वमपि निरवकाशत्वे सत्येव बाधप्रयोजकम् स्पष्टं चेदं 'शेषाद्विभाषा' (5.4.154) इति सूत्रे भाष्ये तत्र हि-शेषग्रहणमनर्थकं ये प्रतिपदं विधीयन्ते ते बाधका भविष्यन्तीत्याशङ्क्यानवकाशा हि विधयो बाधका भवन्ति, समासान्ताश्च कबभावे सावकाशा इत्युक्तम्। क्वचिदनवकाशत्वाभावेऽपि परनित्यादिसमवधाने शीघ्रोपस्थितिकत्वेन पूर्वप्रवृत्ति प्रयोजकं बलवत्त्वं प्रतिपदविधित्वेनापि। परनित्यान्तरङ्गप्रतिपदविषयो विरोधि सन्निपाते तेषां मिथः प्रसङ्ग परबलीयस्त्वमिति 'प्रत्ययोत्तरपदयोश्च' (7.2.68) इति सूत्रे कैयटेन पाठात्। अत एव रमे इत्यादौ

शब्दमंगीकृत्य टाबृची[1]त्यस्यापि खंडनेन[2] डाबुभाभ्या[3]मित्यंशे आव्[4] ग्रहणप्रयोजनस्थापनपरभाष्यस्यैकदेश्युक्ति[5]त्वावश्यकत्वेतन्मध्य[6] पतितैतत्प्रत्याख्यानस्य नांतरीयकतया तत्त्व[7]लाभात्। औव्[8] ग्रहण किमर्थमिति प्रश्ने[9] क्रंचेति प्रयोजन कथ[10]कोंत्तादिवत्सूत्रानुरोधो[11]सिद्धांत ग्रन्थस्त-

---

1. ठाबृचो प-1; दाक्षयोत्यस्यापि अ-4.
2. अकारांतपद इत्यारभ्य खंडनैन इत्यन्तं अ-3 मातृकायां नाऽस्ति.
3. डोवुभाभ्यामित्यंशे अ-3, ज-2; डीवुभाभ्याम् अ-4.
4. अव् प-1, आत्र अ-3; आप् अ-4.
5. देश्यक्तित्वाचश्यकत्वे ज-2, अ-3.
6. तन्मप्य पचितैतत् ज-2; ततध्यपतितैतत् प-2; तत्रध्यपतितैतत् प-1.
7. तत्वालाभात् अ-3.
8. आवंग्रहणम् प-2; अब् प-1.
9. प्रश्टौ अ-3; प्रष्टये अ-4; प्रश्न प-1; प्रछे ज-2.
10. कथकथकोतादिवत् ज-2.
11. सूत्रानुरोधोसित्यधीत अ-3, ज-2.

प्रतिपदोक्तत्वात् पूर्वमेत्व आकारप्रश्लेषाद्धल्ङ्यादिलोपो न प्राप्नोतीत्याशङ्क्य 'एङ्ह्रस्वात्' (6.1.69) इति लोपेन

दुत्तर[1]मकारांतमंगीकृत्य प्रवृत्तग्रंथस्तु एकदेशिनो डाबंशे[2] प्रयोजन प्रतिपादनांतः। न च क्रुंचाना लभेतेति अकारान्तः कंठत उच्चारित[3] ङ्याप् सूत्रस्थ[4] प्रयोगानुपपत्तिः तदंशे आबधिकारस्याप्रयोजकत्वेपि अंतादिवत्सूत्रस्थ[5] प्रयोगांशे[6] प्रयोजकत्वात्। अत्राप्यग्रे लिंग[7]विशिष्ट परिभाषयाऽवधिकार प्रयोजनानामन्यथासाधनस्य तौल्यालिंग विशिष्टपरिभाषया[8] गतार्थत्वात् सूत्रस्थं भाष्येमेकदेश्युक्तमिति तु न शंका कलंकलेशोऽपि इति दिक्॥

एतेन[9] वष्टीतिप्रतीकमुपादायेदं भाष्येन दृश्यते[10] निशदिशोरिगुपध[11] लक्षणे किमिदं तत्वादेवटारा क्विपि दिगित्यपि[12] अत एव ङ्याप् सूत्रे आप्[13] ग्रहणं न कार्यं अकारांतादाप्[14] तत्रांत[15]वद्भावात्प्रातिपदिकत्वेनैव

1. तदुक्तमकारांतरमंगोकृत्य प-1.
2. डाबंशेक्षयोजन ज-2; डाबंशेषयोज प्रतिपादनांतः अ-3.
3. उच्चरित प-1, प-2.
4. सूस्थ ज-2, अ-3; ङ्याप् सूत्रस्य प्रयोगांशे प्रयोजकत्वात् इति प-1 पुस्तके पाठोपलभ्यते
5. स. पाठः.
6. पाठोऽयं प-2; प्रयोगांशे योनकत्वात् अ-1, अ-3; प्रयोगांशे याजकत्वात् अ-4; प्रयोद्यांशे योनकत्वात् ज-2.
7. अत्राव्यग्रे विशिष्टपरिभाषयात्वधि प-1, प-2; परिभाषयावधिकार अ-3; परिभाषयाऽवाधिकार अ-4.
8. परिभाषयो ज-2, अ-3.
9. एतेनष्टिति अ-4, प-2.
10. दशाये ज-2; दृश्यये अ-3.
11. दिशोगुपलक्षणे अ-3, ज-2.
12. किपिदिगित्यापि ज-2, अ-3.
13. अप् प-1.
14. आकारांतादाप् प-1; अकारांतादाश्च ज-2.
15. तत्रांवतद्भवात् प-2.

सिद्धेः[1] यस्तत्य[2] नकारांतात् क्रुंचा उष्ठिर्यहादेव[3] विशेत्यत्रापि अकारांतादेव क्रुंचानालभेत उष्टिण्हक[4] कुभौदेव विशमिति अंतेक[5] प्रत्यय इति एवं विषय इत्युक्त्वा[6] बहुराजेति डाबंतार्थ[7]माप् ग्रहणमिति भाष्ये उक्तं संगच्छते[8] तस्मात् वाचेत्य साध्वेवेति शिवमिति[9] प्राचीनानुसारी[10] अव्ययांत[11] शेखरः परास्तः। न च पादोन्यतरस्यामित्यस्य (वैत्यस्य[12]) वैकल्पिकतया तदभाव[13]चारितार्थ्येपि ऋच्यभिधे[14]यायां प्रतिपद विधित्वेनोत्तर[15] सूत्रस्यापवादकत्वमंगीकारे शेषाद्विभाषा[16] उगबादिभ्यो[17] य[18]दिति सूत्रस्थ भाष्यविरोधः तत्रांते[19] उगवादिभ्यो यत् ऋषभोपायानहो[20] होर्ज्यः इत्युभौ

---

1. नैवासक्ये ज–2, अ–3.
2. यस्तत्द्र्यनकारांतात् प–1, प–2.
3. उष्टिय्यहादेव प–1; उष्टिग्हादेव प–2.
4. उष्यिहक अ–3; कुंवानाभेत्तदुष्टियहक ज–2.
5. अनेक ज–2; अतेक अ–3.
6. इत्युक्ता ज–2.
7. डाबांतार्थम् ज–2, अ–3.
8. सुंगते अ–4.
9. शिविमिति प–1, प–2.
10. प्राचीनांनुसरीं ज–2, अ–3; प्राचीनानुसारि प–1.
11. आव्यां न अ–3.
12. कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु ज–2, प–2, अ–4 नाऽस्ति.
13. तदभावे प–1, प–2.
14. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; क्तव्यभिधेयायाम् अ–1, अ–3; क्तव्यभिधेषायाम् ज–2.
15. पाठोऽयं प–1; विधित्वे नोत्तरस्य अ–1, ज–2, अ–3, प–2; सूत्रस्यापादवांगोकरे अ–4.
16. 5/4/154 अष्टा.
17. उगवादिभ्यो यत् 5/1/2.
18. यदिति नाऽस्ति ज–2, प–1, प–2, अ–3.
19. पाठोऽयं अ–4; तत्रत्येठगवादिभ्यो यतु अ–1, अ–3, प–1, प–2.
20. ऋत्यभोपायान होज्यः ज–2; ऋषभोपायान हाऽर्य प–2.

चर्मणोऽञ्[1] इत्यऽञ् अपेक्षयापूर्व विप्रतिषेधेनेति वार्त्तिकं तत्र शंकव्य[2] वाध्रचर्मेत्यादौ क्रमेण चरितार्थयोर्यदजो: संनंगु[3]नामचर्मविकारस्तस्मादुभय[4] प्रसङ्गे सनं गव्यमिति यत् भवति पूर्व विप्रतिषेधेन एवमौपानह्येठञ् चेत्युक्तछदिरूप धिवलेर्ठञ्नितिठञानापि अञोबाधेछादिषेपचर्मेत्युक्तम्। एवं चटावृचीत्येत्तद्रोत्यांशकव्यं दारु औपनत्द्यं दारु छादिष्वेयं यंतृणमित्यादौ चारितार्थेपि प्रतिपदविधित्वे नञ्यठञ्भ्यां बाधे[5] सिद्धे पूर्वविप्रतिषेधारंभोऽनर्थक: स्यादिति वाच्यम्। सति शेष[6] ग्रहणे व्याख्यानादनंतरबहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णो-रित्यधि[7]कारापिक्षयैव शेषस्य ग्रहणा तत्र चांगुलेर्दारुणीत्यादि प्रतिपदशास्त्राणां पपाठेन[8] तेषां स्वविषये प्राप्त[9]कयो बाधकत्वेन तत्प्रवृत्तिप्रतिबंधकत्व-स्यानेकवक्ष्यमाणभाष्यैर्वक्ष्यमाण[10] सूत्रस्थ[11] कैय्यटरीत्या चावश्यकत्वे निरवकाश[12]स्याक्षतैस्तद्भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वात्। एवं च शेषग्रहणं स्पष्टार्थम्। न च समासांतरे[13] चरितार्थाना[14] ऋक् पूरित्य[15]वादिनां

---

1. च मगोज् अ-3, ज-2.
2. तत्रत्राकव्यंदारू अ-3; तंत्रात्रांकव्यंदानूवाधं ज-2; तत्र शकच्यद्वारुवाघ्रं प-1.
3. सनंगुनामिचर्त्य प-1.
4. उ भयमप्रत्यंगे संत गव्यमिति ज-2.
5. बाधे सिद्धे प-1, प-2.
6. शेषे अ-3.
7. पाठोऽयं प-1, प-2; अधिकारा पेक्षयौव शेषस्य अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
8. पाठेन प-1; शास्त्राणामपपाठेन अ-4.
9. पाठोऽयं प-1, प-2; प्राप्तकरये अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
10. वक्षमान प-1.
11. सूत्रस्य प-1.
12. चावश्यकत्वेन रवकाश अ-3. चावश्यकत्वेनवकाशत्वस्या प-1, प-2.
13. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; न च समातरे अ-1, ज-2, अ-3.
14. 'नाम्' नाऽस्ति प-2.
15. पृतापूरित्यषादीनाम् ज-2, अ-3; ऋक्यूरित्वादिनाम् अ-4.

बाधनाय[1] तद्ग्रहणमन्यथापरत्वात्वित्प्रियपथिक[2] इत्यव् विषये कपूस्यादिति वाच्यम्। तत्र कप्रत्ययस्येष्टत्वेन[3] शेष ग्रहणेपि भगवन्मते तद[4]वारणात्। एवं च ये प्रतिपदं विधीयंते ते बाधका[5] भविष्यंतीति[6] सिद्धांत्युक्तिः नैतदस्तीत्[7]यादि शंका समाधानादिकं त्वेकदेशिन इति दिक्।

द्वितीयस्याप्यत्र आहुः[8] छदिरुपानत्द्र्योः[9] प्रतिपद[10] प्रत्ययविधानाद्युक्तो[11] विप्रतिषेधः। तथा चोक्तम् परनित्यान्तरङ्गप्रतिपद विधयो[12] विरोधि[13] सन्निपाते[14] तेषां मिथः प्रसङ्गे परबलीयस्त्वमितिनार्थः। पूर्वविपतिषेधेनेति चिंत्य[15]मेतदिति कैय्यटे नैव चिंत्यतोक्तेः[16] अत्राहुरिति प्रतीकमुपादायप्रतिपदविधीनाम[17]

---

1. सं. पाठः, वाधानाय अ-1, अ-3; वाधानां एतदग्रहणम् ज-2; बाधनामत इहणमन्यथा प-1, प-2.
2. परत्वात्प्रीपपथिक इत्यत्कषयेकपूस्यादिति प-1; तदग्रहण मयान्यथापरत्वात्प्रिय-प्रियपथिक इत्यव् अ-4.
3. तत्र कस्तत्त्ययस्पेष्टतवेन प-1.
4. तदेवारणात् प-1.
5. बाधका नाऽस्ति प-1.
6. पाठोऽयं अ-4 भविष्यतेति अ-1; भविष्यतोति ज-2, अ-3; भविष्यति प-1, प-2.
7. नेतदस्ति दिंशका प-1; नैतदस्तोत्यादि ज-2.
8. आहः अ-3; अहूः प-1.
9. छदिरूपानत्योः ज-2; छदिरूपानत्द्र्याः अ-4.
10. प्रतिपद प-1.
11. अयुक्ता अ-3; विधानाहत्यक्ता ज-2.
12. विद्र्ययो विद्र्ययो अ-3; विशेये ज-2.
13. सं पाठः, विरोध अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4.
14. सत्तियातेषां अ-3.
15. चिमेत्यतविति अ-3; विमंन्युतविति ज-2.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4; चिंत्युतोक्तैः अ-1.
17. विधानाम् प-1.

नवकाशतवे सत्येव[1] बाधकत्वं[2] नत्वन्यथेति अत्रारुचिरिति विवरणं तु चिंत्यमेवेति बोध्यम्। यत्तु स्वांपीत्यत्र[3] निरवकाशत्वमिति प्रतीकमुपादायेद[4] छदिरूपाधिबलेर्ठञ्[5] इति सूत्रे शेषाद्विभाषेतिसूत्रे च भाष्ये स्पष्टमित्युक्तं नपुंसकशेस्वरो[6] ते तत्र छदिरूपधीति सूत्रे भाष्ये किमपिनोक्तं तथापि इति सूत्रं यच्चयादे इति बहुब्रीहिणातत्पादे उगवादिभ्यो यदिति सूत्रे इत्यर्थो[7] बोध्यः। अत एव कथोवैकल्पि[8]तकत्वेन तदभावेऽव्यय सर्वनाम्नाम[9] कजित्यकचश्चारितार्थ्येपि सर्वनाम्नो[10]ऽकजिति प्रति[11]पदमकचो विधानात्। स्वविषये प्राप्तकयोबाधकत्वं भाष्योक्तं कैय्यटादि नवीनांतोक्तं[12] च संगच्छते। अन्यथा समासांतविषये शेष ग्रहणाभावे परत्वादत्रापि[13] कवापादनवत्[14] परत्वादत्रार्तपि कपितदभावेऽकचि[15] च सर्वनाम्नः काक[16]चोर्विभाषाप्रवृत्ति

---

1. संत्येव प-1.
2. बाधकत्वेन क्यथेति अ-3; लाधवत्वं नत्वन्यथेति ज-2.
3. यत्तु स्वंपीनिरवकाशत्वम् अ-3; स्वीर्यात्यत्र; निरवसाम्पनुज्ञान मन्यतरस्या अ-4.
4. पाठोऽयं प-1, प-2; प्रतितोकम् अ-1; प्रतितीकसपादायेदम् ज-2; प्रतितीकमुपादादायेदम् अ-3.
5. 5/1/13 अष्टा.
6. शेखराते तत्र प-2; शेखसरांते तत्र प-1.
7. पाठोऽयं प-1, प-2; इत्यर्थे अ-1, ज-2, अ-3.
8. कयो वैकल्पिकत्वेन प-, प-2.
9. अव्ययसर्वना साकच् प्राकूटेः 5/3/71 अष्टा.
10. ऽकतिति अ-3.
11. प्रति नाऽस्ति अ-3.
12. नावीनातोक्तं च ज-2; न विनोक्तोक्तं च प-1; नवीनाक्तं च अ-3.
13. पाठोऽयं प-1, प-2; अत्रापि नोपलभ्यते अ-1, ज-2, अ-3, अ-4; परस्तात् अ-3.
14. कपादनवत् अ-3,
15. 'ऽ' नाऽस्ति अ-3.
16. काकचोविर्भाष्यप्रवृत्ति अ-3.

प्रसङ्गः। न धातु लोप इति सूत्रे भाष्येपितत्सूत्रप्रत्याख्यानावसरे पूर्व मकार लोपे पश्चाल्लुकि अल्लोपस्य[1] स्थानिवद्भावाल्लोलुवादौ गुण वृध्यभाव[2]मुक्त्वा तदनंतर मुक्तं लुकि कृते न प्राप्नोति। इदमिह संप्रधार्य्यम्[3]। लुक् क्रियातामल्लोप इति किमत्रन्याय्यपरत्वात्[4] अल्लोपः नित्योलुक् शब्दांतरस्येति[5] न्यायेन लुगप्यनित्यः[6] द्वयोरनित्ययोः[7] परत्वात् व्यवस्था अनवकाशस्तर्हिलुक् सावकाशो लुक् कोऽवकाशः[8] अवशिष्टः अथापि[9] कथंचिदनवकाशो लुक् अथापि न दोषः। अल्लोपे[10] योग विभागः करिष्यते अत इति किमर्थं[11]मिदं लुक् बाधनार्थमित्युक्तम्। तत्र यद्यपि सावकाश इति प्रतीकमुपादायभिन्नविषयौ लुक[12] लोपौ यकारस्य लुक्[13]। अकार[14]स्यलोपः ततश्चनास्ति येन ना प्राप्ति न्याय इत्युक्तं कैयटेन तथापि लुकि[15] कृते न प्राप्नोतीति[16] प्रतीकमुपादाय अनवकाशत्वादंतरंगानपि इति न्यायाच्च[17] लुकि –

---

1. अल्लोपस्य तिचद्भाल्वाल्लोलुवादौ अ–3; अल्लोपस्य विवद्भावाल्लोलुवादो ज–2.
2. वृध्यभावमुक्त्वातनंतरमुक्तं अ–3; वृद्यैभावमुस्वातदनंतर मुक्तलुकि अ–4.
3. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; सप्तधार्यम् अ–1, अ–3; अप्रधार्या ज–2.
4. व्याप्यं परत्वाद अ–4.
5. 'त' नाऽस्ति प–1.
6. लुप्पनित्यः अ74.
7. द्वयोरनित्ययोऽपरत्वाद् अ–4.
8. कोवऽकाशः ज–2; किऽवकाशः प–1.
9. आधापि प–1, अ–3.
10. अल्लोधयोग प–2.
11. किमर्थं मिदम् अ–3; किमर्थमिति प–1.
12. लुकलौपौ अ–3, ज–2.
13. 'तु' न्राऽस्ति प–1.
14. अकारस्य अ–4; अकारस्यलोपस्तातश्च नाऽस्ति प–2.
15. लुकित्यनेन प–2.
16. प्राप्नोतोनिप्रतीकमुदाय अ–3.
17. इति न्योयाच्च प–2.

कृते[1] लोपो न प्राप्नोतीत्यर्थः। उत्तर[2] आशया[3]नभिज्ञ आह। परत्वादिति किं च भिन्न विषयेपि बाध्यबाधकभावोदृष्टः[4] यथाव्यथो[5] लिटीति सम्प्रसारणस्य वकारे चारिता[6]र्थ्येपि हलादिःशेष बाधकताभाष्यकारोपि मिदचोऽन्तयादि[7]त्यस्य विषयभेदेपि प्रत्ययपरत्वबाधकता[8] वक्ष्यति। तस्मात्कृते[9] चारितार्थ्येपि तत्प्राप्तिकालेऽवश्यं प्राप्त्यापवादत्वं[10] भवत्येवे[11]त्याशयः। असंभव एव बाधकत्वमिति वार्त्तिकानुयायिना सावकाशो लुगित्युक्ते स एवाथापी[12]त्याहेति तदुक्तिः कथंचिदिति विवरणे उक्तम्। किं च पारेमध्ये षष्ठ्या[13] वा द्वितीय[14] तृतीय चतुर्थ तुर्याण्यतरस्यामित्यादिसूत्रस्थं भाष्य मध्यतराव-संगच्छते[15]। तत्राद्ये हि महाविभाषया[16] परं गंगाया इति वाक्यस्यापि सिद्धतया[17] सूत्रे वा[18] ग्रहणवैय्यर्थ्यशंकायां पक्षे षष्ठी[19] समासार्थं तर्हि

1. पाठोऽयं प-1, अ-4; कृत अ-1, अ-3, ज-2, प-2.
2. इतर प-1, प-2.
3. अशनानभिज्ञ अ-4.
4. माथो दृष्टः अ-3; मांधौ दृष्टः ज-2.
5. पाठोऽयं प-1, प-2; यथाव्यप्तो लिटोति अ-1, अ-3; यथायथो लिटोति अ-4; यध्यविप्पोतिदोति ज-2.
6. चरितार्थ्योपि प-1.
7. मिदचोऽन्त्यात् परः 1/1/47; मिदिचोत्यादि त्यस्य ज-2, अ-3.
8. वाधकतांवक्ष्यतो अ-4.
9. पाठोऽयं प-2, अ-4 स्यात् कृते अ-1, ज-2, अ-3; तत्स्मा कृत प-1.
10. ऽपवाद्दत्वम् अ-4.
11. भवत्ये चेत्याशयः ज-2.
12. एवाथपित्याहेति प-1; एवाद्यापोत्याहति अ-4.
13. 2/1/18 अष्टा.
14. 2/2/3 अष्टा.
15. सं. पाठः संगछते अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4 तत्राद्यो हि प-1.
16. विभाषयारंगगाया अ-3, ज-2.
17. सिधतया अ-3, ज-2; सिध्यतया प-1.
18. सूत्रे चा ग्रहण प-1; सूत्रे वा गुण अ-3.
19. पक्ष्ये षष्टी अ-3; षष्ठि प-1.

वाग्रहणमित्युक्ते सोपि[1] महाविभाषाधिकार पठित इति तावु[2]भौ वचनाद्-भविष्यत इत्युक्त्वाऽपवादेन मुक्तेपूर्व पूर्वकायादा[3] एकदेशि समासाभा[4]ववत्। पक्षे[5] षष्ठि समासा[6] प्राप्तौ तदभ्यनुज्ञानं वा ग्रहणप्रयोजनमुक्तम्। द्वितीयमिति[7] पूर्वोक्तरीत्या एवैकदेशि समासे न मुक्ते भिक्षाद्वितीयमिति[8] षष्ठी समासाभ्यनु-ज्ञानमन्यतरस्यां ग्रहण[9] फलमुक्तं स्पष्ट[10] चेदं विवरणेपि भवदुक्त रीत्योत्सर्ग[11] शास्त्रस्य वैकल्पिकतयाऽव्ययीभावैकदेशिसमासयो[12]- श्चरितार्थ्येनानप-बादत्वात् षष्ठी समासस्याप्रतिरुत्थत[13]यातत्प्रवृत्तौ[14] चानयोरिति वाग्रहणं विनापिलक्ष्य सिद्धौ तदर्थत्वोक्तिस्तयोर्भाष्योक्तासंगतिः स्यात्। किं चानयोर-पवादत्वाभावे अपवादेन मुक्ते इति न्याय[15]संचारस्यासंगत्यापत्तेश्च। ननु महाविभाषया[16] न प्रत्यय समासयो[17] र्विकल्पः क्रियते[18] किंतु एकोपस्थिति

---

1. 'पि' नाऽस्ति प-.
2. तावुभौवनाचाद्भविष्यत प-1; तावुभौवनाचाद्भविष्यत प-2.
3. पूर्वकायादौ प-1, प-2; कायादा एव देशि अ-3, ज-2.
4. समासवत् अ-4; समापाववत् प-2; समानावत्तपक्षे इति पाठः प-1.
5. पक्षषष्ठी अ-3.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 समा प्राप्तौ अ-1, अ-3; समाप्तात्यौ ज-2.
7. द्वितीये हि अ-3, ज-2.
8. द्वितीयमीति प-2.
9. ग्राहणफल प-2.
10. स्पष्टं वेद अ-3, ज-2.
12. समासामासयोश्चरीतार्थ्येनानयचादत्वात् अ-3, ज-2.
13. प्रतिरुत्वतया अ-3, ज-2.
14. प्रावृत्तौ अ-4.
15. न्यायासे चारस्याऽसगत्या अ-4.
16. विभाषायान प-1, प-2.
17. पाठोऽयं अ-4 प्रत्ययसमयो विकल्पः अ-1; प्रत्ययसमसयो ज-; प्रत्ययसमासयोर्विकल्पः प-2 प्रत्ययत्यप्राप्तव्योर्विकल्पः प-1
18. गीयते ज-2; क्रियते अ-4.

जनकत्व[1]रूपैकार्थी भावेप्रत्ययादिस्तदभावे व्यपेक्षाया[2] न प्रत्ययादिकमित्येव। एवं सर्वकः पारे[3] गंगादित्यादौ व्यपेक्षायामकजादीना[4] प्राप्ते[5]रेवाभावाद-चारितार्थ्येनावश्य प्राप्त[6]कादेर्वाधनमुचितम्। प्रकृते[7] तु नैवमिति चेन्न। यद्युत्सर्गापवादकतैकार्थीभाव एकस्तदानीमिदं संभवेत् तदेव न। यदा न षष्ठी समासस्तदोपपद[8] समास इत्यु[9]क्त्वा तदोपपदसमास[10]कृतैकार्थाभाव इत्युपपदमतिङिति[11] सूत्रस्थ भाष्येणाथवा विभाषा षष्टीसमासः यदा न षष्ठी समासस्तदोपपदसमास[12] इति तत्सूत्रस्थाग्रिमभाष्येण च दाक्षिरित्यत्रेञा-मुक्तेण्[13] माभूदिति यत्रोत्सर्गापवाद[14] महाविभाषा[15] तत्रोत् सर्गो न प्रवर्तते[16] इति द्वितीयतृतीयेति[17] सूत्रस्थान्यतरस्यां ग्रहणेन ज्ञापयित्वा तत्प्रयोजनकथन-

---

1. 'क' नास्ति अ-4.
2. व्यपेक्षयां अ-3
3. पारम् अ-4; परे अ-3.
4. व्यापक्षायां अ-4.
5. प्राप्तरेवाभावाद् ज-2.
6. प्राप्तकालेर्वार्धनन मुष्टं चितम् अ-4.
7. प्रकृते तु प-1; प्रदनते र्तु प-2.
8. तदोपदसमास ज-2, अ-3.
9. इत्यनुक्ता ज-2, अ-3.
10. उपपदसकृतैकार्थी भाव अ-4; कायीभाव अ-3; काथीभाव ज-2.
11. उपपदगितिङिति प-1.
12. समासाति अ-3, -2; समा इति अ-4.
13. दाधिरित्यत्रेनामुक्तण् प-1; तामुक्तेण प-2; जामुक्तेऽण् अ-4.
14. यत्रोत्सोर्गापवाद म् अ-4.
15. विभाषतत्रौत्सर्गा अ-3; विभाषा प-2.
16. प्रवर्तत इति अ-4.
17. द्वितीयतृतीयचतुर्थतुर्याग्यन्यतरस्याम् 2/2/3 अष्टा; तृत्तीयेति प-1.

परत्सूत्रस्थ भाष्येण च तत्तत्कार्यकृतैर्कार्थी[1]भाव व्यपेक्षयो[2] र्भेदस्यावश्यकत्वात्। अन्यथा षष्ठी समासाद्य[3] भावेव्यपेक्षायां एव सत्वेन तत्रोपपदसमासा[4]दिरिति भाष्यासंगत्यापत्ते:[5]। ततश्च[6] क प्रत्ययकृतैकार्थीभावे[7]ऽकच् कृततत्त्वेऽक-चश्चारिता[8]र्थ्येपि उत्सर्गाप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्येरूपबाधकत्वाहानेरक[9]चाको बाध्य:। एवं प्रकृतेऽपि ङीष् भावे टापश्चारितार्थ्येपि तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्य-रुपबाधकत्वाहानेष्टषाङीपो बाधएवोचित: ङीपोवैकल्पिकतयाऽप्रवृत्तावपि[10] तत्प्राप्तियोग्यताया: सत्वात्। वस्तु- तस्त्वनयारीत्या[11]छादिषेयाणि[12] तृणानि

---

1. कृतैकर्थो प-2.
2. व्यपेक्षयोर्मेवृस्यावश्यकत्वात् अ-3; व्यपेक्षायो र्भेदस्या ज-2; भावव्ययोभेदेस्या अ-4.
3. समासार्धाभावे प-2.
4. समासादितिरिति अ-4.
5. भाष्यासंगत्यपत्ते: प-2; भाष्यासंगत्यपत्ति: ज-2.
6. ततश्च कृतैकार्थो भावे इति पाठ: ()
7. भावभावेऽकचकृतमत्वेकचश् अ-3; कृतैकीर्थोभावाभावेऽकच् अ-4; भावेऽकचद्यत्ततत्त्वेऽकच प-1; कार्थो भावेऽकच् प-2.
8. चोतार्थ्ये अ-3, ज-2.
9. पाठोऽयं प-2, अ-4; बाधकवाह निरकचाको बाध्य: प-1; बाधकत्वार्थ निरकवाकोवाध्य: ज-2; बाधकत्वाहाने रवोकेकोवोध्य: प-1 बाध कत्वाहानेष्टाषार्ड्यो बाध अ-3; अकचाको बाध्य: ङीपो वैकल्पिकतया इति अ-4 मातृकायां पाठोपलभ्यते.
10. अप्रवृतापि प-2, प्रवृतावपि अ-4.
11. वस्तुतस्तु न परीत्वा अ-3, अ-2.
12. छादियेयाणि अ-4.

इत्यादौ उत्सर्गाप्राप्ति विषये छदिरूपधीति[1] सूत्रस्य चारितार्थ्ये न कैय्यटोक्तं प्रतिपद[2] विधित्वं चिंत्यमेव। इदमेव भाष्यं मूलोक्त निरवकाशत्वे[3] सत्येव वाध[4] इति प्रयोजकमित्यस्य प्रत्युदाहरणं बोध्यम्। ननु येनेति न्यायेन बाध स्तु चारिता[5]र्थ्येपि भवत्ये[6]वेति न्याय[7]मादाय पूर्वोक्त भाष्याणा[8] प्रवृत्तिरिति नत्व[9]नवकाशत्वेन बाधमादायेति चेन्न। पूर्वसूत्रापवादोऽयमिति मनोरमायामपि तुल्यत्वात्[10]। इदं पूर्वोक्तं सर्वं[11] तस्मात् शेषग्रहणं कर्त्तव्यमिति भाष्योक्त-मुपसंहारम[12]कृत्वासमासांताश्चकव[13] भावे सावकाशा[14] इत्युक्तमित्युपसंहारिण[15] मूलकृतैवबोधितम्[16]। कब भावे चारितार्थ्येपि तदप्राप्ति योग्येऽचारितार्थ्येन[17] बाध उचित इति तस्याशय:[18]। अग्रिम भाष्यंत्वेकदेश्युक्तमित्युक्तमेवेति

1. छदिरूपधिबलेर्ढन् 5/1/13 अष्टा. छपेछादि रूपधोति अ–1; षयेणदिरूपधीति ज–2; प्राप्तिविषान्येछदि प–1, प–2; प्राप्तिषयेछदिरूपधीति अ–3. विषयेछदिरूपतो अ–4.
2. प्रतियद्वविधित्वम् प–2.
3. निरवकषत्वे प–2; निरवकशत्वे अ–3.
4. बाध इति नाऽति प–2.
5. चारिताथ्योपि प–1; चारितार्थ्यपि अ–3.
6. भवरोचेति प–1; भवत्यवेति अ–4.
7. न्ययमादाय प–2.
8. भाष्यणाप्रवृत्तिरिति प–2; पूर्वोक्तमाभाष्यणाम् अ–4.
9. नत्वमनवकाशत्वेन प–1; अनवकाशेत्वेन प–2.
10. 'त्' नाऽस्ति प–2.
11. सर्वमस्यात् प–2; सर्वतस्मात् ज–2; सर्वं मस्यात् प–1.
12. उपसहारम कृतासमाप्तां ताश्चकव ज–2; समाप्ताताश्चकभावे प–1.
13. 'व' नाऽस्ति प–1, अ–3.
14. सावकशा प–2.
15. इत्युक्तमित्युपरिणमूल अ–3; इत्युपसंहारेण प–2; इत्युपसंसारेणमूल प–1 इत्युक्तसंहारेण अ–4.
16. बोधिताम् ज–2.
17. उचारितार्थेन ज–2.
18. उचित इत्याशय: अ–4; उचित इति तस्यशय: ज–2.

समाहितम्॥65॥

नन्वयजे इन्द्रमित्यादावन्तरङ्गस्यापि गुणस्यापवादेन सवर्णदीर्घेण बाधः स्यादत आह-

अपवादो यद्यन्यत्र चरितार्थस्तर्ह्यन्तरङ्गेण बाध्यते॥65॥

निरवकाशत्वरूपस्य बाधकत्वबीजस्याभावात्। एवं च प्रकृतऽन्तरङ्गेणगुणेन सवर्णदीर्घः समानाश्रये चरितार्थो यणगुणयोरपवादोऽपि बाध्यते। पूर्वोपस्थितनिमित्तकत्वरूपान्तरङ्गत्वविषय इदम्।

यत्तु आगमादेशयोर्न बाध्यबाधकभावः, भिन्नफलत्वात्; अत एव ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां कम्बलः कौण्डिन्यायेत्यादौ कम्बलेन न दधिदानबाध इति 'च्छ्वोः' (6.4.19) इति सूत्रे कैयटस्तत्र। अपवादो नुग्दीर्घत्वस्येति 'दीर्घोऽकितः' (7.4.83) इति सूत्रस्थभाष्यविरोधात्॥65॥

दिक्। क्वचिदनवकाशत्वाभावेऽपीति। यथा स्वापीत्यत्र इत्यत्र चारितार्थ्येनापि।[1] जतन्नित्यनेन[2] झलंतलक्षणनुमोबाधात् पूर्वदोर्धः न तु पदः[3] नित्यश्च पूर्वंनुम्। एवं[4] चोक्तमेवरूपं न तु स्वं पीतिबोध्यम्। एवं सेदुषीत्यादिन्यप्यु[5] ह्यायानि॥64॥

'अत एक' इति[6] सूत्रे कैय्यट इति। तत्र भाष्ये लिठा[7] आदेश[8]

---

1. स्वापीत्यर्थत्राप इत्यय ज-2.
2. जतनित्यनेन ज-2; अत्पृन्निनेन प-1, प-2; अत्यन्नित्यनेन अ-4.
3. परः प-1, प-2, अ-4.
4. स्वपीति ज-2, अ-3.
5. पाठोऽयं प-1; सदुषीत्या प-2: सेदुषीत्यादोन्यप्युवानि अ-1; सेदुषोत्याद्दोन्यध्युशुरवाति ज-2, अ-3, अ-4.
6. इति नाऽस्ति प-2.
7. लिटा प-1.
8. आदेदशविशेषणा प-1.

विशेषणाभावेनेमतुः सहेत्यादावनादेशादेरिति[1] निषेधशंकायां तस्य[2]तद्विशेषणत्वेन पूर्वोक्तदोष परिहारे अस्त्वन्यत् लिट्ग्रहणस्यप्रयोजनं इहमाभूत्। पक्ता[3]पक्तुं नैतदस्ति क्ङितीत्यनुवर्तते[4] एवमपि पक्वः[5] पक्ववान् इति अत्र[6] प्राप्नोति। अभ्यासलोप संनियोगेन[7] एत्वमुच्यते। न चात्राऽभ्यासलोपं पश्यामः। एवमपि पापच्यते[8] अत्र प्राप्नोति[9]दीर्घत्वमत्रबाधकं भविष्य[10]तीत्युक्तम्। दीर्घत्वमत्रेति[11] भाष्यमुपादायाभ्यासविकारेषु[10] बाधका न बाधंत[11] इत्येतत्तु यत्र सर्वेषां प्रवृत्तिस्तत्राश्रीयते। यद्यपि दीर्घे कृते एत्वाभ्या[12]सलोपप्रसङ्गस्तथापि एत्वाभ्यासलोपयोः कृतयो[13] दीर्घत्वाप्रसंग इति विरुद्धत्वादबाधकत्वाभाव[14]

---

1. नादेशारिति प-2; नादेशारिहेति प-1; सहत्त्यादावनाहेश्यदेरिति अ-3.; सेहेहत्याचनादेरिति अ-4.
2. तस्यद्विशेषणत्वेन अ-3.
3. पक्तापलुं प-1, प-2.
4. कुतोत्यनुवर्तते ज-2; कृतीत्यनुवर्तते प-2; डीतोत्यनुवर्तते अ-4, प-1.
5. पक्ववावान् इति प-2; पक्वः पक्वः वान् इति प-1; पक्वः पक्ववा इति अ-4.
6. आत्र प्राप्तोति प-2.
7. संनियोगेनत्वमुच्यते अ-3; संनियोगेन एवत्वमुच्यते ज-2.
8. यापच्यते प-2, अ-4; यापाच्यते अ-3.
9. प्राप्नोति दीर्घत्वमत्रबाधके अ-3; प्राप्नोति दीर्घत्वमत्रबाधको ज-2; प्राप्नोतिदीदीर्घत्वसुत्रबाधत्वं अ-4.
10. भातीत्युक्तम् प-1.
11. दीर्घत्वमत्रेति अ-4.
10. विकरेषु अ-4.
11. वाबाधाकानाबाधंतु प-1.
12. एत्वभ्यास प-2.
13. कृमयोर्दीघत्वा प-2 क्रमयादो त्विप्रसंग प-1; दीर्घत्वाप्रसंगा इति अ-3.
14. भावा इति प-2; भाव इति नोक्तम् अ-3; अभात इति तु नोक्तम् अ-4.

ननु अजीगणदित्यादौ गुगेरीत्वं निरवकाशत्वाद्धलादिः शेषं बाधेत तत्राह अभ्यासविकारेषु बाध्यबाधकभावो नास्ति॥66॥

'दीर्घोऽकितः (7.4.83)' इत्यकिद्ग्रहणमस्या ज्ञापकम्। अन्यथा यंयम्यत इत्यत्र नुकि कृतेऽनजन्तत्वाद्दीर्घाप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव।

इयं परान्तरङ्गादिबोधकानामप्यबाधकत्वबोधिका। तेन अचीकरत्, मीमांसत इत्यादि सिद्धम्। आद्ये सन्वद्भावस्य परत्वाद्दीर्घेण बाध: प्राप्नोति। अन्त्ये 'मान्बध' (3.1.67) इति दीर्घेणान्तरङ्गत्वादत्त्वस्य बाधः प्राप्तः।

यत्तु यत्रैकैकप्रवृत्त्युत्तरमपि सर्वेषां प्रवृत्तिस्तत्रैवैतत्प्रवृत्तिरिति 'अत एक' (6.4.120) इति सूत्रे कैयटस्तन्न। नुकि कृते दीर्घाप्राप्त्या धर्मिग्राहकमानविरोधान्मान्बधादीनां दीर्घे कृत इत्त्वाप्राप्त्या 'गुणो यङ्लुकोः' (7.4.82) इति सूत्रस्थभाष्योक्ततदुदाहरणासङ्गतेश्चेत्यन्यत्र विस्तरः॥66॥

ननु तच्छीलादितृन्विषये ण्वुलपि स्यात्? न च तृन्नपवादोऽसरूपापादस्य विकल्पेन बाधकत्वात्। अत आह-

---

इति। तेनोक्तम्। तदुदाहरणं[1] तु नर्नर्तीत्या[2]दावुरदत्वे रुगादयो बोध्याः। ज्ञापकसिद्धस्यासार्वत्रिकत्वेन नित्य[3]त्वात्तस्यात्राना[4]श्रयणे परत्वात् बाध इति तु भाष्यं सुयोजमितीदं स्पष्टं सर्वं विवरणे॥66॥

1. मदुदाहरणं प-1.
2. नर्नतीतयादारदत्वे प-1, प-2.
3. निसत्वात्तस्या अ-3, ज-2.
4. अनाश्रयणो ज-2, अ-3.

ताच्छीलिकेषु वासरुपविधिर्नास्ति॥67॥

ण्वुलि सिद्ध 'निन्दहिस' (3.2.146) इति सूत्रेणैकाज्भ्यो वुञ्विधानमत्र ज्ञापकम्, तत्र तत्रण्वुल्वुञः स्वरे विशेषाभावात्। ताच्छीलिकेष्विति विषय सप्तमी। तेनताच्छीलिकैरताच्छीलिकैश्च वासरूपविधिर्नेति बोध्यम्॥

नन्वेवं कम्रा कमनेत्याद्यसिद्धिः, 'नमिकम्पि' (3.2.167) इति रेण 'अनुदात्तेतश्च हलादेः' (3.2.149) इति युचो बाधादिति चेत्? न। 'सूददीपदीक्षश्च' (6.2.153) इत्यनेन दीपेर्युज्निषेधेनोक्तार्थस्यानित्यत्वात्॥67॥

नन्वेवं हसितं छात्रस्य हसनमित्यादौ घञ्, इच्छति भोक्तुमित्यत्र लिङ्लोटौ, ईषत्पानः सोमो भवतेत्यत्र खल् प्राप्नोतीत्यत आह-

क्तल्युट्तुमुन्खलर्थेषु वासरूपविधिर्नास्ति॥68॥

इदं च वासरूपविधेरनित्यत्वात् सिद्धम्। तदनित्यत्वे ज्ञापकं च 'अर्हे कृत्यतृचश्च' (3.3.169) इति। तत्र हि चकारसमुच्चितलिङ् कृत्यतृचोर्बाधा मा भूदिति कृत्यतृज्ग्रहणं क्रियत इत्यन्यत्र विस्तरः। वासरूपसूत्रे भाष्ये स्पष्टैष॥68॥

ननु श्वः पक्तेत्यत्र वासरूपविधिना लृडपि प्राप्नोति, कृत आदेशे वैरूप्यादत आह-

लादेशेषु वासरूपविधिर्नास्ति॥69॥

आदेशकृतवैरुप्यवत्सु लकारेषु स नास्तीत्यर्थः। अत्र च 'हशश्वतोर्लङ् च' (3.2.116) इति लङ्विधानं ज्ञापकम्। अन्यथा 'परोक्षे लिट्' (3.2.115) इति लिटा लङः समावेशोऽसारुप्यात्सिद्ध इति किं लङ्विधानेन? शत्रादिभिस्तिङां समावेशार्थं शतृविधायके विभाषाग्रहणानुवृत्तिः 'लिटः कानज्वा' (3.2.106) इति वाग्रहणं च कृतम्। तज् ज्ञापयति वासरूपसूत्रेऽपवाद आदेश त्वानाक्रान्तः

प्रत्यय एव गृह्यत इति कैयटादौ ध्वनितम्। तत्फलं तु सदादिभ्यो भूतसामान्ये लिटः क्वसुरेव न तु पक्षे तिङ् इति बोध्यम्॥69॥

ननु 'ङमो ह्रस्वात्' (8.3.32) इत्यादौ ङमः परस्याचोऽचि परतोङम इति वेति सन्देहः स्यादत आह-

उभयनिर्देशे पञ्चमीनिर्देशो बलीयान्॥70॥

अचीति सप्तमीनिर्देशस्य 'मय उञः' (8.3.33) इत्युत्तरत्र चारितार्थ्यात् पञ्चमीनिर्देशोऽनवकाश इति 'तस्मादित्युत्तरस्य' (1. 1.67) इत्यस्यैव प्रवृत्तिः।

यत्र तु 'डः सिधुट्' (8.3.29) इत्यादावुभयोरप्यचारितार्थ्यं तत्र 'तस्मिन्' (1.1.66) सूत्रापेक्षय। 'तस्मादित्युत्तरस्य' (1.1.67) इत्यपस्य परत्वात्तेनैव व्यवस्था। एवमुभयोश्चारितार्थ्येऽपि। यथा 'आमि सर्वनाम्नः' (7.1.52) इत्यादौ। तत्रामीति सप्तमी 'त्रेस्त्रयः' (7.1. 53) इत्यत्र चरितार्था। आदिति पञ्चमी 'आज्जसेरसुक्' (7.1.50) इत्यत्र चरितार्थेति स्पष्टं 'तस्मिन्' इति सूत्रे भाष्ये कैयटे च॥70॥

॥इति बाधबीजनामकं द्वितीयं प्रकरणम्॥

।।अथशास्त्रशेषनामकं तृतीयं प्रकरणम्।।

ननु अतः कृकमि (8.3.46) इति सत्वमयस्कुम्भीत्यत्र न स्यात् कुम्भशब्दस्यैवोपादानादत आह-

---

द्वि[1]षत्परयोरिति। द्विषंतप[2] इत्यत्र खच् द्विषती[3]ताप इत्यत्र नेत्युदाहरणम्। **समासान्तविधा[4]विति।** तदुदाहरणं[5] तु राजाहः सखि[6]भ्यष्टच् इति च यथा मद्रराज[7] इत्यत्र भवति एव मद्र[8]राज्ञीत्यत्रनेति बोध्यम्। **महदात्त्वे इति।** आन्महतः समानाधि[9]करणजातीययो[10]रित्यात्वं[11] महाब्राह्मणे भवति न महती ब्राह्मणीत्यादौ[12] परत्वा[13]त्पूर्वत्वंबाधित्वाआत्वमिति ध्येयम्। **ञ्नित्स्वरविधाविति[14]।** दाक्षिरित्यादाविव दाक्षीत्यत्र न ञ्नित्यादिर्नित्यमित्यस्य प्रवृत्तिः[15]। **राजस्वरे इति।** आर्यो[16] ब्राह्मणकुमारयोरित्यनुवर्तमानेतयोः परतो

---

1. 'प' नाऽस्ति अ-3.
2. द्विषत्परयोस्तापेः (3.2.39) अष्टा. द्विशती ज-2.
4. समासांत ज-2, अ-3.
5. 'तु' नोपलभ्यते अ-4.
6. सं. पाठः 5.4.91 अष्टा.
7. 'भ' नाऽस्ति प-2.
8. मद्रराज्ञोत्य मेति प-2; मद्रराज्ञोपत्यम् प-1.
9. 6/3/43 अष्टा; समाजाधि ज-2, अ-3; समनाधिकरण प-2; सनाधिकरण प-1.
10. रित्यातम् अ-3.
11. महाब्राह्मणो अ-4.
12. भवति प्र महंती ब्राह्ममणोत्यादौ अ-3; प-1, प-2.
13. परत्वात्नत्वं बाधिक आत्वमृ ज-2; परत्वा प्रवत्वां बाधित्वा प-2; पयरत्वात्युनत्वं वाधित्वा अ-4; अ-3
14. सं. पाठः, नित्स्वर विधास्वेति अ-1, अ-3.
15. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; प्रष्ठतिः अ-1; प्रप्पतेः ज-2; प्रष्टति अ-3.
16. आद्र्यो अ-3, ज-2.

प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्॥71॥

सामान्यरूपेण विशेषरूपेण वा प्रातिपदिकबोधकशब्दग्रहणे सति लिङ्गबोधकप्रत्ययविशिष्टस्यापि तेन ग्रहणं बोध्यम्। अपि ना केवलस्यापीत्यर्थः।

अस्याश्च ज्ञापकं समानाधिकरणाधिकारस्थे कुमारः श्रमणादिभिः (2.1.70) इति सूत्रे स्त्रीलिङ्गश्रमणादिशब्दपाठः। स्त्रीप्रत्ययविशिष्ट-श्रमणादिभिश्च कुमारीशब्दस्यैव सामानाधिकरण्यं न तु कुमारशब्दस्येति तदेतज्ज्ञापकम्॥

इयं च 'द्विषत्परयोः' (3.2.39) इत्याद्युपपदविधौः, समासान्त विधौ, महदात्त्वे, ञ्नित्स्वरविधौ, राजस्वरे ब्राह्मणकुमारयोः 'बहोर्नञ्वदुत्तरपदभूम्नि' (6.2.175) इत्यादौ समाससङ्घातग्रहणेषु च न प्रवर्त्तत इति ङ्याप्सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। विभक्तिनिमित्तकार्ये च नेत्यपि तत्रैव। तत्र समासान्तविधाववयवग्रहणे तत्र दोषोक्तेः। 'बहुब्रीहेरुधसः' (4.1.25) इति सूत्रभाष्याच्च। एतावत्सु एवानित्यत्वाद-

---

राजन् शब्दः कर्मधारये वा[1] प्रवृत्येति प्रकृतिस्वर[2]विधायकराजाचेतिसूत्रेण यथा राजा ब्राह्मण[3] इत्यादौ प्रकृति[4] स्वरस्तथा राज ब्राह्मणीत्यत्रापि प्राप्नोति[5]। बहोर्नञ्वदुत्त[6]रेति। उत्तरपदबहुत्वेवर्तमानाद्बहुशब्दा[7] त्परं पदंतस्य समासस्य नञ् इव स्वरो[8] भवतीत्यति देशार्थः। एवं च बहवो गोमन्तोऽस्य-

---

1. कर्मधारयेवामकृत्येति ज-2, अ-3.
2. 'स्वर' नाऽस्ति, अ-4.
3. ब्राह्मणा अ-3.
4. प्रकति अ-3, ज-2; प्रतिकूस्वरः प-1.
5. पाठोऽयं प-1, अ-4 प्राप्तीति प-2; प्रीति अ-1, ज-2, अ-3.
6. बहोर्नन्वदुत्तर पदभूम्नि 6/2/175
7. वह शब्दात् प-2; वुहु प-1 वर्तमाद्वकु अ-4.
8. 'स्वरो' नाऽस्ति प-1

प्रवृत्तिः, दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तेः।

बहुगोमानित्यत्र यथाऽतिदिष्ट[1]स्स्वरोनञ् सुभ्यामिति समासस्यांतोदात्तत्वं[2] भवति[3] तथा बहु[4]गोमतीत्यत्रापि प्राप्नोति[5]। इदं च समाससङ्धात[6]ग्रहणे चेत्यनेन[7] सा[8]मानाधिकरणमेकवचनांतपाठश्च। **समास**[9]सङ्धातग्रहणे चेति पूर्वोक्त-मेवोदाहरणं[10] प्रत्युदाहरणं तु कुसूल[11]कूपकुंभशालं विले[12] इति परतः कुसूलादीनामंतोदात्तत्वं कुसूलीबिले[13] भवतीति सर्वं विभक्ति[14] कार्य इति। उगिदचामिति नुम् गोमानित्यत्र[15] भवति न भवति च गोमतीत्यत्रेति[16] बोध्यम्। अवयवग्रहण एवेति[17]। उदाहरणन्तु पूर्वोक्तं राजाहसखिभ्य

---

1. 'स्वनन्' प-1
2. पाठोऽयं प-1, प-2; स्यमासुसादात्तत्वं ज-2.
3. न भवति, प-1
4. बहणोमती प-1.
5. आप्नोति ज-2; इत्यत्रोपित्राप्रीति प-2.
6. ग्रहैचेत्यनेन प-1; गहदाहरणेचेत्यनेन इति पाठः अ-3.
7. नैन अ-4; 'न' नाऽस्ति प-2.
8. पाठोऽयं प-1, प-2; सरमानाधिकरणम् अ-1, अ-3, ज-2; समानाधि करणम् अ-4.
9. 'स' नाऽस्ति प-2.
10. उदाहरणाम् अ-3, ज-2.
11. सुकुसूलकूप प-1; सकुस् कुप् प-2
12. कुंभशालि इति अ-3.
13. बिले च प-1; विलो भवतीति प-2.
14. सर्व विआलकार्य प-1.
15. गोर्मानित्यन्नेति बोध्यम् इति पाठः प-1.
16. गो गोमानित्यत्र ज-2, अ-3.
17. 'ति' नाऽस्ति अ-3.; ग्रहण एवेति नाऽस्ति अ-4.

नन्वेवं, बहुव्रीहेरुधसो ङीष् (4.1.25) इति सूत्रस्थभाष्यासङ्गतिः। तत्र हि- कुण्डोध्नीत्यत्र 'तद्यृतश्च' (5.4.153) इति कबापादितो नद्यन्तबहुव्रीहेरित्यर्थात्। नद्यन्तस्य बहुव्रीहित्वाभावात्तदसङ्गतिः।

इति[1] बोध्यम्। समास[2] संधातग्रहणेत्विति[3]। शेषाद्विभाषेति महायशस्कादाविव[4] बहुमालके प्रवर्त्तत इत्याशयः स्वर**विधा**वेवेति[5]। प्रत्युदाहरण[6]माह। बहुव्रीहेरिति[7]। इदं सर्वं तत्र सूत्रे विशिष्यत्तत्सूत्राणा[8] भाष्ये उपादानादनुमीयत[9] इति ध्येयम्। यत्तु एकादेशस्य[10] पूर्वान्तवत्वेन ग्रहणादामि[11] सर्व नाम्नः सुडिति कौमुदी प्रतीकमुपादाय न चैवमत्वाबंतत्वाभाव इति शेखरे शंकितं तत्राबंतत्त्वस्यानुपादानात् चिंत्यमित्याहु[12]: कैय्यटानुयायिनस्तदेव[13]चिन्त्यं ग्रन्थाशयानवबोधात्। तथाहि[14] न चैवमित्येवादि शब्दस्य पूर्वांतवद्भावेन सर्वनामत्वेपीत्यर्थः। आबंतत्वाभाव इत्यस्य सिंहावलोकन्यायेन सर्वनाम्न -

---

1. बाध्यम् प-1, अ-4.
2. समासंमाप्त प-1, प-2.
3. ग्रहणीत्वेति अ-4.
4. महायशस्वादाविव ज-2, अ-3.
5. स्वरविधावोचेति अ-3.
6. प्रत्युदाहरण इमाह प-1.
7. वहुब्रिहेरिति प-1.
8. विशिष्यतसूत्राणाम् प-2.
9. उपादानादनुमते इति अ-4.
10. एकोदेशस्य अ-3.
11. ग्रहणा ज-2
12. चिंतामित्याहु: ज-2.
13. तदेवचिन्त्याम् ज-2, प-1, अ-3; तदेवचिन्त्यम् अ-4.
14. न चेवमित्येवादि इत्यारभ्य विषये इत्यर्थः इत्यन्तं प-1 मातृकायां नाऽस्ति.

नद्यन्तानां यः समास इत्यर्थेन परिहृतम्। नद्यन्तप्रकृतिकसुबन्तोत्तर-पदकः समास इतीति चेत्? न। अनया परिभाषया स्त्रीप्रत्ययसमभिव्याहारे तद्रहिते दृष्टानां प्रातिपदिकत्वतद्व्याप्यधर्माणां विशिष्टेऽपि पर्याप्तत्व-मतिदिश्यत इत्याशयात्॥71॥

नन्वेवं यूनः पश्येत्यत्रेव युवतीः पश्येत्यत्रापि 'श्वयुव' (6.4. 133) इति सम्प्रसारणं स्यादत आह-

विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम्॥72॥

स्पष्टा चेयं 'युवोरनाकौ' (7.1.1) इत्यत्र भाष्ये। घटघटी ग्रहणेन लिङ्गविशिष्टपरिभाषाया अनित्यत्वात्तन्मूलैवेत्यन्ये॥72॥

ननु 'तस्यापत्यम्' (4.1.92) इत्येकवचननपुंसकाभ्यां निर्देशाद्-गार्ग्यो गार्ग्यावित्याद्ययुक्तमत आह-

सूत्रे लिङ्गवचनमतन्त्रम्॥73॥

इति स्याद्[1] विषये इत्यर्थः। न च तत्सूत्र[2]व्याख्यावसरे शंकोचितेति वाच्यम्। तत्रा[3]बांतत्त्वांशे समाधानेपि सर्वनामत्वांशेपि समाधानं कर्त्तव्यं स्यात्। मूलकृतैव एकांशे[4] समाधानस्य कृत्त[5]त्वादपरांशेस्वेन[6] समाधानकरणात्॥71॥

---

1. स्यादूविषये अ-3; स्याद्विषये ज-2.
2. सूत्रा अ-4.
3. तत्रावतत्वांश समाधाने अ-4; तत्रवांतत्वांशे ज-2; तत्रावंतत्वांशे प-1, प-2; तत्रावांतत्वां शेष अ-3.
4. एकाशे अ-4; एकांशे प-1.
5. समाधानस्य कृत्वा तत् अपरांशे प-1.
6. पाठोऽयं प-1, प-2; अपरांशेखेन समाधान अ-1, ज-2, अ-3 अपरांशे स्विन समाधान अ-4.

युवती: **पश्येत्यत्रापीति।** ननु[1] **श्वयुवेति** सूत्रे युवती: पश्येत्यत्र लिंगविशिष्ट[2]परिभाषयामघवतेत्यत्र च[3] सम्प्रसारणमाशंक्यश्वादीनां[4] सम्प्रसारणे नाकारांत ग्रहणं अनकारांत[5] प्रतिषेधार्थमिति समाधायो[6]क्तमेतत्। अर्वण[7]-स्तृमधोनश्च न शिष्य[8] छांदसं हि तत्[9] विभक्तौ लिंगविशिष्टाग्रहणेन चोभयत्र[10] समाधायोक्तम्। अथवोत्तर[11]सूत्रेऽल्लोपो[12]ऽन इत्यत्रान इति योग विभागं कृत्वोभयशेष विज्ञानेनादोषेश[13]चादीनामिति पूर्वोक्तं वार्तिकं न कर्त्तव्यम्[14]। एवं च[15] युवती: पश्येत्यत्र[16] अन्नंतत्वाभावेन प्राप्तिरेव[17] नेति चेन्न। एवमती[18]

---

1. न चनुश्च युवेति प-2; ननुश्चेति युवेति प-1.
2. परिभाषाया अ-3.
3. 'च' नाऽस्ति अ-4
4. समाशंक्यश्वादीना प-2; सम्प्रसाणमांशंक्यश्चादिना प-1.
5. अनकारात प-2; संप्रसारणेनाकारांतर प्रतिषेधार्थम् अ-4.
6. पाठोऽयं प-1, अ-3; समाधायोक्तमुक्तमेतत् अ-1, ज-2, प-2; समाधाक्तंमुक्तधर्मेतत् अ-4.
7. अवर्णस्तु ज-2.
8. शेव्यंछादा सहितत् प-2; प-2; शिष्यां छांदसं अ-4.
9. हित्तत् ज-2, अ-3; हितम् अ-4.
10. चाभयेत्र अ-4.
11. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; अथावोत्तर अ-1, ज-2, अ-3.
12. सं. पाठ: अल्लोपोऽन: 6/4/137.
13. दोषश्चा प-2:, दीघेश्वादीनामिति अ-3, अ-4.
14. लकर्त्तव्यम् अ-3; न कर्त्तव्ये ज-2.
15. पाठोऽयं प-1, अ-4; ए च युवती: अ-1 एवं च युवतो ज-2.
16. पश्योतयत्र ज-2, अ-3.
17. प्राप्तिरेवेनेति अ-4.
18. युवमता गोमती अ-4; एवमतिगोमति प-1.

गोमती पथीत्यादौ[1] लिंगविशिष्ट परिभाषा प्राप्तोगि[2]दचामितिनुम्[3]। पथीत्यात्वादीनां[4] वारणायावश्य कर्त्तव्या परिभाषयैव[5] गतार्थत्वादित्याशयात्। मघवदादीनां छांदसत्वेन तत्र सर्व विधीनां[6] व्यवस्थिततत्वात्। सिद्धिः[7] नकारांतग्रहणं कर्त्तव्यमिति भाष्यं योगविभागपरं च पूर्वोक्तसूत्रस्थं भाष्यमेकदेश्युक्तम्। एकमेकदेशविकृतमनन्य[8]वदितिन्यायमुपन्यस्य[9] ऋत्लृक् सूत्रे राज्ञः कचेति का[10]देशे राजकीय[11]मित्यत्राल्लोपो न इति लोपं पूर्वोक्तन्यायेनाशंक्य[12] पूर्वसूत्रोपसंख्यात नकारांतग्रहणानुवृत्या न दोष इति दोषोद्धारपरं भाष्य[13]मप्येकदेश्युक्तमेव। विकृता[14]वयवनिबंधनकार्याभावस्यान्यत्र स्पष्टत्वेनादोषाच्च। यत्तु[15]श्च युवेत्यत्र शेखरे उत्तर[16]सूत्रादनइत्यपकृष्यते[17]

---

1. यथोत्यादौ ज-2, अ-3.
2. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; प्रार्प्तेगिदचामिति अ-1, ज-2, अ-3.
3. नुत् अ-4.
4. पयि इत्यावादीनां अ-4.
5. पारिभाषयैव प-2.
6. विधीनो अ-3.
7. सिद्धः अ-3.
8. विकृतमृनन्यतयानकासंवग्रहणानुवृत्यात्रदोष इति प-1 पुस्तके पाठोपलभ्यते.
9. उनन्यस्य हैऋ लृक् अ-4.
10. कादेशो अ-3.
11. राजकीयत्यत्राल्लोपेश्च न इति लोपं अ-4.
12. पाठोऽयं प-2; न्यायेना शंवचपूर्व अ-1, ज-2, अ-3; न्यायेनाशंवचपूर्व अ-4.
13. परभाष्यमप्यके अ-3; परभाष्यप्रत्यके ज-2; परभाष्येक अ-4.
14. विकृतावयानिबंधन ज-2, विकृतास्यववंघ्न अ-4.
15. यतुश्च प्रत्वेत्यत्र प-2, अ-1; एतुश्वयुवेत्यत्र अ-3; यतुश्च श्वयुवेत्यत्र अ-4.
16. 'र' नाऽस्ति अ-4.
17. इत्ययकृश्यते ज-2; इयकृष्यते प-2.

तेन मघवतेत्यत्र न दोष इत्युक्तम्। तच्च प्राचामनु[1]रोधेन अत्रैव सूत्रे[2] मघवच्छब्दस्य[3] छांदसत्वं शब्दरत्नादौ[4]स्पष्टम्। युवती: पश्येत्यत्र[5] प्रकृत[6] परिभाषया[7] सम्प्रसारण[8]वारक युवोरनाकाविति सूत्रस्थ भाष्येणेदं सर्वं[9] सूचितम्। एतद्भाष्यप्रामाण्यादेव परम्परया विभक्तिनिमित्तकत्वेपि परिभाषा[10] प्रवृत्तिरिति। एवं शुनेत्यत्र[11] सावेका[12]चस्तृतीयादिर्विभक्तिरिति विभक्त्यु[13]दात्तत्वं यथा न गोश्चन्नि[14]त्यनेन प्रतिषिध्यते[15] तथाशुन्या[16] इत्यत्रोदात्त[17] यणो हल् पूर्वादिति विभक्ति स्वरस्यापि न गोश्वन्निति[18] निषेध: स्यादिति परिभाषाप्रयोजनावसरे[19] भाष्यकृदुदाहरणाद् विभक्तिस्थानिकेपि[20]

---

1. प्राचानुरोधेन प-1.
2. सूत्रे नाऽस्ति अ-4.
3. 'च' नाऽस्ति प-1.
4. रत्नादौ बोध्यं प-1.
5. पश्ये तत्र अ-4.
6. प्रवृत्त अ-3.
7. परिभाषायाम् अ-3.
8. 'प्र' नाऽस्ति प-2, सम्प्रसारणं इत्यारभ्य परमराया इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4.
9. सर्व अ-3; सर्व ज-2.
10. परिभाष्या प-2.
11. अनेत्यत्र ज-2 एवं शुन्ने त्यत्र प-1.
12. सावेकाचतृतीयादि प-1, सावेक्य चस्तृतीयादि अ-4 सावेकावस्तृतीयादि ज-2.
13. विभक्त्यु प-1.
14. यथाननोश्वत्नित्यनेन अ-4.
15. प्रतिषिध्य प-1.
16. तथाषुन्यादातयगो प-2; तथाषुन्या इत्यत्रोदतयणो प-1; तथाशुन्या इत्यत्रोदात् अ-3; उदात्तयणाहल् अ-4.
17. 6/1/174 अष्टा.
18. सं. पाठ: गोश्वन्सावर्ण 6/1/182 अष्टा.
19. प्रयोजनवासरे अ-3.
20. स्थानिकेपि प-2; स्थानिकत्वपि अ-4.; स्थानिकेषि ज-2.

कार्ये[1]परिभाषाप्रवृत्तिः सुवचा तत्रापि विभक्तेर्यत्र प्राधान्यं[2] तत्रैव कार्यप्रवृत्ति[3]रित्यप्यस्माद्भाष्यात्। एतेन पूर्वोक्तं भाष्य[4] विभक्तिस्थानि[5]ककार्ये परिभाषा प्रवर्त्तकमुपन्यस्यैतेनैक[6] शेषप्रकरणे प्रदीपे[7] स्त्रीगवीनामितिप्रयोगे हलंत्य[8] सूत्रे मनोरमायां चित्रगवीनामिति प्रयोगे च[9]व्रुःमति चेति णत्वाभावोव्याख्यातः कवर्गवदुत्तरपदसमासत्वस्य ङीबंते[10] लिंगविशिष्ट[11] परिभाषा[12]लभ्यस्य विभक्ते[13]र्णत्वे णत्वेकर्त्तव्येऽनया[14] निषेधान्तव्य[15]तराणां तत्र सणत्वं[16] पाठमंगीकृत्य[17] प्रकृतपरिभाषाया अप्रवृत्ति[18] कल्पनान–

---

1. कार्यो अ–4.
2. प्रधान्यम् प–2; प्राधान्यं इत्यारभ्य परिभाषा प्रवर्तकम् इत्यन्तं प–1 मातृकायां नाऽस्ति.
3. प्रकृति प–2; 'अपि' नाऽस्ति अ–4.
4. भाष्याम् अ–3.
5. विक्तिस्थानेक अ–3; स्थानिकेपि ज–2, अ–3, प–2.
6. कृशेषपकरणो अ–4.
7. 'प्रदीपे' नोपलभ्यते प–1; प्रदीप ज–2, अ–3, प–2.
8. इल्यंत्य अ–3.
9. पाठोऽयं अ–4; चकुमति अ–1, अ–3; चकुमुति ज–2; प्रयोगे चक्रमति नोपलभ्यते प–1, प–2.
10. ङीत्बंतो प–1; ङीवतो प–2.
11. वशिष्ट अ–3.
12. परिभाषाया ज–2.
13. परिभाषा अप्रवृत्ति कल्पनान चिक्रीयास सा लभ्यस इति पाठाधिक्यं ज–2 मातृकायाम्.
14. अनय प–2.
15. निषेधान्निव्यतराणाम् प–1; निषेधाश्चव्यतराणां अ–4.
16. सनत्वः प–1, प–2; सवर्ण अ–4.
17. अंगीकृत्यत परिभाषा अप्रवृत्तिः अ–4.
18. अप्रकृति प–1, प–2.

'अर्द्धं नपुंसकम्' (2.2.2) इति नपुंसकग्रहणमस्यां ज्ञापकम्। नित्यनपुंसकत्वार्थं तु न तदित्यन्यत्र निरूपितम्। धान्यपलालन्यायेन नान्तरीयकतया तयोरूपादानमिति 'तस्यापत्यम्' इत्यत्र भाष्ये स्पष्टम्। अत एव 'आकडार' सूत्रे एकेति चरितार्थमित्यन्यत्र विस्तरः॥73॥

चित्रीया[1]मुत्पादयितुमर्हतिकृतबुद्धिति[2] कैय्यटानुयायिनोक्तमपास्तमिति दिक्॥72॥

ननु **व्याघ्रीकच्छपीत्यादाविति।** ननु स्वाङ्[3]गाच्चेत इति सूत्रस्थ कुक्कुट[4]यादीनामण्डादिषु इति वार्त्तिकप्रत्याख्यानपरभाष्य[5]रीत्याव्या[6]घ्रीत्यादीनां सिद्धौ[7] नैतदुदाहरणमेतस्याः परिभाषायाः। तत्र हि जात्यंतर निवृत्ति परताया[8] स्त्रोत्व[9]मनुपकारित्वादविवक्षितमित्यर्थकनवाऽस्त्री[10]पूर्वपद विवक्षित्त्वादिति भाष्येण कुक्कु[11]टांडमृगक्षीरादीनां सिद्धिमभिधाय वार्त्तिकं प्रत्याख्यात[12]

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2, चिक्रीयामु सादयितुम् अ-1; चिक्रीयासु सादयितुम् ज-2; चित्रायामुत्पादायितुम् अ-4.
2. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; वुद्धिष्विति अ-1, ज-2; बुद्धिष्टिति अ-3.
3. स्वाङ्गाच्चेतः 6/3/40.
4. सं. पाठः अष्टा. 1206 (वा.) अष्टा. कुकुद्यादीनामंडादिष्वति अ-1, अ-3; ककुत्यादीनां ज-2; कुल्क्वुप्यादीनां मां डादिष्विति प-1; कुप्कुप्यादीनां प-2.
5. परिभाष्या ज-2.
6. रित्या प-1; रीत्यापीत्यादीनाम् अ-4.
7. सित्धी अ-3.
8. परितायां ज-2.
9. पाठोऽयं प-1, प-2; स्त्रीत्वाननुपकारित्वाद अ-1, ज-2, अ-3; स्त्रीत्वामनुप अ-4.
10. 'ऽ' नाऽस्ति अ-3.
11. कुकुटांड प-2.
12. प्रत्याख्यानम् प-1.

तद्रीत्या प्रकृतेपि[1] घः शब्दात्सुपि तदंते न समासे पश्चात्स्त्रीत्वविवक्षाया[2] ङीषसुलभः कुक्कुटादीनां[3] जाति व्यंजकत्वं केवलघ्न[4] इत्येतस्य न तद्व्यंजकत्वति[5]त्वन्यदेतत्। स्त्रीत्वविवक्षायाः[6] प्राक् सुपि समासस्तु उभयत्र समानः[7] पूर्वोक्तभाष्यानुवाद[8] शेखरेऽजाद्यतष्टाविति[9]। एवं च कौंभकारेयसां कुटीनादीनामसिद्धया परिभाषावतारणीयात्तत्रहि[10] पूर्वं ङीपि[11] ततः सुपि च कारिशब्देन[12] कुंभस्य समासे विशिष्टात् स्त्रीप्रत्ययानुत्पत्याऽवयावादेव[13] ठकि[14] उकारस्य वृध्यनापत्ते[15] न चानुपसर्जनस्त्रीप्रत्यये तदादि नियमा[16]भावेन विशिष्टादेव ठगु[17]त्पत्स्यते। समुदायठगंबाधित्वाव्ध[18] च इति परत्वादंतरंगत्वा-

---

1. प्रकृतेप ध्रशब्दासुपि प-2; प्रकृत्यातेपि प-1; प्रकृपि ध अ-4.
2. विवक्षायाङीष अ-4.
3. कुकुटादीनां ज-2, प-2.
4. केवल ध प-1.
5. व्यन्जकत्वविचित्वंन्यदेतत् प-2; व्यन्ज त्वचित्वन्यदेतत् प-1.
6. विवक्षाया ज-2.
7. सामान, अ-3, ज-2.
8. भाष्यानुनवाद अ-3.
9. अजाद्यतष्टाप् 4/1/4 अष्टा.
10. अवतारणीया तत्र ज-2, प-2, अ-2, अ-4.
11. ङीपो प-1; ङोषि प-2.
12. शब्द न प-2.
13. अवपवादेव प-2; स्त्रीप्रत्ययासंभुष्वात्याऽवयवादवटकिटकारस्य इति पाठः अ-4.
14. ढकि डाकगुरस्य अ-3.
15. वृद्ध्यनापत्तेः अ-4.
16. 'नि' नाऽस्ति अ-3; स्त्रीप्रतेतदादिनियमां अ-4.
17. ठगुत्पत्स्यते ज-2; ठगुत्यलयते प-2; ठागुरुपत्स्य ते अ-3; टगुत्प्रत्स्यते अ-4.
18. बाधित्वाव्यच प-2, अ-4; वाधित्वाब्दच ज-2.

द्राऽवयवात् ढक्[1] प्रस[2]ज्येत्। अत एव पुंयोदाख्यायामितिसूत्रे एतत्परिभाषाफल कथनावसरे[3] एतदभावे कौंभकारे[4] यो न सिद्धयेदित्युक्तम्। सांकुटीने[5] तु अभिविधौ[6] भाव इनुणितीनुण्[7] प्रत्ययः तत्र कुटिन्नित्ये तस्माच्छब्दात् समासार्थाद्[8]विभक्तिश्च प्राप्नोति[9] अणिनुण[10] इत्यण् प्रत्ययश्च। तत्र[11] स्वार्थिकत्वांतरंगत्वादण्[12] प्रत्यय स्यात्[13] ततः कुटिन्नित्येतस्यैवांगत्वादा[14]दिवृद्धिः स्यात्। प्राक् सुबुत्पत्तेः[15] समासेऽतरंगत्वात्पूर्वं समासः। अणप्रत्ययो हि प्रातिपदिकविशेषापेक्षत्वाद्वहिरंगः संकुटि[16]न्नित्यस्मात् समास[17] प्रातिपदिकादण सतीष्टं[18] सिध्यति। स्पष्टं चैतत्ङ्याप्प्रातिपदिकादितिसूत्रे शेखरे पीति चेन्न। अनयैव दिशा[19]साहितस्यधनक्रीतेत्यादावपि ङीषा[20]पत्यादोधात्। व्याघ्रीत्यादीनां

---

1. ठक् अ–3.
2. प्रसजेत् प–1 प्रसज्यते अ–4.
3. कथनावासरे अ–3; कथानावसरे अ–4.
4. कौंभकारियो प–1.
5. सांकुठोने ज–2, अ–3, साकुटोनेत प–2.
6. अलिविधौ प–1.
7. अभिविधौ भाव इनुण् 3.3.44 अष्टा; इनुणितीनुगा प्रत्ययः ज–2; इनुगितीनुप् प–2.
8. समासाद्विभक्तिश्च अ–4.
9. प्राप्नौति अ–3.
10. अग्नियुगः– 5.4.15 अष्टा; अग्निुगित्मणत्यप्रत्ययः अ–4.
11. तत प–1, प–2.
12. अन्तरंगात्वादण् प–1.
13. स्यतु ज–2.
14. 'ग' नाऽस्ति 'म' अस्ति, अ–3.
15. सुत्पतेः अ–3; सुपुत्पतेः ज–2.
16. संकटिटिन्नित्यस्मात् ज–2.
17. समासः प–1.
18. सतिष्टम् प–1.
19. साहिततस्य अ–3; सहितस्य अ–4.
20. ङीषायसादोषात् ज–2, प–2, अ–3; ङीषादोषात् अ–4.

ननु 'भृशादिभ्यो भुव्यच्वेः' (3.1.12) इति विधीयमानः क्यङ्, क्व दिवा भृशा भवन्तीत्यत्रापि स्यादत आह-

नञिवयुक्तमन्यसदृशाधिकरणे तथा ह्यर्थगतिः॥74॥

नञ्युक्तमिवयुक्तं वा यत्किन्चिद्दृश्यते तत्र तस्माद्भिन्ने तत्सदृशेऽधिकरणे द्रव्ये कार्यं विज्ञायते, हि यतस्तथार्थगतिरस्ति।

परिभाषोदाहरणवादि[1]मत इवाजादिगणे पाठे तु व्याध्म्रादीना[2]मेतत् परिभाषोदाहरणत्वमेकदेश्युक्त[3]मेवेति ध्येयम्। अत एव मूलकृतावतरणे[4] आदि पदं दत्तम्। न च पूर्वोक्तभाष्य प्रामाण्यात्पूर्वपदे विवक्षा[5]स्वीकारेपि[6] उत्तरपदेतत्स्वीकारेमानाभाव इति वाच्यम्। शूद्राचामह[7]त्पूर्वाजातिरित्यजादिगणसूत्रस्थ जातिग्रहण विरोधात्। तथाहि, तत्र जातिग्रहणस्य न तावत् महा[8]शूद्राशब्देटाप्[9] व्यावर्त्यः महती[10] शूद्रेतिसमासे तस्येष्टत्वात्। विशिष्ट महाशूद्रशब्दस्य जात्यंतरवाचक[11]त्वे तु अवयवार्थसमवेत[12]स्त्रीत्वा भावादेवावयवात् टाबप्राप्तौ

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; मतरवाजादिगण अ-1, ज-1, अ-3.
2. व्याघ्रादीनाम् अ-3; व्याघ्म्रादीनामेतत् इत्यारभ्य मूलकृतावतरणे इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4.
3. उदाहरणत्वमेदेश्यक्तमेवेति ज-2; एकदैश्युमेवेति अ-3.
4. पाठोऽयं प-1, प-2; कृतावतणी अ-1,ज-2, अ-3.
5. पाठोऽयं प-1, अ-4, प-2; अविवक्षा अ-1, ज-2, प-2, अ-3.
6. स्वीकारेपि उत्तर अ-4.
7. शूद्रा चामहत्पूर्वाजातिः 617 सि. कौ.; 'ह' नाऽस्ति प-1.
8. महशूद्रा ज-2, अ-3, अ-4.
9. ठाप् अ-3; ठाश् ज-2.
10. महति प-1; महतेष्टरद्रेति प-2; व्यावर्तः महती अ-4.
11. 'क' नाऽस्ति प-1; वाचकत्वे न अ-4.
12. सामवेत प-2.

न हि अब्राह्मणमानयेत्युक्ते लोष्ठमानीय कृती भवति। अतश्च्व्यन्त-सदृशेऽभूततद्भावविषये क्यङ्ङिति नोक्तदोषः। ओषधेश्च

तद्वारक तद्ग्रहणं - व्यर्थमेव[1] स्यात्। एवं च यदा शूद्रशब्दे जातिमात्र[2]विवक्षा न[3] स्त्रीत्वविवक्षात्तदातस्मात्सुपिमहच्छब्दे[4] न समासे पश्चात्स्त्रीत्वविवक्षायां महाशूद्रेति इष्यते तच्च तदग्रह[5] विना न सिध्यति[6] तत्सत्वे[7] तु अमहत्पूर्वे[8]त्यत्रापि तत्सम्बन्धे विशिष्टस्य जातिवाचकत्वाभावान्न[9] निषेधः। एतत्सर्वं भाष्यप्रदोपोद्योते च स्पष्टम्। अत्राविवक्षाया[10] च स्वाङ्गाच्चेत[11] इति सूत्रस्थं भाष्यमेवगमक[12]- त्वेनोपन्यस्तम्।

एवं चोत्तरपदेऽविवक्षां[13] विना जातिग्रहणसार्थक्य[14]स्योपपादयितुम-शक्यत्वेन त्वदुक्तकल्पनायाः कुकल्पनात्वमिति दिक्।

सुप्सुपेत्यस्य निवृत्येति। न च प्रथमांतसुब् ग्रहण[15] निवृत्तौ पूर्वपदेपदत्व

---

1. व्यथामव अ-4.
2. मात्र नाऽस्ति प-1.
3. 'न' नाऽस्ति 'त' अस्ति प-1.
4. सहच्छब्देन अ-4.
5. तद् गृहम् ज-2, प-2, अ-3.
6. सिध्येति अ-4.
7. तत्तत्सत्वे तु प-1.
8. 'त्' नाऽस्ति प-1; अमहुत्पूर्वेत्यत्रापि अ-3.
9. अभावात्प्रतिषेधः अ-3.
10. अत्रविवक्षाया प-1, प-2.
11. स्वाङ्गाच्चेत्, 6.3.40.
12. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; ममकत्वोपन्यस्तम् अ-1; गमकत्वोनोपन्यस्तम् ज-2, अ-3.
13. ऽविवक्षांविरांजम् प-1; ऽविवक्षाविरंगगतिग्रहण प-2; पदेर्भवदक्षयां विना ज-2.
14. सार्थक्य यस्यो ज-2.
15. ग्रहणस्य ज-2, अ-3.

प्रयुक्त न लोपादीनां राजयुध्वे[1]त्यादावसिद्धिप्रसंग इति वाच्यम्। उपपद-मित्यन्वर्थसंज्ञयैव तत्कार्यसिद्धरिति विवरणशेखरादा[2]वेवोक्तत्वात्। ननु कुंभकारे[3] उत्तरखंडे कृदुत्पत्यनं[4]तरमेव पूर्वखंडे षष्ठी प्रवर्त्तनीया। अपवाद[5] विषयत्वात् द्वितीयाया:[6] प्राप्तिरेव न[7]। एवं च पूर्वपद[8]स्योपपदत्वाभावाद् प्रसङ्ग:[9] कर्मण्यण: स्यात्। मन्मते तु प्रातिपदिकार्था: पंचेति[10] पक्षे प्रातिपदिक स्यैव कर्मबोधकत्वेनोपपदत्वात्तन्नि[11]बंधन[12] प्रत्यये कर्मषष्टयां कुंभ अस्[13] कार इति प्रक्रिया वाक्ये समास इति चेन्न। षष्टोसमासस्यावकाश: राज्ञ: पुरुष:[14] उपपद समासस्यावकाश:[15] स्तंबेरम:। इहोभयं प्राप्नोति कुम्भकारो नगरकार: उपपद समासो भवति विप्रतिषेधेनेति[16] भाष्यस्थं[17] कुम्भकारेति प्रतीक[18]मुपादाय कैय्यट आह। पंचकप्रातिपदि[19]कार्थे प्राति –

---

1. राजयुधेत्यादौ ज-2, अ-3; राज युद्धेत्यादौ अ-4.
2. शेखारादौ प-1, अ-4; शेखरादिदावेवोक्तस्यात् अ-3.
3. कुंभकारे प-1, अ-4.
4. कृत्यत्यनंतरं अ-3; कृदुत्पत्यन्नतंतरं अ-4.
5. आपवाद प-2.
6. द्वितीयाय: प-1.
7. न: अ-3.
8. पाठोऽयं प-1; पूर्वस्योप पदत्वा अ-1, ज-2, प-2, अ-3.
9. उपपदत्वाभावदप्रसंग अ-3; उपपदत्वादप्रसंग: अ-4.
10. पंचतिपक्षे अ-3.
11. 'तत्' नाऽस्ति प-1.
12. निंबधये प्रत्यये ज-2 निबंधन प्रत्यय प-1.
13. 'स्' नाऽस्ति प-1.
14. पुरुष इति अ-4.
15. उपपदत्यावकाश अ-4; समासस्याववश: स्तेवेरम: अ-3.
16. विप्रतिषेधोनेति ज-2, अ-3.
17. 'स्थ' नाऽस्ति अ-4.
18. 'प्रतीनाऽस्ति' प-1.
19. प्रतिपदिकार्थे प-1; प्रातिपदकार्थे अ-3.

विभक्तावप्रथमायाम् (6.31.32) इत्यादौ विभक्तिग्रहणं

पदिकेनैव कर्मणोक्तत्वात्[1] तत्रैवोपदेऽणाभाव्यं अपवाद विषयत्वाच्च-द्वितीयानुत्पादात् कृतेचाणि[2] कर्तृकर्मणोरिति[3] षष्ठीभवति सत्युभय[4]प्रसङ्ग इति इमं कैयटमनूद्य प्रातिपदिकस्य[5] पदत्वाभावेनोपपदत्वं कथमिति चिंत्यम्। सुवंत[6]मेवोपपदमिति तत्रोपपदमिति सूत्रे भगवान्व[7]क्ष्यति। स्वयं च किं च पंचक[8] पक्षेपि सकलकार[9]कशक्तिमानर्थः संमुग्धाकारेणैव[10] प्रातिपदिकेनोच्यते। न तु विशिष्येति[11] कर्मोपपदत्व[12] प्रयुक्ताणो प्राप्तिः। अन्यथाकरणाद्युपपदेपि कर्मोपपदप्रसंगः स्यात्। तस्माद्वस्तुतः प्रकृत्यर्थ-कर्मत्वसत्वो न कृदनुत्य[13]तावपि भाविततत्त्वं गृहीत्वाषष्टीप्रवृत्तिरित्येव भाष्याशय उचित इति विवरणकारैरेवाभिधानात्। न चानयोर्योगयोर्निवृत्तं सुप् सुपेतीति[14] भाष्यस्य[15] यथाश्रुतार्थकत्वे उत्तरसूत्रे प्रथमांत सुप ग्रहणस्य निवृत्तावन्वर्थ

1. कर्मणोक्तवा तत्रैवोपदेशे भाष्यम् अ-3.
2. कृतेचाणि नाऽस्ति अ-3.
3. कर्तृकर्मणोकृति 2.3.65 अष्टा.
4. पाठोऽयं प-1; षष्टी भवतीत्यस्सुभयप्रसंगः अ-1, ज-2, प-2; षष्टीवतात्यस्सुभटाप्रसंग अ-3; षष्ठीभवतीत्यास्ते उभयप्रसंगेग इति अ-4.
5. प्रातिपदिकात्कभावेनोप प-1.
6. सुबंतमिवोपपदमितत्रोपदमिति अ-4.
7. भवान्वक्ष्यति प-1; सूत्रं भगवान् अ-4.
8. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; स्वयं चा किं च शुंचकपक्षेपि अ-1; स्वपंचाकिंचर्थकक पक्ष्येपि ज-2, अ-3.
9. 'क' नाऽस्ति अ-4.
10. संमुग्धाकरणैव प-2.
11. विशिष्यति प-1; विशेष्येति अ-4.
12. 'द' नाऽस्ति प-2; 'त्व' नाऽस्ति अ-4.
13. कूदतुत्यंतावपि अ-3; सत्वाकृदनुत्यतावपि भावित्त्वं अ-4.
14. 'ति' नाऽस्ति अ-3, ज-2.
15. 'स्य' नाऽति अ-4.

संज्ञया[1] राजयुध्वादौ न लोप सिद्धावपि पूर्व[2] सूत्रेपि तन्निवृत्तौ निर्गत[3] इत्यादौ नित्योरुत्वं न स्यादिति वाच्यम्। निर्गत इत्यादौ शब्दांतर[4] संबंधात्प्राक् सुबुत्पत्तौ लुकि च पदत्वोत्तरं पदांतर संबंधेन[5] समासे न क्षतिरिति शब्दरत्नेनैव समाधानात्। एतेन यत्तूपपदमिति महासंज्ञाबलात्सुबंतस्यैवोपपद[6] संज्ञा विज्ञाना[7]न्नराजयुध्वेत्यादौ दोष[8] इति नव्यतरास्तन्न। कुंभकार इत्यादौ कृत्प्रत्ययोत्पत्ते:[9] प्राक् कर्मषष्ठ्या: कर्तुमशक्यत्वात्[10]। द्वितीयायाश्च[11] अपवाद[12] विषयत्वादप्रवृत्ते:। कुंभेत्यस्योपपदत्वाभावात्– कर्मण्यणोऽप्रसंगात्[13]। अस्मन्मते तु प्राति[14]पदिकार्थ पक्षे प्रातिपदिकस्यैव कर्मबोधकत्वादुपपदत्वे तन्निवंधने प्रत्यये कर्मषष्ट्यां कुंभ अस् कार इति प्रक्रियावाक्ये[15] समास:[16]। किं चानयोर्योगयो: प्रथमांत सुब्[17] ग्रहणस्यापि निवृत्तौ पूर्वसूत्रविषये तिरोभूयेत्यत्र

---

1. संज्ञाया प–1.
2. पूर्व नाऽस्ति अ–4.
3. निर्गत इत्यादौ शब्दातर संबंधात्प्राक् इति अ–4; निर्गत इत्यादीत्यिोरूत्वं प–1.
4. शब्दंतरं ज–2, अ–3, अ–4.
5. 'न' नाऽस्ति अ–3.
6. उपपदे अ–4.
7. विज्ञानाभराज प–1; विज्ञानात् तु राज ज–2.
8. 'दो' नाऽस्ति अ–3.
9. कृत्प्रत्यये सत्ते: प–1; कुर्तुमशक्यत्वात् प–2.
10. द्वितयायश्च प–2, अ–3.
11. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4, अर्थवाद अ–1, अ–3, अ–2.
12. 'ऽ' नाऽस्ति अ–3.
13. पाठोऽयं अ–4; प्रतिकार्थपक्षे अ–1, ज–2, पंचवप्रतिकार्थ अ–3; प्रऽतिकार्थ प–1; प्रातिकार्थ प–2.
14. 'प्र' नाऽस्ति अ–4.
15. 'स' नाऽस्ति प–2.
16. यागयो: प–1.
17. 'व' नाऽस्ति अ–3.

ह्येतन्न्यायसिद्धार्थानुवाद एव। एतेन विभक्तावित्याद्यस्यानित्यत्वे ज्ञापकमिति वदन्तः परास्ताः, अनित्यत्वे भाष्य सम्मतफलाभावात्।

रूत्वम् न स्यादिति कैय्यटानुयायिनोक्तं विवरणशेखर[1] शब्दरत्नादि[2] भट्टग्रन्थापर्यालोचनमूलकं दत्तजलांजलित्वमापादितमिति दिक्।

तैनाश्वक्रीतीति सिद्धेति[3]। एतत्सिद्धिस्तु पूर्वरीत्यै[4]वेति कारकांशे उदाहरणांतरमूहनीयम्[5]॥75॥

नामीतिसूत्रे इति। तत्रहि नुट्ग्रहणा[6]भावेनामिदीर्घ आमि[7]चैत्स्यादिति प्रकम्य परत्वान्नित्यत्वाच्च दीर्घह्रस्वाश्रयो[8] नुट् न स्यात्। प्रकृत परिभाषया[9] तु नुट् भवति। नृ[10] शब्दे तु न चारितार्थ्य[11] तथा हि सति नृ नद्याप[12] इत्येव ब्रूयात्[13]। नह्येकमिति न्यायात्[14] षट्[15] चतुर्भ्यश्चेत्यत्र त्रेरि[16]त्यनुवृत्या न तत्रापि चरितार्थ्यमित्युक्तम्॥76॥

---

1. विवरणदास्वर प-1; विवरणे अ-3.
2. शब्दरलारलादिभट्टग्रंथां प-2; शब्दरत्नारलादिभट्ट प-1.
3. सं. पाठः.
4. पूर्वरीत्येयेति प-2; पूर्वरीचेतिकारकांशे प-1.
5. उदाहरणांतरमृह्यम् अ-4.
6. ग्रहणाभापनामि अ-3.
7. आभित्वेत् स्यादिति अ-4.
8. ह्रस्वाश्च यो प-1, प-2.
9. परिभाषये तु अ-4.
10. 'वृ' शब्दे प-1, प-2, न शब्दे अ-3.
11. चारितार्थ्ये अ-3.
12. पाठोऽयं प-2, अ-4; सति नृद्याप अ-1, ज-2, अ-3 सति नृ नद्योप इत्येव प-1.
13. द्रूयान्नत्वेकमिति इति पाठः अ-4; ब्रूयात् त नह्येकम् प-2.
14. नह्येकमिति न्यायात् 'नोपलभ्यते प-1; नेत्द्येकमिति अ-3.
15. षट् चतुर्भ्यश्च 7.1.55; षट् चतुभ्यश्चे ज-2, अ-3.
16. भुवृत्या प-2; अनुभवृत्या प-1.

अत एव 'अकर्त्तरि च' (3.3.19) इति सूत्रे कारकग्रहणं भाष्ये

भाष्येप्रत्याख्यातमिति। ननु इको गुण[1] वृद्धीति सूत्रे भाष्ये इक् परिभाषाया: दिव औदित्यादावपि प्रवृत्तौ द्योरित्यादाविको विधेय[2]मौत्वादिकं प्रवर्ततेत्या[3]शंक्य संज्ञया[4] विधाने नियम इति समाधानमुक्तम्। तत्र च गुण वृद्धिग्रहण[5] पूर्वसूत्रादनुवर्तते[6] यदि तदनु[7]वर्तते अदेङ्[8] गुणे वृद्धिश्चेत्य देङा वृद्धिसंज्ञापि प्राप्नोतीति वृद्धिसंज्ञां प्राप्य संबंधमनुवर्तते अथवा[9]मंडूकगति राश्रीयते इत्यादि समाधा[10]नान्युक्तानि तत्र समाधानमध्ये अथवाऽन्य संज्ञा वचनादनुकर्षण फलक चकारा करणान्ना[11]देङा संज्ञेति वदता अनुकर्ष[12]णार्थक चानामावश्यकता[13] सूचितेति तद्विरोध इति चेन्न। लुटि च क्लृप:[14] किमर्थश्चकार: स्यसनोरित्येतदनु[15]कृष्यते। यदि[16] तर्हि नांतरेण चकार

---

1. इको गुणवृद्धी 1.1.3.
2. दिव औत् 7.1.84.
3. विधेययोत्त्वदिभृ ज-2; विधेयमात्वादिकम् प-1; विधेये अ-3.
4. संज्ञाया विधानमुक्तं तत्र इति पाठ: अ-4; विधाने निमिति समाधान प-1.
5. वृद्धियग्रहणम् अ-3.
6. अनुवर्तते अ-4.
7. यदितदनुवर्तते नाऽस्ति प-1; अनुप्रवत्तेते यदि अ-3.
8. 1.1.2 अष्टा. अदेङ् गोवृद्धि: इति पाठ: प-1; अदेगुणो अ-4.
9. अथावा प-1.
10. 'स' नाऽस्ति; 'प्र' अस्ति अ-4.
11. करणान्नदेजा संज्ञेति प-2; करणान्नोदेङा संज्ञेति अ-4; फलवच्छा एकरणान्नदेङा संज्ञेति अ-3; कुरणानादेङां संज्ञेति ज-2.
12. अनुकर्थनार्थक प-1; अनुकर्षाणार्थक प-2.
13. चान्नमावश्याकता अ-3.
14. 1.3.93 अष्टा; पाठोऽयं अ-3, अ-4.
15. अनुवृमेतो यदितर्हि अ-4.
16. यदित्तरेणं चकारम् इति पाठ: प-1.

प्रत्याख्यातमितिबोध्यम्। स्पष्टा चेयं भृशादिभ्यः (3.1.12) इति सूत्रे भाष्ये। अत्र अन्यसदृशेत्युक्त्या सादृश्यं भेदाघटितमिति सूचयति। निरूपितं चैतन्मञ्जूषायाम्॥74॥

ननु व्याघ्री कच्छपीत्यादौ सुबन्तेन समासात्ततोऽप्यन्तरङ्गत्वाट्टाप्यदन्तत्वाभावाज्जातिलक्षणो ङीष् न स्यादत आह-

गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः॥75॥

'उपपदम्' (2.2.19) इति सूत्रेऽतिङ्ग्रहणेन 'कुगति' (2.2.18) इत्यत्र तदपकर्षणेनातिङन्तश्च समास इत्यर्थात्तयोः सूत्रयोः 'सुप् सुपा' इत्यस्य निवृत्त्यैकदेशानुमत्या कारकांशे च सिद्धेयम्। तेनाश्वक्रीतीति सिद्धा। अन्यथा पूर्वं टाप्यदन्तत्वाभावात् 'क्रीतात् करणपूर्वात्' (4.1.50) इति ङीष् न स्यात्। अस्या अनित्यत्वात् क्वचित् सुबुत्पत्त्यनन्तरमपि समासो, यथा सा हि तस्यधन क्रीतेति।

अन्ये तु अनित्यत्वे न मानम्, तत्र अजादित्त्वाट्टाबित्याहः। अत एव कुम्भकार इत्यादौ षष्ठीसमासोऽपि सुबुत्पत्तेः पूर्वमेव। षष्ठीसमासाभावे च उपपद समासकृतैकार्थीभाव इति न तत्र वाक्यमिति 'उपपदम्' (2.2.19) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। तत्र हि- षष्ठीसमासादुपपदसमासो विप्रतिषेधेन इति वार्तिकम्। अथवा विभाषा षष्ठीसमासो यदा न षष्ठीसमासस्तदोपपदसमास इति तत् प्रत्याख्यानं च। यद्यपि उपपदसमासस्यान्तरङ्गत्वाभिप्रायकं न वा षष्ठीसमासाभावादुपपद समास इति वार्त्तिककृतोक्तं तथापि तदुभयप्रत्याख्यानपरमथवेत्यादि भाष्यम्।

परिभाषायां सामान्यतः कारकोपादानेन कारकविभक्त्यन्तेन कृद्भिः समासमात्रस्य सुबुत्पत्तेः पूर्वमेव लाभात्। एतेनैषां कारकतद्विशेषयोरूपादान एवेति परास्तम्। अस्या विध्येकवाक्यत्वाभावेन विप्रतिषेधादिशास्त्रवत्कार्यव्यवस्थापकमात्रत्वेनोपादान एवेत्यर्थालाभाच्च॥75॥

ननु 'उगिदचाम्' (7.1.77) इत्यत्र धातोश्चुदुगित्कार्यं तर्ह्यञ्चतेरेवेति नियमेनाधातोरेव नुमि सिद्धेऽधातुग्रहणं व्यर्थमत आह-

साम्प्रतिकाभावे भूतपूर्वगतिः॥76॥

तत्तद्वचनसामर्थ्यन्यायसिद्धेयम्। तत्सामर्थ्यादधातुभूतपूर्वस्यापीत्यर्थेन गोमत्यतेः क्विपि गोमानित्यादौ नुम्सिद्धिः। 'नामि' (6.4.3) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये षष्टा॥77॥

बहुव्रीहौ तद्गुणसंविज्ञानमपि॥77॥

अपिनाऽतद्गुणसंविज्ञानम्। तेषां गुणानामवयवपदार्थानां सविज्ञानं विशेष्यान्वयित्वमिति तदर्थः। यत्र समवायसम्बन्धेन सन्बन्ध्यन्यपदार्थस्तत्र प्रायस्तद्गुणसंविज्ञानम्। अन्यत्र प्रायोऽन्यत्। लम्बकर्णचित्रगू उदाहरणे। 'सर्वादीनि' (1.1.27) 'जक्षित्यादयः' (6.1.6) इति चोदाहरणे। सर्वनामसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टा॥77॥

ननु 'वदः सुपि क्यप् च' (3.1.106) इति चेनानुकृष्टस्य

मनुवृत्तिर्भवति द्युदभ्या[1] लुङीत्यत्रापि चकारः कर्तव्यः विभाषेत्यनुकर्षणार्थः[2] अथेदानीमंतरेणापि चकारमनुवृत्तिर्भवति। इहापि[3] नार्थश्चकारेण एवं च सर्वे चकाराः प्रत्याख्यायंते[4] इत्यादि प्रत्याख्या[5]पकप्रत्यक्षभाष्यैर्विरोधेनास्यै[6]क-देश्युक्तत्वादिति दिक्[7] ॥78॥

---

1. पाठोऽयं अ-4; द्युद्भयो लुङोत्यत्रापि प-1, प-2, अ-3.
2. द्युद्यालुङोतत्रापि ज-2; विभायित्यनु प-1, प-2; विभातयनु अ-4; विभाष्येत्यनु ज-2.
3. अपि नाऽस्ति प-1.
4. प्रत्याख्यायते अ-4.
5. प्रत्याख्यायम् प-1.
6. विरोधानास्येक अ-4.
7. 'द'

यतो 'भूवो भावे' (3.1.107) इत्यत्राप्यनुवृत्तिः स्यादत आह-

चानुकृष्टं नोत्तरत्र॥78॥

णमुल्यनुवर्त्तमाने 'अव्ययेऽयथाभिप्रेत' (3.4.9) इति सूत्रे पुनर्णमुल् ग्रहणमस्या ज्ञापकम्। अन्यथा क्त्वा चेति वदेत्। तद्धि उत्तरत्रोभयोः सम्बन्धार्थम्। उदाहरणानि स्फुटानि। इदमनित्यम्। अत एव 'तृतीया च होः' (2.3.3) इत्यत्र चानुकृष्टाया अपि द्वितीयाया 'अन्तरान्तरेण' (2.3.4) इत्यत्रसम्बन्धः। 'लुटि च क्लृपः' (1.3. 93) इतिसूत्रस्थेनानुवृत्त्यर्थकसकलचकारप्रत्याख्यायेन विरुद्धेयम्। व्याख्यानादेवानुवृत्तिनिवृत्त्वोर्निर्वाह इति तदाशयः। 'कुलिजाललुकखौ च' (5.1.55) इति सूत्रस्थ भाष्यविरुद्धा च। तत्र हि- 'द्विगोः ष्ठश्च' (5.1.54) इति सूत्रात् ष्ठनस्तत्र चेनाप्यनुकृष्टस्य 'खोऽन्यतर-स्याम्' इत्यस्य चानुवृत्तिं स्वीकृत्य 'लुक्खौ च' इति भाष्ये प्रत्याख्यातम्॥78॥

ननु अनुदात्तादेरन्तोदात्ताच्च यदुच्यते तद्वयञ्जनादेर्व्यञ्ज-नान्ताच्च न प्राप्नोतीत्यत आह-

---

अन्तोऽवत्याः[1] इति स्वरोनेति[2]। अवती[3]शब्दस्यांत उदात्त इति तदंशंऽर्थः[4] वैत्रवतीत्युदाहरणम्[5]॥79॥

---

1. सं. पाठः, अन्तोऽवत्या 6.1.220; अंतोवत्या अ-1, अ-3 अंतोवंत्या ज-2; अतोवत्या प-1, प-2, अ-4.
2. नैति 'नोपलभ्यते' अ-3.
3. अवाती अ-4.
4. तदर्थः ज-2, प-1; उदाततर्थः प-2; उद्दात् इति तदर्शथः अ-3.
5. चेत्रवतीत्युदाहरणम् अ-3; वित्रवतीत्युदाहरणम् अ-4.

स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्॥79॥

स्वराद्देश्यके विधावित्यर्थः। 'नोत्तरपदेऽनुदात्तादावपृथिवी-रुद्रपूषमन्थिषु' (6.2.142) इति सूत्रे पृथिव्यादिपर्युदासोऽस्या ज्ञापकः। अन्यथा पृथिव्यादीनामनुदात्तादित्वाभावादप्राप्तौ तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। धर्मिग्राहकमानादेव च स्वराद्देश्यकविधिविषयमिदम्। अत एव 'शतुरनमो नद्यजादी' (6.1.173) 'अचः कर्तृयकि' (6.1.195) इत्यादावजादी अच इत्यादेश्चारितार्थ्यम्। अत एव राजवतीत्यादौ नलोप स्यासिद्धत्वादन्वतीशब्दत्वात् अन्तोऽवत्याः (6.1.220) इति स्वरो नोदश्वित्वानित्यत्र 'ह्रस्वनुडभ्याम्' (6.1.176) इति मतुबुदात्त-त्वन्नेत्याकरः। स्पष्टं चेदं 'समासस्य' (6.1.223) इति सूत्रे भाष्ये। 'उच्चैरुदात्तः' (1.2.29) इति सूत्रे कैयटस्तु इयमनावश्यकी, समभि-व्याहृताजुपरागेण हलोऽप्युदात्तादिवदवभासात्तदुपपत्तेरित्याह। तत्र भाष्येऽपि ध्वनितमेतत्॥79॥

नन्वेवमपि राजदृषदित्यादौ समासस्य (6.1.223) इत्यन्तोदात्तत्वं षकाराकारस्य न स्यादत आह-

हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवत्॥80॥

अस्याश्च 'यतोऽनावः' (6.1.213) इति सूत्रे नौप्रतिषेधो ज्ञापकः। नाव्यमित्यत्रादिर्नकारो न स्वरयोग्यो यश्चाकारस्तद्योग्यो नासावादिरिति स प्रतिषेधोऽनर्थकः। न चादिरेव नकार उदात्तगुण-विशिष्टान्तरतमात्रूपोऽस्त्विति वाच्यम्। तथा सति निमित्तभूत-द्व्यचकत्वस्य विनाशादुपजीव्यविरोधेनाद्युदात्तत्वाप्राप्तेरित्यत्र विस्तरः। स्पष्टा चेयं 'समासस्य' (6.1.223) इति सूत्रे भाष्ये॥80॥

ननु 'पूरणगुण' (2.2.11) इति निषेधस्तव्यति स्यात्। 'दिव औत्' (7.1.84) इत्त्यौत्त्वं दिवेः क्विप्यति स्यात्। तथा 'यतोऽनावः' (6.1.213) इति स्वरो ण्यत्यपि स्यात्। 'ऋदृशोऽङि गुणः' (7.4.

16) इति चङ्यपि स्यात् अतः आह-

निरनुबन्धकग्रहणे न सानुबन्धकस्य॥81॥

तदनुबन्धकग्रहणे नातदनुबन्धकस्य॥82॥

चङ्यपिस्यादिति। ननु दशे[1]ख्यवहित चङ् परत्वस्यैवासंभवा[2]त्कथं दोषोपन्यासः। न च प्रकृति[3]ग्रहणेण्यधिकस्यापि ग्रहणात्तत्वम्[4]। तस्याः[5] कुत्व[6] मात्रविषयकत्वस्याकरारुढत्वात्[7] इति चेन्न[8]। **ऋदृशोऽङि** गुणः[9] इत्यत्रतोऽङित्यनु[10]वर्तमाने इकारस्याकार विधायकश्चापत्तेरित्यनेनाश्च-दित्यत्राकार प्रवृत्तिवद् विभाषा[11]धेट्श्चोरिति विहित चङ्यपि स्यादित्याशयात्। अङ्[12]तुज्दस्तंभ्वित्यनेन बोध्यः। अयमाश[13]यस्तु ऋदृशोऽङिः[14] इति गुणश्चङ्[15]यपि स्यादित्यनुक्त्वा[16] ऋदृशोऽङिगुणः इति चङ्यपि स्यादिति वदता मूल[17]कृतैवबोधित इति बोध्यम्॥81-82॥

---

1. पाठोऽयं प-2, अ-4; ननुदन्नोख्यवहित अ-1, अ-3, ज-2.
2. असंभावात् अ73.
3. प्रकृतिस्वैग्रहणेण्याध्यि अ-3.
4. ग्रहणत्वम् प-2, अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-3, अ-4;
6. कुत्रमात्र अ-4; कुत्वमात्रा ज-2.
7. करारूठत्वात् प-1, प-2, अ-3.
8. चेन्नः प-2.
9. सं. पाठः 7.4.17 अष्टा.
10. इत्यतोऽङित्यनुवर्त्यमाने प-1; इत्यतोत्रङित्य अ-4.
11. विभाषायेटश्चोरिति ज-2; प-2, अ-4.
12. आङ्तुजदस्तं प-1; अङ् तुन्दस्तं ज-2; अङ्तुज्हस्तं अ-4, प-2.
13. अयमाशयास्तु अ-4.
14. 7.4.16 अष्टा.
16. 'ण' नाऽस्ति अ-4, अनुक्त्या प-1.
17. मूलकृतीवबोधिधित इति प-2.

'वामदेवाड्ड्यड्डयौ' (4.2.9) इति सूत्रे डयडयतोडित्वमनयोर्ज्ञापकम्। तद्धि- ययतोश्चातदर्थे (6.2.156) इत्यत्र तयोरग्रहणार्थम्। न ञः परस्य ययदन्तस्योत्तरपदस्यान्त उदात्त इति तदर्थः। एवं च अवामदेव्येऽव्ययपूर्वपदप्रकृतिस्वर एव भवति। तन्मात्रानुबन्धकग्रहणे स चान्यश्चानुबन्धो यस्य तद्ग्रहणं नेत्यन्त्यार्थः। एते च प्रत्ययाप्रत्ययसाधारणे, 'दिव औत्' (7.1.84) इत्यादौ

अनाश्रयणस्योक्तत्वादिति। अन्यैरिति शेषः। अत एवा[1]रुचेराह। किञ्च **षत्वतुकोरिति। साकल्येन परिगणिता[2] इतीति।** ननु अवङ्स्फोटाय[3]नस्येति सूत्रे गवाग्रमिति प्रतीक[4]मादायसन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वा द्दीर्घेति[5] बोध्यमिति शेखरस्थ[6] समाधिरंज तस्त्रीलिङ्गेमत्यामिति प्रतीकमुपादाय सन्निपातपरिभाषाया अनित्यत्वाद्यणिति[7] तत्रत्य समाधिश्य भाष्यविरुद्ध[8] इति चेन्न। शाच्छोरिति[9] सूत्रस्थ गवाक्षः[10] संशितव्रत[11] इति भाष्यप्रयोगान्नद्-यांमतुविति[12] सूत्रनिर्देशाच्च नित्यत्वेन तदप्रवृत्तिरित्या[13]शयात्॥85॥

---

1. एवारुचोराह अ-4; एवबारुचेकिं च अ-3.
2. परिगाणिता अ-4.
3. सं. पाठः- 3.1.123 अष्टा.
4. प्रतिकम् प-2.
5. दोर्घेति प-1, अ-4.
6. समाधिरंजतस्त्रील्लिंगे अ-3; समाधिरजंते अ-4.
7. अनित्यत्वाद्याणिति तत्र समाधिश्च अ-4.
8. भाष्यवित्ध अ-3.
9. शाच्छोरन्यतरस्याम् 7.4.41; पाठोऽयं अ-4; शाछोरिति अ-1, ज-2, प-1; शोछोरिति प-2; शछो अ-3.
10. गवाक्षाः प-1; गवाक्ष्यः ज-2.
11. वृत प-1.
12. अनुविति प-1.
13. 'प्र' नाऽस्ति प-1.

सञ्चारितत्वात्। वर्णग्रहणे चानयोरप्रवृत्तिरिति स्पष्टम् 'औङ आपः' (7.1.18) इत्यत्र भाष्ये। येनानुबन्धेन सानुबन्धकत्वं द्व्यनुबन्धकत्वादि वा तदनुच्चारण एवैषा धर्मिग्राहकमानात्। तेन 'जश्शसोः' (7.1.20) इत्यत्र नैषेति निरनुबन्धकतवात् तद्धितशंस एवात्र ग्रहणं स्यादिति न शङ्क्यम्। एवमन्त्यान्यतरानुबन्धाच्चारण एव। तेन 'बनोर च' (7.1.7) इत्यादौ ङ्वनिप्क्वनिपोर्ग्रहणसिद्धिः। एकानुबन्धग्रहणे सम्भवतीति त्वर्थो न भाष्यादिसम्मत इत्यन्यत्र विस्तरः॥81-82॥

ननु कुटीर इत्यादौ स्वार्थिकत्वात् स्वार्थिकानां प्रकृतियो लिङ्गवचनानुवृत्तेर्न्यायप्राप्तत्वात् पुंस्वानुपपत्तिरप्कल्पमित्यत्र नपुंसकत्वैकवचनयोरनुपपत्तिश्चेत्यत आह-

क्वचित् स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गिवचनान्यतिवर्त्तन्ते॥83॥

'णचः स्त्रियाम्' (5.4.14) इति सूत्रे स्त्रियामित्युक्तिरस्या ज्ञापिका। अन्यथा कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् (3.3.43) इति स्त्रियामेव विधानात् किं तेन? स्पष्टा चेयं बहुज् विधायके भाष्ये॥83॥

ननु सुपथी नगरीति 'युवोरनाकौ' (7.1.1) इति सूत्रभाष्योदाहृत 'इनः स्त्रियाम्'। (5.4.152) इति कप् स्यादत आह-

समासान्तविधिरनित्यः॥84॥

'प्रतेरंश्वादयस्तत्पुरुषे' (6.2.193) इत्यन्तोदात्तत्वायांश्वादिषु राजन् शब्दपाठोऽस्या ज्ञापकः। अन्यथा टचैवान्तोदात्तत्वे सिद्धे किं तेन? 'द्वित्रिभ्यां पाद्दन्मूर्द्धसु' (6.2.196) इति स्वरविधायके भाष्ये स्पष्टेयम्॥84॥

ननु शतानीत्यादौ नुमि कृते षट्संज्ञा प्राप्नोति, ततश्च लुक् स्यात्तथोपादास्तेत्यत्रात्त्वे कृते 'स्थाध्वोरिच्च' (1.2.17) इतीत्त्वं प्राप्नोत्यत आह-

सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य॥85॥

सन्निपातो द्वयोः सम्बन्धस्तन्निमित्तो विधिस्तं सन्निपातं यो विहन्ति तस्याऽनिमित्तम्। उपजीव्यतिरोधस्यायुक्तत्वमिति न्यायमूलैषा। अत एवात्र सन्निपातशब्देन न पूर्वपरयोः सम्बन्ध एव, किन्तु विशेष्यविशेषण सन्निपातोऽपि गृह्यते। अत एव ग्रामणि कुलमित्यादौ नपुंसकह्रस्वत्वेऽपि 'ह्रस्वस्य पिति कृति' (6.1.71) इति तुग्न। प्रातिपदिकाजन्तत्व-सन्निपातेन जातस्य ह्रस्वस्य तद्विधातकत्वात्। तुक्यजन्तत्वविधातः स्पष्ट एव। न चार्थाश्रयत्वेन ह्रस्वस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वम्। अर्थकृतबहिरङ्गत्वानाश्रयणस्योक्तत्वात्। किञ्च षत्वतुकोरसिद्धः (6. 1.86) इत्वेतद्बलाकृतितुग्ग्रहणाच्च तुग्विधौ बहिरङ्ग परिभाषाया

पञ्चेन्द्राण्य इति। ननु किं नाम सन्नियोगशिष्टत्वम्। न[1] तावदनेक-स्यैकविधिविधेयत्वम्। पुंयोगा[2]दाख्यायामित्यनेन ङीषि[3] सिद्धे आनुक्[4] मात्रस्य इंद्रादिभ्यः[5] षट्भ्यो विधानेनातत्वाभावात् प्रकृतोदाहरणेऽव्याप्तेः। इंद्राणीशब्दघटके कारा[6]दिष्वतिव्याप्तेर्नस्वबाधकवर्णसमुदायघटकत्वं[7] संबंधेन पुंयोगाद्यर्थ बोधकत्वं[8] तत्। न च पुयांगाद्यर्थे शास्त्र[9]तात्पर्य विषयी[10]भूतसाधुत्व-

---

1. नत्त्वाव देनेकस्यैक अ-4.
2. 4.1.48 अष्टा.
3. ङीप सिद्धि अ-4.
4. अनुक् प-2.
5. इद्राभ्यः अ-3.
6. घटकेकारादिष्यते प-1.
7. घटकत्वे संबंधे प्रयोगाद्य प-2; 'न' नाऽस्ति प-1; समवायघटकत्वसंबंधेन 'इति पाठः' अ-4.
8. 'क' नाऽस्ति प-1; बाधकत्वं तत् अ-4.
9. तात्यर्थ प-1.
10. विषयभूतसाधुत्वबोधक अ-4; 'त' नाऽस्ति प-1.

बोधक[1]वाक्यकल्पकत्वं तत्वमिति[2]वाच्यम्। वाक्यं[3] च इंद्राणी शब्दे ङीषानुकौ साधु इत्याकारकम्। विधेययो: पृथक्सूत्राभ्यां विधेय[4]तया तादृश वाक्य[5]स्यैवाभावात्। किंतु सूत्रद्वये पृथग्वाक्य कल्पनैव[6] सा च पुंयोगात्धेतो:[7] प्रवृत्तिनिमित्तारोपेण[8] स्त्रियां वर्तमानात्[9] प्रातिपदिकात्[10] ङीष्[11] साधु: इंद्र शब्दादानुक् च साधुरित्याकारिका। न च केवलमिंद्रीत्यस्य[12] केवल[13] मिंद्रानित्यस्य[14] वा साधुत्वे लोके तावन्मात्रस्य[15] प्रयोग:[16] स्यादिति वाच्यम्। ब्राह्मणीत्यादिवदिं[17]द्राणीत्यादेरपि सिद्धाविंद्री[18]त्यादि प्रयोग[19] व्यावर्त

---

1. पाठोऽयं ज-2, अ-4; बोधाक अ-1, प-1, प-2, अ-3.
2. 'तत्त्वं' नाऽस्ति अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; क्यंवोच इंद्राणी अ-1; वाक्यं नाऽस्ति च इंद्राणी ज-2: वयंवाच इंद्राणी अ-3.
4. निधेयतया प-2; विधेविधेयतया अ-4.
5. वाक्यस्यैवाभावाभावात् प-2.
6. कल्पैनेव अ-3.
7. पुंयोगात्धतो: अ-3.
8. आरोपेन प-1.
9. 'मा' नाऽस्ति.
10. प्रतिपदिकात्तु अ-3, ज-2.
11. ङीप् अ-3, ज-2, अ-4; ङीष् साध: प-1, प-2.
12. पाठोऽयं प-1; न च केचलप्रिदीत्यस्य अ-1; ज-2, अ-3; केवलमिदि्दत्यस्य प-2 न च नाऽस्ति केवलमिंदीत्यस्य अ-4.
13. केवलमिद्रा ज-2, अ-3; केवलमिद्रादि अ-4.
14. नेत्यस्य अ-4; नित्यस्य वाधौ साधुत्वे अ-4.
15. मात्रस्य प-2.
16. 'ग' नाऽस्ति अ-4.
17. ब्राह्मणीदिवदिंदा प-2; ब्राह्मणीदिव द्विद्राणीत्यादेरपि प-1.
18. पाठोऽयं ज-2, अ-3; सिद्धिविंद्रीत्यादि अ-1; सित्धात्विद्रात्यादि प-1, प-2; सिद्धविंद्रादिनित्यस्यवाधौत्यादिप्रयोगव्यावर्त्तकेंद्रवासनेति पाठ अ-4.
19. प्रयोग प-2; पयोग अ-4.

केंद्रवरुणेति। सूत्रवैय्यर्थ्यापत्या ता[1]दृशप्रयोगस्य लोके कल्पयितुम-

शक्यत्वात्। ॠन्नेभ्य[2] इति ङीपि इंद्राणीत्यस्यैव प्राप्तेरिंद्रानित्यस्य[3] सिद्धिः सूत्रफलमित्यपि वक्तु[4]मशक्यम्। किं च न साधुत्वमात्रं लौकिक[5] प्रयोगे हेतुःकिंत्वप्रवृत्ति नित्यविध्युद्देश्यतावच्छेदकानाक्रांत[6]त्वरुपं परिनिष्टित्वमपि अत एव शब्द दर्दुरं करोतीत्यादौ[7] कल्प्यसाधुत्वबोधकवाक्ये न शब्द इत्यादिभ्यष्टगादीना[8] साधुत्वबोधनेपि न तावन्मात्रस्य प्रयोगः[9] अपि च पूर्वोक्तलक्षणेऽर्थांतर्भावेन औत्व[10] निषेधः साकच्कस्य[11] वा वक्तव्यः साधुत्वमिति[12] वार्त्तिकबोधितप्रतिषेधोत्वयोः संनियोग शिष्टत्वानापत्याव्याप्तेश्च। उभाभ्यामेककालावच्छेदेन लक्ष्यभेदेगुण[13]वृद्धि प्रवर्तनात्तत्राति व्याप्तेरर्थांतर[14]भाव मनिवेश्यैककालावच्छेदेनतत्कल्पकत्वं[15] तत्त्वमिति तु दत्तजलांजलिः। न च शास्त्रतात्पर्य विषयी[16]भूतसाधुत्वबोधकवाक्यजन्य प्रतीति[17] विषययोरेक-क्रियान्वयित्वं तत्वमितिवाच्यम्। तृतीयलक्षणदूषणग्रहेणैवनिरस्तत्वात्। किं

---

1. वैयर्ध्यतादृश तादृश अ-3; 'ता' नाऽस्ति अ-4.
2. ॠत्तेभ्य इति अ-3.
3. प्राप्तेरिंद्रानित्यस्यैवा प्राप्तेंद्रा नित्यस्य द्विसूत्रम् इति पाठः अ-4.
4. वक्तुमश्यक्याम् प-2; वक्तुमश्यवा किं च अ-3; वक्तुमश्यक्य ज-2.
5. लौकिकमात्रप्रयोगे प-1; लौकिका प्रयोगे अ-3.
6. क्रांततत्त्व प-1; क्रौततत्त्व प-2.
7. करीत्यादौ अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, प-2 इत्यादिभ्ययुगादीनां अ-1, ज-2, अ-3.
9. प्रयोगाः अ-3.
10. ओत्वनिषेधः अ-3, ज-2; औत्वप्रतिषेधः अ-4.
11. साककस्य वावक्तव्यः ज-2 प्राकच्कस्य वाचक्तव्यः अ-4.
12. सादुत्वमिति ज-2; साधुत्तमिति अ-3.
13. भेद प-1.
14. अर्थान्तरभविमनिवेश्येक अ-3.
15. तत्वेतत्वमिति प-2; तत्कल्पंकत्त्वं अ-3.
16. विषयाभूत अ-4.
17. प्रतीतिविषन्ययोरेक अ-3.

च तत्रापि[1] एकक्रियान्वयित्वमित्यस्य[2] समाना[3]नुपूर्वोक्ततिङन्तवाच्य क्रियान्वयित्वमित्यर्थः। उत्तैक तिङन्तवाच्यक्रियान्वयित्वं वा नाद्यः।

गुणवृद्धयादा[4]वतिव्याप्तेः। नापि द्वितीयः दोषस्य[5] स्पष्टतया प्रकाश[6]-मानत्वात्। ननु लक्ष्यानुसाराद् विहितस्यापि ङीषः[7] पुनर्विधानं स्वीक्रियत्[8] इति चेन्न। विहितस्य पुनर्विधाने[9] नियमापत्तेः। पुंयोगादित्याति[10]रिक्तयोगविभाग वैय्यर्थ्यापातात्[11]। न च पूर्वोक्तविभक्त[12]सूत्रवैय्यर्थ्यान्न नियम इति वाच्यम्। आनुक्[13] मात्रमिंद्रादिभ्यः षङ्भ्योविधीयत इति स्वपरग्रन्थविरोधात्। ऋन्नेभ्य[14] इत्यनेन ङीपि सिद्धे वनोरचेत्यनेन[15] रादेशमात्रविधानाद[16] व्याप्तेः

1. तमापि प-2; तत्रावि अ-4.
2. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 इत्यस्या अ-1, ज-2, अ-3.
3. समानरनुपूर्वोक अ-4.
4. वृध्यादावति अ-4; वृत्धादावति अ-3.
5. 'स्य' नाऽस्ति प-2.
6. प्रकाशमात्वात् प-1; प्रकशमनत्वात् अ-4.
7. 'षः' नाऽस्ति प-2.
8. 'स्व' क्रियत अ-4.
9. विधानो अ-3.
10. पुंयोगादियदित्यतियोग प-1 पुंयोगादित्यतिरिक्त प-2, अ-4; पुयोगादितयादिरिक्त अ-3; पुंयोगादित्त्यात्तेरिक्त ज-2.
11. वैयर्थ्यातत् अ-3.
12. पूर्वोक्तसूत्र अ-4; 'वि' नाऽस्ति अ-3.
13. पाठोऽयं प-2, अ-4; अनुक्रमात्र अ-1, ज-2, अ-3, प-1.
14. ऋत्वेभ्य अ-3; सृन्नेभ्य अ-4.
15. वनोरच 4.1.7; वसोरचोत्यनेन अ-4.
16. 'द' नाऽस्ति प-1.

अप्रवृत्तेः।

सर्वविधसन्निपातग्रहणादेव वर्णाश्रयः प्रत्ययो वर्णविचालस्यानिमित्तं स्यादित्येतत्परिभाषादोषनिरूपणावसरे वार्त्तिककृतोक्तम्। नहि प्रत्ययःपूर्वपरसन्निपातनिमित्तकः स एव च सन्निपातशब्देन गृह्यत इति मत्वा न प्रत्ययः सन्निपातनिमित्तक इति शङ्कायां तदभ्युपेत्यैवाङ्गसंज्ञा तर्ह्यनिमित्तं स्यादित्येकदेशिनोक्त मिति न तद्भाष्यविरोधः।

किञ्चैवं शैवो गार्ग्यो वैनतेय इत्यादावपि अङ्गसंज्ञाया लोपनिमित्तत्वानापत्त्या वर्णाश्रय इत्यस्य वैयर्थ्यम्। ग्रामणिकुलं ग्रामणिपुत्र

पूर्व[1]सूत्रेणेंद्रादिभ्यो ङीषि[2] सिद्धेपि हिमादिभ्यो ङीष्[3] विधानार्थं तदनुवृत्तेरावश्यकतया[4] प्रथमलक्षणमव्याहतमिति शंकापि[5] निरस्ता[6]। तल्लक्ष्यं तु पंचभिर्धीवरीभिः क्रोतेत्यर्थे आर्हीयष्ट[7]कतस्याध्यर्घेति लुकीति पंचधीवेति[8] बोध्यम्। एवं सन्नियोग शिष्टत्व[9] वैय्याकरणानां दुर्वच[10]मेवेति प्राप्ते साधारणानुसरणिमनुसृत्य[11] ब्रूमः। इंद्रादिभ्यो[12] ङीष् सिद्धे र्विना वाक्यार्थबोध मवक्तव्यत्वेना प्रामाण्यज्ञानानास्कंदितशाब्दबोधस्यैव कार्यजनकतया सर्वांशे

---

1. पूर्व अ-3 एव ज-2.
2. ङीपि अ-3, अ-4.
3. ङीप् अ-3, अ-4, ज-2.
4. आवश्यक त्तमाप्रथमलक्षणं अ-3.
5. पाठोऽयं प-2, अ-4; शंकारिपि अ-1, प-1, अ-3; शंकपि ज-2.
6. 'र' नाऽस्ति अ-4.
7. आहोयष्टक् प-2; आर्हीष्टक् प-1; आर्हीयष्टस्याध्यर्धेति अ-3; अहोयष्टक् अ-4.
8. पंचविधीवेति अ-3; पंचधावेति अ-4.
9. शिष्टत्वे प-2; विशिष्टत्वम् प-1.
10. दुर्वचनमेवेति प-1.
11. अनुसरणिमनुसत्य अ-4; अनुसरयणिमनुसृत्य अ-3, ज-2.
12. इंद्रादि ङीप् अ-4.

लक्ष्यासंस्कारकसूत्रो[1]पातेभ्य इंद्रादिभ्यो ङीषानुकौस्त इति महावाक्यार्थबोध स्य[2] प्रत्येको[3]द्देश्यक ङीषानुग्विधेयकाचांतरवाक्यार्थबोधस्य वावश्यं वक्तव्य-तया तद्बोधोत्तरमिंद्रादिभ्यो ङीषः[4] सिद्धत्वज्ञानेन तदंशे तस्य विधेयत्वाभाव निश्चायकावांतरलक्ष्यसंस्कारकेंद्रादिभ्य आनुक्[5] इति वाक्यार्थ बोधे[6] अन्येभ्यस्तूभयमित्यवांतरलक्ष्यसंस्कारकद्वितीयवाक्यार्थबोधे च जायमाने लक्ष्य-संस्कारकानुङ्मात्रविधायके अनेकस्यैक विधिविधेयत्वा[7]भाव निश्चयेपि लक्ष्याऽसंस्कारक[8]पूर्वकालिक[9] वाक्यार्थ बोधीय[10] तत्त्वमादाय परिभाषाप्रवृत्तेर्नि-बोधत्वात्[11]। दृष्टा चेयं रीति[12]र्जमङणनमित्यत्र भाष्ये हलंत्यं सूत्रे शेखरादौ च। तत्राद्ये[13] मकारानुबंधाभावे ङमोह्रस्वादचि[14] ङमुण्नित्यमितिन्यासमभ्युपगम्य झकार[15]भकारयो झुट् भुटौ पदांते तयोरभावेन दूरीकृत्य एवमपि पंच आगमास्त्रय आगमिन[16] इति वैषम्यात्-संख्यात्तानुदेशाभावशंकायां

1. पाठोऽयं प-1, प-2; सूत्रोपातोभ्य अ-3; सूत्रोपातीय ज-2; सूत्रोपतेभ्य अ-4.
2. 'स्य' नाऽस्ति प-1.
3. प्रत्येकोद्देश्यक ङीपः सिद्धत्वज्ञानेन इति पाठोपलभ्यते अ-4 मातृकायाम्.
4. ङीपः अ-3.
5. अनुक् प-1, प-2, अ-4.
6. बोधि अ-3.
7. विधिविधेयेयत्वाभाव अ-3.
8. 'ऽ' नाऽस्ति अ-3, अ-4, प-1.
9. पूर्वेकालिकलिक अ-4.
10. बोधियम् प-1.
11. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; निर्बाधत्वात् अ-1, अ-3, अ-4.
12. रितिन प-1.
13. तत्रद्ये अ-3.
14. सं. पाठः 8.3.32 अष्टा.; पाठोऽयं प-1.
15. पाठोऽयं प-1; सकारभकायोर्त्सदभुठोपदांते अ-1; सकारमकारयो सर्दभुटौपदांते ज-2, अ-3; सकारयोर्सुद्भुठोपदांते प-2; उपगम्य ककाभाकारया यट् भुटौ पदांतेक्यार्भावेन अ-4.
16. अगमिन प-1.

सर्वा[1]शेलक्ष्याऽसंस्कारक[2] महावाक्यार्थबोधीय[3] संख्यासाम्यमादाय[4] सूत्र प्रवृत्तिरित्यर्थकं संतु तावद्ये[5]षामागमानामागमिनः संतिसकार[6] भकारौ[7] पदांतौ नस्य इति कृत्वा तावपि न भविष्यत इत्युक्तं स्पष्टश्चायं अर्थो लक्ष्यसंस्कार-कालिकं संख्या[8]साम्यं यथासंख्यप्रवृत्तौ निमित्तमितिमन्यते पूर्वपक्षीसिद्धांती तु प्रतिपत्तिकालिकमेव संख्यासाम्यं तत्प्रवृत्तौ निमित्तमित्याह संत्वितीत्यादिना विवरणे। एव[9] तत् सूत्रे शेखरादौ च। द्वितीयेपि उत्सर्गशास्त्रीय[10] लक्ष्य-संस्कारकवाक्यार्थ बोधात्पूर्वमपवादालक्ष्याऽसंस्कारकाः[11] बुध्यारुढाभवंति[12] लक्ष्याऽसंस्कारक वाक्यार्थबोधादनंतर[14] लक्ष्यसंस्कारकोत्सर्गशास्त्रप्रवृत्तिरित्यर्थक पूर्वं हि अपवादा अभीति परिभाषाया विषय प्रदर्शनं कृत[15]मित्यलं पल्लवितेनेति[16] दिक्। एवमन्यत्राप्यूह्यम्।

---

1. सर्वाशे प-2.
2. लक्ष्याः संस्कारक अ-3.
3. बोधोयम् प-1; बोधायं अ-4; बोधीये ज-2.
4. संख्यागम्यमादाय प-1.
5. तावद्येषमागमा नामानामागमिनः अ-3; तावाद्येषा अ-4.
6. संतिक्षकार ज-2; संतित्सकार अ-3.
7. भकारादौ अ-4.
8. संख्यागम्य प-1.
9. एवेतत्सूत्रे प-1.
10. उत्सर्गशास्त्रोपलक्ष्य ज-2; शास्त्रियलक्ष्य प-2; परज्ञत्रोपलक्ष्य प-1; उत्सर्गशास्त्रीय इत्यारभ्य लक्ष्यसंस्कारकोत्सर्ग इत्यन्तं अ-4 मातृकायां नाऽस्ति।
11. असंस्कारकानथ्यारूढा ज-2.
12. भवती प-1.
13. बोधनं परलक्ष्य प-1; बोध्यादनंतरं प-2.
14. 'हि' नाऽस्ति प-1.
15. 'कृतम्' नाऽस्ति अ-4.
16. 'ति' नाऽस्ति अ-4.

इत्यादावुत्तरपदनिमित्तके ह्रस्वत्वे यथाकथञ्चिद्बहिरङ्गपरिभाषयापि वारणं सम्भवतीति 'कृन्मेजन्तः' (1.1.39) इत्यत्र 'ह्रस्वस्य पिति' (6.1.71) इति सूत्रे चैकदेशिना तथा परिभाषया तुग्वारितो भाष्ये। अत एव परिभाषाफलत्वेनेदमुक्तं 'कृन्मेजन्तः' इतिसूत्रे वार्त्तिककृतेति केचित्।

सन्निपातलक्षणविधित्वमस्या लिङ्गम्। स्वप्रवृत्तेः प्राक् स्वनिमित्तभूतो यः सन्निपातस्तद्विधातकस्य स्वातिरिक्तशास्त्रस्य स्वयमनिमित्तमिति फलति।

नन्वेवं रामायेत्यादौ 'सुपि च' (7.3.102) इति दीर्घानापत्तिः।

इडविडेति। इड विडोऽपत्यं जनपदेत्यञि अतश्चेति[1] स्त्रियां लुक्। परिभाषानित्यत्व फलं बिल्वकादि[2] सूत्रोक्तं कैय्यटीयमन्यथा साधयति। **एनेय इत्यादिना[3]। स्थानिवदति।** अच[4] परेत्यस्य तंत्रादिना[5] पूर्वस्य स्थितौ कर्तव्यायां[6] स्थानिवदिति द्वितीयार्थस्यापि न[7] पदांतसूत्रीयलुकालुप्तं न स्थानिवदित्यस्य पंचेंद्र इत्युदाहरणपरभाष्येण बोधनादितिभावः। अन्यथा स्थानिवद्भावाप्राप्तेस्तदुदाहरणासंगतेः। स्पष्टश्चायमर्थः। स्थानिवत्सूत्रशेखर विवरणा[8]दावित्यलम्॥86॥

---

1. अतश्च 4.1.177.
2. बिल्वादिभ्योऽण् 4.3.136.
3. एतेय इत्यादिनम् अ-3; ऐतेनेय अ-4.
4. अचः प-1; अचः पत्येत्यस्य अ-4; अचः परस्मिपूर्वाविधौ 1.1.17.
5. तंत्रादिनाम् अ-3; तंत्रादिनां अ-4.
6. कर्त्तव्याप्य प-1, प-2; कर्त्तव्याम् अ-4.
7. न पदान्त द्विर्वचनवरेयलोपस्वर सवर्णऽनुस्वारदीर्घ जश्चविधिषु 1.1.58 अष्टा.
8. विवरणदावित्फलम् प-1.

अदन्ताङ्गङेसन्निपातेन जातस्य यादेशस्य तदविधातकत्वात्। न च यनादित्वसापेक्षदीर्घस्य बहिरङ्गतयाऽसिद्धत्वान्नात्र सन्निपातविधात इति वाच्यम्। आरोपितासिद्धत्वेऽपि वस्तुतस्तद्विधातस्य जायमानत्वेनै-तत्प्रवृत्तेः।

किञ्चान्तरङ्गे कर्त्तव्ये बहिरङ्गस्यासिद्धत्वेऽपि तत्र कृते तस्यासिद्धत्वे मानाभावः। किञ्च आतिदेशिकसन्निपातविधाताभाव-मादायैतदप्रवृत्तौ गौरीत्यादौ सम्बुद्धिलोपेऽपि स्थानिवत्त्वेन ह्रस्वनिमित्त-सन्निपातविधाताभावात्तत्रैतस्यातिव्याप्तिपर, 'कृन्मेजन्तः' (1.1.39) इति सूत्रस्थभाष्यासङ्गतिः। सन्निपातस्य अशास्त्रीयत्वान्नात्र स्थानिवत्त्व-मिति चेत्? तर्हि अत्रासिद्धत्वमपि कथमिति विभावय।

अशास्त्रोयेऽसिद्धत्वाप्रवृत्तेः 'ईदूदेत्' (1.1.11) इतिसूत्रे कैयटेन स्पष्टमुक्तत्वात्। एवं च पूर्वत्रासिद्धीयेऽपि कार्य एतत्परिभाषा-प्रवृत्तिर्भवत्येवेति चेत्? न। 'कष्टाय' (3.1.14) इति निर्देशेनेतस्य अनित्यत्वात्।

ययोः सन्निपातस्य विधातकं शास्त्रे तयोः सन्निपातनिमित्तक-विधावुपादानमपेक्षितमिति तु नाग्रहः। अत एव दाक्षिरित्यत्रा-कारान्तप्रकृतो= सन्निपातनिमित्ताङ्गसंज्ञानया परिभाषयाल्लोपस्य निमित्तं न स्यादित्याशङ्कयानित्यत्वेन समाहित 'कृन्मेजन्तः' (1.1.39) इति सूत्रे भाष्ये। न हि अङ्गसंज्ञायामदन्तस्याङ्ग संज्ञेत्युक्तमस्ति।

न च कुम्भकारेभ्य आधय इत्यादावव्ययसंज्ञाया अनया परिभाषया वारणपरभाष्यासङ्गतिः। अनया परिभाषया लुङ मा भूत्, अव्यय वं तु स्यादेव, लुकाहि तदीयसन्निपातस्य विधातो नाव्ययसंज्ञायाः, संज्ञाफलं त्वकच् स्यादिति वाच्यम्। एतदुदाहरण-परभाष्यप्रामाण्येन साक्षात् परम्परया वा स्वनिमित्तसन्निपातविधातकस्य स्वयमनिमित्तमित्यर्थेनादोषात्। एतेनात्राकच् स्यादित्य पास्तम्। न च कार्यकालपक्षे लुगेकवाक्यतापन्नसंज्ञाबाधेऽप्यकजेकवाक्य तापन्ना संज्ञा

स्यादिति वाच्यम्, अन्तरङ्गायां तदेकवाक्यतापन्नसंज्ञायां बहिरङ्ग-गुणादेरसिद्धत्वात्। लुगेकवाक्यतापन्ना तु न गुणादितोऽन्तरङ्गा, उभयोरपि शब्दतः सुबाश्रययत्वात्।

'न यासयोः' (7.3.45) इति निर्देशाच्चैधानित्या। तेन नातिप्रसङ्गः। स्पष्टा चेयं 'कृन्मेजन्तः' (1.1.39) इति सूत्रे भाष्ये। अस्या अनित्यत्वे फलानि भाष्ये परिणगितानि। वर्गाश्रयः प्रत्ययो वर्गविचालस्यानिमित्तम्– दाक्षिः। आत्त्वं पुग्विधे- क्रापयति। पुग् ह्रस्वत्वस्यअदीदपत्। त्वदाद्यकारष्टाब्विधेः- या, सेति। इड्विधि राकारलोपस्यपतिवान्। 'ह्रस्वनुद्दभ्यां मतुप्' (6.1.176) 'अन्तोदात्ता-दुत्तरपदात्' (6.1.169) इतिमलुबविभक्त्युदात्तस्वं पूर्वनिघातस्य-अग्निमान्, परमवाचा। नदीह्रस्वत्वं सम्बुद्धिलोपस्य नदि, कुमारीत्यादि। यादेशो दीर्घत्वस्यकष्टाय। इतोऽन्यत्र प्रवृत्तिरेव, दोषाः खल्वपि साकल्येन परिगणिता इति भाष्योक्तोरित्यन्यत्र विस्तरः॥85॥

ननु पञ्चेन्द्राग्यो देवता अस्य पञ्चेन्द्र इत्यादौ 'द्विगोर्लुक्' (4.1.88) इत्यणी लुकि 'लुक्द्धित' (1.1.49) इति स्त्रीप्रत्ययलुक्यानुकः श्रवणापत्तिरत आह–

सन्नियोगशिष्टानामन्यतरापाये उभयोरप्यपायः॥86॥

अत्र च 'बिल्वकादिभ्यश्छस्य लुक्' (6.4.153) इति सूत्रर्स्थ छग्रहणं ज्ञापकम्। तद्धि छमत्रिस्य लुग्बोधनद्वारा कुको निवृत्तिर्यथा स्यादित्येतदर्थम्। कृतकुगागमा नडाद्यन्तर्गतबिल्वादय एव तत्र निर्दिष्टा बिल्वकादिशब्देन। न चैवमपि छग्रहणं व्यर्थम्, कृतकुगागमानुवाद-सामर्थ्यादेव तदनिवृत्तिसिद्धेः। अन्यथा 'बिल्वादिभ्य' इत्येव वदेत्, 'लक्षणप्रतिपदोक्त' परिभाषया विल्वादिपुरस्कारेण विहित प्रत्ययस्येव लुग्विधानान्नातिप्रसङ्ग इति वाच्यम्। लतोऽपि प्रतिपदोक्तत्वेन 'बिल्वादिभ्योऽण्' (4.3.136) इति विकाराद्यर्थस्य लुगापत्तिवारणार्थं कुगनुवादचारितार्थ्यात्। समुच्चयार्थकचशब्दयोगे तु विधेययोरेक-कालिकत्वेकदेशत्वनियमान्न्यायसिद्धापीयम्।

यत्तु 'गाविष्ठवत्' इत्यनेन पंवत्त्वविधानमेतदनित्यत्व ज्ञापनार्थम्, अन्यथेत यतोत्यादौ टिलोपेनैव ङीपि निवृत्ते सन्नियोगशिष्टपरिभाषया नास्यापि निवृत्त्येतयतीत्यादिसिद्धौ पुंवत्त्ववैयर्थ्य स्पष्टमेवेति 'टेः' (4.4.155) इति सूत्रे कैयटस्तत्र। इडबिड माचष्ट ऐडबिडयतीत्यादौ पुंवत्त्वस्य आवश्यकत्वात्। ऐनेयः श्यैनेय इत्यादि तु स्थानिवत्त्वेन सिद्धमित्यन्यत्र विस्तरः॥86॥

ननु चुरा शीलमस्याः सा चौरीत्यादौ 'शीलम्' (4.4.61) 'छत्रादिभ्योऽणः' (4.4.62) इति णे ङीष् न प्राप्नोतीत्यत आह-

ताच्छीलिके णेऽण्कृतानि भवन्ति॥87॥

'अन्' (6.4.167) इत्यणि विहितप्रकृतिभावबाधनार्थं 'कार्मस्ताछील्ये' (6.4.172) इति निपातनमस्या ज्ञापकम्। ताच्छीलिकणान्ताद् 'अणो द्वयचः' (4.1.156) इति फिञ्-सिद्धिरप्यस्याः प्रयोजनमिति नव्याः। ताच्छीलिक इत्युक्तेः 'तदस्यां प्रहरणम्' (4.1.57) इति णे दाण्डेत्येव। 'कार्मः' (6.4.172) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा॥87॥

ननु कंसपरिमृड्भ्यामित्यादौ 'मृजेर्वृद्धिः' दुर्वारित्यत आह-

धातोः कार्ममुच्यमानं तत्प्रत्यये भवति॥88॥

भ्रौणहत्ये तत्वनिपातनमस्या ज्ञापकम्। 'धातोः स्वरूपग्रहणे तत्प्रत्यये कार्य विज्ञानम्' इतिपाठस्तु प्रसृड्भिरित्यादौ 'अनुदात्तस्य चर्दुपधस्य' (6.1.59) इत्यमापादेनन भाष्ये दूषितः। यत्कार्यं प्रत्ययनिमित्तकं तत्रेयं व्यवस्थापिका। तेन पदान्तत्वनिबन्धनं 'नशेर्वा' (8.2.63) इति कुत्वं प्रणग्भ्यामित्यादौ भवत्येव। इयङादिविधौ तु नैषा। 'न भूसुधियोः' (6.4.85) इति निषेधेनानित्वात्। 'मृजेर्वृद्धिः' (7.2.114) इत्यत्र भाष्ये स्पष्टा॥88॥

ननु सर्वकउच्चकैरित्यादौ सर्वनामव्ययसंज्ञे न स्यातामत आह-

तन्मध्यपतितस्तद्ग्रहणेन गृह्यते॥89॥

'नेदमदसोरकोः' (7.1.11) इति सूत्रेऽकोरितिनिषेधोऽस्या ज्ञापकः। 'तदेकदेशभूतं तद्ग्रहणेन गृह्यते' इति 'येन विधिः' (6. 1.72) इति सूत्रे भाष्ये पाठः॥89॥

ननु 'गातिस्थाधुपाभूयः' (2.4.72) इति सिचो लुगपासीदित्यादौ पातेरपि स्यादत आह-

लुग्विकरणालुग्विकरणयोरलुग्विकरणस्य॥90॥

अस्याश्च ज्ञापकः 'स्वरतिसृति' (7.2.44) इति सूत्रे सूङिति वक्तव्ये सूतिसूयत्योः पृथङ्निर्देश इति कैयटः। तन्न। साहचर्या-दलुग्विकरणस्यैव ग्रहणे प्राप्ते पृथङ्निर्देशस्य तज्ज्ञापकत्वासम् भवात्। ध्वनिता चेयं परिभाषा 'यस्य विभाषा' (7.2.15) इत्यत्र भाष्ये। तत्र हि विदित इति प्रयोगे निषेधमाशङ्क्य यदुपाधेर्विभाषा तदुपाधेर्निषेधो 'विभाषा गमहनविदविशाम्' (7.2.68) इति सूत्रे शब्विकरणस्य ग्रहणं लुग्विकरणश्चायमित्युक्तम्। तत्र चो हेतौ। यतोऽयं लुग्वि-करणोऽतो विशिसाहचर्याच्छबूविकरणस्य ग्रहणं न तु हनिसाहचर्या-दस्याप्येतत्परिभाषाविरोधादिति तदाशयः।

अत एव परिभाषायां लुग्विकरणस्यैवेति नोक्तम्। कण्ठतस्तु भाष्य एषा क्वापि न पठिता। 'गातिस्था' (2.4.77) इति सूत्रे पिबतेर्ग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्त्तिककृता सर्वत्रैव पाग्रहणेऽलुविकरणस्य ग्रहणमिति भाष्यकृता चोक्तम्। 'स्वर तिसूति' (7.2.44) इति सूत्रे कैयटेन च स्पष्टमुक्ता॥90॥

ननु प्रजिघाययिषतीत्यादौ 'हेरचङि' (7.3.56) इति विधीयमानं कुत्वं न स्यादत आह-

प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि ग्रहणम्॥91॥

अचङीति प्रतिषेध एवास्या ज्ञापकः। इयं च कुत्वविषयैव

'हेरचङि' इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम्॥91॥

ननु युष्मभ्यमित्यादौ 'भ्यसः' (7.1.30) इत्यत्र भ्यमिति च्छेदे भ्यसो भ्यमि कृतेऽन्त्यलोप एत्वं स्यादत आह-

अङ्गवृत्ते पुनर्वृत्तावविधिः॥92॥

अङ्गेऽङ्गाधिकारे वृत्तं निष्पन्नं यत्कार्यं तस्मिन् सति पुनरन्यस्याङ्गकार्यस्य वृत्तो प्रवृत्तावविधानं भवतीत्यर्थः। एषा च 'ज्यादादीयसः' (6.4.160) इत्याद्विधानेन ज्ञापिता। अन्यथा इकारलोपेन

नन्वेवमपि[1] **ज्ञाज[2]नोर्जा** इति जादेश[3] विधानेनैकांगसंवंधित्वरुपसमानस्थानिकत्वे एवैतत्प्रवृत्याप्रकृतेभ्यमेत्वयो[4]स्तत्वा[5]भावेनैत्वावारणाद आह। **अत एव भिन्नेति[6]** अस्मात् आद्‌विधानात् ज्ञापकादेवेत्यर्थः। एतेन[7] अंगस्य यत्कार्यं तद्‌विषयिणो[8] वयमिति प्राचीनमतदूषक[9]मनोरमाव्याख्यापक[10]-सामान्यप्रवृत्तिस्वीकारक[11]शब्दरत्नादिविरोध इत्यपास्तम्[12]॥92॥

---

1. न चेवपि प-1, प-2.
2. ज्ञजनोजी अ-3; सं पाठः 7.3.79 अष्टा.
3. जादेशे विधानेकांग अ-4.
4. प्रकृतेभ्यम् रात्वयोस्य अ-4; प्रकृतेभ्यमेत्वेयोः प-2.
5. तुत्वाभावेन ज-2.
6. एवामित्रेति ज-2; एवमिनेति प-1; एवमिति अ-4.
7. एन अंगस्य प-2.
8. तद्‌विधयिग्वेवयमिति प-1; तद्‌विषयिग्येवेयमिति प-2; तद्‌विषयिग्येवयमिति अ-3.
9. हृषक प-2; दूश्क अ-3.
10. मनोरमा व्याख्या व्यक्तसामान्य ज-2, अ-3; मनोरमा न विशेषणेष्विति समुदाय इति पाठः अ-4 मातृकायाम्.
11. 'क' नाऽस्ति अ-3.
12. इत्यापास्तम् प-1.

'अकृत्सार्व' (7.4.25) इति दीर्घेण च सिद्धे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेव। अत एव भिन्न स्थानिकाङ्गकार्यविषयाप्येषा। इयं चअनित्या, 'द्वयोः' (1.2.59; 5.3.92) इति निर्देशात्। अनित्यत्वबललभ्यार्थमादायैव 'भ्यसोभ्यम्' (7.1.30) इति सूत्रे निष्ठितस्येति पठितम्।

केचित्तु अनया परिभाषया न किञ्चिल्लक्ष्यं साध्यते। अत एव 'ज्ञाजनोर्जा' (7.3.79) 'ज्यादादीयसः' (6.4.160) इति सूत्रयोरेनां ज्ञापयित्वा किं प्रयोजनम् इति प्रश्ने बितैर्गुणप्रतिषेध उक्तः, स न वक्तव्य इत्येव प्रयोजन मुक्तं न तु लक्ष्यसिद्धिरूपम्। तदुक्तम्- 'भ्यसोभ्यम्' इत्यत्राभ्यमितिच्छेदः शेषे लोपश्च अन्त्यलोप एव 'अतो गुणे' (6.1.97) इतिपररूपेण सिद्धे युष्यभ्यमित्यन्यत्र निरूपितम्। एवं च सूत्रद्वयस्थमेतज्ज्ञापनपरं भाष्यं 'भ्यसोऽभ्यम्' इतिसूत्रस्थं च भाष्यमेकदेश्युक्तिरित्याहुः॥92॥

यत्त्वोरोदितिवाच्ये 'ओर्गुणः' (6.4.116) इति गुणग्रहणात्-

संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वम्॥93॥

इयं च विधेयकोटौ संज्ञापूर्वकत्व एव। तेन स्वायम्भुवमित्यादि सिद्धम्॥92॥

तथानि लोडित्येव सिद्धे आनिग्रहणाद्-

आगमशास्त्रमनित्यम्॥94॥

तेन 'सागरं तर्त्तुकामस्य' इत्यादि सिद्धम्॥94॥

तथा तनादिपाठादेव सिद्धे 'तनादिकृञ्भ्यः' (3.1.79) इतिसूत्रे कृञ्ग्रहणाद्-

तथा चक्षिङो ङित्करणाद्-

अनुदात्तेत्त्वलक्षणमात्मनेपदमनित्यम्।।96।।

तेन 'स्फायन्निर्मोक इत्यादि सिद्धम्' ।।96।।

अनुद्यमानविशेष[1]णोष्विति। समुदाय विशेषणं अचामिति तद्विशेषणमादिरिति[2] ततश्चेक्[3] स्थानिकादिष्टध्यवयकाच्[4] समुदायावयवक-समुदायस्य वृद्ध[5] संज्ञेत्यर्थस्य पर्यवसन्नतया अनूद्यमान विशेषणेत्यस्य यथाश्रुतार्थक[6]त्वे आदेरनूद्यमानविशेषण[7] विशेषणत्वे न तदंशे[8] इक्परिभाषाऽ-प्रवृत्तेरनयावक्तुमशक्यत्वेनानूद्यमानविशेषणे[9]त्यस्यानूद्यमान विशेषण विशेषणेत्यर्थः। **विधेयेनासिद्धतयेति**[10]। विधेयस्या[11] नभिनिर्वृतत्वे न तदंशे परिभाषा सम्बन्धः[12] कर्तुमाशक्य इति भावः[13] **तद्विशेषणे** इति। साक्षाद्विधि विशेषणे इत्यर्थः। यथो श्रुते आदेरपि[14] परम्परयाविधेयविशेषणत्वे नकदंशे परिभाषया अप्रवृत्तिकथनमयुक्तं स्यादिति बोध्यम्। **तद्विशेषणेति।**

---

1. विशेषणन्विति अ-3, ज-2.
2. आदीरिति प-2.
3. ततश्चक अ-3, ज-2.
4. पाठोऽयं प-1, प-2; वृध्यवयवकाच् अ-1, ज-2, अ-3; वृध्यवयव काव्यमुदायवक अ-4.
5. वृत्धेत्यर्थस्य प-1, प-2, वृद्धसंज्ञोत्यत्यर्थवसन्नतया अ-4.
6. श्रुतार्थत्वेजादेरन्द्यमान अ-4; श्रुतार्थकत्वो ज-2, अ-3.
7. 'विशेषण' नाऽस्ति ज-2, अ-3, अ-4.
8. तदंतरो हक प-1; तदर्श प-2; दंशे इक् अ-3.
9. विशेषणेत्त्यस्यात् धमान अ-3.
10. सं. पाइः विधेरसिद्धतयेति अ-1, ज-2, अ-3; असिद्धतर्थेति प-2; असिद्धतथेति प-1.
11. विधेयस्माऽनभिनिवृतित्वेन अ-4.
12. सम् नाऽस्ति प-2.
13. भाषः अ-3.
14. अदेरपि प-1.

तथा विनार्थनञा समासेनानुदात्तं पदमनेकमित्येव सिद्धे

विधेय[1] विशेषणेत्यर्थः। न्यायसिद्धयर्थे ज्ञापकमप्याह[2]। **किन्चेति। भाष्योक्तरीत्येति[3]**। तत्र हि वाराही पुत्रेष्यङ्[4] तस्य सम्प्रसारणं भवति[5]पुत्ररुपे[6] उत्तरपदे इत्यर्थे वकारस्य[7] संप्रसारणं कस्मान्न भवतीत्याशंकायामनंत्य विकार इति परिभाषया निरा[8]कृत्यानंत्येत्यस्याः परिभाषायाः[9] प्रयोजन जिज्ञा[10]सा मल्लोपो न इति सूत्रमुदाहृतम्[11]। अन्यथांगावयवानोऽकारस्य लोप इत्यर्थेऽनस्त[12]क्ष्णेत्या दावाद्याकारस्य लोपः स्यात् ततोऽग्रे भ संज्ञा क्षिप्ता सर्वनामेत्यस्याकारांशे विशेषण[13]तामंगीकृत्य तस्मिन्निति परिभाषया[14]ऽव्य-वहिताकारस्यैव लोपेनाद्याकारे लोपवारणेनैतत् परिभाषायाः प्रयोजनमित्युक्तम्। एवं चानूद्यमानविशेषणविशेषणेपि परिभाषाप्रवृत्तिरुक्तैवेतिभावः। येन नेति[15] न्यायेन नकारव्यवधानं[16] सह्यत इति तत्तात्पर्यम्। स्थाने ग्रहणेन परिभाषायाः

---

1. पाठोऽयं अ-4; विधेयविशेषण विशेषण विशेषणेत्यर्थः अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3.
2. ज्ञापकमप्यह प-1; ज्ञापकमथाह अ-4.
3. रीत्येति संप्रसारणं कस्मान्न भवति तत्र हि इत्यत्रायं पाठोऽपि प-1 मातृकायां लभ्यते.
4. पुत्रेष्येङ प-2.
5. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; भविते अ-1; भवित ज-2 अ-3.
6. 'त्र' नाऽस्ति प-1, प-2.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4; ककार स्य अ-1.
8. निकृत्यानं सेत्यस्याः प-1, प-2, प-2, अ-3, अ-4; ककारस्य अ-1.
9. परिभाषया प-1, अ-4.
10. जिज्ञाषाम् अ-4.
11. सूत्रमुत्यस्ताम् प-1.
12. इत्यैऽनस्तक्ष्णेतया प-2; इत्यर्थेनस्तक्ष्णेत्यादावाद्यकारस्य अ-4.
13. 'विशे' नाऽस्ति अ-3, अ-4.
14. परिभाषाया अ-4.
15. सेल लेति लत्सरसे अ-4.
16. व्यावधानम् प-1.

वर्जग्रहणात्-

नञ्घटितमनित्यम्॥97॥

ज्ञापनेपि नानुवादेत्यस्य यथाश्रुतार्थकत्वेऽत इत्यस्यानुवाद्यत्वेनात इत्यस्य[1] तत्त्वाभावेन तदंशे निषेधाप्रवृत्या षष्ठी स्थान इति परिभाषालभ्य[2] स्थानसंबंध स्य[3] निर्विघ्नत्वेन स्थाने ग्रहणवैयर्थ्यापत्यानानुवादेत्यस्यानूद्य[4]मान विशेषणे तदप्रवृत्ति[5]रित्यर्थस्यावश्यकत्वे वृद्धिर्यस्या[6] चामादिरिति आद्यंशे[7] इकोयण-चीत्यत्राचीत्यंशे इक् परिभाषा तस्मिन्निति परिभाषयोः क्रमेण[8] प्रवृत्य[9]वृत्ति-भ्यामव्याप्त्यति व्याप्तिभियाविशेषणविशेषण विशेषणेऽप्रवृत्तिरित्यर्थ स्वीकारेणोक्ता व्याप्त्यतिव्याप्त्योर्वारणेपि आत[10] इत्यस्य तत्त्वाभावेन निषेधा प्रवृत्या पुनः स्थाने ग्रहणस्य सम्बन्धः षष्टिस्थानेति परिभाषया[11] कर्त्तुमशक्य एवेति[12]-

---

1. इत्यस्येतत्त्वाभावेनातदंशे प-1; इत्यस्य रत्वाभोवन अ-3; इत्यस्यरतत्वाभावेन ज-2; इत्यास्यतत्वाभोवन अ-4.
2. परिभाषालक्ष्यास्थानेग्रहणेवैय्र्थ्यापत्या इति पाठः अ-3; परिभाषालुग्रहहणै वैय्यर्थ्यापत्या अ-4.
3. संघस्य प-1; संवंस्य अ-4.
4. ऽनूद्यामान अ-4.
5. तदप्रवतिरित्यर्थस्या अ-3.
6. वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद् वृद्धम् 1.1.73; वृत्धिस्याचामादिरिति प-1.
7. आध्यंशे प-2.
8. पाठोऽयं अ-4 ऋमेण अ-1; प्रमेण ज-2; क्तमेण प-2.
9. प्रवृत्यवृद्धिर्यतिभ्यामव्याप्त्यति अ-4.
10. अत प-1.
11. परिभाषायाः प-1, अ-4.
12. एवेति प-1.

तेन 'नेयङ्वङ्' (1.4.4) इत्यस्यानित्यत्वाद्ध्रे सुभ्रु इति सिद्धमिति तत्र, भाष्येऽदर्शनात्। भाष्यानुक्तज्ञापितार्थस्य साधुताया नियामकत्वेमानाभावात्। भाष्याविचारितप्रयोजनानां सोत्राक्षराणां

विद्यमानस्थान[1]ग्रहणं व्यर्थमेवेति त्वदुक्तज्ञापका[2]संभव, इत्यपि[3] दोषो बोध्यः। इकोयणचीत्यादौ दोष[4] ध्रौव्यादनूद्यमान विशेषणेन इत्ये[5]वार्थो ज्ञाप्यते। विशेषणता च साक्षात् परम्परा[6]साधारणी गृह्यते। एवं च[7] वृद्धिर्यस्येत्यादौ न दोष इति तु न शंकनीयम्। ननु साक्षादनूद्यमान विशेषणेऽनूद्यमान[8] विशेषण[9] विशेषणे इत्युभय विधोप्यर्था[10]गीक्रियते लक्ष्यानुरोधाच्च क्वचित्पूर्वांशस्य क्वचिदुत्तरांशस्य प्रवृत्तिरिति न[11] क्वापि अचोरहाभ्यां[12] द्वे उदात्त यणित्यादौ दोषलेश इति चेन्न[13]। अन्ततोगत्वा लक्ष्यानुरोधस्वीकारस्यावश्यकत्वेंतेरंडाविवाह[14] इति न्यायेन पूर्वमेवलक्ष्यानु[15]-रोधेन वृद्धिर्यस्येत्यादौ इक् परिभाषाऽप्रवृत्ति स्वीकारेणेष्ट सिद्धौ[16] भाष्यविरुद्धानुसरण्यवरोहस्यानुचितत्त्वादिति दिक्।

---

1. स्थाने प-2.
2. ज्ञापके संभव अ-3.
3. 'अपि' नाऽस्ति अ-4.
4. 'दो' नाऽस्ति अ-4; दोषध्रौन्यादनूद्यमान प-1, प-2.
5. इत्येवार्योज्ञप्यते प-1.
6. पाठोऽयं अ-4; साधारणी अ-1, प-1, प-2, अ-3; साधारणो गम्यते ज-2; एव चरवृद्धिः प-1; एवं चरवृद्धिः प-2; एवं च वृद्धिर्यस्यत्यादोष इति तू न अ-4.
8. द्या अ-4; 'विशेषण' नाऽस्ति अ-4.
10. अर्थोमाक्रियते अ-4.
11. 'न' नाऽस्ति अ-3.
12. 8.4.46 अष्टा.
13. चेन्नः प-2.
14. आवश्यकत्वैंतरंडविवाह प-1, प-2.
15. लक्ष्यानिरोधेन प-2.
16. सिद्धो अ-4; सिचौ ज-2.

पारायणादावदुष्ट मात्रार्थकत्वकल्पनाया एवौचित्यात्।

ननु स्थाने ग्रहणेनपरिभाषाणामनित्यत्वज्ञापनेन क्वचित्परिभाषाणामप्रवृत्तिः। एवं च ज्ञापकस्य सजातीयापेक्षयाऽनुवाद एवाप्रवृत्तिः[1]। ततश्च परिभाषाणामनित्यत्वेन क्वचित्सिद्धाया अप्रवृत्तेरनुवादिका परिभाषेयमिति त्वदुक्त प्रथमद्वितीय[2] दूषणयोर्गर्भस्रावेणैवगतत्वात्।

अंगांशे[3] उत्थिताकांक्षत्वेनाक्षिप्त प्रत्ययस्यांगांशे एव विशेषणत्वमित्यादिदूषणैर्विवरणशेखर शब्द[4]रत्नादौ अत्रैव मूलेंनंत्यविकार इति परिभाषाव्याख्याने च ष्यङः[5] संप्रेति सूत्रस्थ भाष्यस्य त्वयैवैकदेश्युक्तिताया[6] उक्तत्वाच्च। षष्ठी स्थाने[7] योगेति परिभाषायाः प्रसिद्धार्थकत्वे फलाभावेन[8] निर्दिश्यमान परिभाषार्थ[9] संग्राहकत्वं भगवतोक्तमदृत्वा[10]वृत्यातदर्थ संग्राहक[11] त्वकथनेन धिन्विकृण्व्योर[12]चेत्यनेन लोपविधाने[13] कर्त्तव्येऽकार[14] विधानेन यथोत्तर[15] मुनीनां प्रामाण्यमित्यर्थो ज्ञाप्यते इति कथनेन च भाष्यानुक्त[16]

---

1. 'एवा' नाऽस्ति अ-4.
2. द्वितीययोर्दूषणयोर्गभ्रस्त्रा अ-4.
3. अंशांशे अ-4.
4. शब्दरसादौ प-2.
5. ष्यङः 6/1/13 अष्टा.
6. देश्युक्तताया अ-4.
7. 1/1/49 अष्टाः स्थाने यो योगेति प-1.
8. फलभावेन अ-3.
9. परिभाषार्थम् अ-4.
10. अनाहृत्यावृत्या प-1; अनादृत्यतदर्थ अ-4.
11. संग्रहकत्व प-1; संग्रहकथनेन अ-4.
12. संपाधिन्विकृष्व्योर च 3/1/80 अष्टा.
13. लोपविधानेन यथ्थोत्तरं मुनीनां इति पाठोपलभ्यते प-1 मातृकायाम्.
14. उकार अ-4.
15. यथात्तरम् अ-4.
16. भाष्यानुकज्ञापकानाम् अ-3.

किञ्च ज्ञापितेऽप्यानीत्यस्य न सार्थक्यमाडागमशून्यप्रयोगस्य अप्रसिद्धेः। आङ्ग्रहणं तु लोडग्रहणवदिति बोध्यम्। अत एव 'धोर्लोपो लेटि वा' '7.3.70' इति सूत्रे वेति प्रत्याख्यातम्। लोपेऽप्याट्पक्ष आटः श्रवणं भविष्यति दधादिति, अटि दधदिति आगमशास्त्रस्यानित्यत्वेत्वाट्यसति दधादित्यसिद्ध्या वाग्रहणस्यावश्यकत्वेन तत्प्रत्याख्यानासङ्गतिः स्पष्टैव।

ज्ञापकानां[1] त्वयापि स्वीकृतत्वान्नापि तृतीयः। भाष्यकृतांतरंगत्वेन स्थान संबंधस्य कथनेपि[2] सूत्रकाररीत्या ज्ञापकत्व स्वीकारे बाधकाभावेन परिभाषाणाम[3]नित्यत्वानुवादक परिभाषास्वीकारे लक्ष्य विसंवादाभावे[4]–नैतादृश्यभाष्यविरोधस्य दोषा[5] संपादकत्वेन च[6] नापि चतुथोऽत आह। किञ्च **विधाविति।**[7] एवं परिभाषा[8] फलस्य विधीयत इति क्रियाध्याहारेणैव लाघवात् सिद्धे तदंशे गुरुतरयत्न[9]स्वीकारस्यानुचित्तवादिति भावः। वृद्धिरादै[10]च् सूत्रे तदे भावितानां संज्ञेति पक्षे[11] शालीयादौ वृत्धलक्षणः छो न स्यादिति[12] दूषणदानेन मालादीनां चेत्यादि ज्ञापकाच्चेक् परिभाषायां विधीयत[13] –

---

1. 'का' नाऽस्ति प-1.
2. कथनोपि अ-3; कथनेमि अ-4.
3. परिभाषणां अ-4.
4. संभावेने प-2.
5. दोष प-1.
6. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 चानापि अ-1, अ-3 द्यानापि ज-2.
7. पाठोऽयं अ-4; किं च विधाति अ-1, ज-2, अ-3, प-1, प-2.
8. परिषोमोपरस्य विधीयत प-1.
9. गुरुतारपल प-2.
10. 1/1/1 अष्टा.
11. पक्ष अ-4; पदेशालेपादौ ज-2.
12. द्योन प-2; ठोन अ-4.
13. सविधीयत अ-3.

एतेन यत्कैयटेन केचिदित्यादिनास्यैव वाग्रहणस्य तदनित्यत्व-ज्ञापक तोक्ता सापि चिन्त्या, प्रत्याख्यानपरभाष्यविरोधात्। चक्षिङो-ङकारस्यान्त इदित्त्वाभावसम्पादनेन चारितार्थ्याच्च। 'तनादि' सूत्रे कृञ्ग्रहणस्य भाष्ये प्रत्याख्यानाच्च॥97॥

एवमेव-

आतिदेशिकमनित्यम्॥98॥

इत्यादि भाष्यानुक्तं बोध्यम्।

इत्याध्याहार[1] बोधनाद्विधीयत इत्यध्याहारे मानाभावेन मदुक्तार्थस्वीकार स्यैवौचित्य[2]मित्यस्य वक्तुमशक्यत्वात्। अन्यथा शलादीनां वृद्धत्वा[3]भावेन तदुदाहरणभाष्यासंगतेरिति दिक्॥101॥

नमस्यति देवानित्यादा[4]विति। आदिना[5]मुनित्रयं नमस्कृत्येत्यस्य[6] संग्रहः। केचित्तु मुनित्र[7]यमिति प्रतीक[8]स्य कारकविभक्तेर्बलवत्वात् द्वितीयेतिशेखर मादाय[9] न च नमः शब्दस्य साक्षात्प्रवृत्ति[10]गणेपाठात् साक्षात्प्रभृतीनि चेति कृजोयोगे गति संज्ञाया[11] तस्य उपसर्गवत् द्योतकतया कृञ एव प्रणत्यर्थे[12]कत्वेनानर्थकोयं नमः शब्द इति-

---

1. इत्यध्याहार ज-2, अ-4.
2. स्वीकारस्यैवोचित्यम् अ-3.
3. वपृत्धभावेन प-2.
4. देवनित्यदाविति प-2.
5. आङिनामुनित्रय
6. 'स्य' नाऽस्ति अ-3.
7. वयमिति अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; त्रयमिति कस्थकार अ-1, ज-2, अ-3.
9. आदायरच नमः प-2; आदाय न च मनः अ-4, ज-2, अ-3.
10. प्राभृतोनि अ-3.
11. गतित्यं प-2; गति संज्ञां शब्द इति तस्य स्वदिगण इति पाठः प-1 पुस्तके.
12. प्रणत्यर्थकोयं नमः अ-4.

सर्वविधिभ्यो लोपविधिरिड्विधिश्च बलवान्॥99॥

स्वायम्भुवमित्यादि लोकेऽसाध्वेवेत्यन्यत्र विस्तरः॥99॥

तस्य[1] स्वरा[2]दिगण पठित[3] सत्वार्थक स्वस्[4]त्यादिसाहचर्याभावेन-सूत्रेऽग्रहणात्तद्योगे द्वितीयैव स्वरादिगणपठित[5] नमः शब्दयोगे तु चतुर्थीति[6] माध[7]वोक्तं समाधानमपि सम्यगेवेति वाच्यम्। रावणाय[8] नमस्कुर्याः इति[9] भट्टि[10]प्रयोगे द्वितीयाप्रसङ्गात्। न न स्वरादि पठितस्यायं प्रयोगः नमस्कुरसोरिति[11] सत्त्वानापत्तेः। तत्र नमः स्वस्तीति[12] चतुर्थीति जयमालानु[13]रोधात् सविसर्गपाठकल्पनेपि[14] स्वयं भुवे[15] नमस्कृत्येत्यादौ समासाना[16]पत्तिर्दुःपरि-हरेत्यादि[17]दूषणमभिदधुः तत्तु क्रियार्थोपपदस्येति[18] सूत्रास्फुर्ति विलसितम्।

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; तस्या अ-1, ज-2, अ-3.
2. स्वदिगण प-1, प-2 स्वरादि अ-3.
3. पठित प-2; पाठेतत्सत्वार्थक अ-4.
4. पाठोऽयं अ-4; स्वरत्यादि अ-1; स्वस्नयदि ज-2; स्वत्यादि प-1, प-2.
5. गणे प-2.
6. पाठोऽयं प-1, अ-4; चर्थोति अ-1, ज-2; चतुर्थोति अ-3; 'च' नाऽस्ति प-2.
7. माधवेनोक्तं अ-4.
8. रावणार्थ प-2; रावणादि अ-3.
9. 'इति' नाऽस्ति प-1, प-2, अ-3, अ-4.
10. भाट्टप्रयोगे अ-4.
11. नमस्कुरत्योरिति प-1.
12. 2/3/16 अष्टा.
13. जयसंगला प-2; जयमंगलनुरोत् अ-3.
14. कल्पनपि प-1.
15. भुवेनमस्कृतेत्यादौ अ-3; भुवनस्कृतेत्यादौ अ-4.
16. पाठोऽयं प-1, प-2, ज-2; समानापत्ति अ-1, अ-3, अ-4; परिहरेत्यादूषणं प-2; परिहारेत्या प-1, अ-4.
18. क्रियाथेपिपदस्य च कर्मणि स्थानि नः 2/3/14.

यदपि ननु हन्तेर्यङ्लुक्याशीर्लिङि वधादेशो न स्यादत आह-

किं चेमं विषयविभागमनादृत्य मुनि[1]त्रयमित्यादौ उपपदविभक्तेरिति न्याये नैव समाधानं कुर्वता त्वयापि रावणाय नमस्कुर्या:[2] स्यात् सीते[3]

स्वस्ति ते ध्रुवं स्वयं भुवे नमस्कृत्ये[4]त्यादौ द्वितीया वारणाय माधवाचार्य हृद्याश[5]यानुसरण्यनुसरणस्यैव कर्त्तव्यत्वात्। एतेन नारायणं[6] नमस्कृत्येत्या[7] दयोप्यनुगृहीता:। न च रावणाय नमस्कुर्या[8] इत्यत्र नम: स्वस्तीति चतुर्थीति तत्[9] व्याख्या[10]जयमंगला स्यात् सीते स्वस्ति ते ध्रुवमिति[11] तन्मूले सूत्रक्रमोदाहरण स्वर संदिग्दंतिशुंडापांत[12] इति वाच्यम्। एतादृश विषय[13] विभागाज्ञानखडगेन तस्य विच्छिन्नत्वात्। किं च तन्मतेपि[14] द्वितीयापत्तेर्दुवारत्वेन तदुक्तेरेवावलंव्यत्वात्। (न च क्रियार्थेति चतुर्थीति दोष निस्तार: रावणस्याप्रतिकूलत्वेन तादृशार्थस्य संचत्वात्[15]) अपि चात्र माधवग्रंथं

---

1. हत्यनुनिनित्रयमित्यादौ प-2; इत्यादे अ-4.
2. पाठोऽयं अ-4; नस्कुर्या अ-1, ज-2, प-1, प-2; न कुर्या: अ-3.
3. सोते प-1, प-2.
4. नस्कृतेत्यादौ अ-4.
5. हृत्यिद्या अ-4.
6. नाराणे अ-3.
7. नमस्कृतेत्यादौप्यनुगृहीता अ-4.
8. 'म' नाऽस्ति अ-3.
9. सन् प-2, सल् प-1, तद् अ-4.
10. व्याख्याजयणं नमस्कृत्ये मंगलास्यासोतैस्वस्ति ते इति पाठ: प-1; जयमंगलायाम् अ-4.
11. धुवमिति ज-2, अ-3, प-2, ध्रुवमपि प-1.
12. सदिग्धं तिशुडाया इति अ-4; शुंडापात ज-2, अ-3.
13. पाठोऽयं अ-4; 'विष' नाऽस्ति अ-3; विषविभागा अ-1, ज-, प-1, प-2.
14. 'अपि' नाऽति प-1.
15. तादृशार्थस्या संभवान् प-2; अयं कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु अ-1, ज-2, अ-3, अ-4 मातृकासु नोपलभ्यते; अयं पाठस्तु प-1, प-2 पुस्तकयो: एव प्ल यते.

प्रकृतिग्रहणे यङ्लुगन्तरस्यापि ग्रहणम्॥100॥

षाष्ठद्वित्वस्य द्विःप्रयोगत्वसिद्धान्तेन प्रयोगद्वयरूपे समुदाये प्रकृतिरूपत्वबोधनेनेदं न्यायसिद्धम्। अत एव जुहुधीत्यादौ द्वित्वे कृते धित्वसिद्धिरिति तदपि न, भाष्येऽदर्शनात्।

किन्च तेन सिद्धान्तेन प्रत्येकं द्वयोस्तत्त्वबोधनेऽपि समुदायस्य तत्त्वबोधने मानाभावः। अत एव 'दयतेर्दिगि' (7.4.9) इति सूत्रेऽस्तेःपरत्वाद् द्वित्वे कृते परस्यास्तेर्भूभावे कृते पूर्वस्य श्रवणं प्राप्नोतीत्याशङ्क्य विषयसम्तम्या श्रयणेन परिहृतं भाष्ये। अन्यथा

दूषयता त्वयापि परिभाषाप्रदीपा[1]र्चिषि रावणाय[2] नमस्कुर्या इत्यादौ क्रियार्थोपपदस्येति[3] चतुर्थी स्वीकृतै[4] चेति त्वदुक्तेः पूर्वापर विरोध[5] कथं न पर्यालोचयेरिति यत्किञ्चित्प्रलपितमेत[6]दिति दिक्॥102॥

समानो देशो यस्येति। समान[7]शब्दस्य समानदेशीय इत्यादौ एकार्थ[8]कत्ववत्समानांगग्रहणमिति संप्रसारणाच्चेति सूत्रस्थ वार्त्तिकस्थ समानशब्द[9]वच्चैकार्थकत्वेनांत्येन[10] समान एकोदेशः कालरुपो यस्य सोंत्यदेश[11] इत्यर्थः। भिन्नयोरपि कालयोरेकत्वमध्यवसितं बोध्यम्। **इतराव्यवधाने** –

---

1. प्रदीपार्षिचि ज–2.
2. 'य' नाऽस्ति प–1.
3. उपपादस्येति स्वीकृतै चेति इति पाठः अ–4.
4. स्वीकृते चेति अ–3; स्वीकृतैवेति ज–2, प–2; स्वीकृतेति प–1.
5. विरोधम् प–1.
6. प्रलपितमितादिति अ–4; प्रलयेपितमेतदिति ज–2.
7. समाने प–2.
8. एकार्थस्य प–1.
9. शब्द नाऽस्ति अ–4.
10. एकार्थिकत्वेनान्येत ज–2.
11. सोन्पदेश ज–2.

नेति[1]। ननु **अनस्तक्ष्णेत्यादौ** अल्लोपादीना[2]मनयावारणपरष्यड[3] संप्रसारण-सूत्रस्थ[4] भाष्यासंगतिः अन्त्यवर्णतद्वर्णयो[5]र्मध्येऽर्धमात्राकाल[6] व्यवाय सत्वादिति चेन्न। तस्य व्यापकत्वेन वारयितु[7]मशक्यत्वातद् व्यवधानस्य सोढव्यत्वेनांत्यवर्णतद्वर्णयोरित्युक्तया प्रत्या[8]सत्वावर्णविशिष्टस्यैव तस्य वार्यत्वेन चाऽदोषात्[9]। नन्वेवमपि[10] अदमुयङित्यत्रांत्यवर्ण रेफयोस्तादृशव्य[11]-वायाभावेनैतस्याः प्रवृत्या उत्वेपि[12] अंत्य वर्णदकारयोस्तत्वाभावेनै[13] तदप्रवृत्यादोष एवेति चैन्न[14]। इतरेत्यस्यविधि विधेयकार्यस्थानित्वा[15]नाक्रांतवर्णेत्यर्थेन त्वदुक्तशंका निरासात्[16]। अत्रेदं विचार्यते[17] विधि विधेयकार्य[18] निरुपितं

---

1. वेति अ-4.
2. अल्लोपोऽनः 6/4/134.
3. ष्यडः संप्रसारणम् 6/1/13 व्यदः प-1; ष्याडः अ-4.
4. 'सूत्र' नाऽस्ति, अ-3.
5. अत्यवर्णतद्वर्णयोः अ-3.
6. मध्यर्धमात्रा अ-4.
7. बार हतुम् प-1.
8. प्रत्यासत्या प-1; प्रत्यावर्ण अ-4.
9. चोदोषात् ज-2; चादोषात् प-2.
10. नचिवमपि प-2; न च मपि प-1.
11. तादश अ-3, ज-2.
12. प्रवृत्यावत्वेपि ज-2.
13. पाठोऽयं प-1, प-2, ज-2; इकारयो अ-1, अ-3; अंत्यवरादिकारयोस्तत्वा अ-4.
14. 'चेन्न' नाऽस्ति प-2.
15. स्थानित्या प-1, प-2; स्थानिवत्वा अ-4.
16. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4; निरासातु अ-1.
17. विचार्य्यते अ-4.
18. विधेयम् अ-3.

त्वदुक्तरीत्यैकाज्द्विर्वचन न्यायेन समुदायस्यैवा देशापत्तौ तदसङ्गतिः स्पष्टैव। तस्मादुत्तरखण्ड मादायैव यथायोगं तत्तत्कार्य्य प्रवृत्तिर्बोध्या।

स्थानित्वं किं कार्यद्वयनिरुपितसमुदायस्यस्थानि[1]त्वमुतप्रत्येकं तत्राप्याद्येऽनुद्भूतावयवस्थानि[2]उतोद् भूतावयवः तत्राद्येनाद्यः अंत्य[3]वर्णतद्वर्णयोः ककारादिव्यवधाना भावो वक्तव्यः। ककारादिश्च विधि[4] विधेयकार्यद्वय-समुदायस्थानित्वानाक्रांतः तत्र दकारस्य[5] समुदायस्थानिघट[6] कत्वस्यास्मिन् पक्षेऽभावेन प्रत्येकं तद्वर्णाभावात् कयोः ककारादिव्यवधानाभावो वक्तव्यः। एवं च यत्र दकाराव्यवहितपूर्ववृत्तिदकारांतरं तत्रैव तयोस्तद्[7] व्यवधानाभावो वक्तुं शक्येतेति[8] प्रकृते व्याप्ते न च मास्तु समुदाय घटकत्वेनरूपेण तस्य स्थानित्वं किंत्वनवयवत्वस्यतत्राव्याहतत्वात्तेन रुपेण तद्वर्णत्वम्। एव च तयोस्तद्व्यवधानाभावो वक्तुं शक्य एवेति वाच्यम्। विधिविधेय[9] कार्यनिरूपित कार्यित्वमेव तद्वर्णत्वम्[10]। तथा च समुदायस्यैव कार्यित्वेन तन्निरुपित तत्त्वस्य तद्वर्णेऽभावेन तथा वक्तुमशक्यत्वात्। न च न[11] वयं पूर्वोक्तं तद्वर्णत्वं ब्रूमः किंतु अंत्यसमीपवृत्तिर्योवर्णस्तत्त्वम्। एवं च तयोस्तत्व[12]-मव्याहतम्। किं च -

---

1. समुदायस्थ प-1 स्थानिनिष्ठटकत्वस्यास्मिन्पक्षे अभावेन प्रत्येकं तद्वर्ण भावात् कयोऽककाराव्यवहितव्यवहितपूर्ववृत्ति इति पाठोपलभ्यते अ-4 मातृकायाम्.
2. स्थानी अ-3.
3. अंत्यवर्गतद्वर्णमात्रद्वर्णयोः ककारादि अ-3.
4. विधिर्धेयकार्य प-2.
5. डुकारस्य अ-3.
6. घटकस्यास्मिन् अ-3; घटकस्यास्मिन् ज-2.
7. एवं च यत्रादकारा प-2.
8. 'तद्' नाऽस्ति प-1.
9. विधेविधेय प-1, प-2; विधिविधेयत् अ-3.
10. एवं च तयोस्तद् इत्याभ्य तद्वर्गत्वम् इत्यन्तं नाऽस्ति ज-2 मातृकायाम्.
11. न च न चवयम् अ-4.
12. तत्वव्याहतम् प-2; वत्त्वयथाहतम् ज-2; तत्त्वमयाहृतम् अ-4; अथोहतम् अ-3.

तद्वर्णपदेन स्थानित्वा[1]क्रांतोऽनुद्भूत समुदायो वागृह्यते इति वाच्यम्। तावत्तापि अनुद्भूता वयवसमुदाय स्थले प्रत्येकं स्थानित्वाभावस्य स्वाश्वादौ प्रसिद्धया अदद्रीत्येतत् प्रयोगसमवायिरेफस्य स्थानित्वानाक्रांतककारादि[2] तुल्यत्वेन तद्[3] व्यवधानादव्याप्तेः[4]। द्वितीये तु हंसशिरांसीत्या[5]दावव्याप्तेः। किं च अदमुय[6]ङीत्यादि लक्ष्या[7]नुरोधेन कार्यद्वय[8] निरूपित समुदाय स्थानि[9]त्वानां क्रांतत्वे लक्षणार्थेपि अनस्त[10]क्ष्णेतयाद्यनुरोधेनैक कार्य निरूपितत्त्वस्याप्यावश्यकतया चलीक्लप्यादौ[11] परिभाषा प्रवृत्तिप्रसंगात्। तथा हि ए ओङ् सूत्रे भाष्ये[12] वर्णैकदेशानां वर्णग्रहणेन ग्रहणमिति पक्षमुपक्रम्य ऋकारोत्तरा च भागस्य[13] स्पष्टं वर्णत्वाभावाभाव[14]भावबोधनेन तद् व्यवधानस्यावार्यत्वात्। पूर्वत्रलत्वा[15] भावप्रसङ्गे शेखरस्य चली[16] क्लप्यत इत्यादावुत्तराज्

---

1. स्थानित्यांक्रांतो अ-3; स्थानिना.
2. 'क' नाऽस्ति प-2.
3. तद्वावः धानादव्याप्तेः अ-3.
4. हंसशिरासोसोत्यावव्याप्तेः अ-2.
5. अव्याप्तेः तयोरप्रतीत्यादत्तोत्तरत्वाच्च द्वितीये इति पाठान्तरं प-1 मातृकायामुपलभ्यते.
6. वसठोऽयं प-1; अदमुपङित्यादि प-2, अ-4; अदमुपठितादि अ-1; अ-3; अदमुपहित्यादि ज-2.
7. कथ्यानु अ-3.
8. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; कार्याद्वय अ-1; कार्यद्वया ज-2, अ-3.
9. स्थानित्वो लक्षणार्थोपि प-1; स्थानित्वानाक्रातत्वे ज-2.
10. अनस्तक्ष्याद्यनु प-2.
11. चतोमृजाप्यादौ ज-2.
12. वर्णक प-1, अ-3 भाष्येकेदेशानां अ-4.
13. भागस्पष्ट अ-3; भाग्यस्पष्टम् ज-2; भोगस्य स्पष्टवर्णत्वा अ-4.
14. पाठोऽयं अ-4; वर्णत्वाभावभवबोधनेन अ-1, ज-2; वर्णत्वाभाव नव बोधनेन अ-3; वर्णत्वाभावबोधनेन प-1, प-2.
15. तत्त्वाभाव ज-2.
16. शेखरस्य चलीकुय्यत प-2; शेखरस्य च वलीक्लृप्यत अ-4; वलीकल्प्यत अ-3; वलीक्षप्यत ज-2.

'भूसूवोः' (7.3.88) इत्यस्य तदन्ताङ्गस्येत्यर्थात् प्राप्तस्य गुणनिषेध

भागेन[1] व्यवधानात् परिभाषाया[2] अप्रवृत्तौ उभयत्रापि लत्वमिति ग्रन्थोव्याहतः अज्[3] भागस्य वर्ण[4]व्यवहाराभावेन तद्व्यवधानसत्त्वेपि वर्णव्यवधानशून्यत्वस्य[5] सत्वात्[6]। किं च स्थानित्वाना क्रांतवर्णेत्यत्र किं वर्ण पदेन तत्तत् वर्णकूटस्यतद्व्यवधान[7] शून्यत्वमुतप्रत्येकं तद्व्यवधानशून्यत्वं वा नाद्यः। विद्ध इत्यादावकारव्यवधानेपि तत्तत्कूटव्यवधान[8]भावेनातिव्याप्तौ तत् परिहारकमूलशैथिल्यात्। चलोक्ल[9]प्यादावप्यतिव्याप्तेश्च[10] न द्वितीयः चलीक्लप्यादावेव[11] दोषात्। तदर्थं स्थानित्वा[12] नाक्रांतोयस्तद्[13] व्यवधानशून्यत्व स्यावश्यकत्वेऽनस्तक्ष्णे[14]त्यादौ कालव्यवधायाद[15] प्राप्तौ कालान्यत्व[16]मपि विशेषण[17] देयम्। एवं च विधि विधेय कार्यस्थानित्वाना[18]क्रांतः कालान्यो-

---

1. भाग प-1.
2. परिभाषया अ-4.
3. अजु प-1.
4. वर्णसत्वेन ये ज-4.
5. शून्यत्वस्यत्वात् प-2.
6. सात्वात् अ-4.
7. कूटस्तव्यवधान प-2, अ-3.
8. व्यवधानाभावेनाति अ-4.
9. चलीक्लृप्यादावति अ-4.
10. व्याप्तश्च अ-3.
11. 'व' नाऽस्ति प-2.
12. स्थानिवत्वा ना प-1.
13. 'द्' नाऽस्ति
14. 'ऽ' नाऽस्ति प-1; ऽन्यस्तक्षणैत्यादौ अ-3.
15. कालव्यधायादा ज-2, अ-3.
16. कात्यान्यत्वमपि ज-2.
17. विशेषण प-1.
18. स्थानित्या प-1, प-2.

स्य बोभूत्विति नियम इति न तद्विरोधः। तस्माद्धन्तेर्यङ्लुकि वध्यादित्यादिमाधवाद्युदाहृतं चिन्त्यमेवेत्यन्यत्र विस्तरः॥100॥

यदपि ननु 'वृद्धिर्यस्याचामादिः' (1.1.73) इत्यत्रेक्परिभाषोपस्थितौ शालीयाद्यसिद्धिरत आह-

विधौ परिभाषोपतिष्ठते नानुवादे॥101॥

यस्तद्व्यवधानशून्यत्वं लक्षणं पर्यवसन्नम्। अस्यापि[1] हंसशिरांसीत्यादावव्याप्तेरिति दिक्।

आद्यपक्षीय द्वितीयोऽपि[2] न सूत्रे द्वंद्वा[3]निर्देशेन प्रत्येकमेवस्थानित्वश्रवणात्[4] न तादृश स्थान्यादेशभावः[5] कल्पयितुं शक्यः। दात्परस्य ङःदस्य चम इति सूत्र[6]श्रुत निमित्तत्व कार्यित्वस्य च युगपद्दकारांशे[7] बाधाच्च हंसशिरांसीत्यादावव्याप्तेश्च न द्वितीयोऽपि अनुकार्यानुकरण[8]योरभेद विवक्षायां गवित्ययमाहेत्यादाववादेश[9] स्थानित्वानाक्रांतः कालान्योघः[10]।

---

1. अस्मापि अ-3;अस्यपि अ-4.
2. 'पि' नाऽस्ति प-1.
3. द्वंद्वनिर्देशेन अ-4.
4. श्रवणानतादशा अ-3, ज-2.
5. द्वेशभावः अ-4.
6. इति सूत्रयोरभेद विवक्षायाम् अ-4; सूत्रश्रुती नमितत्वनिमित्तत्व भार्योत्वस्य च प-2.
7. युगपद्वकारांशे अ-4.
8. पाठोऽयं प-1, प-2 अ-4; अनुकार्यानुकारयोः अ-1; अनुकार्यानुकारणयारभेद ज-2.
9. माहेत्यादावादेश अ-4.
10. कालार्न्येयः अ-3; कांत्यार्मेयः ज-2; कालायोन्यऽयावान् अ-4.

यावान्वर्णस्तदंत पातित्वस्य रेफेपि सत्वेनादमुयङि[1] त्यादावव्याप्तेः। न च प्रथमप्रवृत्तत्व विशेषणेन निर्वाहः प्रथमत्वस्य तदुत्तर प्रवर्त्तमान निरुप्यत्वेन[2] गवित्ययमाहेत्यादौ तथात्वा[3]भावात् इति वाच्यम्। दत्तेपि विशेषणे दोषस्य दुर्धरत्वात्। तत्र प्रथमप्रवृत्तत्वं[4] किं विधौ विशेषणं उतकार्येनाद्यः। अदमुयङादावेक 'वारं' प्रवृत्याक्रमेण कार्यद्वयस्यापि विधानात् पुनः सूत्राप्रवृतैः। न च लक्षण[5] भेदेन तत्वं तावत्तापि पूर्व[6] प्रवृत्तसूत्रेणैव कार्यद्वयस्यापि[7] क्रमेण सिद्धौ पुनः सूत्रप्रवृत्तेः फलाभावेन तत्कल्पनायोगात्। पूर्वप्रवृत्तसूत्रे[8]दस्यम इत्यंशं विहायेतरस्य विधानेन तदुत्तर[9] प्रवृत्तसूत्रेण तस्यांशस्यापि विधानेतु सूत्रार्थ परित्यागेन प्रथमप्रवृत्तवाक्येऽप्रमाण्येन साधुत्वानापत्तेः तत्परित्यागेमाना-भावाच्च[11]। न च योगविभागः[12] अदसोऽसेर्दा[13]दुदोमः उत्तरत्रादसासे[14] रित्यनुवर्तत इति तत्त्वं संभवत्येवेति[15] वाच्यम्। हंस[16] शिरांसीत्यादौ

---

1. मुपङितावदाव्याप्तैः अ-3; मुयङित्यादोव्याप्तिः अ-4; मुपङितादादव्याप्तेः ज-2.
2. निरूपत्वेन अ-4.
3. तत्त्वाभावाच्यम् प-2.
4. सूत्राप्रवृतेः अ-3, ज-2; सूत्राप्रवृत्तौः प-2.
5. लक्षणे भेदेन अ-3, लक्षणाभेदेन प-1.
6. पूर्ववत् प्रवृत्त अ-4.
7. द्वयस्यपि प-2, अ-4.
8. दस्य इत्यंशे प-1.
9. सूत्रेदस्यामत अ-1, ज-2, प-1, अ-3.
11. 'भा' नाऽस्ति अ-1, ज-2, अ-3.
12. भागः नाऽस्ति अ-4.
13. अदसोऽसेर्दादु दोमः 8/2/20.
14. उत्तरत्रादसासोरित्यनुवर्तत ज-2; उत्तरत्रादसाधोरित्य अ-3; उत्तरदसोसेरित्यनुवर्तते अ-4.
15. 'वे' नाऽस्ति प-1.
16. हसाशिरांसोत्यादौ अ-4.

अनुद्यमानविशेषणेषु तन्नियामकपरिभाषा नोपतिष्ठत इति तदर्थः। विध्यङ्गभूतानां परिभाषाणां विधेयेनासिद्धतया सम्बन्धासम्भवेऽपि तद्विशेषणे व्यवस्थापकत्वेन चरितार्थानां तद्विशेषणव्यवस्थापकत्वे

तदसंभवेनाव्याप्तेः। नापि द्वितीयः हंसशिरांसीत्यत्रैवा व्याप्तेः। किं च सुध्युपास्यादिलक्ष्ये[1]द्विवचनविध्यपेक्षयापूर्वप्रवृत्तयण् विधिविधेयकार्ये[2] स्थानित्वानाक्रांतत्त्वस्यरेफ न कारादिषु सत्वे न दोष ध्रौव्याच्च[3]। हंस शिरांसीत्यत्रैवदोध सद्भावेनेतत्परिभाषासाध्य लक्ष्य विषयकतत्तत् विधि[4] विधेयकार्यस्थानित्वानाक्रांतकालान्यो[5] यस्तद्व्यवधानशून्यत्वरुपलक्षणमपि[6] वक्तुमशक्यमेवेति दिक्।

एतत्परिभाषासाध्यलक्ष्यविषयको योऽल्लोपोऽनः[7] इति विधिस्तद्विधेयकार्यस्थानित्वानाक्रांतत्त्वस्यादमुयङ्[8] प्रयोग समवायि रेफेपि सत्वेन प्राप्त दोष[9] वारणाय तत्तदिति। एवं चांत्यसदेशत्वं निर्वक्तुमशक्यमिति परिभाषार्थो[10] दुर्ज्ञेयः। अत एवैतत् साध्यप्रयोजनानामन्यथासिद्धिः प्रदर्शिताभाष्ये इति परिभाषा[11] स्वीकारो दुराग्रह[12] मूलक इति प्राप्ते ब्रूमः। एतत्परिभाषासाध्यलक्ष्य विषयकतद्विधिविधेयकार्यस्थानिविशेषणत्वानाक्रांत स्थानित्वाना-

---

1. लक्ष्योद्विर्वचन ज-2, अ-3.
2. कायें प-2; काय अ-4.
3. धौव्याच्च प-1; धौच्याच्च प-2.
4. 'विधि' नाऽस्ति प-2.
5. कालान्योन्यस्ततद् अ-4.
6. लाक्षणमपि अ-4.
7. सं. पाठः 6/4/134 अष्टा.
8. असुयङ् अ-3.
9. दोषो अ-3.
10. परिभाषार्थो ज-2.
11. 'परि' नाऽस्ति प-2; परिभाषास्वीकारो अ-4.
12. दुराग्रहं मृकलक् अ-4.

मानाभव इति तर्कमूलेयम्।

किञ्च 'उदीचामातः स्थाने' (7.3.46) इति सूत्रे स्थाने-ग्रहण मस्या लिङ्गम्। अन्यथा 'षष्ठी स्थाने' (1.1.49) इति परिभाषयैव

क्रांतः कालान्यो[1]यस्तद्व्यवधानशून्यत्वम्। कालान्यो यो वर्ण इत्युक्ते चलीक्लृप्यादौ[2]-

प्राप्तदोष[3]वारणाय इति। कालान्य[4] इत्यनुक्तौ तु[5] अनस्तक्ष्णेत्यादाव-व्याप्तिः। अदमुयङादिसंग्रहाय स्थानित्वाक्रांतत्त्वम्। हंस शिरांसीत्यादाव-व्याप्तिनिरासाय स्थानिविशेषण[6]त्वानांक्रांतेति। अन[7]चिचेत्यादिविधिविधेय-द्वित्वरुपकार्यस्थानि विशेषणत्वाद्[8]यनाक्रांतत्त्वस्य रेफ न[9]कारादौ सत्वे नाव्याप्तेरेतत्परिभाषा साध्य[10] लक्ष्यविषयकत्वं विधौ विशेषणम्। तावत्तापि एतत्परिभाषासाध्यलक्ष्यं अनस्तक्ष्णेति तद्विषयकाल्लोपो[11] न विधिविधेय-कार्यस्थानि विशेषणत्वाद्यनाक्रांतत्वस्य रेफादौ सत्वेनाव्याप्ते[12]स्तत्तदिति विशेषणं विधौ बोध्यम्। न च स्थानि विशेषणत्वानाक्रांत[13] इत्येवास्तु लक्षणघटकं

---

1. कालान्या अ-4.
2. चलोल्लप्यादौ ज-2; चलोकृप्यादौ प-1; वलाकृप्यदौ अ-4.
3. प्राप्ते अ-4.
4. कालान्योयस्त प-1, प-2.
5. नु प-1, प-2, अ-3.
6. विशेषणत्वा ना ज-2; विशेषणानाक्रांतेति अ-4.
7. 8/4/47 अष्टा. अनविचेत्यादि ज-2, अ-3.
8. 'द्या' अ-4.
9. पाठोऽयं प-1, अ-4; नकादौ अ-1, ज-2, प-2, अ-3.
10. 'ध्य' नाऽस्ति प-2; साध्यलक्ष्यम् अ-4.
11. तद्विषकालोनावधिविधयकार्य ज-2.
12. सत्वेनव्याप्ते: अ-3.
13. स्थानित्वानाक्रांत प-1.

तल्लाभे तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति। तन्न, 'उदात्तस्वरितयोर्यणः' (8.2.4)

मास्तु स्थानित्वाक्रांत इति एवं च तावत्तापि दोषवारण संभवादिति[1] वाच्यम्। अदमुयङादौरेफेपि[2] तत्वसत्वाद्दोषा[3]पत्तेः। उत्वरूपकार्यनिरूपितस्थानिरेफ-विशेषणत्वाक्रांतदकारान्य वर्णघटकत्वस्य[4] रेफेपि सत्वेन[5] तद्व्यवधाने दोष ध्रोव्यात्[6]। यद्वा स्थानिविशेषणत्वाना[7]क्रांतस्थानित्वानाक्रांत एतदन्यतर इति निवेशनीयम् अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। वस्तुतस्तु[8] इतरत्वं अच्त्वाश्रयो यस्तत्त्वम्।

अच् त्वाश्रयश्च साक्षात्परम्परया। साक्षा[9]द्विरुद्ध इत्यत्र परम्परया ऋकाराञ् भागे[10] एवं च न काप्यनु[11]पपत्तिरिति दिक्।

अत्रार्थे[12] मानंतु न सम्प्रसारणे इति मूलोक्तमेव। किञ्च केचिदिच्छंतिलत्व वदिति[13] वार्त्तिकोक्तमपि बोध्यम्। उभयवादिसंमतस्यैव दृष्टांतत्त्वात्। यद्ययं

1. 'इति' नाऽस्ति प-1, प-2.
2. उदमुपङादौ अ-4.
3. पाठोऽयं प-1, प-2; त्यत्वादोधापत्तेः अ-1, ज-2; तत्त्वत्वादोषायते अ-3; सत्वादोषापत्तेः अ-4.
4. 'स्य' नाऽस्ति अ-3.
5. 'न' नाऽस्ति प-1; सत्वेनदतव्यवधाने अ-4.
6. ध्रौन्यात् प-2.
7. 'ना' नाऽस्ति प-1.
8. 'स्तु' नाऽस्ति।
9. पाठोऽयं अ-4; साक्षाद्विष इत्यत्र अ-1, अ-3, प-2; साक्षाद्विषट् त्यत्र ज-2; साक्षाद्वित्ध प-1.
10. भेगि अ-4.
11. क्वाप्यनुपपत्तिः प-2, अ-4, अ-3.
12. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4, अशर्थेमानं अ-1 ज-2, अ-3.
13. केचिदिंछत्त्विवदिति ज-2; केचिदिद्देतिलत्व वदिति प-2; केचिदिद्यविलत्वमिति प-1.

इत्यादौ 'ष्यङः' सम्प्रसारणम् (6.1.13) इति सूत्रभाष्योक्तरीत्या

परिष्कारो न स्यात्तदातदसंगति स्पष्टैव। कथं तर्हि प्रथम[1] प्रवृत्तविधि विधेय स्थानित्वानाक्रांतवर्णेति[2] वृत्धोक्तं लक्षणमिति चेत्तददमुयङि[3]त्येतल्लक्ष्य-साधकमित्यवेहि[4]। तदपि लक्षणं किंचिदंशे मदुक्त रीत्यापूरितं सदेवलक्ष्यसाधकं भवति नान्यथेति[5] वोध्यम्। न चेको गुणवृद्धीतिसूत्रस्थ भाष्यविरोधः[6] तत्र हि तच्छेष[7] पक्षे मृजेर्वृद्धिरित्यादौ[8] विनिगमना विरहात्परिभाषा[9] द्वयस्यापि[10] निवृत्तौ सर्वादेशवृद्धिः[11] स्यादिति प्रकम्यतत्पक्षे सर्वत्रप्रश्लेषयोग विभागादिना दोषवारणं कृतम्। तत्र[12] मृजेर्वृद्धिरित्यंशेमृजेर्वृद्धिरचः[13] ततोञ्णिति इति योग विभागे न दोष मुद्धृत्यान्यामार्ट् इत्यत्रापि वृद्धिः प्राप्नोति इत्याशंक्यानया-परिभाषया दोषवारण[14] परभाष्यासंगतिः ऋकारोत्तराज्[15] भागेनव्यवधानादिति[16] वाच्यम्। तत्र ऋकारस्य विशिष्टस्येव[17] कार्य्यित्वेन उत्तरभागस्या-

---

1. 'म' नाऽस्ति ज-2; प्रथमप्रथमप्रवृत्त अ-3.
2. वणेति ज-2.
3. चेत इदमुपङि ज-2; चेतदमुयङि प-2; चेत्तदमुयङि अ-4.
4. इत्यहि अ-4.
5. 'ति' नाऽस्ति अ-4.
6. विरोधेः प-2.
7. तच्छेवपक्षे प-1; तच्छेवक्षे प-2; तच्छेय पक्षे अ-3.
8. 7/2/114 अष्टा.
9. 'तू' नाऽस्ति अ-4.
10. 'अपि' नाऽस्ति प-1.
11. सर्वादेवृद्धिः प-1.
12. तत अ-3.
13. अवः अ-4.
14. परिभाष्या प-1; दोषवारभाष्यासंगति अ-4.
15. अत्वारोत् राज् प-1.
16. शव्यधनादिति अ-3.
17. एवम् ज-2.

व्यवधायकत्वात्। किं चान्यर्थं क्रियमाणे[1] ग्रहणे नैवैतद्दोषवारणस्य ष्यङ इति सूत्रे[2] भाष्ये भाष्यकृतोक्तत्वेन नैतत्परिभाषाप्रयोजनमिति इकोगुण[3] इति सूत्रस्थ विवरणाच्च[4]। न चैवमपि व्यङ इति सूत्रस्थ[5] भाष्यविरोधः। तत्र वसोः सम्प्रसारण[6] प्रयोजनं विदुषः पश्येति प्रथमवकारस्य[7] सम्प्रसारणा-भावमनयोक्त्वा[8] नैतदस्ति निर्दिश्यमानपरिभाषया न भविष्यति[9] इत्युक्तम्। एवं च[10] भवदुक्तरीत्या परिभाषायाः संचारा[11]भावादिति वाच्यम्। परिभाषोपक्रमे[12] कानि प्रयोजनानि[13] न सम्प्रसारणे[14] सम्प्रसारणम्। न **सम्प्रसारण** इति न वक्तव्यम्। कस्मान्न भवति व्यधेविद्धमिति[15]। अनंत्यविकारेति न दोषो भवति। नैतदस्ति[16] क्रियते[17]न्यास एवेति भाष्यस्थ[18]

---

1. क्रीयमाणे प-1; क्रियमाणेग्रहणे अ-3, अ-4.
2. सूत्रैः प-2.
3. इको गुणवृद्धो 1/1/3.
4. विवरणाच्च इत्यारभ्य संप्रसारणाभावं इत्यन्तं अ-4 मातृकायां नाऽस्ति.
5. सूत्रेभाष्य प-1.
6. सम्प्रसारणे प-2 वसोः सम्प्रसारणम्- 6/4/131 अष्टा.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; प्रथमचकारस्य अ-1; प्रथमचरकारस्य अ-3.
8. अनवोक्त्वा अ-3; अनवोक्ता ज-2.
9. 'म' नाऽस्ति अ-3.
10. 'च' नोपलभ्यते प-1.
11. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; सर्वरा भावादिति अ-1, ज-2, अ-3.
12. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 सर्वरा भावादिति अ-1, ज-2, अ-3.
13. 'प' नाऽस्ति ज-2; प्रज्यानानि अ-4.
14. न सम्प्रसारणे सम्प्रसारणम् 6/1/37 संसारणम् प-1.
15. न संप्रसारणे सम्पसारणे सम्प्रसारणम् अ-3, ज-2.
16. नेतदमिति अ-4.
17. क्रीयते प-1.
18. 'स्थ' नाऽस्ति ज-2, अ-3.

प्रतीकमुपादायांत्यसमान[1]देशत्वाभावाभावान्न[2] सम्प्रसारणमित्यस्यावश्य-कत्वादिति[3] भाव इति वदता विवरणकृताऽत्रापि तत्समाधेर्बोधनात्। एवं च तत्र दोषमनुद्भाव्य क्रियते[4] न्यास एवेति[5] समाधि[6] करणवदत्रापि निर्देश्यमान[7] परिभाषयासमाधिकरणं बोध्यम्। एवमेवांत्यसदेशानंत्यसदेशयोरित्यर्थस्वी-कारेण स्यः नमति इत्यादावनया प्राप्ताऽति-

व्याप्तिवारणपरभाष्यमपि बोध्यम्। अत एव मूलेपि नमतीत्यादीनां वारणोत्तर[8]मेवांन्त्यसदेशत्वनिर्वचनं कुर्वता ग्रन्थकृतापि नमतीत्यादौ न दोष इति गूढाशयः प्रदर्शितः[9] अन्यथा वारणंतु एता[10]दृशार्थज्ञानमूलक[11] भाष्यमूलकं मूले परिभाषास्वीकारेमुख्यायुक्तिस्तु अदसो[12]ऽसेरिति सूत्रस्थ भाष्यमेव अन्यत्र परिभाषाऽकरण[13] लाघवेन यथाकथंचित्दोषवारण संभवेपि तत्रागतेरिति संक्षेपः।

उदात्तनिर्देशादिति। यथासंख्यमनुदेशः समानां[14] इति सूत्रे क्रमेणान्वय

---

1. समाना अ-3.
2. अभावा नाऽस्ति प-1, प-2, अ-3.
3. आवश्यकत्वा भाव इति प-1.
4. क्रियन्ते अ-4.
5. 'इति' नाऽस्ति प-1.
6. समानाधिकरण अ-4.
7. निर्दिश्यमान अ-4.
8. वारणेतरमेवात्यसदेशस्त्वे अ-4.
9. प्रदशितिः प-2.
10. एतादशार्थ ज-2; एतादशार्थाज्ञान प-1, प-2; एतादशार्थाज्ञान अ-4.
11. शूलक प-2.
12. 8/2/20 अष्टा.
13. परिभाषाः करणम् अ-4.
14. सं. पाठः यथासंख्यमनुदेशः समानाम्- 1/3/10 अष्टा. यथाख्यत्यात्पर स्येति सूत्रे अ-1, प-1, प-2, अ-3, अ-4; यथाग्यत्यात् परस्येति सूत्रे ज-2.

वारणार्थं यत्र स्वरितत्त्वं प्रतिज्ञातं तत्रैव यथासंख्यप्रवृत्तिस्तथा यत्रोदात्त निर्देशस्त[1]त्रेयमुपतिष्ठत[2] इति भावः।

लक्ष्येलक्षणस्येतीति। ननु विकारकृतलक्ष्यभेदानाश्रयणेंऽगस्येति[3] सूत्रस्थ वव्रश्चे[4]त्युदाहरणं परभाष्यासंगतिः। तत्र सम्प्रसारणे पूर्वरूपे उरदत्वे[5] च कृते पुनः प्राप्तसंसारण[6]निषेधाय संप्रसारणत्व[7]स्यादेशेनैव प्राप्यत्वात्। तस्य चोरदत्वस्थानिन्यभावेनाति देष्टुमशक्यत्वात्। किन्तु पूर्वरूप स्थानि विद्यमान[8]स्य तस्यातिदेशेन पूर्वरूपैकादेशेऽतिदेशे-

पश्चादुरदत्वेपुनस्तेनैवातिदेशेनोरदत्वे[9] तस्यातिदेशो वक्तव्य[10] इति। अतिदेशस्य[11] द्विवारं प्रवृत्तेः किं च पूर्वरुपोत्तरं परम्परयांगनिमित्त[12] प्रत्यय निमित्त उरदत्वस्य बहिरंगत्वेनासिद्धत्वादभ्यासविकारे बाध्यबाधक[13] भावाद्वा प्राप्त[14] सम्प्रसारणनिषेधाय सम्प्रसारणत्वस्यातिदेशे पुन उरदत्वोत्तरक्रियमाण[15]

---

1. निद्र्देशः अ-4.
2. उपतिष्ठ च ज-2, प-1.
3. अङ्गस्य 6/4/1 अष्टा.
4. वजश्चेत्यु अ-4.
5. उरदस्वे च प-1.
6. प्राप्तसंप्रसारणत्व स्यादितिदेशेनेप्राप्यत्वात् तस्य चोरदत्वस्थानि इति पाठः अ-4.
7. पाठोऽयं प-1; संप्रसारणहस्यातिदेशेनैव अ-1, ज-2; संप्रसारणवृद्धस्यतिदेशेनैव अ-3; संप्रसारणत्वस्यतिदेशेनैव प-2.
8. स्थानिनिविद्यमानस्य अ-3; स्थानिति ज-2.
9. उरदत्वो ज-2, अ-3; उरदत्वे अ-4.
10. वक्तव्यमिति अ-4.
11. अतिदेशविचार प्रवृत्ति किं च सर्वरुपोत्तरपरंपरयाग इति पाठः अ-4.
12. 'नि' नाऽस्ति प-1.
13. बाधकाभावाद्वा प-1.
14. प्राप्त्यसम्प्रसारणत्वस्यातिदेशे इति पाठः प-1.
15. क्रीयमान प-1.

निषेधाय पूर्वरूपे तददतिदेशो[1] पश्चादुरदत्वे तस्यातिदेष्टव्यत्वे न[2] वारत्रयमतिदेश प्रवृत्तेः। न चोरदत्वात्पूर्वमतिदिष्टस्य संप्रसारणत्वस्यतत्प्रयुक्त निषेधे उरदत्वे[3] पुनरतिदेशेन तस्यैवातिदेशे द्विवारमेवातिदेश इति वारत्रयमतिदेश[4] प्रवृत्तिरनु- चितेति[5] वाच्यम्। यत्कार्यप्रवृत्तये[6] यत्धर्मवुद्धिस्तत्धर्मप्रयुक्त तत्कार्येजाते तत्धर्मबुद्धेरेवाभावात्[7]। अन्यथा नक्यत्र तिष्ठेत्यादौ स्कोरिति[8]क लोपा- प्रवृत्तयेऽति[9] दिष्टात्ववुद्धेरनिवृत्तौ मकारोत्तराकार[10]स्यसंयोगपरत्वाभावेनगुरू त्वानापत्याप्लुतानापत्तेः। संयोगसंज्ञायाः पूर्वपरोभयकार्यत्वेन त्वन्मतेपि गुरू[12] संज्ञानिमित्तसंयोगसंज्ञायां कथं न स्थानिवत्वमिति तु न च वाच्यम्। न च[13] गुरुसंज्ञायां कर्त्तव्यायां स्थानिवत्वम्। तस्यापिसंयोग-संज्ञायामेव-पर्यवसानात्[14]। न चोरदत्वोत्तरं पूर्वरुपैकादेशस्य[15] स्थानिवत्वे न संप्रसारणत्वातिदेशे पश्चादुरदत्वे तददतिदेशस्य कर्तुं शक्यत्वादिति वाच्यम्। उरदत्वेन तस्यापहारात्।

---

1. तद इति ज-2, अ-3.
2. अतिदेष्टव्यत्वेनव स्येवातिदेशे मदवेवार मेवातिदेश इति वारत्रयमतिदेश प्रवृत्तैः इति पाठः अ-4.
3. उदरत्वे अ-3; उदत्वे तु अ-4.
4. दिशे प-2.
5. अनुचतेति वावाच्यम् अ-4.
6. प्रवृते ये प-2.
7. बुद्धेरेवेभावात् अ-3.
8. 'क' नाऽस्ति प-1, प-2 स्कोरिति लिष्टत्यादौ स्कोरिति कल्लो पाप्रवृत्तये इति पाठः अ-4.
9. प्रवृत्तयेतिदेश इति वारत्रमतिदेशप्रवृत्तिरनचितेतिवाच्यं यत्कार्यप्रवृत्तष्टोबुद्धेरतिवृत्तौ इति पाठान्तरं ज-2.
10. मकारोकारस्य प-2; 'त्त' नाऽस्ति प-1.
11. संयोगमंत्याभावेन प-1, प-2.
12. गुरुसंज्ञानिमित्तसंयोगसंज्ञानिमित्तसंयोगसंज्ञायाम् इति पाठः अ-4.
13. रूपं संज्ञायाम् अ-4.
14. पार्यवसानात् प-1, प-2, अ-3.
15. रुपेकादेशस्या निवत्वेन ज-2, अ-3.

मदुक्तरीतौ तु स्थानिवत्सूत्रस्थं निष्कौ[1]शांवि: अति खटव:[2] अतिखटवायेत्यादौ (स्थानिवत्वेनात्[3] प्राप्त सुलोप याडा[4]दिवारणाय प्रवृत्तङ्याप् स्थानिकोदीर्घभिन्न आदेशो[5] न) स्थानिवदित्यर्थक[6] ङ्याप् ग्रहणे अदीर्घ आदेशो न स्थानिवदिति वार्त्तिक कृदुक्तमेव। तत्रातिघट्वायेत्यादौ[7] ह्रस्वे स्थानिवत्वेन प्राप्त अप्त्व[8]निषेधेन सुपिचेति दीर्घात्पूर्वस्थानिवद्भाव इत्यस्यार्थस्य सूचनात्। याडाप इत्यादौ आ आप् इति प्रश्लेषमाश्रित्यवार्त्तिकप्रत्याख्यानपर भाष्यव्याख्यापक[9] यत्रोदाहरणे सूत्र भाष्यवार्त्तिकानां फलभेद[10] आपतति[11] तेषामनभिधानमेव यथाऽतिखट्टस्य[12] अ: अतिखट्टा[13] इत्यादौ तत्र हि भाष्यमते सुलोप:वार्त्तिक मते तु स्थानिवद्भावनिषेधेनाप्त्वस्य ह्रस्वे विच्छिन्नत्वेनोत्तरत्रवरोहा भावात्। यत्तु[14]दीर्घात्पूर्वफलाभावेन स्थानिवत्वा[15]प्रवृत्तौ –

---

1. निष्कौशांति: अ–4.
2. अतिघट: प्रतिघटापत्यादौ अ–4.
3. स्थानिवत्वेनाप्त्वात् प्राप्त प–2; स्थानियत्वेनाऽवात् प–1.
4. याडादीवारणाय प–1; याडाद्दीवारणाय प–3.
5. आदेशे न अ–4; कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु प–1, प–2, अ–4 मातृकायामेव उपलभ्यते.
6. स्थानिवदित्यर्थ: अ–4; स्थानिवुदित्यर्थकम् अ–3.
7. घटायेतयादौ अ–4.
8. प्राद्वनिषेधेन ज–2; आकृ निषेधेन प–2; आरव निषेधेन अ–4.
9. परभाष्यख्यापक प–1, प–2; व्याख्याय यत्रो ज–2; व्याख्यापकयक यत्रो अ–4.
10. कलभेद अ–4.
11. अपतति प–1; आपरतति ते तेषाम् अ–4.
12. घखवस्य ज–2.
13. अतिखट्वा ज–2, अ–4.
14. पाठोऽयं प–1, प–2.
15. 'व' नाऽस्ति अ–4, स्थानिवद्भावनिषेधेन इत्यारभ्य स्थानिवत्वाप्रवृत्तौ इत्यन्तं ज–2 मातृकायां नाऽस्ति.

भेदस्यैवाभावाच्चेति विवरणशेखरादि ग्रन्थास्तु[1] प्राचीनानुसरणि[2]मनु-

सृताश्चिंत्या[3] एव मदुक्तरीत्या स्थानिवद्भाव प्रवृत्तौ भाष्यवार्त्तिक-योरेक[4]वाक्यत्वेनैव व्याख्येयत्वात्[5]। पूर्वोक्तलक्ष्ये सुलोपवारणन्तु अनभिध ानादेव बोध्यम्। अत एव साक्षात्स्थानिनिष्ठधर्मातिदेशकत्वेन कृतार्थ[6]स्य सूत्रस्य न परम्परयातिदेशेन[7]त्तत्सम्पादकत्वम्। दीर्घात्पूर्वं फलाभावेन तदप्रवृत्तावपि विशिष्टादेशोत्तरं[8] तत्प्रवृत्या फलभेदस्य नवीनत्वेन तथाफलभेदवार कंग्रथासंगत्यापत्या तेन तदभावस्य बोधनाच्च[9]। एतेन उरदत्वे[10] एकवार-मेवातिदेश[11]प्रवृत्या स्वाश्रयाश्रयत्वरूपपरम्परया[12] संबंधेन तदति[13]देशे क्व पुनर्लक्षणस्य[14] प्रवृत्तिरित्यपास्तम्। अतिदिष्टया[15]प्त्वमादाय न सुलोपादीनी-त्यनुक्त्वा तथा निषेधकरण परवार्त्तिक कृताप्यस्यार्थस्य सूचनाच्च[16]

---

1. ग्रन्थास्ते प-2; ग्रंथा तु अ-4.
2. अनुसराणिम् प-1, प-2.
3. चिंत्यामेव प-2.
4. रेक अ-4.
5. व्यायत्वात् अ-4, अत एव नाऽस्ति प-1, प-2.
6. 'न' नाऽस्ति अ-3.
7. प्रकृतार्थस्य अ-4.
8. आदेशोत्तरं वत् अ-4.
9. पूर्वं फलाभावेन इत्यारभ्य बोधनाच्च इत्यन्तं नाऽस्ति प-1, प-2.
10. 'द' नाऽस्ति अ-3.
11. देवाश ज-2, अ-3.
12. परम्परा संबंधेन प-2; रुपरंपरा अ-3; रुपरंपरसंबंधेन ज-2.
13. पाठोऽयं प-1, प-2; तदेशे क्व अ-1, ज-2, अ-3.
14. 'स्य' नाऽस्ति प-1; पुनर्लगस्य प-2.
15. दीर्घभिभेति दिष्ट ङ्याप्त्यत्यदायन प-1; दीर्घमिभे अतिदिष्टप्राप्त्वत्यादाय प-2; अतिदिष्टया दव मादायन अ-3; अतिदिष्ट ङ्याह्यमादाय अ-4.
16. सूचनाच्च परंपरयातिदेशेन मानमिति तत्रशेखरादिग्रंथाश्रेयतुदिर्धादिति पूर्वोक्त ग्रन्थातथैव लाभाच्च सम्प्रसारणतवस्य इति पाठः प-1, प-2.

सम्प्रसारणत्वस्य। स्थानित्वेनोपातालवृत्तित्वेन स्थान्यल[1] मात्रवृत्तित्वेन च स्थानिवत्सूत्रांतवद् भावाभ्यामपि तदनतिदेशात्[2]। नन्वत्र स्थानिवद्भाव एव न प्राप्नोति[3] वर्णेकदेशानां वर्णग्रहणेन वर्णग्रहणमिति पक्षे स्वतन्त्रवर्ण-सदृशरेफावभासस्य[4] पूर्वोत्तरयोरज्[5] भागयोः स्थानित्वात् स्थानिवद्भावस्तु अच[6] एव य आदेशस्तत्रैव। अत एव मारयतीत्यादौ वृद्धि। न च वर्णैकदेशानां[7] वर्णग्रहणेन वर्णग्रहणमुपपाद्य अथवा न गृह्यंते इति भाष्यस्थ अथवेति प्रतीकमुपादाय नरसिंहवत् वर्णांतरत्वात्सादृश्याच्च प्रत्यभिज्ञानात्[8] तत्त्वासिद्धया पृथगुपलब्धानां वर्णानां समुदाये नास्ति सत्त्वम्। समुदायवाचो युक्तिरपि तत्र वर्णांतरे[9] न तात्विकी। भ्रांतिवशांत्व[10]वयव सद्भावाश्रयेण प्रवृत्तेति कैयटेन तस्य भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्व सूचनाद्दोष इति वाच्यम्। तुल्यास्य[11] सूत्रे ऋकार[12] लृकारयोः सवर्णविधिरिति[13] वार्त्तिकेन तयोः सावर्ग्य स्वीकारे माहृणामित्येतत्सिद्धये[14] ऋवर्णान्नस्यणत्वमिति क्रियमाण[15] वार्त्तिकेन

---

1. 'ल्' अ-4.
2. तदनीत्तदेशात् ज-2.
3. वर्णेकदेशानो प-2, अ-3, अ-4.
4. रेफाभासस्य अ-4.
5. पूर्वोतयो रभाजगयोः प-2.
6. अच एव 'य' नाऽस्ति ज-2; अच एवसु प-1; अच एव न अ-3.
7. वर्णेक प-2, अ-4.
8. प्रत्यभिज्ञानस्तत्त्वासिद्धा ज-2.
9. वर्णींतरे मतात्विकी प-2.
10. भ्रुांतिवशात्व वय सद् प-1, प-2.
11. तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम्- 1/1/9 अष्टा.
12. पाठोऽयं अ-4; ऋकालृकारयोः अ-1, ज-2, अ-3; ऋलृकारयोः प-1; तुल्यास्य इत्यारभ्य गत्वमिति इत्यन्तं नाऽस्ति प-2.
13. 'वि' नाऽस्ति प-1.
14. सिध्ययें कवर्णत्तस्य ज-2.
15. क्रीयमान प-1.

कूप्यमानं[1] पश्येत्यत्र दोषाशंकायां सिद्धांतिनाऽथ असत्यामपि[2] सवर्णसंज्ञाया[3] मिहकस्मान्न भवति प्रकल्प्यमानं[4] पश्येति पृष्टे चुटु तु लशव्यवायेनेति[5] न्यासेन[6] वर्णेकदेशाश्च वर्णग्रहणेन गृहयंते इति यौ[7] सौलृकारे लकारस्तदाश्रय: प्रतिषेधो[8] भवति इति समाहिते मयापि तर्हि ऋवर्णैकदेशं रेफमादाय[9] माहृणामित्यत्र णत्वसाधनेन ऋवर्णान्नस्य णत्व[10]मित्यस्य प्रत्याख्यानात्रक्लृप्य-माने णत्व प्रसङ्ग इति सूत्रशेषे उपसंहृता[11]। एवं च सवर्णविधि[12]स्वीकर्तृकर्तृकोयं उपसंहार[13] इति तस्यैकदेश्युक्तित्वे प्रमाणाभावात्। नहि एकदेशिना सवर्ण[14] विधि: स्वीकृत: किंतु सित्धांतिनैव। अन्यथाणत्वं दुर्निवारं स्यात्। ऋलृवर्णयो: सवर्ण[15] विधिं स्वीकृत्य कदाचिद्दोष स्पष्ट: कदाचिद् विवृतलृकारलृकाराभ्यां रूप द्वयस्यापि सूत्रणैव सिद्धौ ऋति ऋवेत्यादि[16] वार्त्तिकद्वयमपि[17] न कर्त्तव्यमिति लाघवपक्षपातित्वेनास्य सिद्धांतित्वम्[18]। किं च वर्णैकदेशाना[19]

1. क्लृप्यमान अ-4.
2. अत्यामपि प-1.
3. संज्ञां इह अ-4.
4. प्लप्यमान प-2; क्लप्यमानं प-1; प्रक्लृप्यमानम् अ-4.
5. लशप्यवायेनेति अ-3; लशर्व्यवायेनेति ज-2.
6. वर्णेक अ-3; वर्णेकदेश्यश्च प-1.
7. यो सौ ज-2; इति या लृकारेलकार: अ-4.
8. प्रतिषेधे अ-3.
9. महृणाम् अ-3.
10. वर्णगत्वम् अ-3.
11. उपसंहृत प-1, प-2; उपसंहतम् अ-4; उपसंहृताम् ज-2.
12. सर्वविधौ.
13. उपहार प-1.
14. सवर्णधि: ज-2; सवर्णविविधि: अ-4.
15. सर्वविधि अ-4; सावर्ण विधि प-2.
16. ऋ चेत्यादि अ-4; ऋत्वत्यादि ज-2.
17. मपि नाऽस्ति प-2
18. सिद्धांति प-1.
19. वर्णवादेशानाम् प-1.

वर्णग्रहणेन[1] संध्यक्षरेषु सामानाक्षर[2] विधिप्रतिषेध:। अग्रे इंद्र[3]मित्यादावक: सवर्णेदीर्घ इति दीर्घत्वं प्राप्नोतीत्यादिदोषमुद्भाव्याभिन्न बुद्धि विषयस्यावयवे स्वतन्त्रवर्णाश्रयो:[4] विधिर्नेत्यर्थे नाव्यपकृत्तस्यावयवे तद्विधिर्यथा द्रव्येषु इत्यादि सर्वत्रसमाधिं कुर्वतावव्रश्चेत्यादौ स्थानिवद्भावमनाशंक्य तत्रांशे समाधि मकुर्वता तत्र स्थानिवद्भावो नेष्ट इत्यस्य बोधनाच्च[5]। एवं च स्थानिवद्भावस्य प्रसक्तेरव:[6] अभावे क्व विकारकृतलक्षयभेदाश्रयणमिति चेन्न। क्लृप्यमानादौ[7] णत्वाभावस्यक्ष भ्रादिपाठेन सिद्धेतावन्मात्रस्यातुल्यास्य[8] सूत्रस्य भाष्यस्यैक देश्युक्तित्वात्। किं च ए ओङ् ऐ[9] औजिति सूत्रे भ्रांतिवशात्विति[10] कैय्यट प्रतीकमुपादाय एवं च भ्रांतिरेव ग्रहणपक्षे बीजमितिभाव इति वदता तस्यैकदेश्युक्तित्वस्य त्वयापि[11] बोधनाच्च। किं च वव्रश्चेत्युदाहरण परांगस्येति सूत्रस्थ भाष्यविरोधाच्च। अपि च[12] उरत् इति सूत्रस्थ वव्रेश्चे[13]त्युदाहरण परत्वदीयशेखरग्रन्थविरोधाच्च। एवं च विकारकृतलक्ष्यभेदानाश्रयणे प्रकृतेऽगति:[14]। किञ्च स्थानिवत्सूत्रे शेखरे न च तंडुलानित्यादौ स्थानिवद्भावेन प्रत्ययांतत्वेपि स्वत: प्रत्ययांतत्वभिन्नत्वात् प्रातिपदिकत्वापतिरिति वाच्यम्।

---

1. 'न' नाऽतस्त अ-4.
2. समाक्षरविधि प-1, प-2; समानाक्षर अ-4.
3. इदम् प-2.
4. वर्णश्च यो अ-3.
5. बोधानाच्च अ-3, ज-2.
6. 'ख' नाऽस्ति प-1; अभावेक विकार प-1, प-2, प्रसक्तेरव: अभाव क्वविकार: अ-4.
7. कल्प्यमानादौ ज-2, अ-3; कुप्यमानादौ अ-4.
8. 'स्य' नाऽस्ति प-1, प-2; तुलास्य अ-4.
9. किं च दा ओङ ऐ औ जिति ज-2, अ-3; किं च ए आ डे आजिति अ-4.
10. वदात्वेति अ-4.
11. तस्यापि ज-2.
12. पाठोऽयं प-2, अ-4; आप च उ रत् अ-1, प-1, प-3.
13. वपुश्चे प-2; पुश्चे ज-2; वुश्चेत्तु अ-4.
14. प्राकृते प-1; प्रकृते: गति अ-3.

अतिदिश्यमानधर्मविरुद्धस्वाश्रय[1] कार्या भावस्यातिदेश[2] स्वभाव सिद्धत्वादिति समाधिंकुर्वता[3] विकारकृतलक्ष्यभेदस्याक्ष्य[4]णात्। तथाहि तंडुल अस्[5] इत्यवस्थायां[6] प्रकृत्यवयवाकार प्रत्ययावयवाकारयोः पूर्व सवर्णैकादेशे सकारस्य नकारादेशे च रूपसिद्धिः तत्र नकारादेशस्य स्थानिवत्वं तु वक्तुमशक्यं प्रत्ययत्वस्य[7] तत्[8] स्थानिधर्मत्वाभावात्। न चोरण[9] रपर इति सूत्रस्थ इदुदुपधस्येति[10] सूत्रस्थ इह कस्मान्न भवति पितुः करोति अप्रत्ययस्येति[11] षत्वं प्राप्नोति[12] अप्रत्ययविसर्जनीयस्येत्युच्यते[13]। प्रत्ययविसर्जनीयश्चायं लुप्यते[14], तत्र प्रत्यय विसर्जनीयोरात्सस्येति भाष्येण ऋकाराकारयो[15] उदित्यादेशे[16] सकारमात्रस्य प्रत्ययत्व[17] बाधनात्। प्रकृतेपि सकार[18]मात्रस्य प्रत्यय[19]त्वाक्षतिरिति वाच्यम्। तावत्तापि तस्य स्थानित्वेनोपाताल् –

---

1. स्याश्रय प-1; स्वश्रय अ-4.
2. देशस्य प-1.
3. कुर्वन्ता प-2.
4. भेदास्या प-2, ज-2.
5. तंडुल अम् प-1; तंडलअम् प-2.
6. इत्यवयवस्थायाम् अ-4, अ-3.
7. प्रत्ययस्य अ-3; प्रत्यतस्य अ-4.
8. 'तल्' नाऽस्ति प-2.
9. उरण् रपरः 1/1/51 अष्टा; 'र' नाऽस्ति अ-3.
10. इदुदुपस्य चाऽप्रत्ययस्य 8/3/41.
11. अप्रत्यस्येति प-1; अप्रत्यत्यस्येति प-2.
12. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 प्रीति अ-1, अ-3, ज-2.
13. पाठोऽयं प-1, अ-4; विसर्जनीस्ये सुच्यते अ-1, ज-2, अ-3; विसर्जनीयस्यत्युच्यते प-2.
14. लुप्यतेऽत्र अ-4; तुष्यते तत्र ज-2; लुप्यतेत्र प-2.
15. कृत्काराकारयोः अ-4; ऋत्काराकारयोः ज-2, अ-3.
16. उरित्यादिशे प-1, प-2.
17. प्रत्ययचात्व बाधनात् अ-4 बोधनात् प-1, प-2.
18. ऋकार प-1.
19. 'य' नाऽस्ति प-2, अ-4 प्रत्यययत्वाक्षितिरिति ज-2, अ-3.

वृत्तित्वेन तदनति[1] देशोत्। न चाऽऽस् इत्यस्य स्थाने आनित्यादेशः तत्रापि[2] तदभावात्। न चासित्यत्र[3] परादिवद्भावेन प्रत्ययत्वातिदेशे पश्चात्तस्याऽनित्यत्राति देशेन बाधमिति[4] वाच्यम्। तत्रासित्यत्र[5] स्थानी[6] प्रत्येकमकारोऽथवा प्रकृत्यकारोऽसिति प्रत्ययसमुदायः[7]। तत्रापि द्वितीयेऽनुद्भूतावयवभेदस्य[8] स्थानित्वमुतोद्भूतावयवभेदस्य[9] नाद्यः। प्रत्ययावयवाकारे प्रत्ययत्वाभावात् समुदाय निवेशनी[10]त्वात्प्रत्ययसंज्ञायाः। न द्वितीये आद्यः समुदायस्यानुद्भूता-वयवस्य[11] स्थानित्वे समुदायवृत्ति[12] धर्मातिदेशेपि एकदेशवृत्तिधर्माननतिदेशात्। न द्वितीये[13] द्वितीयः स्वाश्च[14] इरिनित्यादौ वृद्धिभियाऽनुमानिका[15] देशस्थानित्वस्य तत्राकल्पनात्।

---

1. धृतित्वेनतद्दनतिदेशेपश्चातस्याऽनित्यत्राति देशेनबाधकमिति वाच्यम् इति पाठः अ-4; तदनतिदिशोत् प-2.
2. पाठोऽयं प-1, प-2; त्रापि अ-1, ज-2, अ-3.
3. चासीत्यत्र प-2.
4. बाधकमिति प-1, प-2, अ-4.
5. तत्राऽसित्यत्र अ-4.
6. स्थानि प-1.
7. समुदयः प-2.
8. 'भेदस्य' नाऽस्ति प-1.
9. स्थानित्व इत्यारभ्य भेदस्य इत्यन्तं नाऽस्ति ज-2.
10. निवेशीयत्वात् अ-4.
11. भूतावयस्य स्थानित्वे प-2; भूतावयव स्थानित्वे प-1; भूतावस्य स्थानित्वे अ-4.
12. धमोतिदेशेपि अ-4.
13. न द्वितीयो द्वितिये द्वितीयः स्वाश्च प-2; न द्वितीयेति द्वितीयः अ-4.
14. स्वश्च प-1.
15. आनुमानिका अ-4; ऽनुमानिका ज-2, अ-3.

किंचानित्यस्य[1] परम्परया स्थानि[2]वत्वेपि प्रकृत्यकार प्रत्ययसमुदायवृत्ति-धर्मातिदेशेपि तदैकदेशवृत्ति[3] प्रत्ययत्वातिदेशाभावाच्च। वव्रश्चेत्यत्र परम्परया स्थानिवद्भाव: सम्भवति[4] प्रकृते तु[5] सोपिनेतिविशेष: तस्मात्तुंडुल असित्यस्य तंडुलामित्यादेशे[6] तत्र स्थानिवत्सूत्रेणातिदिष्टस्य तस्य तंडुला नित्यादेशेति देश इत्यस्यावश्यवक्तव्यत्वेन शंका[7] समाधानादिसंगति:। एवं च विकार कृतलक्ष्यभेदो परित्यक्तरति सुधिभिरुह्यम्[8]। किं च निपात एकाज्[9] नाङितिसूत्रे वासुदेव वाचकस्य[10] अशब्दस्य आङासहाव्ययीभावे आ अम् इत्यादौ सत्यभिधाने स्वत आङ्[11] भिन्नत्वेन निपातत्त्वेपि[12] प्रगृह्यत्वं न। पूर्वा तवत्वेनाङ्[13]त्वातिदेशेऽतिदिश्यमान धर्मविरुद्धस्वाश्रयधर्मप्रयुक्तकार्य निवृत्तेरा-देश[14] स्वभाव सिद्धत्वादितिशंकासमाधानं कुर्वता शेखरकृता[15] तदाश्रय[16] बोधनात्। तत्र आङा[17] अकारेणव्ययीभावे सर्वर्णदीर्घे नपंसुक ह्रस्वे अमिपूर्वरुपेऽमि[18] रुपसिद्धि:।

---

1. 'स्य' नाऽस्ति अ-4.
2. स्थानि (व) द्भाव: संभवति प्रकृतेत्वेपि प्रकृत्यकारप्रत्यय इति पाठ: अ-4.
3. वर्ति ज-2.
4. 'व' नाऽस्ति प-1.
6. तंडुला सित्यादेशे ज-2, प-1, प-2, अ-3.
7. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; शंकशसमाधानादि अ-1, अ-3.
8. सुधिभिरुत्वम् प-1; सुधिभिरुस्व: प-2.
9. निपात एकजनाङ् 1/1/14.
10. वाचकशब्दस्य अ-4.
11. अङ् प-1.
12. 'पि' नाऽस्ति प-1.
13. पूर्वातिवत्वेनाह प-2 पूर्वातवत्वत्वे नाङ् प-1; पूर्वातत्वेनाङ्त्वाति अ-4.
14. निवतेरदेश ज-2, अ-3; निवृत्तेरतिदेश प-2; निवृत्वेरतिदेश प-1.
15. शेखरकता ज-2, अ-3; शेखराकृता अ-4.
16. तदश्रयण प-2.
17. आङाकारेणा अ-3.
18. 'अमि' नाऽस्ति अपि अस्ति प-1.

एवं चात्रापि[1] स्थानिवद्भावद्वयं प्रार्थ्यम्[2]। वस्तुतस्तु सवर्णदीर्घैकादेशे[3] पूर्वांतवत्वेन[4] निपातत्वातिदेशे पश्चात्स्थानिवत्वेन ह्रस्वैकादेशेऽतिदेशेन शंकासंगतिः। पूर्वांतवत्वेनाङ्त्वे[5] तस्य ह्रस्वेऽतिदेशः स्थानिवत्वेन सुकरः इति समाधान संगतिश्च। यत्तु स्थानिवत्सूत्रस्था[6]देशिन्याल्यश्रीयमाणे प्रतिषेधे कुर्वित्यत्र[7] स्थानिवद्भावादंगत्व[8] स्वाश्रयं च लघूपधत्वं तत्र लघूपधगुणः[9] प्राप्नोति इत्याशंक्य करोतौ तपर[10] निर्देशात्सिद्धमिति भाष्यं तत्र करोताविति[11] प्रतीकमुपादायाकारस्य द्युकारो[12] मात्रिक[13]एवन्याथ इति शास्त्रांतरेणापि प्राप्त[14]स्य भिन्नकालस्य निवृत्यर्थं तपरत्व[15]मित्यर्थ इति कैय्यटमादाय ऋकारस्थानिकावयवविकारोऽत्रेति लक्ष्य भेदान्नोद[16]बोढामितिवल्लक्ष्ये लक्षणस्येति[17] न्यायेनात्र निर्वाह इत्याहुरिति विवरणे उक्तम्। भिन्न-लक्षणेनात्र-

1. चाश्रापि प-1 चात्रापि इत्यादौ पूर्वसवर्णदीर्घपैकादेशेन स्यामः परस्मिन्निति स्थानिवत्वेन संप्रसारणत्वे पितेनैकस्यानि इति पाठः प-2; मातृकायामेव लभ्यते.
2. प्राप्तम् अ-4.
3. दीर्घेकादिशे प-1; दीर्घेकादेशे ज-2, अ-3.
4. पूर्वातवत्वे नेतिपातत्वाति अ-4.
5. 'व' नाऽस्ति प-1, अ-3.
6. ल्याश्रयमागे अ-4; त्याश्रीयमागे ज-2.
7. कुर्वत्यत्र ज-2.
8. अंगत्वं; स्वाश्रय ज-2.
9. गुणतं प्राप्नोति अ-4.
10. करोतौ तप इति ज-2.
11. पाठोऽयं प-1; सुकारी मात्रिक अ-1, अ-3; सुकारोमात्रिक ज-2; ह्यकारेस्यात्रिक अ-4.
12. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4; करोताताविति अ-1.
13. प्रत्यस्यभिन्न ज-2.
14. निवृत्यर्थे अ-3.
15. नपरत्वम् अ-4.
16. 'भे' नाऽस्ति 'ले' अस्ति षा-1.
17. 'क्ष' नाऽस्ति अ-4.

गुणप्राप्त्याकथमत्र न्याय[1]संचार इति चिंत्यम्। अत एवाहुरित्यस्वरसोद्भावक[2] विधीयमान[3] गुणरूपसमानफलकत्वमादाय यथाकथंचिन्नेयमित्यलं (प्रकृत विचारविरोधिन्या कुसृष्ट्या[4] किं च न संप्रसारणे इति सूत्रेशेखरे न चव्यपिव्यध्यदावस्य[5]) चारितार्थेन यून[6] इत्यादौ पूर्वसवर्णदीर्घरूपैकादेशे तस्याच:[7] परस्मिन्निति स्थानिवत्वेन संप्रसारणत्वेऽपि तेनैव[8] स्थानिवत्वेनोकार व्यवधानात्कथं निषेध इति वाच्यम्। व्यथ इति सूत्रे य ग्रहणे[9] नैव सिद्धया सम्प्रसारणग्रहणस्यै तन्निषेधकतयैव[10] चारितार्थ्यस्य वक्तव्यत्वेन[11] व्यवहितेपि[12] प्रवृत्तेरित्युक्तम्। अनेन विकारकृतलक्ष्यभेदाश्रयण[13] पूर्वं स्थानिवद्भावेन-स्थानिनिष्टधर्मातिदेशोत्तरमादेशे तस्य तत्राति देशेन तत्त्वाश्रयण-मित्यपि सूचितम्[14]। न च परादिवद्भावेन संप्रसारण[15]त्वेऽच: परेति

---

1. 'न्या' नाऽस्ति प-1.
2. स्वरस्येद्भावकम् अ-4.
3. विधायमान प-2.
4. सुसृष्ट्या अ-4.
5. व्यपिव्यधारादावसाचारितार्थेन अ-4 अयं कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु अ-1, ज-2, प-2, अ-3 मातृकासु नोपलभ्यते.
6. यून अ-4.
7. तस्याम: प-2.
8. त्वेनैव ज-2, अ-3; 'ते' नाऽस्ति।
9. ग्रहणेसिद्धमिति भाष्यं तत्र करोताविति प्रतीकमुपनैव सिध्यासम्प्रसारण इति पाठ: अ-4.
10. निषेधकर्तयेव प-2; निषेधकतयैवा प-1.
11. व्क्तवयेत्वेन अ-4.
12. व्यवहितेन प्रवृत्ते: अ-4.
13. भेदश्रयणम् अ-3; भेदांश्रयणम् अ-4.
14. पाठोऽयं प-1, -4, सूचिताम् अ-1, ज-2, अ-3; सूचिता प-2.
15. सम्प्रसारणवत्वे अ-4.

स्थानिवद्भावेन व्यवधान[1] मित्याशय इति वाच्यम्। सम्प्रसारणत्व- स्थान्यल्[2] मात्रवृत्तित्वेन तदनति[3]देशात्। एवं चातिदेश विषये शतशो[4] विकारकृत् लक्ष्यभेदाश्रयणं तत्र तत्र ग्रंथेषु स्फुटं सूक्ष्मदृशाम्।

ननु वव्रश्चेत्यादि भाष्यादतिदेश विषये विकार[5]कृत लक्ष्यभेदाश्रयणे[6] न सर्वत्र निर्वाह इति वाच्यम्। ताव[7]त्ताप्यगते:। भो भगो[8] ईदूदेद्[9] द्विवचनमिति-सूत्रस्थ भाष्यविरोधात्। तत्राद्ये[10] अंशोन्यत्ररोर[11]भावेनाश् ग्रहणमनर्थकमित्यर्थ-कमशग्रहण[12] मनर्थक्यमन्यत्राभावात्। ननु चार्यमस्ति[13] छंद: सुपय: सु अल्विधित्वात् कथमिदमस्तिरोरीति[14] ततो वक्ष्यामि खरवसानयोर्विसर्जनीय:[15] र इत्यनुवर्तते। ततो रो: सुपि[16] विसर्जनीय:[17] र इत्येव। एवं च[18] छंद:

---

1. व्यवधानद्यमित्याशय अ-3, ज-2; व्यवधनामित्याशय: प-1, प-2.
2. सम्प्रसारणत्वस्य प-1.
3. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4 तक्षनतिदेशात् अ-1, ज-2, अ-3.
4. शतसो प-1, अ-4.
5. विकाराऽकृत अ-4.
6. लक्ष्यभेदाश्रयणं तत्र इत्यारभ्य लक्ष्यभेदाश्रयणेन इत्यन्तं नाऽस्ति ज-2.
7. ताव ताप्यपत्ते: ज-2.
8. भो भग्गो अची अपूर्वस्य योऽशि 7/3/17 अष्टा.
9. ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् 1/1/11 अष्टा.
10. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; तत्राद्यो अ-1, ज-2; तश्राद्यौ अ-3.
11. अशोन्यत्र वेन्नो नाशग्रहणमृ प-2; आशोन्यत्र लावेनाशर प-1.
12. ग्रहणमनर्थकमनरग्रहणार्थक्यमन्यत्राभावात् प-1; ग्रहणार्थक्यमन्यत्रा प-2.
13. पाठोऽयं अ-4, ज-2 चार्यमस्निछंद अ-1; चायमत्यिछंद: प-1; ननुवायमसिहंद: प-2; चार्यमंस्त्रिछंद: अ-3.
14. पाठोऽयं प-1, प-2; अस्तिरिति ज-2, अ-3 रीरि 8/3/14 अष्टा.
15. 8/13/15 अष्टा.
16. 8/3/16 अष्टा.
17. सिर्जनीयस्य स: 1/3/34
18. 'च' नाऽस्ति प-1, प-2.

सुपयः सु इत्यत्र रो:सुपीति विसर्गः सचरोरेफस्येत्यल्विधित्व[1] मित्याशयः। अनेन भाष्येण[2] स्थानिवत्सूत्रस्थ विशिष्ट त्वेषोऽनलल[3]माश्रियते। इट[4] नामेति भाष्येण चानल् विधावित्यस्य[5] स्थानित्वे नोपाताल्[6] वृत्तितधर्माश्रितेन स्थानिवत्व[7] मित्यर्थः सूचितः। एवं स्थिते ऋधातोर्लिटि आरेत्यादौ दोषः। तत्रोरदत्वे[8] रेफ निवृत्या भाष्य[9] सा च न प्राप्नोति स्थानित्वेनोपाताल् वृत्तित्वस्याभ्यासत्वे सत्वात्। न च स्थानिवत्सूत्रे ऋ[10] धातोर्द्वित्वेऽभ्यासस्योरदत्वेऽवित्यस्य[11] हलादिशेषस्तु अरित्यस्य[12] पुनः पूर्वोभ्यास इत्यनेनाभ्यासत्वात्तस्यापि[13]द्विरुक्त-धातु पूर्वभागसत्वात्। प्रक्रियाज्ञानवता[14] तथा ज्ञानस्य सुलभ[15]त्वात् इति शेखरे समाहितमेवेति वाच्यम्। संज्ञाविषये विकारकृत लक्ष्यभेदाश्रयणेन आगतमेवेति दोषध्रौव्यात्। नच ऋकार स्थानिकावयव[16] विकारोत्रेति लक्ष्यभेदादिति पूर्वोक्त स्थानिवत्सूत्रस्थ विवरणरीत्यालक्ष्यभेद इति वाच्यम्।

---

1. रेफस्येखल्विधित्वम् अ-3; रेफस्येसलिधित्वम् ज-2.
2. पाठोऽयं प-2, अ-4; भाष्यण अ-1, ज-2, अ-3; भाषेन प-1.
3. स्वेषोऽनल्ल्मांशिचधते प-2; विशिष्टं देवषाज्नलुमश्रियते ज-2; ह्यनोऽलमा अ-4.
4. इठं नामेति प-2; ऋनामेति प-11.
5. 'स्य' नाऽस्ति अ-4.
6. पातात् प-2.
7. स्थाभाष्यमित्यर्थः अ-3; स्थानवमित्यर्थः अ-4.
8. तन्नोरदत्वे रेफ अ-4.
9. भाव्यम् प-1.
10. 'ज्ञ' अ-4.
11. पाठोऽयं प-1, प-2; आरित्यस्य अ-1, अ-3; अत्यस्यहत्यादिदेशस्तु ज-2.
12. उरित्यस्य अ-4.
13. अस्याविद्‌दिरूप लब्धानुपूर्व भाग इति पाठः अ-1.
14. ज्ञानवता प-1, प-2.
15. 'ल' नाऽस्ति प-2.
16. स्थानिकोरोवयव प-2; स्थानिकारोऽयव प-1.

अवयव विकारोत्रेति वदता विशिष्टत्वात् प्राप्तिः द्वयोरकारयोरे[1]कादेशे टा-पा सहैकादेशस्य स्थानिवद्भावादै कैनैवाकारेण व्यवधानात्। पुनः स्थानिवत्त्वं तु न लक्ष्ये[2] लक्षणस्य सकृदेव प्रवृत्तेरित्युक्तम्। न च सशरोपि[3] प्राचां मतावलंवीति नास्माकं मार्गमवरुणद्धि[4]। एतिकेत्यादावकारद्वयव्यवधाने[5]रत्वं तु न्यासयोरिति ज्ञापकात्[6] श्रौतमव्यवधानमादायाकारशब्देनात्व जाति ग्रहणमादाय वा सुकरमितिवाच्यम्। **ष्यङः[7] सम्प्रसारणमिति** सूत्रस्थ भाष्य विरोधात्। तत्र हि **अनंत्य विकारे** इति परिभाषामंगीकृत्य बहूनि प्रयोजनानि उक्त्वा क्लिष्ट कल्पनया निवार्य मृजेर्वृद्धि[8]विधौ प्रयोजनं न्यामार्ट्[9] आटोपि वृत्धिः प्राप्नोति[10] अनंत्यविकारेत्य[11] सदृशस्येति न दोषो भवति एतदपि[12] नास्ति प्रयोजनं यथापरिभाषितं इकोगुणवृद्धीति इक एव वृद्धिर्भविष्यति[13] एवमपि मिमार्जिषति[14] इत्यत्रापि प्राप्नोति[15] अस्तु अभ्यास निर्ह्रासेना[16]त्रापि ह्रस्वत्वं

1. रेकादेशस्य स्थानिवद्भावादेकेनेवाकारण इति पाठः अ-4.
2. अवयव विकारोत्रेति इत्यारभ्य न लक्ष्ये इत्यन्तंऽाऽस्ति प-1; अवयवविकारोत्रेति इत्यारभ्य दोष उक्तं तत्र वर्ग इत्यन्तं नाऽस्ति प-2.
3. न च संशखरोपि प-1.
4. अवरुणाद्धि इति केत्यादौ ज-2; अवरूणद्धिराति कत्या अ-4.
5. व्यवधाने हत्यं प-1., अ-4.
6. ज्ञापकान् ज-2.
7. 6/1/13 अष्टा.
8. 7/2/144 अष्टा; पाठोऽयं प-1; मृजेर्वृत्त्वविधौ अ-1; मृलेवृद्धि अ-4 मजेवृद्धिः अ-4.
9. न्यमोर्ढ ज-2; न्यमाट अ-4.
10. प्राप्नोति प-1, प्राप्तविकारोत्यत्यदेशस्ये तिन दोषो भवति इति पाठः अ-4.
11. किकारेत्य प-1.
12. ए नास्तिप्रयोज प-1; एतपि अ-4.
13. र्भविष्यतीत्युक्तं तत्रवृद्धः पूर्वतरंगत्वाद्वित्वे इति पाठ अ-4; भविष्यति इत्यारभ्य ह्रस्वत्वभविष्यति इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4.
14. मिमार्तिषतीत्यत्रापि ज-2; मीमार्जेषतीत्यत्रापि अ-3.
15. प्रोति अस्तु अ-1.
16. निह्रांसेनापि प-1.

भविष्यति इत्युक्तं तत्रवृद्धेः पूर्वमंतरंगत्वात् द्वित्वे परत्वादभ्यासकार्ये वृद्धावपि पुनः ह्रस्वे रुपसिद्धिरित्याशयः। न चैतद्भाष्यं विकारकृत[1] लक्ष्यभेदानाश्रयक-भाष्यविरुद्धमिति वाच्यम्।

तदनाश्रयकभाष्यस्यैवानुपलंभात्। ननु उदवोढा[2]मित्यादावुदवहू सुतामिति स्थिते सिज्[3] लोपादेरसिद्धत्वात् सिचिवृद्धावोकारेलक्ष्ये[4] लक्षणस्येति न[5] वृद्धिरिति शब्दरत्नशेखरादावनुदितं सिचिवृद्धिरिति सूत्रस्थं भाष्यमेव मानमिति वाच्यम्। तत्सूत्रे तादृशभाष्ययैवाभावात्। तथाहि[6] सिचि परतो या वृद्धिर्वद व्रजेति तस्यां प्रतिषेध इत्यर्थकं सिचि[7] वृद्धावोकार[8] प्रतिषेधो वक्तव्यः उदवोढां सहिवहो[9] रितिसूत्रे ढलोप इति वृद्धिविधायके[10] सिचीति च विषयसप्तमीत्याशयः अत[11] एव युगपत्-प्राप्तिः अन्यथाप्रतिषेधो व्यर्थः स्यात्। न वक्तव्याः[12] ओकाकारात् वृद्धिर्विप्रतिषेधेन[13] ओकारात् वृद्धिर्विप्रतिषेधेन चे च[14] दोत्वाभावः तपरकरणादित्याशयः। नैषदोष[15] –

---

1. 'त' नाऽस्ति प-1.
2. पाठोऽयं प-1; उदवोढोमित्यादावुदवहूं प्रतामिति अ-1; उदवोढोमित्यादावुदकं ह्रसतामिति ज-2; उदवोढमित्यादावुदह्रदत्तामिति अ-4.
3. विलोपादे ज-2; सिजू प-1; सिन् अ-4.
4. लक्ष्ये लणति सूत्रस्थम् प-1.
5. 'न' नाऽस्ति अ-3.
6. तथा हि शिविपरताया वृद्धिवदव्रजेति इति पाठः अ-4.
7. पाठोऽयं प-1, अ-4; सिद्धि अ-1, अ-3; सिवि ज-2.
8. वृद्धावोकर प-1.
9. सहिवहारोदवर्णस्य 6/3/112 अष्टा.
10. विधापकी ज-2.
11. 'त' नाऽस्ति प-1.
12. न च वकतव्यः प-1; नवव्यक्तयाः अ-4.
13. विप्रतिषेधो न ज-2; व्रिपतिषेधेन चेदत्तदात्वाभावः तपर इति पाठः अ-4.
14. 'च' नाऽस्ति प-1.
15. नैव दोषः प-1.

'अल्लोपोऽनः' (6.5.134) इत्यादौ चैतस्या व्यभिचरितत्वात्, भाष्यानुक्तत्वाच्च। स्थानसम्बन्धो न परिभाषालभ्य इत्यर्थस्य 'षष्ठी स्थाने' (1.1.49) इतिसूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वेन त्वदुक्तज्ञापका-सम्भवाच्च। तत्र स्थाने ग्रहणन्तु स्पष्टार्थमेव।

किञ्च विधौ परिभाषेतिप्रवादः 'इको गुणवृद्धी' (1.1.3) 'अचश्च' (1.2.28) इत्यनयोर्विधीयत इत्यध्याहारमूलकोऽन्यत्र तु नास्याः फलामित्यन्यत्र विस्तरः॥101॥

ननु नमस्करोति देवान्नमस्यति देवानित्यादौ 'नमः स्वस्ति' (2.3.16) इति चतुर्थी दुर्वारेत्यत आह-

उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी॥102॥

कारकविभक्तित्वं च क्रियाजनकार्थकविभक्तित्वम्, तच्च प्रथमाया अप्यस्तीति सापि कारकविभक्तिरिति 'सहयुक्ते' (2.3. 19) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम्। इयं च वाचनिक्येव। अत एव 'यस्य च भावेन' (2.3.67) इति सप्तम्यपेक्षयाधिकरणसप्तम्या बलवत्त्वमनेन न्यायेन 'तत्र च दीयते' (5.1.96) इति सूत्रे भाष्ये

उक्तं तत्र[1] वर्णग्रहणेष्टे लक्ष्यभेदाभावाबोधने[2]वैषम्यात्। द्वितीये तु तपर करणेन प्लुतानां प्रगृह्यसंज्ञा न प्राप्नोति कार्यकालपक्षे प्रकृतिभाव-विधाय[3]कैकवाक्यत्वात्। अन्य प्रकृतिभाव दृष्ट्या च प्लुतः सिद्धः सिद्ध प्लुतस्वर[4] संधिष्वित्या[5]शंक्यासिद्धत्वेन समाहितं यथोदेश[6] पक्षो-

---

1. वर्गग्रहणस्य प्रयोजनं वृद्धावपि कृतया मोत्व यथा स्यात् पुन इति पाठः प-1.
2. पाठोऽयं प-2; अभावबोधनेनेवेध स्यात् अ-1, अ-3; अभाव बोधनैनेवधन्यात् ज-2; बोधनेनवेषस्यात् अ-4.
3. विधायकैव प-1.
4. 'र' नाऽस्ति प-1.
5 'त्या' प-1.
6. यथोद्देश पक्षो प-1, प-2.

गृह्यते[1] इति तदाशयः। प्लुत प्रगृह्या[2] अचीति सूत्रे प्लुत शब्देन तत्स्थानीलक्ष्यतेऽतो न दोष[3] इत्युक्तम्। एवमपि कार्यकालपक्षेऽणोऽप्रगृह्यस्येति[4] सूत्रेणास्यैक[5] वाक्यतायामनुनासिक विधायक[6] सूत्रदृष्ट्या प्लुतस्यासिद्धत्वात्[7]। द्विमात्रवुद्धेरभावेन[8] प्रगृह्यत्वाभावेऽनुनासिकः स्यादिति दोषे[9] प्राप्ते यथोद्-देशपक्षाश्रयनैव समाहितम्[10]। एवं च ईदूदेद्[11] द्विवचनमिति सूत्रे यथोद्देश एव लक्ष्यानुरोधाद्भगवता[12] आश्रितः। अनुनासिकभिया[13] आश्रितेऽपि[14] यथोद्देशे[15]ऽनुनासिको न वारितः। प्रगृह्यसंज्ञादृष्ट्या[16] प्लुतस्यासिद्धत्वेन[17] मतः प्राक्प्लुताभावे प्रगृह्यत्वेऽनुनासिक प्रतिबंधेन[18] फलवत्या[19] प्रगृह्यसंज्ञायां-

---

1. गृह्य प-1, प-2.
2. प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् 6/1/125 अष्टा.
3. 'ष' नाऽस्ति.
4. सं. पाठ-3; अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः 8/4/57 अष्टा. अणो प्रगृह्यस्येति अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4.
5. सूत्रेणस्यैक प-1, प-2.
6. 'क' नाऽस्ति प-2.
7. प्लुतस्य सिद्धत्वात् प-1, अ-4.
8. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; द्विमात्रषुद्धरभावेन अ-1, ज-2 अ-3.
9. दोषो अ-4.
10. पाठोऽयं अ-4; यथोदेश पक्षाणैव अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3.
11. सं. पाठः ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम् 1/1/11 अष्टा. 'द्' नाऽस्ति अ-1, ज-2, प-2, अ-3, अ-4.
12 'ग' नाऽस्ति प-1.
13. अनुनासिकमया प-2.
14. आश्रित्योपि अ-3.
15. यथोद्देश अ-4.
16. दृष्टा ज-2, अ-3.
17. असिद्धि न ततः असिद्धत्वे न ततः ज-2, अ-3.
18. प्रतिविवेन ज-2.
19. फलवत्याम् प-1, अ-4.

तत प्लुते तस्यासिद्धत्वेन द्विमात्रबुद्धावपि पुनः प्रगृह्य[1] प्रवृत्तौ प्रमाणा-भावेऽनुनासिकदृष्ट्या प्लुतस्य[2] सिद्धत्वेनानुनासिक[3] स्यात् इति[4] यथोद्देशाश्रयण[5] भाष्यकृदुक्तमयुक्तं तस्मात्पुनः (प्रगृह्यसंज्ञायां सत्यां अनुनासिकाभावे एव भाष्यसंगतिर्ना यथा स्पष्टश्चायमर्थो विवरणे अणोऽ[6] प्रगृह्यस्येति सूत्रे शेखरे च। एवं च पुनर्लक्षण[7] प्रवृत्तिभाष्ये घ्वनिता। पूर्वभाष्यं विकारकृतलक्ष्यभेदेऽपि पुनर्लक्षणप्रवृत्ति बोधकं इदं तु एकस्मिन्नेव लक्ष्ये[8] लक्षणप्रवृत्तिबोधकं तत्त्व[9]दृष्ट्याप्लुताभावात्[10]। द्वि[11]मात्र-बुद्धयाजायमाना[12] साप्लुते एवेत्यन्यत्। ततश्चातिदेशविषयातिरिक्ते[13] विकारकृतलक्ष्यभेदो नाश्रीयते[14] इत्युक्तेप्यत्र दोषः[15]। ननु तर्हि संज्ञातिरिक्त विषये विकारकृतलक्ष्यभेदो नाश्रीयते[16]। अत्र मानं तु[17] पूर्वोक्तभाष्यमेवेति चैन्न। प्रत्ययस्थात्का[18]त्पूर्वस्येति सूत्रस्थशेखर विरोधात्। तत्र हि सूत्रे न चक

1. प्रगृह्यत्व प-2; प्रगृह्यत्वप्रक्षतौ प-1; प्रगृह्यत्वे प्रवृत्तौ अ-4.
2. प्लुतस्या अ-4.
3. सिद्धत्वे नुनासिकः प-1.
4. इति नाऽस्ति प-1.
5. यथोदेशाश्रयणम् प-1, प-2, अ-4.
6. अयं कोष्ठान्तर्गत पाठस्तु अ-1; मातृकायां नोपलभ्यते पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-4 मातृकासु उपलभ्यते.
7. प्लुर्नलक्षण अ-4.
8. लक्ष्य ज-2.
9. तद्दृष्ट्या अ-4.
10. प्लुतभावात् ज-2, प-2.
11. वुद्या ज-2.
12. जायमानात्याप्लुते प-1, प-2.
13. विषयोतिरिक्ते ज-2, अ-3.
14. नाश्रीयत प-1, ज-2.
15. इत्युक्तैप्यत्रदोषः इत्यारभ्य नाश्रीयते इत्यन्तं नाऽस्ति प-2, ज-2.
16. भेदो नराश्रीयते अ-4.
17. 'तु' नाऽस्ति अ-3.
18. प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप् 7/3/44.

इति वर्णग्रहणे एतिका इत्यादावकार[1]द्वयव्यवधानादि[2]ग्रहणस्य प्रयोजनं वृद्धावपि कृतायामोत्व[3] यथा[4] स्यात्। पुनः प्रसङ्ग विज्ञानाद् वा सिद्धामिति वदता त्वदभिमतार्थस्य भगवताऽस्पष्टत्वात्। यद्यपि उक्तं वेति प्रतीकमुपादाय प्रवृतत्वाच्च[5] लक्षणस्य पुनः वृद्धेः प्रवृत्तिर्न भवतीति कैयटेनोक्तं तथापि तद्भाष्यं सहिवहोरिति सूत्रस्थावर्णग्रहणप्रत्याख्यानपरभाष्यविरुद्धम्[6]। अत एवात्रापि पुनः प्रसंगेन समाहितं[7] अग्रे[8] तत्र हि आंतर[9]तस्यादवर्णस्यैवोर्त्व भविष्यति इत्याशयकम्। अथावर्णग्रहणं किमर्थं इह माभूत् ऊढः[10] ऊढवानिति नैतदस्ति कृतेप्य[11]वर्ण ग्रहणे परत्वात् भवत्येवात्रौत्व[12] श्रवणं[13] कस्मान्न भवति संप्रसारणे कृते[14] पूर्वरूपत्वमस्य भविष्यतीति उक्तं एवं चावर्णग्रहणं

1. 'व' नाऽस्ति प-2.
2. व्यवधानादित्वा प्राप्तिः प-1 व्यवधानादित्वाप्राप्तिः द्वयोरकारयोरकादेशेटापा-सहैकादेशस्य स्थानिवद्भावा इति पाठः प-2.
3. कृतयागोत्वम् प-1, प-2; कृतायामात्वम् अ-3.
4. यथो स्यात् अ-3, ज-2.
5. उपादायाप्रवृतत्वाच्च अ-4.
6. परभाष्यविरुद्धभाष्यतिरोद्ध अ-4.
7. समिहितम् प-1.
8. अग्रो प-1, प-2.
9. प्रांतरतस्याद ज-2; आंतरंभ्याद वर्णस्यैवत्वं प-1 आतरतस्यादवर्णस्येत्वम् प-2; आतरतन्यादवर्णस्यैवोत्वं अ-4.
10. माभूत अङ् उ ठ उढवानिति अ-4.
11. वर्णाह ग्रहणे अ-4.
12. भवत्येवौत्रौत्वम् प-2; भवत्येवात्रोवम् अ-3.
13. श्रवर्ण ज-2.
14. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; सम्प्रसारणे प्लुते अ-1, ज-2, अ-3.

न कर्तव्य[1] प्रत्याख्यात[2] वर्णग्रहणैकदेशं वर्णग्रहणमादाय वृद्धौ कृतायां औत्वमस्य[3] भविष्यतीति उक्तम्। एवं चावपादनमेकदेशिनः अत एव सिद्धांतिना[4] पुनः प्रसंगविज्ञानेनसमाहितम्[5]। तस्माद्विकारकृतलक्ष्यभेदो नाश्रीयते इत्युक्ति[6]स्त्वाग्रहमूलिकैवेति चेन्नेति[7] परमपूर्वः पक्षः सिचि[8]वृद्धिरिति सूत्रस्थ भाष्यस्यैकदेश्युक्तित्वेपि सहिवहोरिति सूत्रस्थभाष्यस्यैव तत्र मानत्वात्। तत्र सूत्रोपसंहारे ऊढ इत्यादावोत्वे परत्वात् कृते सम्प्रसारणे पूर्वरुपत्व[9] तत्र कार्यकृतत्वात्पुनरोत्वं न भविष्यतीत्युपसंहृतम्[10]। एवं च कंठत एव तदुक्तिरत-स्तदाश्रयणम्। ष्यङ[11] इति सूत्रस्थं भाष्यमेकदेश्युक्तमेव एतद्भाष्यात्। विपर्यस्तु न अदमुयङिति चेष्येत[12] इत्यदसोरिति[13] सूत्रस्थ भाष्येऽणानंत्य विकार इति परिभाषायां[14] अवश्यकत्वबोधनेन तेनैवात्राभ्यासेवृद्धिवारणे एतद्भाष्यविरुद्धकल्पनाया आश्रयितुमशक्यत्वात्। तदनाश्रयणेरुपानंत्य[15]

---

1. कर्त्तव्ये ज–2.
2. प्रत्याख्यातावर्णग्रहणेकदेशम् अ–4.
3. ओत्वसंपादनमेकदेशिनः इति पाठः प–1, प–2.
4. सिद्धांतिनः अ–4.
5. समाहि प–1; समाहित अ–4.
6. 'त्' नाऽस्ति प–1.
7. चेन्नितिपसंहारेपूर्वः पक्ष प–1; चेन्नेति पसंहारे पूर्वः प–2.
8. सचिवृद्धि अ–4.
8. पूर्वरूपत्व ज–2; अ–3, अ–4.
10. भविष्यतीत्वापसंहतम् ज–2; भविष्येतोत्प्रसंहातम् प–2; भविष्यतित्युपसंहृतम् प–1.
11. ष्यडः 6/1/13.
12. चेष्यत ज–2, अ–3.
13. अदसोऽतेः 1/2/20.
14. परिभाषाया प–1, प–2, अ–3, अ–4.
15. पाठोऽयं प–1, प–2, अ–4; रुधानं सप्रसङ्गाच्च अ–1, ज–2, अ–3.

प्रसंगाच्चेति मात्सर्य[1]मुत्सार्यविचार्य[2]मार्यैरिति दिक्[3]। इदमेव सर्वं मनसि निधायाह[4] न्यायेन[5] पुनरप्रवृतेरिति॥103॥

व्यवस्थाबोध्येति। परिक्रयणे[6] इति सूत्रादन्यतरस्यां ग्रहणमनुवर्त्य-व्यवस्थितविभाषां चाश्रि[7]त्य पापेऽभि[8] निवेश इत्यत्र कर्मत्व[9] नेति समर्थ सूत्रादौ कैय्यटादय:। तदनुवृत्तौ मान[10] च एष्वर्थेष्वभिनिविष्टानामिति समर्थसूत्रस्थं भाष्यमेव। यत्तु[11] शेखरे परत्वे तद्भाष्य प्रयोगादभिनिविशि[12]त्यानु-पूर्व्या अविकृताया यत्र श्रवणं तत्रैवैतत्सूत्र[13] प्रवृत्ति:। अन्यतरस्यां ग्रहणानुवृत्तौव्यवस्थितविभाषाश्रयणे च न मानमित्याहुरित्युक्तम्[14]। पापेऽभिनिवेश[15] इत्यत्र पूर्वरुपेणाकारस्यापहारेण[16] तदभाव[17] इत्याशय:

---

1. मात् नाऽस्ति प-2; सुर्यमुत्सार्य प-1; मात्स्यम् अ-4.
2. सं. पाठ: विधायम् अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4.
3. 'दि' नाऽस्ति ज-2, अ-3, प-2.
4. विधायह प-2.
5. न्ययेन ज-2, प-2, अ-3.
6. सं. पाठ:, परिक्रमणे सम्युदानमन्यतरस्याम् 1/4/44 अष्टा., परिक्रियणे इति अ-1, ज-2, अ-3, प-1, अ-4; परिक्रीयणे प-1.
7. वांश्रित्य ज-2.
8. पाठोऽयं अ-4; पापेभि निवेश अ-1, ज-2, प-1, अ-3; पापे विनिवेश प-2.
9. कमत्वम् अ-3.
10. मान च ज-2, अ-3.
11. पाठोऽयं अ-4 ए: यतु शस्वरे पत्वे तद्भाष्य अ-1, ज-2, अ-3 यज्तु शखरे प-1, प-2.
12. अभिनिविशेते अ-4; अभिनिविशत्या ज-2.
13. तत्रैवसूत्रत्प्रवृद्धि: अ-4.
14. आहुरिक्तम् प-1; आहुरित्युक्ते ज-2.
15. पाठोऽयं अ-4; पापेभिनिवेश अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3.
16. 'ण' नाऽस्ति प-1.
17. तदभावा तदभावा प-1.

तदसत्। उक्त भाष्यप्रयोगस्यैव मानत्वात् न च ता:[1] परिगणिता इति वाच्यम्। भाष्यतात्पर्य[2] विषयीभूतानां तासां बहुशस्त्वयापि गुरोरनृत[3] इत्यादि सूत्रेष्वभ्युपगमात्। तावता किमिति चेत्सिद्धम्। प्रकृतेऽपि व्यवस्थित[4]विभाषया न च तदंगीकारेऽपि अतिप्रसङ्गवारणायव्याख्यान[5]स्यानभिधानस्य वाश्रयणे गौरवं[6] तत्यैव देयत्वेन न मानमित्यस्य व्याहतत्त्वात्। न च न[7] केवल व्यवस्थित विभाषाश्रयणे न मानमिति नाशय: किंतुव्याव्यानानभिधान[8] योरन्यतरसहकृतव्यवस्थित विभाषाश्रयणे न मानमित्याशयइति वाच्यम्। तदन्यतराश्रयणस्य[9] वृद्धकुमारी न्यायेन[10] नांतरीयकतया दोषानाधायकत्वात्[11] किंचा भाष्य प्रयोगेऽपिवाक्य[12] संस्कार[13]पक्षाश्रयेण संस्कारेश्रुतानुपूर्वोक्त क्रमेणेव[14]वाक्याख्यानस्य वाच्यतयापूर्वोपस्थितनिमित्तकत्व[15] रूपांतरंगत्वस्य

---

1. न चत: प-2; नाचता: प-1; न् चना: अ-3.
2. भाष्यं त्यात्ययं ज-2; तात्यर्थ विषयीभूतानां तात्यत्यां प-1.
3. पाठोऽयं अ-4; गुररोरनृत अ-1, अ-3; गुरूरीत्वरनृत ज-2; गुरीरनृत प-1, प-2; गुरीरनृतोऽन नुत्यस्याप्येकैकस्यप्राचाम् 8/2/86 अष्टा.
4. 'पि' नाऽस्ति अ-4.
5. व्याख्यानत्य न विधानस्य अ-4.
6. गौरवांतस्येव प-1, प-2.
7. 'न' नाऽस्ति प-2.
8. विधानयो: प-2.
9. पाठोऽयं प-1, प-2; तदन्यतराश्रयणे स्य वृत्ध अ-1, ज-2, अ-3; तवन्यतराश्रयणेऽस्य अ-4.
10. न्यायेण संस्कानांतरीय प-2; न्यायेनांत प-1.
11. 'त' नाऽस्ति तु अस्ति प-2.
12. प्रयोगेऽपिनावयव संस्कार ज-2; वाक्यसकारपक्षाश्रयेण प-1.
13. संस्कारे नाऽस्ति अ-4.
14. क्रमेणेवावख्यानस्य प-2.
15. निमित्तकास्वरूपां अ-4.

ध्वनितं कैयटेन स्पष्टमुक्तम्।

एतेन क्रियान्ययित्वं कारकत्वमित्यपास्तम्। 'यस्य च भावेन' इति सप्तम्या अपि क्रियान्वयित्वात्। ये तु प्रधानीभूतक्रियासम्बन्ध निमित्तकार्य्यत्वेत कारकविभक्तीनां बलवत्तं वदन्ति तेषामुभयोरपि क्रियासम्बन्ध निमित्तकत्वेन तदसङ्गतिः स्पष्टैव, 'नमोवरिवः' (3. 1.19) इतिसूत्रे नमस्यति देवानित्यादौ चतुर्थीवारणाय भाष्य उपन्यासस्यासङ्गतिश्च।

एतेन क्रियाकारकसम्बन्धोऽन्तरङ्ग इति तन्निमित्ता विभक्तिरन्त-रङ्ग, उपपदार्थेन तु यत्किञ्चित् क्रियाकारकभावमूलकः सम्बन्ध

कर्म[1] संज्ञायां सत्वेन कर्मसंज्ञादृष्ट्या अत्वस्यासिद्धत्वेन च द्वितीयापत्ते दुर्वारत्वाच्च। अपि च कर्मत्वाविवक्षापरकृतपूर्वोकटमित्यादि भाष्यस्य तत्तत्प्रयोगमात्रपरत्वबोधक त्वदीयग्रंथंदृष्टांतीकृत्य प्राप्तवादिदिगाजोप मर्दनायमूलोक्तव्यवस्थित विभाषा[3] कुशस्यैव त्वयाप्यंगीकार्यत्वात् एवं च अंतेरंडा विवाहश्चेदादावेवकुतो न स इति न्यायेन पूर्वमेव तदंगीकारस्य[4] उचितत्वाच्च। किं च पापेभिनिवेश[5] इत्यत्र संहिता[6] अविवक्षायां संध्यभावे[7]ऽविकृतानुपूर्व्याः[8] सत्वेन द्वितीयापत्ते[9]दुर्वारत्वात् च। अत एव

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2.
2. दृष्टं कृत्य अ-4.
3. विभाषाम् प-1.
4. तद्दंगी अ-4.
5. पाठोऽयं प-1, प-2; किं च यो योयो भिनिवेश अ-1; किं च या यो भिनिवेश ज-2 अ-3; यो योऽभिनिवेशे अ-4.
6. संहहिताया ज-2, अ-3; संहिताया अ-4.
7. 'सं' नाऽस्ति अ-1, ज-2, अ-3.
8. 'र' नाऽस्ति प-1.
9. द्वितीययायत दुवारत्वाच्च अ-4; दुर्वत्वरित्वात् प-1, प-2.

इति तन्निमित्ता बहिरङ्गेत्यपास्तम्। नमस्यतीत्यत्र नमः पदार्थेऽपि क्रियाकारकभावेनैवान्वयात्। अत्र च नमः पदार्थस्यापि क्रियात्वं मुण्डयतौ मुण्डस्येव। 'सहयुक्ते' (2.3.19) इत्यादौ च प्रधाने प्रथमासाधनार्थमियं विस्तरः॥102॥

नन्वदमुयङ्ङित्यादौ पूर्वस्यापि मुत्वापत्तिरत आह–

अनन्त्यविकारेऽन्त्यसदेशस्य॥103॥

अन्त्यसदेशानन्त्यसदेशयोरेकप्रयोगे युगपत् प्राप्तावन्त्यसदेशस्यैवेति तदर्थः। अन्यथा धात्वादेर्नत्वसत्वे नेता सोतेत्यादावेव स्यातां न तु नमति सञ्चतीत्यादौ। अनन्त्यविकार इति च लिङ्गम्। अन्त्येन समानो देशे यस्य सोऽन्त्यसंदेशः। तत्त्वं च अन्त्यवर्णतद्वर्णयोरितराव्यवधानेन बोध्यम्। अत एव विद्ध इत्याद्यर्थ 'न सम्प्रसारणे' (6.1.37) इति चरितार्थम्। 'अल्लोपोऽनः' (6.4.134) इत्यादेरनस्तक्ष्णेत्यादावाद्याकारादाव प्रवृत्ति रप्यस्याः फलम्, यजादिस्वादिपरानन्ताङ्गस्याकारस्य लोप इत्यर्थस्यैवाङ्गांशो। प्रत्ययस्योत्थिताकाङ्क्षतयोचित्यादङ्गावयवयजादिस्वादिपरस्थान इत्यादिक्रमेणानेकत्रानेक क्लिष्टकल्पनापेक्षयास्या उचितत्वात्। न चेषा 'ष्यडः संप्रसारणम्' (6.1.13) इतिसूत्रे भाष्ये प्रत्याख्यातेति भ्रमितव्यम्, वार्त्तिकोक्तफलानामनेकक्लिष्टकल्पनाभिरन्यथासिद्धिं प्रदर्श्यापि यान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि तदर्थमेषा कर्त्तव्या प्रतिविधेयं दोषेषु प्रतिविधानं चोदात्तनिर्देषात्सिद्धमित्युपसहांरात्। मिमार्जिषतीत्याद्यर्थ च सा। तत्र वृद्धेः पूर्वमन्तरङ्गत्वाद्द्वित्वे परत्वा दभ्यासकार्य्ये ततोऽभ्यासेकारस्य वृद्धिवारणायावश्यकी। न च वृद्धौ पुनरभ्यासह्रस्वत्वेन सिद्धिः 'लक्ष्ये लक्षणस्य' इतिन्यायेन पुनरप्रवृत्तेः।

यत्तु 'न सम्प्रसारण' इति सूत्रे भाष्य नैतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानीत्युक्तं तस्यायमर्थः–एतत्सूत्रप्रयोजनान्येतस्याः परिभाषायाः प्रयोजनानि न भवन्ति, व्यधादावन्त्यसमानदेशयणोऽभावादिति। नैतान्येतस्याः प्रयोजनानीति पाठोऽपि क्वचिद् दृश्यते॥

वाचनिक्येवैषा। स्पष्टा च 'ष्यङः' (6.1.13) इति सूत्रे 'अदसोऽसेः' (8.2.20) इति सूत्रे च केचिदन्त्यसदेशस्येत्यनेन भाष्य इत्यन्यत्र विस्तरः॥103॥

ननु 'अव्यक्तानुकरणस्यातः' (6.1.98) इति पररूपं पटत् इति पटितीत्यादौ 'अलोऽन्त्यस्य' (1.1.52) इत्यन्त्यस्य प्राप्नोतीत्यत आह-

नानर्थकेऽलोऽन्त्यविधिरनभ्यासविकारे॥104॥

अनभ्यासेत्युक्तेविभर्त्तीत्यादौ 'भूञामित्' (7.4.76) इत्याद्-यन्त्यस्यैव। अभ्यासोऽनर्थकोऽर्थकोऽर्थावृत्त्यभावात् किन्तु उत्तरखण्ड एवार्थवानिति अन्यत्र निरूपितम्॥

एषा 'अलोऽन्त्यात्' सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। फलानामन्यथा-सिद्धिकरणेन प्रत्याख्याता चेति तत् एवावधार्य्यम्॥104॥

ननु ब्राह्मणवत्सा च ब्राह्मणीवत्सश्चेत्यादौ 'पुमान् स्त्रिया' (1.2.67) इत्येकशेषपत्तिः स्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्तकृतविशेषाभवादत आह-

प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्ययः॥105॥

तेन प्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वातिरिक्ताप्रधानस्त्रीत्वपुंस्त्वकृतविशेषस्यापि सत्त्वेन न दोषः। स्पष्टा चेयं 'पुमान् स्त्रिया' (1.2.67) 'नपुंसक-मनपुंसकेन' (1.2.69) इत्यनयोर्भाष्ये। अन्तरङ्गोपजीव्यादपि प्रधानं प्रबलमिति 'हेतुमति च' (6.1.26) इत्यत्र भाष्यकैयटयोः॥105॥

ननु स्वस्त्रादित्वप्रयुक्तो मातृशब्दस्य ङीब्निषेधः परिच्छेत्तृ-वाचकमातृशब्देऽपि स्यादत आह-

अवयवप्रसिद्धेः समुदायप्रसिद्धिर्बलीयसी॥106॥

तेन शुद्धरुढस्य जननीवाचकस्यैव ग्रहणं न परिच्छेत्तृवाचकस्य। योगजबोधे तदनालिङ्गितशुद्धरुढिजोपस्थितिः, प्रतिबन्धिकेति व्युत्पत्तिरेव

तद्बीजम्। रथकाराधिकरणन्यायसिद्धोऽयमर्थः।

कश्चित्तु 'दीधीवेवीटाम्' (1.1.6) इत्यत्रानया परिभाषया दोधीङ्वेवीङोरेव ग्रहणं न दीङ्धीङ्वेवीनामिति तन्न तथा। सति दीवेधीवीटामित्येव वदेदित्यन्ये॥106॥

ननु वातायनार्थे गवाक्षेऽवङो वैकल्पिकत्वाद् गोक्ष इत्याद्यपि स्यादत्त आह-

व्यवस्थितविभाषयापि कार्य्याणि क्रियन्ते॥107॥

व्यवस्थित[1] विभाषानाश्रयणभल्ल[2]- भिन्नयोगींद्रोभिनिविष्टो यो ब्रह्मतत्त्व[3] परात्परम्[4]। न पुनर्वर्तते लोके[5] योगमार्गानुसारित इति लघुयोगसारस्थ प्रयोगश्रुकपोतका[6]मूलकृताव्यवस्थित विभाषा मंजूषा संगोपनेनानु[7] गृहीताः। अत एव व्यवस्थितविभाषाश्रयणे[8] प्रमाणमस्मरता[9] न मानमित्येवोक्तम्। अन्यथातदाश्रयणम[10]संगतमिति वदेदिति[11] विदुषो विदुषो[12] विदां कुर्वंतु[13] इति दिक्॥107॥

---

1. 'व्यव' नाऽस्ति अ-4.
2. भल्लुभिन्न प-1; आश्रयणमदमभिन्न अ-4; भल्लभित्त ज-2.
3. ब्रह्मत्वम् प-1.
4. परापरम् प-2.
5. लोगो प-1; पुनर्वतंतलोके अ-4.
6. पीतका प-1.
7. संगोपनेनागुगृहीताः अ-4; अनुगृहीताः प-2.
8. व्यवस्थितविभाव श्रयणे अ-4.
9. प्रमाणस्मरणता प-2; प्रमाणस्मरता प-1.
10. तदाश्रयणप्रसंगतमिति अ-4.
11. वेदेति ज-2, अ-3; वंदेति प-2.
12. विदुषो नाऽस्ति प-2, अ-4.
13. कुर्वंतु प-1, प-2.

लक्ष्यानुसाराद् व्यवस्था बोध्या। 'शाच्छ्वोः' (7.4.41) इति सूत्रे 'लटः शतृ' (3.2.124) इत्यादिसूत्रेषु च भाष्ये स्पष्टा॥107॥

विधिनियमसम्भवे विधिरेव ज्यायान्॥108॥

नियमे ह्यश्रुताया अन्यनिवृत्तेः सामर्थ्यात्परिकल्पनमुक्तानु-

त[1]त्प्रत्याख्यानायेति। ननू[2]च्चारणार्थानामपि इत्संज्ञा विना निवृत्य-भावस्य[3] तस्य लोप इति सूत्रे भाष्ये उक्ततया[4] औत स्तित्वेपि[5] प्रत्य[6]याप्रत्यययोरित्येव सिद्धे[7] पुनस्तिति[8] प्रत्यय ग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्त्तिके-नौपदेशिकप्रत्ययत्वव[9]त्येवतत्प्रवृत्या[10] न स्वरितत्त्वमिति स्वरितत्वारक[11] शब्दरत्न[12]विरोध इति चेन्न तस्य प्राचीनानु[13]रोधित्वेनादोषात्। अत एव शेखरे इमां परिभाषा[14]मत्रोक्तरीत्याप्रत्याख्याय अग्नावित्यत्र[15] स्वस्तित्ववारण[16]

---

1. 'त' नाऽस्ति प-1.
2. ननुच्चारणाथ नमपि प-2.
3. 'तस्य' नाऽस्ति प-1.
3. तस्यलोपः 1/3/9 अष्टा.
4. 'तया' नाऽस्ति.
5. औतस्त्वित्वेपि प-1, प-2.
6. तत्ययप्रत्ययोः प-1, प-2; प्रत्यय परोरित्येवसिद्धे अ-4.
7. सिधे प-1.
8. पुननस्तिति अ-3, पुमस्तिति प-1, पुनस्तिविप्रत्यय अ-4.
9. 'से' प-1.
10. तत्प्रवृत्य अ-4.
11. वास्क ज-2.
12. शब्दशरत्न अ-4.
13. प्राचौना ज-2.
14. परिभाषांमन्त्रोक्त अ-4.
15. अग्ना विवित्यत्र प-1.
16. स्वचरितत्व प-1.

वाददोषश्चेति लाघवाद्विधिरेवेति बोध्यम्। 'यस्य हलः' (6.4.49) इत्यत्र "इजादेः सनुमः" (8.4.32) इत्यादौ च भाष्ये स्पष्टेयम्॥108॥

ननु 'आशसायां भूतवच्च' (3.3.132) इत्यनेन लुङ इव लङ् लिटोरप्यतिदेशः स्यादत आह-

सामान्यातिदेशे विशेषानतिदेशः॥109॥

सामान्योपस्थितिकाले नियमेन विशेषोपस्थापकसामग्रय-भावोऽस्याबीजम्। तेनानद्यतनभूतरूपे विशेष विहितयोस्तयोर्नातिदेशः।

इयमनित्या, 'न ल्यपि' (6.4.69) इति लिङ्गात्। तेन स्थापिवत् सूत्रेण विशेषातिदेशोऽपि। स्पष्टं चैतत् सर्व स्थानिवत्सूत्रे भाष्ये॥109॥

तु प्रत्ययग्रहण[1]मित्यविधानकालिकप्रत्ययत्ववत्ग्रहण मित्यर्थेन कृतम्। शब्दरत्नेऽपि आदेशेषु[2]दकारस्थानिकचर्त्वनिष्पन्नतकारस्य सत्वेन द्वित्वात्तद प्राप्तेश्चेत्यग्रे समाहितमेवेति ध्येयम्॥110॥

ओत्सूत्रे भाष्ये इति। ननु नैतद्भाष्यं तदभावसाधकं तथाहि तत्र किमुदाहरणं आहो इति नैतदस्ति[3] निपातसमाहारोय[4] तत्र निपात[5] एकाजनाङित्येव सिद्धम्। एवं तर्ह्येक निपात इमे[6] अथवा प्रति सिद्धार्थो[7]यमारंभः

---

1. ग्रहमित्यस्य विधान प-1; ग्रहणत्यस्यविधान अ-4.
2. अदेशेषु प-1.
3. नैतद इति स्त्री निपात प-1.
4. समाहोयम् अ-4.
5. 1/1/14 अष्टा.
6. इमि अ-4.
7. पाठोऽयं अ-3, अ-4; प्रतिधित्धार्थो अ-1, प-1, प-2; प्रतिषिद्दार्थो ज-2.

ननु 'तित् स्वरितम्' (6.1.185) इति स्वरितत्वं किरतीत्यादावपि स्यादत आह-

प्रत्ययाप्रत्ययोः प्रत्ययस्य ग्रहणम्॥110॥

ओषुपातं मरूतः ओतश्चि[1] प्रतिषेधः अदोभवत्[2] न वक्तव्यः। लक्षणप्रतिपदोक्तयोः[3] प्रतिपदोक्तस्येत्येवं न भविष्यति इत्युक्तम्। तत्र एतत्सूत्रे लक्षणप्रतिपदोक्त परिभाषा प्रवृत्ति स्वीकार एकदेशिनो[4] न सिद्धांतिनः। प्रतिषेधार्थोय[5] आरम्भ[6] इति पूर्वसिद्धांति भाष्य विरोधात्। एवं च तद्भाष्यमेक देश्युक्तमेवेति स्पष्टमेव। अत एवाग्रे गोभव[7] दित्यत्र प्रगृह्यसंज्ञामाशंक्य गौणमुख्य न्यायेन[8] नेति व्यापकं समाधानमुक्तमिति चेन्न। वर्णग्रहणेनेत्यस्य किं विशेष्यतया यत्र वर्णग्रहणं तत्र नेत्यर्थो वा विशेषणतया तत्र नेत्यर्थो[9] वा नाद्यः। एचोऽयवायावः इत्यादावेत्यंशे परिभाषाया अप्रवृत्या[10] हरये इत्यादि सिद्धावपि उपदेशग्रहणे वैय्यर्थ्यस्य तदवस्थात्वात्[11]। धर्मिग्राहकमान विरोधाच्च न द्वितीयः। ए चो एवेत्यादावे[12]वदोष ध्रौव्यात्[13]। न च सामान्यत

---

1. आतश्चप्रतिषेर्थः अ-3.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2; अहो भवतु अ-1; अदो भवतः अ-3.
3. प्रतिपादोक्तयोः अ-3.
4. 'ए' नाऽस्ति प-2; स्विकार एकः प-1; स्वीकारा एक अ-4.
5. प्रतिषेधार्थेऽपि प-2.
6. आरम्भ इति भाष्यविभाष्य विरोधात् अ-4.
7. गोभवादि्दत्यत्र अ-4.
8. न्यायेनानेति अ-4.
9. नेत्यर्थोपविशेषणतमुत्र तत्र नेत्यर्थोवा अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
10. अप्रवृत्य अ-4.
11. तदवस्यत्वात् अ-4.
12. एचो यत्वेत्यादाववदोष प-2; ए चेयवेत्यादावेव प-1.
13. श्रोव्यात् ज-2; धोव्यात् प-1, धौव्यात् अ-3.

इयं च 'अङ्गस्य' (6.4.1) सूत्रे भाष्ये पठिता। वर्णग्रहणे च न प्रवर्त्तत इति तत्रैव कैयटे स्पष्टम्। अत एव 'सनाशंसभिक्ष उः' (3.2.168) 'बले' (6.3.118) इत्यत्र सन्वलयोः प्रत्यययोर्ग्रहणम्।

परे तु 'तित् स्वरितम्' (6.1.185) इति सूत्र एषा परिभाषा लक्ष्यसंस्काराय भाष्ये क्वापि नाश्रितेति कैयटेनोक्तम्। 'अङ्गस्य' (6.4.1) इति सूत्रे तत्प्रत्ययाख्यानायैषा भाष्य एकदेशिनोक्ता। अत एव तिति प्रत्यय ग्रहणं कर्त्तव्यमिति वार्तिकृतोक्तम्। उक्तसूत्रयो-र्व्याख्यानात् प्रत्यययोरेव ग्रहणमित्याहुः॥110॥

ननु 'विपराभ्यां जेः' (1.3.19) इत्यात्मनेपदम् परा सेना जयतीत्यर्थके परा जयति सेनेत्यत्र प्राप्नोतीत्यत आह-

---

एव वर्ण[1]ग्रहणेऽप्रवृत्तिरिति वाच्यं मूलशैथिल्यात्। तथाहि लिटि धातोरिति सूत्रे धातुग्रहणं तिष्ठतु तावत् सान्यासिक[2] इति भगवतोक्तम्। धातोरित्य-स्याभावे लिटीति[3] एकाचो विशेषणं स्यात्। ततश्च पपाचेत्य[4]त्रैव स्यात्। न जजागा[5]रेत्यादाविति तदाशयः। एवं च गोभ्यामित्यादि उपदेश व्यावर्त्य बोध्यम्। आदेच[6] इति सूत्रे अथापि धातुग्रहणं निवृत्तमित्युक्तम्[7]। किं च धातुग्रहणानुवृत्तौ नानुबंधकृतमनेजंतमिति परिभाषा ज्ञापक परभाष्यविरोधश्च न धातु सूत्रोक्त भाष्यरीत्यानु[8]बंधसत्वे धातुत्वाभावेनात्वाप्राप्तौ तदसंगतिश्च। अपि च अवङ्स्फोटेति सूत्रे परिभाषा प्रवृत्या चित्रगो[9]ग्रमित्यादाववङ्भाव-

---

1. ग्रहणऽप्रवृत्तिः प-2.
2. सान्यासकम् प-2.
3. लिटिति अ-3.
4. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-4 यगश्चेत्यत्रैव स्यात् अ-1, प-2, अ-3.
5. नजमागोरत्यादाविति प-2.
6. औदचः 6/1/45.
7. इत्युक्ते प-1.
8. रित्या प-1.
9. चित्रणोयंमित्यादौ अ-4.

प्रतिपादकत्ववदुक्ति विरोधश्चेति दिक्॥113॥ ननु पूर्वोक्त ओषुपातं मरुत भ[1] इत्युदाहरणे उञः[2] ऊँ[3] इति सूत्रस्थ इहकस्मान्न[4] भवति इति उताहो इति इत्युदाहरणे च कथमाङ्[5]त्वोञ् त्वयोतिदेशः। स्थानित्वेनोपाताल् वृत्तित्वेन न[6] तयो स्थानि[7]वदित्यनेनातिदेशः। अचः[8] परेत्यस्य तु विषय एव न भवति। न चौत्सूत्रे[9] आ उ ओ इत्यत्रांतवद्भावाद्भवत्येयमाङिति प्रतिषेधः इति वदता[10] कैय्यटे न उभ[11] इति सूत्रे स्थानिवद्भावेन तु नैतल्लभ्यम्। एका[12]देशस्थान्यल्वृत्ति धर्मत्वात् एकादेशस्थान्यल्मात्रवृत्तिधर्मस्तु नायम्। उज[13] इति समुदायेपि सत्वात्। तेनांतवद्भावेन[14] ताद्रूप्यानतिदेशेपि न दोष इति वदता विवरणकारेण चांतादिवत्सूत्रेण तयोरतिदेश उक्त एवेति वाच्यम्। आङ्त्वादेरल्[15] मात्रवृत्तित्वेन तददतिदेशस्य तेन वक्तुमशक्यत्वात्[16]। तथा

---

1. 'भ' नाऽस्ति अ-4.
2. सं. पाठः उञः 1/1/17 अष्टा.
3. 'ऊँ' सं. पाठः 1/1/18 अष्टा. 'ऊँ' अ-1, ज-2, प-1,प-2, अ-4.
4. कस्मान्नभवावति अहो इति पाठः अ-4.
5. कथमाङ्त्वोभत्वयोरतिदेशः प-2; कथमाङ्त्वोज्ज्वयोतिदेशः अ-4.
6. 'न' नाऽस्ति अ-4.
7. स्थानि इत्यारभ्य माङिति इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4; अतः स्थानि च माङिति प्रतिषेधः इति पाठोपलभ्यते अ-4.
8. अच परेत्यस्येतु प-1.
9. औत् 7/3/118 अष्टा.
10. 'वदता' नाऽस्ति अ-4; वदाता अ-3.
11. उभ ज-2, अ-3; उंज अ-4.
12. एकदेश प-1.
13. उभ इति प-1, प-2 उजं ज-4.
14. तेनानांतवद्भावेन प-2.
15. आङ्त्वदेरल अ-4.
16. कर्त्तुम् प-2.

हि आङ्त्वादिक[1] च इत्यंसज्ञाक[2] इका[3]राद्युपलक्षितात्वादिकं वक्तव्यम्। तच्च स्थान्यल् मात्रवृत्येव न चाका[4]राद्युतरङ्त्वादिकमेव तत्व[5]मिति वाच्यम्। तस्यांत्यवर्णमात्रवृत्तित्वेन समुदायावृत्तित्वात्। न च यस्यशोक्तद्योत्तर टत्वस्य[6] स्वाश्रयघटितत्त्व[7] संबंधे न समुदाय वृत्तित्व प्रतिपादक कौस्तुभोक्त[8]रीत्या अस्यापि[9] समुदाय[10] वृत्तित्वम्। समुदायस्य स्थानित्वाभावेन[11] तथा वक्तुमशक्य[12]त्वात्। उजत्व[13] स्थान्यल् मात्र[14] वृत्तीति पूर्वोक्त विवरण व्याकोपाच्च क्तक्तवतू निष्ठेत्यादि सूत्रोक्त इत्संज्ञक[15] नकारोपलक्षितः सो भवति इत्संज्ञक नकारोपलक्षित[16] सकारेऽभ्यासात्[17] इत्वं भवतीत्यादिरर्थः। अत एवाटश्चेत्यादेर्नवैय्यर्थ्यमिति विवरणरीत्याऽनाङित्यस्येत्संज्ञकङकारोपलक्षिताकार[18] भिन्नस्य प्रगृह्यत्वमित्यर्थ एवोचितः। न च आङ्त्वादिर[19]

---

1. आत्वादिकम् प-1, प-2; अङ्त्वादिकं अ-3.
2. इत्संज्ञक प-1; इत्यंसंज्ञक प-2.
3. ङःकारा प-1, प-2.
4. चकाराद्यु ज-2.
5. एवतरत्वमिति प-2.
6. टत्वस्याश्रय अ-4.
7. घटोतत्त्व ज-2, अ-3; घटित्व प-1.
8. कौस्तुभोक्तरित्या प-1.
9. अस्यपि अ-4.
10. समुदायावृत्तित्वां समुदायवृत्तित्वं समुदायस्य इति पाठः अ-4.
11. स्थानिवत्वाभावेन अ-4.
12. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; अशक्यत्वतु अ-1; अशक्यत्वम् ज-2; अशक्यत्वत् अ-3.
13. उभत्व प-1, प-2; उतत्वं न अ-4.
14. मातृवृत्तीति प-1., क्तक्तवतूनिष्ठा 1/1/26 अष्टा.
15. इत्संक नकोरोपलक्षितऽसो भवति अ-4.
16. लक्षिमकारेऽ प-1.
17. अभ्यासा तु ज-2.
18. लक्षिताकारि प-2.
19. पाठोऽयं ज-2, प-1, अ-4; आङ्त्यादिरत्वं खंडोपाधिः अ-1, प-2, अ-3.

खंडोपाधिरूभयसाधारण इति वाच्यं मानाभावात्। आट[1]श्चेत्यादेर्नासंगतिरिति विवरणाधार[2] संगतेश्च। न च ताद्रूप्यानतिदेश इत्यस्य वर्णमात्रवृत्तिधर्मानतिदेश इति नार्थः किंतु स्थानित्वेनोपातयो वर्ण स्तंन्मात्रवृत्ति धर्मानतिदेश इत्यर्थः[3] एवं चाङ् उञो[4] समुदाययोः[5] सूत्रे उपादानान्न दोष इति वाच्यम्। यादृशा[6]देशे यत् वुद्धिरानेया[7] तदादेश विधायके स्थानित्वेनोपातयोर्वर्णस्तन्मात्रवृत्तिधर्मानतिदेश इत्यवश्यम् वक्तव्यं न तु यत्र कुत्रचित् स्थानित्वेनोपपातत्त्वम्। अन्यथा भो[8] भगोरिति यत्व[9]विधायके रोरिति[10] समुदायस्य स्थानित्वेनोपादानात् स्थानित्वेनोपातालोभावेन निषेधानापत्या तत्रत्य[11] भाष्यासंगतेः। तत्र स्थानिवत्त्वस्य[12] प्रवृत्तिरत्रत्वं तादिवच्चेत्यस्येतित्वन्यदेतत्। तथा चैषुपात[13] मरुतः आहो इतीत्यत्र गुण[14]रूपैकादेश विधायके स्थानित्वेनाकारोकार-योरुपादानेन स्थानित्वेनोपातवर्णस्याव्याहतत्त्वात्। किं चोज[15] इति सूत्रे स्थानित्वेन समुदास्योपादानेपि निपात[16]एकाजिति सूत्रे आङ्स्तत्त्वेनानुपादानाच्च। अपि

1. अटश्चेत्यादि नी प-1.
2. विवरणासार ज-2; विवरणाद्यसंगतेश्च प-1.
3. किन्तु स्थानि इत्यारभ्य अतिदेश इत्यर्थः इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4; न च ताद्रूप्यानतिदेश इत्यारभ्य अतिदेश इत्यर्थः इत्यन्तं नाऽस्ति प-2.
4. उजोः ज-2; उभो प-2, अ-4.
5. 'दा' नाऽस्ति अ-4.
6. यादृशदिशे यत् प-1.
7. वुद्धिरानेणतदा प-1.
8. भो भगोअधो पूर्वस्य योऽशि 8/3/17 अष्टा.
9. एत्व ज-2, प-1, प-2.
10. रो रि 8/3/14 अष्टा.
11. 'त्य' नाऽस्ति अ-3.
12. स्थानिवत्वस्थ ज-2.
13. चैषुपाते महत ज-2.
14. गुणम् प-1; गुणरुपैकादेश इत्यारभ्य सूत्रे स्थानित्वेन इत्यन्तं नाऽस्ति अ-4.
15. किं चोभ इति प-2 किं चोभ इति प-1.
16. निपात एकाजनाह् 1/1/14 अष्टा; निपात ऐकारयोरूपादानेन स्थानित्वेनोपात-वर्णराजिति सूत्रे अङ्स्तत्वेनानुपादानाच्च इति पाठान्तरं प-1 मातृकायाम्।

चांतादि[1] वत्सूत्रे रमा[2]शब्दादौटापासहैकादेशे परादित्[3]वेनांवतत्त्वमाश्रित्य सुलोपवर्णनस्य भाष्यकुदुक्तस्यासंगतेश्च। किं च[4] सर्वस्या इत्यत्र सर्वनाम्नः[5] स्याडिति आपो[6] विधीयमान ह्रस्वानापत्तेश्च। यत्तु शेखरे एकादेशस्य पूर्वांतत्त्वेनाग्रहणादिति प्रतीकस्थं[7] नचैवमप्याबंतत्त्वाभावः। एकदेश[8]निष्पन्न-स्यास्वाभावात् इति ग्रंथमनुद्य सुड्विधायके आपो[9] निमित्तत्वाभावेनायं विचारश्चिंत्य इति दूषणमभिदधुस्तत्तुच्छम्। मूलस्य[10] व्याख्यानस्य चाशया[11]नवबोधात्। तथाहि सर्वनाम्नः स्याडित्यत्र सर्वनामत्वमाश्रितं सुड्विधायके च तत्र देहली[12] दीप न्यायेन एकादेशस्येत्यस्य[13] ग्रन्थस्योभय-त्रान्वयः। इदमेवस्फोरयितु[14]- मेतदनंतर[15] शंका यद्यपि पूर्वसूत्र एव न[16] चैवमिति शंकोचिता तथापि आत्धे[17]परादित्वे नपूर्वसूत्रे बोधितेऽपि[18]न तावता[19] -

1. अन्तादिवच्च 6/1/85 अष्टा.
2. शब्दादोटापा प-1.
3. परिदित्वे नावत्वमाश्रियत्य अ-4; परादिवानावंतत्वं प-1.
4. 'च' नाऽस्ति प-1 प-2.
5. सर्वनाम्नः स्याड् 7/3/114 अष्टा.
6. अयो प-1; आपा अ-4.
7. प्रतिस्थं प-1.
8. एकादेश अ-4.
9. अयो प-1.
10. मूलं मूलस्य इति पाठः अ-4.
11. चाशयात च बोधात् ज-2; वाशयानवबोधात् प-1; चाशयानववोधनात् अ-4.
12. देहलोपीयन्यायेन ज-2; दहलोदीप प-2: देहलोदाप अ-4.
13. 'स्य' नाऽस्ति अ-4.
14. स्कोरयितुम् अ-4.
15. तदनंतरं तदनंतर अ-3, ज-2
16. 'न' नाऽस्ति अ-4.
17. आप्त्वे परादितत्त्वेन ज-2; आद्देपरादित्वेन प-1; धात्धेपरादित्वेन प-2.
18. बोधिते वि ज-2, अ-3.
19. तावतावसूत्रार्थस्य अ-4.

सूत्रार्थस्य[1] निराकांक्षता सर्वनामत्वस्यापेक्षणात्। तस्यापि वक्तव्यत्वे[2] मूलासंगतेः एवं च[3] मूलकृता सर्वनामात्वांशे[4] समाधानं कृतमेव तदुत्तरा[5] न्यांशे स्वेनाशंक्य परादिवद्भावेनाप्त्वमुक्तम्। तथा न चैवमित्येव[6] शब्दस्य सर्वस्यै इत्यादौ पूर्वांतत्त्वेन सर्वनामत्वातिदेशेपीत्यर्थ[7] इत्यलमन्यथादूषणेन[8] प्रकृतानुसरणि[9] प्रतिरोधकेन[10] न च सूत्रोपात्तवर्णबोध्यो[11] यो वर्णमात्रवृत्ति धर्मस्तदनति[12] देश इति तदर्थ इति वाच्यम्। धर्मिग्राहक[13] मानविरोधात् तत्र हि ह्रस्वपदेन तस्य बोध्यत्वात्। तस्मांदोत्सूत्रादिस्थ भाष्यमसंगतमेवेति चेन्न। ताद्रूप्यानतिदेशात् इत्यस्य तस्यरूपं तद्रूपं[14] तद्रूपस्य भावः ताद्रूप्यं तस्या[15]ऽनतिदेशादित्यर्थेनादोषात्। एकादेशस्थान्याद्यंत वर्णवृत्ति[16]रुपस्य तस्यरुपं चानवसंस्थानमेव[17]। अत एवांतादिवत्सूत्रे नेहताद्रूप्यमतिदिश्यते इति भगवतोक्तम्। कैय्यटे च

---

1. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4, सूत्रार्थस्या ने एकांक्षता अ-1, अ-3; सूत्रार्थस्य ने एकांक्षता ज-2.
2. पाठोऽयं ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4. तस्याव क्तव्यत्व अ-1.
3. 'व' ज-2.
4. सर्वनामत्वांशे अ-3.
5. तङतरांन्यासे अ-4.
6. 'व' नाऽस्ति अ-3.
7. देशोपीत्यर्थ प-1.
8. दूषकदूषणेन प-1, प-2.
9. अनुसरणी प-1; अकृतानुसरणि अ-4.
10. प्रतिरोधके तु अ-3.
11. पाठोऽयं प-1, प-2; 'यो' नाऽस्ति अ-1, ज-2, अ-3, अ-4.
12. वृत्तिधर्मः इत्यारभ्य इत्यर्थेनादोषात् इत्यन्तं नाऽस्ति प-2 मातृकायाम्.
13. ग्राहकमानम् अ-4.; ग्राहकं मान ज-2; धर्मिप्राहक अ-3.
14. तद्रूपं नाऽन्ति प-1.
15. 'इत्यस्य तस्य. इत्यारभ्य तस्याऽनति' इत्यन्तं ज-2 मातृकायां नाऽस्ति.
16. वृत्तिरूपानतिदिश इति यावत् रूपं चानवयवसंस्थानमेव इति पाठः प-1.
17. चानवस्थानमैव अ-4.

सहचरितासहचरितयोः सहचरितस्यैव ग्रहणम्॥111॥

तेन विशब्दसाहचर्य्यादुपसर्गस्यैव पराशब्दस्य ग्रहणमिति तत्रैव भाष्ये स्पष्टम्। सहचरणं सदृशयोरेवेति सहचरितशब्देन सादृश्यवानुच्यते। रामलक्ष्मणावित्यादावपि दृष्टसादृश्यमेव नियामकमृ। सदृशयोरेव सहविवक्षा तयोरेव सहप्रयोग इत्युत्सर्गाच्च। ध्वनितं चेदं 'कर्म्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया' (2.3.8) इति सूत्रे भाष्ये। तत्र हि- 'पञ्चम्यपाङ्परिभिः' (2.3.10) इति सूत्रेण लक्षणादिद्योतकपरियोगे पञ्चमीमाशङ्क्य यद्यप्ययं परिर्दृष्टापचारो वर्जने चावर्जने च, अयं खल्वपशब्दोऽदृष्टापचारो वर्जनार्थ एव कर्मप्रवचीयस्तस्य कोऽन्यः सहायो भवितु मर्हत्यन्यो वर्जनार्थाद्यथाऽस्य गोः सहायेनार्थ इति गौरेवानीयते नाश्वो न गर्दभ इत्युक्तम्। तेन हि- सदृशानामेव प्रयोगे सहायभावो बोधितः।

'द्विस्त्रिश्चतुः' (8.3.43) इति सूत्रे साहचर्य्येणैव कृत्वोऽर्थस्य ग्रहणे सिद्धे कृत्वोऽर्थग्रहणादेषानित्या। तेन 'दीधीवेवीटाम्' (1.1. 6) इत्यत्र धातुसाहचर्य्येऽप्याणमस्येटो ग्रहणमित्यन्यत्र विस्तरः॥111॥

ननु 'अस्थि' (7.1.75) इत्याद्यनङ् प्रियसक्थ्ना ब्राह्मणेनेत्यत्र न स्यादङ्गस्य नपुंसकत्वाभावादत आह-

श्रुतानुमितयोः श्रुतसम्बन्धो बलवान्॥112॥

श्रुतेनैव सम्बन्धो नानुमितेन प्रकरणादिप्राप्तेनेत्यर्थः। प्रकरणादितः श्रुतेर्बलवत्त्वादिति भावः। एवं च तत्र लिङ्गमस्थ्यादीनामेव विशेषणं नाङ्गस्य। शिशीलुङ्नुम्विधिषु तु गृह्यमाणस्याभावात् प्रकरणप्राप्ताङ्गस्यैव विशेषणम्। अत एव 'वा नपुंसकस्य' (7.1.79) इति सूत्रे वा शाविति न कृतम्। तत्र नपुंसकग्रहणं हि गृह्यमाणस्य शत्रन्तस्यैव नंपुसकत्वे यथा स्यात्। बहवो ददतो येषु तानि कुलानि बहुददतीत्यत्र मा भूद्वहूनि ददन्ति येषु ते बहुददन्त इत्यत्र यथा स्यादित्येवमर्थम्। स्पष्टं चेदं 'स्वमोर्नपुंसकात्' (7.1.23) इत्यत्र भाष्ये।

केचित्तु 'अचो रहाभ्यां द्वे' (8.4.46) इत्यत्र श्रुतेन रेफस्य निमित्तत्वेन यरन्तर्भावादनुमितं कार्य्यित्वं बाध्यत इत्येतदुदाहरणमाहुः। तन्न। तक्रकौण्डिन्यन्यायेन सिद्धेरित्यन्यत्र विस्तरः॥112॥

ननु 'तत्पुरुषे तुल्यार्थ' (6.2.2) इति स्वरः परमेण कारकेण पर मकारकेणेत्यादौ स्यात्तथा 'गातिस्थाघुपाभूभ्यः' (2.4.77) इति लुक् पै शोषण इत्यतः कृतात्वात्परस्यापि स्यादत आह-

लक्षणप्रतिपदोक्तयोः प्रतिपदोक्तस्यैव ग्रहणम्॥113॥

लक्षणेनेत्यर्थः। लक्षणं लाक्षणिकमुपचारात्। तत्तद्विभक्ति-विशेषाद्यनुवादेन विहितो हि समासादिः प्रतिपदोक्तस्तस्यैव ग्रहणं शीघ्रोपस्थितिकत्वात्। द्वितीयो हि विलम्बोपस्थितिकः। पै इत्यस्य पा इति रूपं लक्षणानुसन्धानपूर्वकं विलम्बोपस्थितिकं पिबतेस्तु तच्छीघ्रोपस्थितिकम्। इदमेव ह्येतत्परिभाषाबीजम्।

इयं च वर्णग्रहणेऽपि "ओत्" सूत्रे भाष्ये सञ्चारितत्वात्।

कार्यमात्रमनेनाति दिश्यते[1] न तु रूपमित्युक्तम्। वर्णमात्रप्रवृत्ति[2] धर्मानति देशादित्यर्थस्तु फलितार्थकथनपर इत्यवधेयम्। मात्रनिवेशोप्यार्थिक[3] एववर्ण[4]वृत्तिरूपस्यार्थात् वर्णमात्रवृत्तित्वात्। अग्नी[5] इत्यादावादिवद्भावेन[6] द्विवचनत्वस्य प्रगृह्यसंज्ञायामन्यथैव[7] सिद्धेः। नहि द्विवचनत्वादिकं स्थानिरुपं

---

1. दिस्यते प-1.
2. 'प्र' नाऽस्ति अ-4.
3. निवेशोप्यर्थिक ज-2.
4. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-3, अ-4; एवर्णवतिरूपस्य अ-1; एवर्णवनिरूपस्य ज-2.
5. अग्नौ प-1.
6. 'न' नाऽस्ति अ-4.
7. अन्यैव अ-4.

यत्तु वर्णग्रहणे नैषा "आदेचः" (6.1.45) इत्यत्रोपदेश-ग्रहणादिति, तत्तु तस्मिन्नेव सूत्रे शब्देन्दुशेखरे दूषितमिति तत एव द्रष्टव्यम्।

अनित्या चेयं "भूवश्च महाव्याहृतेः" (8.2.71) इति महाव्याहृतिग्रहणादित्यन्यत्र विस्तरः॥113॥

नन्वेवं देङ्‌ दोधातोश्च कृतात्वस्य घुसंज्ञा न स्यात्तथा मेङ आत्वे प्रणिमातेत्यादौ "नेर्गदनद" (8.4.117) इति णत्वं न स्यात्तथा गै इत्यस्यात्वे "घुमास्था" (6.4.66) इतीत्वं न स्यादत आह-

गामादाग्रहणेष्वविशेषः॥114॥

अत्र च ज्ञापकं दैपः पित्त्वम्। तद्ध्यदाविति सामान्यग्रहणार्थम्। अन्यथा लाक्षणिकत्वादेव विधौ तदग्रहणे सिद्धे किं निषेधे सामान्यग्रहणार्थेन पित्त्वेन। तेन चैकदेशानुमतिद्वारा सम्पूर्णपरिभाषा ज्ञाप्यते। इयं चलक्षणप्रतिपदोक्तपरिभाषानिरनुबन्धकपरिभाषालुग्वि-करणपरिभाषाणां बाधिका दाधातु (1.2.20) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टा। "गातिस्था" (2.4.77) इति सूत्र इणादेशग्राग्रहणमेवेष्यत इति न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः॥114॥

न वृद्ध्यादिसंज्ञाः समुदाये स्युरत आह-

प्रत्येकं वाक्यपरिसमाप्तिः॥॥115

देवदत्तादयो भोज्यन्तामित्यत्र भुजिवत्॥115॥

नन्वेवं संयोगसंज्ञासमाससंज्ञाभ्यस्तसंज्ञा अपि प्रत्येकं स्युरत आह-

क्वचित्समुदायेऽपि॥116॥

गर्गाः शतं दण्डयन्तामर्थिनश्च राजानो हिरण्येन भवन्तीत्यादौ दण्डनवत्। लक्ष्यानुरोधेन च व्यवस्था॥116॥

ननु "यू स्त्र्याख्यो" (1.4.3) इत्यत्र व्यक्तिपक्षे दीर्घनिर्देशादनण्त्वेन ग्राहकसूत्राप्राप्त्योदात्ताद्यन्यतमोच्चारणेऽन्यस्वरकस्य संज्ञा न स्यादत आह-

अभेदका गुणाः॥117॥

असति यत्रे स्वरूपेणोचारितो गुणो न भेदको न विवक्षित इत्यर्थः। अत्र च "अस्थिदधि" (7.1.75) इत्यादावनङादेरूदात्तस्यैवोचारणेन सिद्ध उदात्तग्रहणं ज्ञापकम्। स्वरूपेणोच्चारित इत्युक्तेरनुदात्तादेरन्तोदात्तादित्युदात्तादिशब्दोच्चारणे विवक्षैव। "उञः" (1.1. 17) "ऊँ" (1.1.18) इत्यत्र अनुनासिक एव उच्चारणीये यत्राधिक्येनानुनासिकोच्चारणाद्विवक्षा बोध्या। "पथिमथ्यृभुक्षाम्" (7.1.85) इत्यादौ स्थान्यनुरूपतयानुनासिक एवोच्चारणीये निरनुनासिकोच्चारणात्तद्विवक्षा। एतदर्थमेवासति यत्र इत्युक्तम्।

न चैवमस्थ्यादीनां "नब्विषयस्य" (फि. 2-3) इत्याद्युदात्तया अन्त्यादेशस्यानङः स्थान्यनुरुपेऽनुदात्त एवोचारणीय उदात्तोच्चारणं विवक्षार्थं भविष्यतीति कथमस्य ज्ञापकत्वमिति वाच्यम्। परमास्थिशब्दा-

---

एवं चोङ्त्व[1] उञत्वादेः स्थान्यल् वृत्तित्वेपि तस्य[2] न स्थानिरूपत्वमिति तदतिदेशो[3] निर्बाध इति संक्षेप इति दिक्॥117॥

भाष्यात्प्रतीयत इतोति। तच्च भाष्यमेक[4]देश्युक्तमित्युक्तमेव। सहिवहोदोद[5] वर्णस्येति सूत्रे[6] स्पष्टमिति बोध्यम्॥119॥

---

1. चाङ्त्व प-1, प-2.
2. तस्या न अ-4.
3. तदेशो निवाध अ-4.
4. भाष्यमेका अ-4.
5. सहिवहोरोदवर्णस्य- 6/3/112 अष्टा.
6. सूत्रम् अ-4.

दावन्तोदात्त उदात्तगुणकस्यापि स्थानित्वेन विवक्षायां मानाभावात्। चतसर्य्याद्युदात्तनिपातं करिष्यते, वधादेश आद्युदात्तनिपातनं करिष्यते, पदादयोऽन्तोदात्ता निपात्यन्ते, सहस्य स उदात्तो निपात्येत इत्यादिभाष्यं त्वेकश्रुत्याष्टाध्यायीपाठे क्वचिदुदात्ताद्युच्चारणं विवक्षार्थमित्याशयेन। त्रैस्वर्येण पाठ इतिपक्षे तु ज्ञापकपरं भाष्यमिति कैयटादयः। परे तु निपातनं नामान्यादृशे प्रयोगे प्राप्तेऽन्यादृशप्रयोग करणम्, तद्रूपाद् यत्नात्तत्र तत्रोदात्रादिविवक्षा। 'तिसृचतसृ इत्यत्र द्वन्द्व प्रयुक्ताऽन्तोदत्त' उच्चारणीय आद्युदात्तोच्चारणन्यत्र स्थान्युरुपे स्वर उच्चारणीये तत्तदुच्चारणं विवक्षार्थम्। सम्पूर्णाष्टाध्याय्याचार्येणैकश्रुत्या पठितेत्यत्र न मानम्।

चर्चा नाद्रियते[1] **इति।** ननु अष्टाभ्य[2] औशिति सूत्रेऽष्टभ्य इति वाऽष्टाभ्य[3] इति वाकरणेऽनया लाघवगौरवाभावसूचितस्तयोः[4] पर्यायवाचकत्वात्। अष्टन् शब्दस्यैव शब्दद्वयेनोपस्थितेः[5] पर्यायत्वं[6] चैकशक्यतावच्छेदकां तार्थं[7] प्रत्यायकत्वमेव[8]। एवं च दीर्घग्रहणेनात्वस्य[9] वैकल्पिकतया लाघवादात्व मकृत्वा निर्देशे कर्त्तव्ये तद्विशिष्ट निर्देशेन जश् शसो रात्वमनु[10]मीयत -

---

1. सं. पाठः चचीनाद्रीयत अ-1, ज-2, अ-3, प-1, अ-4; चर्चानादीयत प-2.
2. अष्टाभ्य औथ्- 7/1/21 अष्टा.
3. हति वाऽष्टभ्य 'नाऽस्ति' प-1; इति वाष्टाभ्य अ-4.
4. सूचिस्तयोः अ-4.
5. शब्दयेनोपस्थिते अ-3.
6. पर्यायत्वे अ-3; पर्यायत्व ज-2.
7. छेदक्रातार्थ प-2; छेदकक्रांतार्छ अ-3; क्रांतर्च्छ अ-4; छेदकाक्रांताच्छम् ज-2.
8. प्रत्याकत्वमेव प-1.
9. मात्वस्य प-2.
10. जशशसोरोत्वमनु प-1.

क्वचित्पदस्यैकश्रुत्यापि पाठो यथा "दाण्डिनायन" (6.4. 175) इत्यादि सूत्र ऐक्ष्वाकेति। यद्यप्यध्येतार एकश्रुत्यैवाङ्गानि पठन्ति ब्राह्मणवत्तथापि व्याख्यानतोऽनुनासिकत्वादिवदुदात्त-निपातनादिज्ञानमित्याहुः। विधेयाण्विषये त्वप्रत्यय इति निषेधान्न गुणाभेदकत्वेन सवर्णग्रहणम्। अत एव घटवदित्यादौमतोर्मस्य

इत्यात्वसाधकग्रन्थासंगतिः। न च वयं सूत्रे गौरवलाघवेनैतादृशमर्थं कल्पयामः। किंतु आत्वस्य[1] वैकल्पिकतया प्रक्रिया लाघवाय तथानुकरणे कर्त्तव्येऽन्यथानु-करणे नायमर्थो ज्ञाप्यते इति बोध्यम्[2]। अष्टभ्य इति वक्तव्ये[3] कृतात्वनिर्देश इति ज्ञापकमुपपादयता[4] स्वार्थस्य दूरतरव्यक्तत्वात्। न चैकदेशविकारे न क्वापि[5] पर्यायता दृष्टेति वाच्यम्। बंधूरबंधुरौ स्याता[6] न प्रसुंदरयोस्त्रिष्वित्यादौ[7] तस्य प्रसिद्धत्वात्। स्त्रियां मूर्त्ति[8]स्तनुस्तरुरित्यादौ दृष्टत्वाच्च। न च तत्र शिष्ट[9] प्रयोगे न तथा कल्पते[10] इति वाच्यम्। अष्टभ्य[11] इति वक्तव्ये अष्टाभ्य इति दीर्घाकार विशिष्टानुकरणेनाभिमतोर्थोलभ्यत इति वदद्भिस्तयोः[12] पर्यायता[13]बोधनात्। एवं चैतद्भाष्यात् परिभाषाया असत्वमेवायाति।

---

1. अत्वस्य प-1.
2. बाध्यम् अ-3; वाच्यम् प-2, अ-4.
3. वक्तव्य प-1.
4. पाठोऽयं प-1,ख प-2; ज्ञापकत्वोपपादयताः त्यार्थस्य अ744; ज्ञापक पयाद एतास्यार्थदुत्तरतःस्त्यक्तत्वात् अ-1, ज-2, अ-3.
5. 'ग' प-1
6. स्यातं नाम्न सुंदरयोः अ-4; स्यांतां नपुंसुदरयोः प-2.
7. स्त्रिवोत्यो प-1.
8. मूर्त्तिस्तनुरित्यादौ प-1; मूर्त्तिस्तुनुस्तनुस्तनुरित्यादौ.
9. 'शिष्ट' प-1; विशिष्टप्रयोगेन अ-4.
10. कल्प्यते अ-3; कल्यते प-1.
11. अष्टाद्य ज-2.
12. वदविद्भिस्तयोः अ-3
13. पर्यायत अ-4.

अन्यतरस्यां विभाषेत्यादौ गति[1]स्तुतिस्तुति सृभ्य इति बहु[2]वचनवत् बोध्येति चेन्न भाष्योक्तरीत्यादोषाभावात्। तथाहि अष्टाभ्य इति सूत्रे[3] भाष्ये अथेह[4] कस्मान्नभवति औश्त्वं[5] अष्ट[6] तिष्ठन्ति इत्याशंक्य आत्वं[7] यत्र तु तत्रौश्त्वं[8] तथात्वस्य[9] गृह्यस्य ग्रह:[10] कृत: एतदेव ज्ञापयत्याचार्य: विभाषा आत्वमिति[11] यदय[12]मात्वभूतस्य ग्रहणं करोति अष्टाभ्य इति अन्यथा[13] अष्टन इत्येव ब्रूयात् इत्युक्तम्। तस्यायमाशय: अष्टन आ[14] विभक्तावित्यनेन हलादौ परत आत्व[15] विधानादजादौ तत्प्राप्त्यभावेनाष्टन औशित्वेवन्यासे[16] कर्त्तव्ये आत्व[17] विशिष्टन्यासस्येदमेव प्रयोजनमात्वभूतस्यैव स्यात् नान्यत्र तस्यात्वस्य हलादावेव[18] विधानादप्राप्तस्य जश्शसोऽनुमानं एवमपि व्यवच्छेद्या[19]संभवादात्वस्य वैकल्पिकत्वमपि ज्ञाप्यते। एवं च नास्माद्-

1. गतिस्तुति तिसृभ्य इति प-1; गतिस्तुति तिसभ्य प-2; गतिसृभ्य अ-4.
2. 'बहु' नाऽस्ति अ-4.
3. सूत्र अ-4.
4. 'ह' नाऽस्ति प-1, प-2.
5. औश्च ज-2.
6. अष्ट तिष्टति अ-4; अष्टवत्तिष्टतित्यांशक्य प-2; अष्टवतितिष्टंति याशंक्य प-1.
7. आत्तुं ज-2.
8. तत्रौश्च ज-2; तत्रोश्त्वम् प-2; तत्रात्श्वं प-1; तत्रौत्वम् अ-4.
9. तथात्वस्य ज-2. तथाह्यस्यग्रह: अ-4, अ-3.
10. गृह:कृत: प-1.
11. आत्वमिति प-1.
12. पदमात्वभूतस्य अ-3.
13. अन्यथाऽन इत्यैव अ-4.
14. 'आ' नाऽस्ति 'प्रा' अस्ति अ-4.
15. आत्वं विधानाद प-1 आत्वविधाद अ-4.
16. न्यासेकसकर्त्तव्ये प-1.
17. अत्व प-1.
18. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; हस्तादावेव अ-1, ज-2, अ-3.
19. व्यवल्लेधा अ-4.

नानुनासिको वकारः। अत एव "तद्वानासाम्" (4.4.125) इति सूत्रनिर्देशः। अन्यथा "प्रत्यये भाषायाम्" इति नित्यमनुनासिकःस्यात्। जातिपक्षे तु नास्योपयोग अति बोध्यम्। यू इत्यादौ दीर्घमात्रवृत्तिजातिनिर्देशान्न क्षतिरित्यन्यत्र विस्तरः॥117॥

ननु "सर्वनामानि" (1.1.27) इत्यत्र णात्वाभावनिपातेऽपि लोके सणत्वप्रयोगस्य साधुत्वं स्यादत आह-

बाधकान्येव निपातनानि॥118॥

तत्तकार्य्ये नाप्राप्ते निपातनारम्भात्। "पुराणप्रोक्तेषु" (4.3. 105) इति निपातितपुराणशब्देन पुरातनशब्दस्य बाधः प्राप्तोऽपि पृषोदरादित्वान्नेति बोध्यम्। पुराणेति पृषोदरादिः पुरातनेति चेत्यन्ये। इयं सर्वादिसूत्रे भाष्ये स्पष्टा। अबाधकान्यपि निपातनानीति तु भाष्यविरुद्धम्॥118॥

ननुखधातोर्द्वित्वे स्वत एव ह्रस्वत्वात् पूर्वमभ्यासह्रस्वत्वाप्रवृत्तौ हलादिःशेषे सवर्णदीर्घे ह्रस्वापत्तिरत आह-

पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तिः॥119॥

एवं च ह्रस्वस्यापि ह्रस्वत्वे कृते "लक्ष्ये लक्षणस्य" इति न्यायेन न पुनर्ह्रस्वः। तदुक्तम्- "इको झल्" (1.2.9) इति सूत्रे भाष्ये- कृतकारि खल्वपि शास्त्रं पर्जन्यवदिति। सिद्धेऽपि ह्रस्वादिकारीत्यर्थः। न च लक्ष्ये लक्षणस्य सकृदेव प्रवृत्तिरित्यत्र न मानमिति वाच्यम्, "समो वा लोपमेके" इति लोपेनैकसकारस्य, द्वित्वेन द्विसकारस्य, पुनर्द्वित्वेन च त्रिसकारस्य पुनर्द्वित्वेन च त्रिसकारस्य सिद्धौ "समः सुटि" (8.3.5) इति सूत्रस्यैव मानत्वात्। "सम्प्रसारणाच्च" (6.1.108) "सिचि वृद्धिः" (7.2.1) इत्यादौ भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वाच्च। अत्र "विकारकृतो लक्ष्यभेदो न" इति "सिचि वृद्धिः" इति भाष्यात् प्रतीयत इत्यन्यत्र विस्तरः॥119॥

ननु स्यन्दू धातोः स्यन्त्स्यतीत्यादौ सकारादिविशेषा-

पेक्षत्वादात्मनेपदनिमित्तत्वाभावनिमित्तत्वाच्च "न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः" (7.2.59) इति निषेधस्य बहिरङ्गत्वेन अन्तरङ्गत्वाद्दिल्लक्षणस्येड्विकल्पस्यापत्तिरत आह-

निषेधाश्च वलीयांसः॥120॥

अन्तरङ्गादुपजीव्यादपि बलीयांस इत्यर्थः। "चतुर्भ्या" इति तु स्पष्टार्थमेव। अत एव तत्प्रत्याख्यानं भाष्योक्तं सङ्गच्छते। अत एव सवर्णसंज्ञादे निषेधविषये न विकल्पः। अन्यथा मीमासंकरीत्या विधेरुपजीव्यत्वेन प्रावल्यात्तस्य सर्वथा बाधानुपपत्त्या दुर्वारः स इति मञ्जूषायां विस्तरः। अत एव "द्वन्द्वे च" (1.1.31) "विभाषा जसि" (1.1.32) इति चरितार्थम्। विघ्युन्मूलनाय प्रवृत्तिरस्या बीजम्। "न लुमता" (1.1.63) "कमेर्णिङ्" (3.1.30) इत्यनयोर्भाष्ये स्पष्टैषा॥120॥

ननु अत्यन्तस्वार्थिकानामर्थप्रत्यायकत्वरूपप्रत्ययत्वानुपपत्तिरत

भाष्याल्लाघवात् तथा कर्त्तव्ये[1] गौरवात्तथाकरणमनुमापकमित्यायाति येन परिभाषाया असत्वं स्यात्। किं चाष्टन अष्टा इत्यनयोरनुकरणयोः क्रमेणाष्टनाष्टा इत्युभयोप[2]स्थापकत्वेनशक्यता वच्छेदकैक्याभावाच्च[3]। अष्टभ्य इति वक्तव्येऽन्यथा[4] करणं ज्ञापकमित्यादि प्राचीनग्रन्थाः परस्ताः।

न च गौणव्यावृत्तयेऽष्टभ्य इति वक्तव्यमष्ट[5] न इत्युक्तिरनुचितेति[6] वाच्यम्। एतद्भाष्यात् ष्णांतेति[7] सूत्रभाष्याच्च तेषामनभिधान[8]मेवेति दिक्॥123॥

---

1. कर्त्तव्य प-2.
2. इत्योभयस्थापकत्वम् प-1.
3. चवाच्यम् प-2.
4. अन्याथाकरणं अ-3.
5. अष्टनमित्युक्तोरनुचितेति प-1.
6. 'इति' नाऽन्ति अ-4; अनुचितेति भाष्योदाहरणे वाच्यम् इति पाठः प-2.
7. उष्णान्ता षट्- 1/1/24 अष्टा.
8. तेषामनविधानम् प-2.

चाह-

अनिर्दिष्टार्थाः प्रत्ययाः स्वार्थे॥121॥

यस्यार्थः प्रकृत्या प्रत्याय्यते सोऽपि प्रत्यय इत्यस्याप्यङ्गी-कारात्तस्य प्रत्ययत्वमिति न दोषः। स्वार्थ इत्यस्य स्त्रीयप्रकृत्यर्थ इत्यर्थः। महासंज्ञाबलादर्थाकाङ्क्षायामन्यानुपस्थितिरस्या बीजम्। "सुपि स्थः" (3.2.4) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये स्पष्टैषा॥121॥

योगविभागादिष्टसिद्धिः॥122॥

इष्टसिद्धिरेव न त्वनिष्टापादनं कार्य्यमित्यर्थः। तत्तत्समानविधि कद्वितीययोगेन विभक्तस्यानित्यत्वज्ञापनमेतद् बीजम्॥122॥

पर्य्यायशब्दानां लाघवगौरव चर्चा नाद्रियते॥123॥

तत्र तत्रान्यतरस्यां विभाषा वेति सूत्रनिर्देशज्ञापितमिदम्॥123॥

द्वित्वभिन्नेपूर्व[1]त्रकर्त्तव्ये इति। कृते पीत्य[2]स्योपलक्षणम्। अन्यथा वाक्[3] वाक् इति भाष्योदाहरणे द्वित्वे कृते पूर्वककारस्य[4] जश्त्वे कर्त्तव्ये पर ककारस्या सिद्धत्वे झश्[5] परत्वेन जश्त्वा[6]पत्तिरितिबोध्यम्[7]। स्पष्टश्चायमर्थो

---

1. सं. पाठः, द्वित्वे कर्त्तव्ये इति अ-1; द्दित्वे कर्त्तव्ये इति ज-2, अ-3; द्वित्वे भिन्ने स पूर्वन कर्त्तव्ये इति प-2; द्दित्वेभिन्ने पूर्वक कर्त्तव्ये प-1, द्वित्वे कर्त्तव्य इति अ-4.
2. पीतिस्य, ज-2.
3. अन्यथा वाक्ववाक् इति प-1, प-2; अन्यथा वा क्वा वाक् अ-4.
4. पूर्ववकारस्य जश्स जश्त्व कर्त्तव्ये अ-; जस्त्वे कर्त्तव्ये प-1, तश्त्वे कर्त्तव्ये प-2 ककारस्य तश्च कर्तव्ये ज-2.
5. पाठोऽयं प-1, अ-4; सरापरत्वेन अ-1, अ-3 सशपादत्वेन ज-2; झशपरत्येत्वेन प-2.
6. जश्चापत्तिः प-1, प-2.
7. पाठोऽयं प-1, प-2, अ-4; बोध्यम् अ-1, ज-2, अ-3.

ज्ञापकसिद्धं न सर्वत्र॥124॥

स्पष्टेव पठितव्येऽनुमानाद्बोधनमसार्वत्रिकत्वार्थमित्यर्थः। तेन ज्ञापकसिद्धपरिभाषायानिष्टं नापादनीयमिति तात्पर्यम्। भाष्येऽपि ध्वनितमेतन्ङ्याप्सूत्रादौ।

ज्ञापकेति न्यायस्याप्युपलक्षणम्। न्यायज्ञापकसिद्धानामपि केषांचित् कथनमन्येषामनित्यत्यबोधनायेति भावः। यथा तत्स्थानापन्ने तद्धर्मताभ इति न्यायसिद्धं स्थानिवत् सूत्रम्, ज्ञापकसिद्धं च तत्र अनल्विधाविति॥124॥

ननु द्रोग्धा द्रोग्धा द्रोढा द्रोढेत्यादौ घत्वादानामसिद्धत्वात् पूर्वं द्वित्वे एकत्र घत्वमपरत्र ढत्वमित्यस्याप्यापत्तिरत आह-

पूर्वत्रासिद्धीयमद्वित्वे॥125॥

द्वित्वभिन्ने पूर्वत्र कर्त्तव्ये परमसिद्धमित्यर्थः। "पूर्वत्रासिद्धम्"

विवरणे शर्षुजश् भावे षत्वे[1] इति वार्त्तिकव्याख्याने षट् चतुर्भ्य[2] इति सूत्रे शेखरे च॥125॥

भिन्नार्थत्व[3]सम्भावनेति। अत एव सुध्युपास्यादौ धकार द्वित्वेपि पकारककार[4] द्वित्वं भवत्येवेति[5] भावः। तत्र द्वित्वे कृतेपि[6] भिन्नार्थकतया[7] अभावे अभावेनैतदप्रवृत्तेः[8]॥126॥

---

1. धत्वेति अ-4.
2. षट्चतुर्भ्यश्च 7/1/55 अष्टा.
3. भिन्नार्थत्वा संभावनेति ज-2; भिन्नार्थसंभावने अ-3; भिन्नार्थकत्वा अ-4.
4. नकार नाऽस्ति प-1, प-2.
5. भवत्येति भाव: अ-4.
6. कतेपि ज-2, अ-3. कृते नाऽस्ति अ-4.
7. भिन्नार्थकताया अ-4.
8. अभावेनेतद, ज-2.

(8.2.1) इत्यधिकारभवं शास्त्रमस्या लिङ्गम्। यत्र च सिद्धत्वा-सिद्धत्वयोः फले विशेषस्तत्रैवेयम्। कृष्णर्द्धिरित्यादौ जश्त्वात्पूर्वमनन्तरं वा द्वित्वे रूपविशेषा भावेन नास्याः प्रवृत्तिरित्यन्यत्र विस्तरः। "सर्वस्य द्वे" (8.1.1) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम्॥125॥

ननु गोषु अश्वेषु च स्वामीत्यादिवद्गोषु अश्वानां च स्वामीत्यपि स्यात् "स्वामीश्वर" (2.3.19) इति सूत्रेण षष्ठीसप्तम्योर्विधानादत आह-

एकस्या आकृतेश्चरितः प्रयोगो द्वितीयस्यास्तृतीयस्याश्च न भविष्यति॥126॥

यत्र अन्याकृतिकरणे भिन्नार्थत्वसम्भावना तद्विषयोऽयं न्याय इत्यन्यत्र विस्तरः। "कृञ्चानुप्रयुज्यते" (3.1.40) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टेयम्॥126॥

ननु विव्याधेत्यादौ परत्वाद्धलादिः शेषे वस्य सम्प्रसारणं स्यादत

विषय[1]सप्तमीति। अन्यथांतरंगत्वात्[2] वृध्यायोः[3] कृतयोः पश्चात् सम्प्रसारणेप्यशूश[4]वदित्यस्यासिद्धिरिति भावः सिद्धधान्तमाह॥127॥

आत्वविषय एवेति। उभयोरपि ग्रहणे[5] सिद्धेर्नफलमस्या इति भावः। तदुदाहरणे[6] तु निह्वयते[7] इति बोध्यम्[8]॥129॥

---

1. विषयसत्यमिति प-1.
2. 'त्' नाऽस्ति अ-4.
3. वृध्यायो अ-4.
4. व्यूशवदित्यस्या प-1, प-2.
5. ग्रहण अ-3.
6. तदुदाहरणं तु प-1, प-2.
7. सं पाठः निकृयते ज-2, अ-1, अ-3, अ-4, निहंयते प-1; निहयते प-2.
8. बाध्यम् अ-4.

आह–

सम्प्रसारणं तदाश्रयं च कार्य्यं बलवत्॥127॥

तदाश्रयं "सम्प्रसारणाच्च" (6.1.108) इति पूर्वरूपम्। वस्तुतो "लिट्यभ्यासस्य" (6.1.17) इति सूत्रे उभयेषां ग्रहणस्योभयेषां सम्प्रसारणमेव यथा स्थादित्यर्थकत्वेनेदं सिद्धमित्येषां व्यर्थेति "लिट्य-भ्यासस्य" इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। फलान्तरान्यथासिद्धिरपि तत्रैव भाष्ये स्पष्टा। "णौ च संश्चङोः" (6.1.31) इत्यादौ संश्चङोरित्यादि विषयसप्तमीति तत्रापि न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः॥127॥ यत्तु-

क्वचिद्विकृतिः प्रकृतिं गृह्णाति॥128॥

तेन "निसमुपविभ्यो ह्वः" (1.3.30) इत्यत्र ह्वाग्रणेन ह्वेञो ग्रहण सिद्धिः॥128॥

औपदेशिकप्रायोगिकयोरौपदेशिकस्यैव ग्रहणम्॥129॥

तेन "दादेर्धातोः" (8.2.32) इत्यत्र औपदेशिकधातोरेव ग्रहणमिति। तन्न। तयोर्निर्मूलत्वाद्भाष्याव्यहृतत्वाच्च। न च विकृतिः प्रकृतिं गृह्णातीति "ग्रहिज्या" (6.1.16) इति सूत्रस्थभाष्येणा-

---

लण् सूत्रेति। तत्र हि अणिण्[1] ग्रहणेषु[2] संदिह्य[3] ज्ञापके न सर्वत्राण् ग्रहणेषु[4] संदेह निवृत्तिमभिधायेण[5] ग्रहणे तन्निवाारणायैवमुक्तम्। एवं चाण् इणग्रहणेषु[6] सर्वत्र ज्ञापकादिना[7] निर्वाहः। तत् उक्तं किं पुनर्वर्णोत्यता

---

1. आगिण् प–2.
2. गृहणेषु प–1.
3. संदिह्य ज्ञापकेन इत्यारभ्य सर्वत्र ज्ञापकादिना इत्यान्त नाऽस्ति अ–4 मातृकायाम्.
4. गृहणेषु प–1.
5. अभिधायण् प–2.
6. एवं चारणं इण इणेषु सर्वत्र ज–2.
7. ज्ञापकादि निर्वाह प–2.

द्यायास्तिरस्काराच्च, "निसमुपविभ्यो ह्वः" इत्यादौ ह्वेञोऽनुकरणे सोत्रः प्रयोगः आत्वविषय एवात्मानेपदं प्रयोगस्थानामेवानुकरणस्य घुसंज्ञासूत्रे भाष्ये स्पष्टमुक्तत्वादित्यन्ये। अन्त्यापि तत्र तत्रोपदेशग्रहणं कुर्वतः सूत्रकृतो वार्तिककृतश्चासम्मता।

इह हि व्याकरणे सर्वेष्वेव सानुबन्धकग्रहणेषु रूपमाश्रीयते यत्र अस्यैतद्रूपमिति। रूपनिर्ग्रहश्च शब्दस्य नान्तरेण लौकिकं प्रयोगं

विवायं नकारो द्विरनुवध्यते[1] एतदेव ज्ञापयत्याचार्यो[2] भवत्येषा[3] परिभाषा[4]-व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि[5] संदेहादलक्षणमिति।

अत्रांत्ये[6]ऽन्यपरिभाषाव्याख्यानमकृत्वा[7] अर्द्ध[8]मात्रालाघवेनेति[9] परिभाषा व्याख्यान[10] द्वारा ग्रन्थोपक्रम[11] ग्रन्थांतयोर्व्याख्यानत[12] इति परिभाषासंदे[13]-शो दर्शितोऽग्रे[14]ऽचिश्नुधात्वित्युपपादनेनातत्फलन्तु एतन्मध्यपतितानामु[15]

---

1. द्विदनुवध्येत ज-2; द्विदनुबध्यते अ-3; द्विरनुबध्यते प-1; द्विरउनुवध्यते अ-4.
2. पाठोऽयं प-1, अ-4; ज्ञापत्याचार्यो अ-1, ज-2, अ-3, प-2.
3. भवत्येषा इत्यारभ्य ग्रंथोपक्रमग्रंथांतयोः इत्यन्तं नाऽवलोक्यते अ-4 मातृकायाम्.
4. परिभाषां व्याख्यानतोष प्रतिर्नहि ज-2, अ-3.
5. नही प-2.
6. अत्रांसेऽन्य ज-2; अयत्रात्येऽन्य प-2.
7. 'ख्या' नाऽस्ति प-1.
8. सं. पाठः अर्धमात्रा अ-1, ज-2, प-1, प-2, अ-3, अ-4.
9. लाघवोनेति अ-3.
10. 'ख्या' नाऽस्ति प-1.
11. ग्रंथापक्रम ज-2; ग्रंथांपक्रम अ-3, प-2.
12. 'र' नाऽस्ति प-2, ज-2, अ-3; व्याख्यानत्वत् इति अ-4.
13. परिभाषं संदेशो प-1.
14. दर्शिवात्यु प-2.
15. तन्मध्यसप्तपतितानां उत् सर्गापवाद इति पाठः अ-4; मध्यपत्तितानाषुत्सगी, ज-2, अ-3.

तस्मिंश्च लौकिके प्रयोगे सानुबन्धकानां प्रयोगो नास्तीति कृत्वा द्वितीयः प्रयोग उपास्यते, क उपदेशो नामेति धुसंज्ञासूत्रस्थभाष्येण प्रायोगिकासम्भव औपदेशिकस्य ग्रहणमित्यर्थस्य लाभेन भाष्या सम्मता च। भाष्ये सानुबन्धकेत्यादि प्रकृताभिप्रायेण। "दादेः" इति सूत्रे दादिपदस्यौपदेशिकदादित्ववति लक्षणेति न दोष इत्यन्यत्र विस्तरः॥129॥

यदपि ननु अजर्घा बेभिदीतीत्यादौ तत्तद्गणप्रयुक्ताविकरणा यङ्लुकि स्युः तथा यङ्लुकि बेभिदितेत्यादौ "एकाचः" (7.2.10) इति इण्निषेधः स्यादत आह-

शितपा शपानुबन्धेन निर्दिष्टं यद् गणेन च।
यत्रैकाज्ग्रहणं चैव पञ्चैतानि न यङ्लुकि॥130॥

त्सर्गापवाद भूतानां परिभाषाणां मध्ये कस्याः क्व प्रवृत्तिः कस्याः क्व[1] नेति सर्वमनयैव निर्वाह्यमिति प्रदर्शनमेव[2]। किं च ग्रन्थोपक्रमे प्राचीन[3] वैय्याकरणेऽन्य[4] वाचनिकानी[5]तिवदता[6] तेषां मते सर्वासां वाचनिकत्वं[7] बोधितं तच्च न युक्तम्। अर्धमात्रालाघवेन[8] पुत्रोत्सवतुल्य[9] हर्षोत्पादात्[10] इत्यपि[11] -

---

1. क प्रवृत्ति प-2; क्व प्रवृत्तिः कस्याः क्वनेति इति पाठः प-1 मातृकायां नाऽस्ति.
2. प्रदर्शमनमेव अ-4.
3. प्राचीने अ-3.
4. अन्य नाऽस्ति प-1.
5. वाचनिकानिति प-1, प-2.
6. वदता ते सर्वासाम् इति पाठः अ-4.
7. वाचिनिकत्वम् ज-2, अ-3; वाचनिकत्व धितम् अ-4.
8. पाठोऽयं अ-3; लाघत्वेन अ-1, ज-2, अ-3, प-2; वाघवत्वेन प-1.
9. यत्रोत्सवातुल्य अ-4.
10. 'र्' नाऽस्ति प-2; हर्षोत्पादात अ-4.
11. पाठोऽयं प-1, प-2 'इ' नाऽस्ति अ-1, ज-2, अ-3; इत्यापि अ-4.

अनुबन्धनिर्देशो द्विधा स्वरूपेण ङित इत्यादिपदेन च। हन्ति, याति, वाति, सनीवन्त, (7.2.46) इति सूत्रे भरेति, "दीङो युडचि" (6.4.63), अनुदात्तङितः (1.3.12) "दिवादिभ्यः श्यन्" (3.1. 69), एकाच उपदेशे (7.2.10) इत्युदाहरणानि। द्वित्वे "सनाद्यन्ताः" (3.1.32) इति भूवादयः (1.3.1) इति च धातुत्वं भवत्येव, "गुणो यङ्लुकोः" (7.4.82) इत्यादिभिर्निषेधानित्यत्व कल्पनात्। तेन भष्भावोऽप्यजघर्ा इत्यादौ भवति। अत एव "श्वीदितः" (7.2. 14) इति सूत्रे कैयटे यत्रैकाजग्रहणं किञ्चिदिति पाठः। "एकाच उपदेशेऽनुदात्तात्" (7.2.10) इति सूत्र एकाज्ग्रहणेनैकदेशानुमत्यैषा ज्ञाप्यते। अन्यथोपदेशेऽनेकाचामुदात्तत्वस्यैव सत्त्वेन तद्वैयर्थ्यं स्पष्टमेवेति। तदपि न, भाष्यानुक्तत्वात्, एकाज्ग्रहणस्य वधिव्यावृत्त्यर्थमावश्यकत्वाच्च। न च बधिः स्थान्युपदेश एकाजेवेति वाच्यम्, साक्षादुपदेशसम्भवेनैतद्विषये स्थान्युपदेशाग्रहणादुपदेशत्वावच्छेदेनैकाजित्यर्थाच्च।

किञ्च उत्तरार्थमेकाज् ग्रहणम्। अत एव जागरितवानित्यादावुपदेश उगन्तत्वमादाय "श्रयुकः किति" (7.2.11) इतीणनिषेधो न। तत्रोपदेश इत्यनुवृत्तिश्च स्ततीर्णमित्यादाविण्- निषेधायेत्याकरे स्पष्टम्।

न च भाष्ये यङ्लोपे वेभिदितेत्यादाविट्प्रवृत्त्यर्थमुपदेशेऽनुदात्तादेकाचः श्रूयमाणादङ्गादित्यर्थे सनीट्प्रतिषेधो वक्तव्यः, बिभित्सतीति दोषोपन्यासवद्यङ्लुकि दोषानुपन्यासेन तत्रेडिष्टः, यङ्लोपेत्यादि भाष्यं तूपक्रमोपसंहारबलेन न यङ् लुग्विषयम्। किञ्च तस्य तद्विषयकत्वे यङ्लोपे स्थानिवत्त्वस्येव यङ्लुक्युपायाप्रदर्शनेन न्यूनतापत्तिरित वाच्यम्। इड्विषये यङ्लुको लोकेऽनभिधानेन छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकत्वेन च तत्र दोष्ज्ञानुपन्यासेनादोषात्। अन्यथैकाज्ग्रहणं किमर्थमिति प्रश्नस्य उत्तरत्र जागर्त्त्यर्थमिह च वध्यर्थमित्युत्तरस्य च भाष्ये निरालम्बनतापत्तेः।

न च आर्द्धधातुकाक्षिप्तधातोरेकाच इति विशेषणम्। एवं च बिभित्सतीत्यादावुत्तरखण्डस्य धातोरेकाच्त्वमस्त्येवोत्तरखण्डेऽस्तित्ववत्।

एतच्च 'दयतेः' (7.4.9) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। एवं च प्रकृतभाष्या सङ्गतिरिति वाच्यम्। आक्षेपे, आक्षिप्तस्यान्वये च मानाभावात्। अङ्गत्वं तु विशिष्ट ऐवेति एकाचो द्वे (6.1.1) इति सूत्रे भाष्ये स्पष्टम्। निरूपितं च तनादिशेषे शब्देन्दुशेखरे धातुत्वं तूत्तरखण्ड एव। अत एव एकाचो वशो भष् झषन्तस्य स्ध्वोः (8.2.37) इति सूत्रे ध ातोरवयवस्यैकाच इति वैयधिकरण्येनान्वये गर्धप्सिद्धिः प्रयोजनमुक्तं भाष्ये; न तु प्रसिद्धमजर्घा इति। अजर्धा बेभिदीतीत्यादौ श्नम्श्यनादयस्तु चर्करीतं चेत्यस्यादादौ पाठेन यङ्लुगन्ते गणान्तरप्रयुक्त-विकरणस्याप्राप्त्या न भवन्ति। छान्दसत्वादेव कार्य्यान्तरणामपि छन्दसि दृष्टप्रयोगेष्वदृष्टानामभावो बोध्यः। भाषायां तु तादृशानामभाव एव। श्तिप्श्वादिनिर्देशास्तु "भवेतरः" (7.4.73) इत्यादिसूत्रस्थतन्निर्देश-वन्नार्थसाधका इत्यन्यत्र विस्तरः॥130॥

ननु "जभोऽचि रधेश्च नेट्यलिटि" इत्येव सूत्र्यतां किं द्वी रधिग्रहणेनेत्यत आह-

पदगौरवाद्योगविभागो गरीयान्॥131॥

प्रतिवाक्यं भिन्नवाक्यार्थबोधकल्पनेन गौरवं स्पष्टमेव। परन्तु भाष्यासम्मतेयम्। "टाङ्सि" (7.1.12) इतिसूत्रस्थभाष्यविरुद्धा च। तत्र च इनादेश इकारप्रत्याख्यानं योगविभागेनैव कृतिमिति बहवः॥131॥

अर्द्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः॥132॥

"एओङ्" "ऐऔच्" सूत्रयोर्ध्वनितैषा भाष्ये। तत्रानेकपद-घटितसूत्रे प्रायेण पदलाघवविचार एव, न तु मात्रालाघवविचार इति "ऊकालोऽच्" (1.2.27) "अपृक्त एकाल्" (1.2.41) इत्यादिसूत्रेषु भाष्ये ध्वनितम्।

तत्र हि सूत्रेऽल्ग्रहणहल्ग्रहणयोर्विशेषविचारे संज्ञायां हल्ग्रहणं "ण्यक्षत्रिय" (2.4.58) इतिसूत्रेऽणिञोरिति वाच्यमिति त्रीणि

पदान्यल्ग्रहणे, तदेकं स्वादिलोपे हल्ग्रहणं ण्येतिसूत्रेऽणिञौरिति न वाच्यमपृक्तस्येति वाच्यमिति त्रीण्येव पदानीति नास्ति लाघवकृतो विशेष इत्युक्तम्। 'अचिश्नु' (6.4.77) इति सूत्र इण् इत्येव सिद्धे य्वोरिति समृद्य ग्रहणात् न पूर्वेणेण्ग्रहणम्। तत्र विभक्तिनिर्देशे सम्मृद्य ग्रहणे च सार्धास्तिस्त्रो मात्रा इण् ग्रहणे तिस्त्रो मात्रा इति लण् सूत्रे भाष्योक्तेः। तथा "ओतःश्यनि" (7.3.71) इति सूत्रे शितीति न वक्तव्यम्। तत्रायमर्थः– "ष्ठिवुक्लमु" (7.3.75) इति सूत्रे शितीति न कर्तव्यं भवतीति भाष्ये न केवलं मात्रालाघवं यावदयमप्यर्थ इति कैयटोक्तः प्रायेणेति शिवम्॥132॥

इति श्रीमदुपाध्यायोपनामक शिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्ट कृतः परिभाषेन्दुशेखरः समाप्तः॥

सूचनं ग्रन्थकृदाकृतं[1] विद्वन्मान्या[2]विदां कुवंत्विति[3] सकलार्थसिद्धिः। परिभाषारसास्वादवद्वादर[4]धियामुना भीमेन[5] रचिता[6] सेयं परिभाषार्थमञ्जरी[7]॥ इति श्री मदलगलेकरोप[8]नामक माध[9]वाचार्य तनय भीम प्रणीतापरि-भाषार्थमञ्जरि समाप्तम्[10]। इति शुभम्॥132॥

---

1. ग्रन्थं कृंदाकूतम् प–2; ग्रन्थकृताकूत्म् अ–4.
2. विद्वन्मान्यारिवदाम् ज–2; विद्वन्मान्यामिदाम् प–1; विद्वन्मायविदाम् अ–4.
3. कुर्वति सकलार्थ ज–2, अ–3; कुर्वंति सकलार्थ अ–4.
4. परिभाषास्वादवत्धादरधिया प–2; स्वादबद्दादरधिया प–1; रसास्वादचद्वाऽ-दरधिया अ–4.
5. भिमेन प–1.
6. रविनासेयम् ज–2; रविनासेसीयम् अ–3.
7. 'न' नाऽस्ति प–2; मंजरि प–1.
8. 'प' नाऽस्ति ज–3 मातृकायाम्, श्री महुगलेकरोपनामक प–2; श्रीमद्गलगलेकरोपनामक प–1; श्री मदललगलोकोपनामक अ–4.
9. माधावार्य प–2.
10. पाठोऽयं प–1, प–2; मन्जरी समाप्तः अ–1, अ–3; मन्जरीसमाप्तम् ज–2, अ–4.

द्वितीय खण्ड

प्रथम अध्याय

व्याकरण के प्रसिद्ध परिभाषा वैयाकरणों का परिचय एवं भीम का काल निर्धारण

1. काशकृत्स्न-

यद्यपि पाणिनीय शब्दानुशासन में आचार्य काशकृत्स्न (3100 वि. पू.) का वैयाकरण के रूप में उल्लेख नहीं मिलता[1] किन्तु वैयाकरण निकाय में काशकृत्स्न का व्याकरण प्रवक्तृत्व अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाभाष्य के प्रथम आह्निक के अन्त में आपिशल और पाणिनीय शब्दानुशासनों के साथ काशकृत्स्न शब्दानुशासन का उल्लेख मिलता है।[2] वोपदेव के प्रसिद्ध आठ शाब्दिकों में काशकृत्स्न का उल्लेख किया है।[3] क्षोरस्वामी ने काशकृत्स्नीय मत का निर्देश किया है।[4] काशकृत्स्न व्याकरण के अनेक सूत्र प्राचीन वैयाकरण वाङ्मय में उपलब्ध होते हैं।[5] कन्नड टीका में काशकृत्स्न व्याकरण के लगभग 135 सूत्र भी उपलब्ध हो गए हैं।[6]

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति., भाग-1, पृ.– 106.
2. पाणिनिना प्रोक्तं पाणिनीयम्, आधिशलम्, काशकृत्स्नम् इति.
3. द्र. पूर्व पृ.– 64.
4. काशकृत्स्ना अस्य निष्ठायामनिट्त्वमाहु:- आश्वस्त: विश्वस्त: क्षीरतरंगिणी, पृ.– 185
5. कैयट विरचित महाभाष्य प्रदीप, 2/1/50; 5/1/21; भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय स्वोपज्ञ टीका, काण्ड-1, पृ.–40 उस पर वृषभ देव की टीका, पृ.–41.
6. काशकृत्स्न व्याकरणम्'

काशकृत्स्नप्रोक्त धातुपाठ के व्याख्याता चन्नवीर कवि ने अन्य काशकृत्स्नीय सूत्रों के सामने तुद (5/1) धातु के व्याख्यान में सकृद् बाधितो विधिर्बाधित एव[1] एक वचन पढ़ा है। अन्य आचार्यों के व्याकरणों में कुछ भेद से यह वचन परिभाषा पाठ में मिलता है। अतः विचारणीय है कि यह वचन व्याकरण शास्त्र का सूत्र है; अथवा काशकृत्स्न ने भी स्वशास्त्रसंबद्ध किसी परिभाषा पाठ का प्रवचन किया था? काशकृत्स्नीय धातुपाठ और उणादि पाठों को उपस्थिति में यह सम्भावना अधिक युक्तिसिद्ध प्रतीत होती है कि उसने किसी परिभाषा पाठ का भी प्रवचन किया था।

2. व्याडि (2950 वि.पूर्व.)

पाणिनीय वैयाकरणों के द्वारा आश्रित परिभाषा-वचन यद्यपि पूर्वाचार्यों के सूत्ररूप हैं तथापि इनको एक व्यवस्थित रूप से संगृहीत करने और पाणिनीय तन्त्र के अनुरूप इनके स्वरूप को अभिव्यक्त करने वाला कौन आचार्य है। इस पर विचार करने से विदित होता है कि सम्भवतः आचार्य व्याडि ने परिभाषा पाठ को प्रथमतः व्यवस्थित रूप दिया हो। इस सम्भावना में निम्न लिखित हेतु हैं-

(क) विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्कृत शोध संस्थान, होशियारपुर में परिभाषा पाठ के दो हस्तलिखित ग्रन्थ विद्यमान हैं। इनके अन्त में लिखा है- "केचित्तु व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिरित्यादयः सर्वाः परिभाषा व्याडि मुनिना विरचिता इत्याहुः।[2]"

(ख) भास्कर भट्ट के किसी अन्तेवासी विरचित परिभाषावृत्ति के आरम्भ में लिखा है-

---

1. काशकृत्स्न धातु व्याख्यानम् पृ.—156.
2. हस्तलिखित ग्रन्थ संग्रह संख्या- 3277, 3272.

"केचित्तु व्याख्यानत इति परिभाषा व्याडिमुनिविरचिता इत्याहु:[1]।"

(ग) "केचित्तुव्याख्यानत इत्यादि परिभाषा व्याडि विरचिता इत्याहु:[2]।"

(घ) श्रीरघुनाथ संस्कृत अनुसन्धान संस्थान, जम्मू के हस्तलेखसंग्रह में व्याडीय परिभाषावृत्ति नाम का एक ग्रन्थ है[3]।

(ङ्) श्री काशीनाथ अभ्यंकर ने उपलब्ध सभी परिभाषा पाठों तथा उनकी वृत्तियों का "परिभाषा संग्रह" नाम से एक संग्रह प्रकाशित किया है[4]। उनके संग्रह में प्रथम ग्रन्थ है-

1. व्याडि कृतं परिभाषासूचनम् और दूसरा व्याडि परिभाषा पाठ। प्रथम ग्रन्थ सव्याख्य है और द्वितीय ग्रन्थ के अन्त में लिखा है- "इति व्याडि विरचिता: पाणिनीय परिभाषा समाप्ता:"[5]।

उपर्युक्त प्रमाणों से सुस्पष्ट है कि व्याडि ने किसी परिभाषा का संग्रह अथवा प्रवचन किया था।

व्याडि के परिभाषापाठ का सम्बन्ध साक्षात् पाणिनीय तन्त्र से था या उसके स्वीयतन्त्र से यह कहना कठिन है। व्याडीय परिभाषा के जो दोनों ग्रन्थ महामहोपाध्याय काशीनाथ जी ने परिभाषासंग्रह में प्रकाशित किये हैं, उनमें-

"अकृतव्यूहा: पाणिनीया:[6]" परिभाषा का निर्देश होने से उक्त पाठों का सम्बन्ध पाणिनीय तन्त्र से ही है; इसकी पुष्टि द्वितीय पाठ के

---

1. इण्डिया आफिस लण्डन पुस्तकालय, सूचीपत्र भाग-1, खण्ड-2 ग्रन्थ संख्या- 673.; द्रष्टव्य- युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति., पृ. 283.
2. नीलकण्ठदीक्षित, परिभाषापाठ की लघुवृत्ति के आरम्भ में।
3. सूचीपत्र, पृ.-37.
4. भाण्डारकर प्राच्यविद्या शोध संस्थान, पूना, सन्- 1867.
5. परिभाषासंग्रह, पृ. 43.
6. द्रष्टव्य- प्रथम पाठ परिभाषासूचनम् संख्या- 65, दूसरा पाठ संख्या-84.

अन्त में विद्यमान "इति व्याडि विरचिताः पाणिनीय परिभाषाः समाप्ताः" पाठ से तथा "व्याडि विरचिता पाणिनीय परिभाषा" पाठ से भी होती है।

व्याडीय परिभाषा पाठ का नाम–

परिभाषा संग्रह के प्रारम्भ में व्याडीय परिभाषा पाठ पर "परिभाषा सूचनम्" नाम निर्दिष्ट है। व्याडीय परिभाषा पाठ के दो पाठ–

महामहोपाध्याय जी द्वारा प्रकाशित व्याडीय परिभाषा पाठ के जो दो ग्रन्थ छपे हैं, उन दोनों का पाठ भिन्न-भिन्न है। प्रथम पाठ में केवल 93 परिभाषाएँ हैं, दूसरे पाठ में 240 हैं। इन परिभाषाओं में केवल संख्या का ही अन्तर नहीं है, अपितु पौर्वापर्य एवं पाठभेद भी बहुत हैं। पुनः द्विविधपाठः–

पाणिनीय वैयाकरणों द्वारा आश्रीयमाण परिभाषापाठ के सम्प्रति दो पाठ उपलब्ध होते हैं– 1. एक पाठ है, सीरदेव विरचित परिभाषावृत्ति में आश्रित 2. और दूसरा है परिभाषेन्दुशेखर आदि में आश्रित। परिभाषाओं के विभिन्न पाठों का संक्षिप्त वर्णन– प्रथम पाठः–

अथ परिभाषासूचनं व्याख्यास्यामः "सूत्र को मिला कर 94 सूत्र हैं।" इस पाठ को प्रथम परिभाषा 'अर्थवदग्रहणे' और अन्तिम 'कृद् ग्रहणे गतिकारकः पूर्वस्यापि ग्रहणम्' है। द्वितीय पाठः–

140 परिभाषाएँ हैं। प्रथम परिभाषा अर्थवद् और अन्तिम 'ज्ञापक' सिद्धं न सर्वत्र हैं। पुष्पिका में लिखा है– "इति व्याडि विचरिता पाणिनीय परिभाषाः समाप्ताः"।

तृतीय पाठः–

यह पाठ पुरुषोत्तमदेव की परिभाषावृत्ति में उपलब्ध होता है। 120 परिभाषाएं हैं। प्रथम परिभाषा अर्थवद् "अन्तिम व्याख्यानतो विशेष किन्हीं हस्तलेखों के अन्त में लिखा है–" इति पाणिनीयाचार्यविरचितानां परिभाषाणां लघुवृत्तिः सम्पूर्णा।

चतुर्थ पाठ- यह पाठ सीरदेव की परिभाषावृत्ति में उपलब्ध होता है। 133 परिभाषाएँ हैं।

पंचम पाठ- यह पाठ परिभाषेन्दुशेखर में उपलब्ध होता है। 133 परिभाषाएँ हैं। इसी पाठ पर आधुनिक लेखकों ने अपनी व्याख्याएँ लिखी हैं।

3. पाणिनि (2900 वि. पूर्व.):-

परिभाषापाठ के कई ग्रन्थ तथा वृत्तिग्रन्थ ऐसे हैं, जिनके अन्त में परिभाषाओं को पाणिनीय, पाणिनि- प्रोक्त वा पाणिनिविरचित कहा है। यथा- "परिभाषा सूत्राणि पाणिनिकृतानि।[1]"

"इति पाणिनीयाचार्य विरचितानां परिभाषाणां लघुवृत्तिः सम्पूर्णा:[2]" इससे भी यह ध्वनित होता है कि कोई परिभाषा सूत्र वा पाठ पाणिनि- प्रोक्त है-

पूर्वापर सभी पक्षों पर विचार करके हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि आचार्य पाणिनि ने स्वतन्त्र सम्बद्ध किसी परिभाषापाठ का प्रवचन किया था। हमारे विचार की पुष्टि महाभाष्य 1/4/2 के "पठिष्यति ह्याचार्यः सकृद्गतौ विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव इति"[3] वचन से भी होती है। क्योंकि महाभाष्य में आचार्य पद का निर्देश पाणिनि और कात्यायन के लिए ही किया जाता है। नागेश ने इस पर लिखा है कि आचार्य से यहाँ वार्तिककार अभिप्रेत है[4]। किन्तु सम्पूर्ण महाभाष्य में कहीं पर भी यह परिभाषा वार्तिक रूप में पठित नहीं है। अतः यहाँ पाणिनि के लिए प्रयुक्त हुआ आचार्य पद परिभाषा पाठ के पाणिनीय-प्रवचन

---

1. अडियार (मद्रास) के हस्तेलख संग्रह के सूचीपत्र भाग-2, सन् 1928, पृ. 72 पर परिभाषासूत्रों के हस्तलेख में निर्दिष्ट.
2. पुरुषोत्तमदेव परिभाषावृत्ति के अन्त का पाठ, पृ. 285, भाग-2, सं.-2
3. द्र.- युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. का इति., भाग-2, पृ. 287.
4. भाष्य आचार्यो वार्तिककारः.

को ही स्पष्ट कर रहा है। अत एव उसी के अनुकरण पर पाणिनि से उत्तरवर्ती वैयाकरण भी बराबर स्वतन्त्र संबद्ध परिभाषा पाठों को प्राय: प्रवचन करते आ रहे हैं। हाँ, यह हो सकता है कि पाणिनीय परिभाषाओं का मूलाधार व्याडि की अपने तन्त्र से 'संबद्ध परिभाषाएं हों।'

"इति व्याडि विरचिता पाणिनीय परिभाषा: समाप्ता:[1]" का अभिप्राय अधिक सुस्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि परिभाषाठ के पांचों पाठों का संबन्ध पाणिनीय-परिभाषापाठ से उत्पन्न हो जाता है[2]।

(ख) परिभाषापाठ के व्याख्याकारों का कालक्रम से वर्णन-

"परिभाषापाठ के व्याख्याता-"

1. हरदत्त (सं. 1115 वि.)

काशिकावृत्ति के व्याख्याता हरदत्त ने परिभाषापाठ पर "परिभाषाप्रकरण नामक एक ग्रन्थ लिखा था[3]। वह 6/1/37 को व्याख्या में लिखता है-"

"अन्त्यविकारेऽन्त्य सदेशस्य.... नैषास्ति परिभाषा, प्रयोजनाभावात्।

एतच्चास्माभि: परिभाषाप्रकरणाख्ये ग्रन्थे उपपादितम्"[4]।

इस विषय में इससे अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं है।

2. व्याख्याता अज्ञातनाम (सं. 1200 वि. से पूर्व)

अमरटीकासर्वस्व के रचयिता सर्वानन्द वन्द्य घटीय (सं.-1216) ने अमरकोश 2/8/68 की टीका में किसी परिभाषावृत्तिकार का निम्न पाठ उद्धृत किया है-

---

1. परिभाषा पाठ, द्वितीय पाठ की अन्तिम पंक्ति.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति., भाग-2, पृ. 287.
3. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. का इति., भाग-2, पृ. 287.
4. पदमंजरी, भाग-2, पृ. 473.

"अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः कृतमपिशास्त्रं निवर्तयन्ति। अत्र हि अकृतव्यूहा अगृहीतशास्त्रा इति परिभाषावृत्तिकारैरुक्तम्।[1]"

सर्वानन्द का काल सं.- 1216 वि. है। अतः यह वृत्ति उससे पूर्ववर्ती होने से सं.- 1200 वि अथवा उससे भी पूर्व की है[2]।

3. व्याख्याता- पुरुषोत्तमदेव (सं. 1200 वि)

पुरुषोत्तमदेव ने परिभाषापाठ पर एक अनतिविस्तरवृत्ति लिखी है। यह लघुवृत्ति और ललितावृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है[3]।

परिभाषावृत्ति वैशिष्ट्यः-

यह वृत्ति व्याडीय परिभाषापाठ पर है। श्रीपुरुषोत्तमदेव ने अपने ज्ञापकसमुच्चय के प्रारम्भ में इस वृत्ति को वृद्ध-सम्मता कहा है[4]। पुरुषोत्तम देव की वृत्ति में 120 परिभाषाएँ व्याख्यात हैं। इन्होंने "ज्ञापकसमुच्चय" नाम का एक ग्रन्थ और भी लिखा है।

4. व्याख्याता- सीरदेव (1200-1400 वि.)

सीरदेव ने परिभाषावृत्ति नामक ग्रन्थ लिखा है, पर इसमें इन्होंने अपना कोई परिचयादि नहीं दिया है। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका काल 1200-1400 विक्रमी है। क्योंकि सीरदेव ने परिभाषावृत्ति में जितने ग्रन्थकारों का स्मरण किया है, उनमें सबसे अर्वाचीन श्रीपुरुषोत्तमदेव हैं[5]। यह सीरदेव के समय की पूर्वसीमा है। सीरदेव को उद्घृत करने

---

1. अमरकोश, भाग-3, पृ. 109.
2. युधिष्ठिर मीमांसक सं. व्या. का इति., पृ. 288.
3. इति पाणिन्याचार्य विरचितानां परिभाषाणां लघुवृत्तिः सम्पूर्णा। -काशीनाथ अभ्यङ्कर, परिभाषासंग्रह, पृ. 16; इति वैयाकरण गज पंचानन श्री पुरुषोत्तमदेव-विरचिता ललिताख्या परिभाषावृत्तिः समाप्ताः, राजशाही, पृ. 56.
4. यश्चक्रे परिभाषाणां वत्तिं वृद्धसम्मताम्। ज्ञापकसमुच्चय, पृ. 57.
5. द्र.-परिभाषावृत्ति, पृ. 19, 150, 175 काशी सं.

वालों में सायण सबसे प्राचीन हैं। सायण अपनी धातुवृत्ति में अनेकत्र सीरदेव की परिभाषावृत्ति को उद्घृत करता है[1]। यह सीरदेव के काल की उत्तर सीमा है। इस प्रकार सीरदेव का काल स्थूलतया सं. 1200-1400 वि. के मध्य है[2]।

परिभाषावृत्ति का वैशिष्ट्य-

यह परिभाषापाठ अष्टाध्यायी के क्रम से तत्तत् सूत्रों से ज्ञापित अथवा तत्सम्बन्धी वार्तिक आदि रूप वचनों का संग्रह रूप है। यदि पाणिनि ने किसी परिभाषापाठ का प्रवचन किया होगा तो हमारे विचार में यह यही अष्टाध्यायीक्रमानुसारी पाठ रहा होगा। किन्तु इस पाठ में जो वार्त्तिक अथवा भाष्य वचन परिभाषारूपेण सम्मिलित हैं, वे निश्चय ही पाणिनीय प्रवचन में नहीं थे।

द्वितीय वैशिष्ट्य- इस वृत्ति की प्रौढ़ता तथा विचार-गहनता है। यह वृत्ति सम्पूर्ण वृत्तियों से सबसे अधिक विस्तृत है। अत एव यह वृहद् वृत्ति के नाम से प्रसिद्ध है।

(च) व्याख्याकार- श्रीमान शर्मा (सं. 1500-1550 वि.):-

श्रीमान शर्मा नामक विद्वान् ने सीरदेवीय परिभाषा पाठ पर विजया नाम्नी टिप्पणी लिखी है। इन्होंने अपनी विजया नामक टिप्पणी के अन्त में अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

इनके पिता का नाम लक्ष्मीपति था और वारेन्द्र चम्पाहाट्टि कुल का था[3]। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार इनका समय सं.- 1500-1550

---

1. 'यदुक्तं सीरदेवेन व्यधिकपरिभाषाया: तदपि वत्तिवार्त्तिकविरोधादेव प्रत्युक्तम्'। द्युत धातु-728,पृ. 129, चौखम्बा सं. अचिकीर्तत् इति सिद्ध्यर्थमनित्यत्वं चास्यवदन् सीरदेवोऽपि प्रत्युक्त:। कृत धातु-10/119, पृ.= 389 चौखम्बा सं.।
2. युधिष्ठिर मीमांसक व्या. का इति. पृ.=290
3. अनुन्यासादिसारस्य कर्त्रा श्रीमान शर्मणा।

का वि. है।

(छ) रामभद्रदीक्षित (सं. 1744 वि.):-

सीरदेवीय परिभाषावृत्ति पर इन्होंने एक व्याख्या लिखी है। इसके अनेक हस्तलेख विभिन्न हस्तलेख संग्राहक पुस्तकालयों में विद्यमान हैं[1]। इनके पिता का नामयज्ञराम दीक्षित था। इनके गुरु का नाम चोक्कनाथ मखी था। यह दीक्षित जी का श्वसुर भी है। रामभद्र ने स्वयं लिखा है-

शेषं द्वितीयमिव शाब्दिक सार्वभौमम्।
श्री चोक्कनाथमखिनं गुरु मानतोऽस्ति[2]॥

5. नीलकण्ठ वाजपेयी ने परिभाषापाठ पर एक संक्षिप्तवृत्ति लिखी है। इसका समय 1600-1675 वि. माना जाता है[3]। इन्होंने सिद्धधांतकौमुदी की सुखबोधिनी व्याख्या के आरम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

यह नीलकण्ठ रामचन्द्र का पौत्र और वरदेश्वर का पुत्र था। वरदेश्वर ने अप्पयदीक्षित के पुत्र से विद्याध्ययन किया था। नीलकण्ठ ने तत्त्वबोधिनीकार ज्ञानेन्द्र सरस्वती से विद्या पढ़ी थी।

अन्य व्याकरण ग्रन्थ-

1. पाणिनीय दीपिका 2. परिभाषावृत्ति 3. सिद्धान्तकौमुदी की सुखबोधिनी टीकाः 4. तत्त्वबोधिनीव्याख्यान गूढार्थदीपिका।

श्री लक्ष्मीपतिपुत्रेण विजयेयं विनिर्मिता॥
इति वारेन्द्रचम्पाहट्टीय श्रीश्रीमान शर्म निर्मिता सीरदेव बृहत् परिभाषा वृत्ति टिप्पणी विजयाख्या समाप्ता। भण्डारकर प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान पूना, हस्तलेख।

1. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति. पृ.=291.
2. वही, पृ.=219.
3. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति. पृ. 292.

परिभाषावृत्ति में 130 परिभाषाकों का व्याख्यान है। उसके अनन्तर 10 प्रक्षिप्त और निर्मूल परिभाषाओं का निर्देश है।

6. वैद्यनाथ शास्त्री (सं. 1750 वि. के समीप):-

वैद्यनाथ विरचित परिभाषार्थ संग्रह के अनेक हस्तलेख विभिन्न पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं[1]।

वैद्यनाथ ने स्वयं अपने संग्रह के अन्त में अपने पिता का नाम रत्नगिरि दीक्षित लिखा है[2]। वैद्यनाथ के मातुल का नाम रामभद्रमखी है[3]। अगर यह निर्देश ठीक हो तो निश्चय ही यह वैद्यनाथ शास्त्री यज्ञराम दीक्षित की पुत्री रामभद्रमखी की बहिन का पुत्र है[4]। परिभाषावृत्ति की अन्तिम पुष्पिका[5] से ज्ञात होता है। यह परिभाषावृत्ति सीरदेव की परिभाषावृत्ति के अनुकूल है। इस परिभाषावृत्ति के परिभाषार्थसंग्रह नाम से ध्वनित होता है कि यह सीरदेवीय बृहत् परिभाषावृत्ति का संग्रह रूप ग्रन्थ है[6]।

(क) व्याख्याकार- स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती (सं.-1710-1730 वि.):-

वैद्यनाथ शास्त्री के गुरु स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती ने इस परिभाषार्थ संग्रह पर चन्द्रिका नाम्नी एक व्याख्या लिखी है। इसके हस्तलेख मद्रास

---

1. वहीं, पृ.=293.
2. इति रत्नगिरिदीक्षितपुत्रवैद्यनाथ शास्त्रिणः कृतिषु परिभाषार्थ संग्रहे प्रथमाध्यायस्य प्रथमः पादः।- आडियार लाइब्रेरी का हस्तलेख क्रमांक 483.
3. तञ्जौर पुस्तकालय सूचीपत्र पृ.=4287, भाग-10.
4. सं. व्या. शा. का इति भाग-1, पृ. 424, तृ.सं.
5. इति श्रीमद्रत्नगिरिदीक्षितवैद्यनाथशास्त्रिणः कृतिषु परिभाषार्थसंग्रहे न्यायमूला परिभाषाः समाप्ताः। मद्रास सूचीपत्र, भाग-3, पृ. 1017.
6. युधि. मी. सं. व्या. शा. का इति., पृ. 294, भाग-2.

तथा तन्जौर के पुस्तकालयों में विद्यमान हैं। स्वयं प्रकाशानन्द सरस्वती के गुरु का नाम अद्वेतानन्द सरस्वती है[1]।

(ख) अप्पा दीक्षित-

अप्पा दीक्षित ने परिभाषार्थसंग्रह पर "सारबोधिनी" नाम्नी व्याख्या लिखी है। अप्पादीक्षित ने अपना परिचय निम्न शब्दों में दिया है-

"अप्पयदीक्षितवरान्वयसंभवेन।
स्वात्मावबोधफलमात्र कृतश्रमेण।
अप्पाभिधेन मखिना रचिता समीयात्॥[2]"

इससे केवल इतना ही विदित होता है कि 'अप्पादीक्षित' का जन्म अप्पयदीक्षित के वंश में हुआ था। इससे अधिक इनके बारे में सब कुछ अज्ञात है।

7. हरिभास्कर अग्निहोत्री-

भास्कर अपर नाम हरिभास्कर अग्निहोत्री ने परिभाषा पाठ पर "परिभाषाभास्कर" नाम्नी एक व्याख्या लिखी है। जम्मू के श्रीरघुनाथ संस्कृत अनुसन्धान संस्थान के पुस्तकालय में इसका एक हस्तलेख सुरक्षित है। दो हस्तलेख मद्रास राजकीय पुस्तकालय में हैं। जम्मू के सूचीपत्र में ग्रन्थकर्ता का नाम हरिभास्कर लिखा है[3]।

परिभाषाभास्कर में इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है-

---

1. इति श्रीमद् परमहंसपरिव्राजकसर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीमदद्वेतानन्द सरस्वती चतुर्थः पादः मद्रास सूचीपत्र, पृ. 1018.
2. आडियार सूचीपत्र, व्याकरण विभाग, ग्रन्थ संख्या- 494.
3. जम्मू सूचीपत्र, पृ. 42 पर हरिभास्कर के पिता का नाम 'आयाजि' छपा है। सम्भवतः यह 'आपाजि' का भ्रष्ट पाठ हो।

श्री गुरुन् पितरौ नत्वाऽग्निहोत्री श्रास्कराभिधः।
भास्कर परिभाषाणां तनुते बालबुद्धये।।[1]

काशीक्षेत्र वासी हृतकठिन
तरारातिषडवर्गदभः।
श्रीमानापाजि भट्टः
सुरयजनतत्परः शुद्धधीराविरासीत्[2]।।

इति काश्यपान्वयसंभावग्निहोत्रीकुलतिलकायमान हरिभट्टसुनुश्रीमद् आपाजिभट्टसुनूना[3] भास्कर विरचितः परिभाषा भास्करः समाप्तिमगात्।

इन निर्देशो के अनुसार इनके पिता का नाम आपाजि, पितामह का नाम हरिभट्ट और हरिभट्ट के पिता का नाम उत्तमभट्ट था। इनका गोत्र कश्यप था और यह अग्निहोत्री कुल का था। काशीनाथ अभ्यङ्कर ने इनका काल सन् 1677 के लगभग माना है।

(क) हरिभास्कर के एक अज्ञात नामा शिष्य ने 'लघुपरिभाषावृत्ति लिखी है[4]।'

(8) हरिभास्कर अग्निहोत्र का शिष्य-

हरिभास्कर अग्निहोत्री के किसी अज्ञात नाम शिष्य ने 'लघुपरिभाषा-वृत्तिः' नाम्नी वृत्ति लिखी है। पर इस ग्रन्थकार का नाम अज्ञात है। इसका एक हस्तलेख लन्दन के इण्डिया ऑफिस के पुस्तकालय में विद्यमान है[5]। इस हस्तलेख के अन्त में निम्नलेख है।

---

1. परिभाषाभास्कर, पृ. 1.
2. वही, ग्रन्थान्त में.
3. वही, पूना सं., पृ. 374.
4. सं. व्या. शा. का इति., पृ 293.
5. द्रष्टव्य- सूचीपत्र, भाग-1, खण्ड-2, संख्या-673.

"इति भास्कर भट्टाग्नि होत्रिकुलतिलकायमानान्तेवासिना निर्मिता लघुपरिभाषावृत्तिरगाच्चरमवर्णध्वंसम्।" इससे अधिक इनके विषय में अज्ञात है[1]।

(9) अप्पासुधी-

परिभाषा पाठ पर अप्पासुधी विरचित 'परिभाषारत्न' नामक हस्तलिखित ग्रन्थ अडियार के पुस्तक-संग्रह में विद्यमान है[2]। यह 'परिभाषारत्न श्लोकबद्ध है। इसके अन्त में निम्नलेख है-' "इति परिभाषारत्ने श्लोकाः (193) पञ्चाधिक विंशतिप्रयुक्त शतम्"। इनके देशकालादि के विषय में कुछ भी ज्ञान नहीं है[3]।

(10) उदयंकर भट्ट-

उदयङ्कर भट्ट विरचित "परिभाषा प्रदीपार्चि" का एक हस्तलेख काशी के सरस्वती भवन के संग्रह में और दूसरा अडियार में विद्यमान है[4]। अडियार हस्तलेख के आदि में-

कृत्वा पाणिनिसूत्राणां मितवृत्यर्थसंग्रहम्।
परिभाषा प्रदीपार्चिस्तत्रोपायो निरूप्यते।। अन्त में-

परिभाषा प्रदीपार्चिष्युदयंकरदर्शिते।
प्रथमोव्याकृतोऽध्यायः संगतः संयतः सताम्।।[5]

इनसे इतना ही विदित होता है कि इन्होंने पाणिनीय अष्टाध्यायी पर भी मितवृत्यर्थसंग्रह ग्रन्थ लिखा है।

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति., पृ. 297.
2. परिभाषारत्न हस्तलिखित ग्रन्थ, व्याकरणविभाग, संख्या- 48.
3. संस्कृत व्या. शा. का इति., भाग-2, पृ. 297.
4. द्रष्टव्य- काशी का पुराना सूचीपत्र, संग्रह संख्या-13, वेग्टन संख्या-13 तथा अडियार संगह व्याकरण विभाग का सूचीपत्र, पृ. 476.
5. सं. व्या. शा. का इति., भाग-2, पृ. 297.

एक उदयङ्कर पाठक ने लगभग सं-1850 वि० में 'लघुशब्देन्दुशेखर की टीका लिखी थी। यदि यही उदयङ्कर पाठक उदंकर भट्ट हो तो, इसका काल नागेश से परवर्ती होगा। इससे अधिक इस वृत्ति के विषय में अज्ञात है[1]। यह वृत्ति प्रायः सीरदेवीय परिभाषापाठ के सदृश अष्टाध्यायीक्रम से संगृहीत परिभाषापाठ पर लिखी गई है।'

व्याडि के पंचम पाठ पर आश्रित परिभाषावृत्तियां

(11) नागेशभट्ट (सं. 1730-1810 वि०):-

नागेशभट्ट विरचितपरिभाषेन्दुशेखर ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है। सम्प्रति परिभाषा ज्ञान के लिए यही ग्रन्थ पठन-पाठन में व्यवहृत होता है। इन्होंने कैयटविरचित महाभाष्यप्रदीप की 'उद्योत' अपरनाम 'विवरण' नाम्नी प्रौढ़ व्याख्या भी लिखी है।

वंश- यह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण था। इनका दूसरा नाम नागोजी भट्ट था। इनके पिता का नाम शिवभट्ट तथा माता का नाम सती देवी था[2]। 'लघुशब्देन्दुशेखर' के अन्तिम श्लोक से विदित होता है कि नागेश के कोई सन्तान नहीं थी[3]।

गुरु और शिष्य-

नागेश ने भट्टोजि दीक्षित के पौत्र हरि दीक्षित से व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था। वैद्यनाथ पायगुण्ड नागेशभट्ट का प्रधान शिष्य था। नागेश जी की गुरु शिष्यपरम्परा इस प्रकार है-

---

1. वही, पृ.-298.
2. इति श्रीमदुपाध्यायोपनामक शिवभट्टसुतसतीगर्भजनागेशभट्ट विरचित 'लघुशब्देन्दुशेखर' द्रष्टव्य सं व्या. शा का इति, भाग-1, पृ. 426.
3. शब्देन्दुशेखर पुत्रो मन्जूषा चैव कन्यका। स्वमतौ सम्यगुत्पाद्य शिवयोरर्पितौ मया लघुशब्देन्दुशेखर, अन्तिम श्लोक.

रामाश्रम

हरिदीक्षित

नागेश

वैद्यनाथ पायगुण्ड बालशर्मा

मन्नुदेव

पाण्डित्य-

नागेशभट्ट व्याकरण, साहित्य, अलंकार, धर्मशास्त्र, सांख्य, योग, पूर्वोत्तर मीमांसा और ज्योतिष आदि अनेक विषयों का प्रकाण्ड पण्डित था। वैयाकरण निकाय में भर्तृहरि के पश्चात् यही एक प्रामाणिक व्यक्ति माना जाता है। काशी के वैयाकरणों में किंवदन्ती है कि नागेशभट्ट ने महाभाष्य का 18 वार गुरु मुख से अध्ययन किया था। आधुनिक वैयाकरणों में भी नागेशभट्ट विरचित महाभाष्य प्रदीपोद्योत, लघुशब्देन्दुशेखर और परिभाषेन्दुशेखर ग्रन्थ अति प्रामाणिक माने जाते हैं। सहायकः- प्रयाग के समीस्थ शृंगवेरपुर का राजा रामसिंह नागेश का वृत्तिदाता था[1]।

काल-

नागेश भट्ट कब से कब तक जीवित रहा, यह अज्ञात है। अनुश्रुति है कि वि० सं-1772 में जयपुराधीश ने जो अश्वमेध यज्ञ किया था, उसमें उसने नागेशभट्ट को भी निमन्त्रित किया था, किन्तु नागेश ने संन्यासी हो जाने अथवा क्षेत्रनिवासव्रत के कारण वह निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। भानुदत्तकृत 'रसमंजरी' पर नागेशभट्ट की एक टीका है। उसका लेखन काल संवत्- 1769 वि० है[2]। वैद्यनाथ पायगुण्ड का पुत्र बालशर्मा नागेशभट्ट का शिष्य था। उसने धर्मशास्त्री मन्नुदेव की सहायता

1. यह वैद्यनाथ का पुत्र है। द्रष्टव्य 'धर्मशास्त्रसंग्रह का प्रारम्भ'।
2. संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ. 427.

और हेनरी टामस कोलबुक की आज्ञा से "धर्मशास्त्र संग्रह" ग्रन्थ रचा था[1]। कोलबुक सन् 1783-1815 अर्थात् वि. सं. 1840 से 1872 तक भारतवर्ष में रहा था[2]। अतः नागेश सं-1730 से 1810 वि० के मध्य रहा होगा।

नागेश ने परिभाषेन्दुशेखर की रचना मंजूषा और शब्देन्दुशेखर के अनन्तर की है। शब्देन्दुशेखर का निर्देश परिभाषा- 16, 33, 114 तथा मंजूषा निर्देश परिभाषा 43, 84 की व्याख्या में मिलता है। इससे अधिक हम पूर्ववर्ती प्रकाण्ड पण्डित नागेशभट्ट के इतिवृत्त के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

अन्य व्याकरण ग्रन्थ-

इन्होंने महाभाष्यप्रदीपोद्योत के अतिरिक्त व्याकरण के निम्न ग्रन्थ रचे हैं-

1. लघुशब्देन्दुशेखर,
2. बृहच्छब्देन्दुशेखर
3. परिभाषेन्दुशेखर
4. लघुमंजूषा
5. परमलघुमंजूषा
6. स्फोटवाद
7. महाभाष्य प्रत्याख्यान संग्रह

प्रमुख अन्य कृतियाँ-

8. वैयाकरण सिद्धान्त मंजूषा
9. वैयाकरण लघुमंजूषा

15. वाल्मीकि रामायण (तिलक टीका)
16. आध्यात्मरामायण 'सेतु' टीका

---

1. धर्मशास्त्र संग्रह, इण्डिया आफिस, ग्रन्थांक- 1507.
2. सरस्वती, जुलाई, 1914, पृ. 400.

10. योगसूत्रलघुवृत्ति
11. पातंजलयोगसूत्रवृहद्वृत्ति
12. सांख्यसूत्रवृत्ति
13. काव्यप्रदीपोद्योत
14. रसगंगाधर मर्मप्रकाश
17. चिन्तमीमांसाखण्डन टीका
18. रसमंजरीप्रकाश
19. रसतरङ्ग्णी टीका इत्यादि।

(12) शेषाद्रिनाथ सुधी-

शेषाद्रिनाथ सुधी नामक वैयाकरण ने 'परिभाषाभास्कर' नाम्नी परिभाषा वृत्ति लिखी है। इसे कृष्णमाचार्य ने सन् 1902 में प्रकाशित किया था। ग्रन्थकार ने इसमें अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया है। इन्होंने अपनी इस व्याख्या में नागेशभट्ट कृत परिभाषेन्दुशेखर का नाम निर्देश के विना खण्डन किया है। यथा 'यत्तु नव्योक्तम्- विशेष्यान्तरा सत्त्वे शब्दरूप विशेष्यमादाय येन विधिसूत्रेण तदन्त विधि सिद्ध इति, तदयुक्तम्'[1]।

शेषाद्रिनाथ सुधी का देश कालादि अज्ञात है। हाँ, इसके परिभाषा भास्कर में परिभाषेन्दुशेखर का खण्डन होने से स्पष्ट है कि शेषाद्रिनाथ सुधी नागेशभट्ट से उत्तरवर्ती है।

(13) रामप्रसाद द्विवेदी (सं 1973 वि.):-

रामप्रसाद द्विवेदी नामक व्यक्ति ने "सार्थपरिभाषापाठ" नाम से स्वकृत परिभाषा की लघुवृत्ति प्रकाशित की है। यह काशी से 1973 में छपी है। इसमें प्रथम 127 परिभाषायें परिभाषेन्दुशेखर के अनुसार हैं[2]।

---

1. परिभाषा भास्कर, परिभाषा 23 की व्याख्या में।
2. इति परिभाषेन्दुशेखर पाठः।

अन्त में 25 परिभाषायें ऐसी व्याख्यात हैं, जो परिभाषेन्दुशेखर में नहीं हैं।

(ग) अर्वाचीन व्याकरण से सम्बद्ध परिभाषा प्रवक्ता और व्याख्याताओं का वर्णन–

(4) कातन्त्रीय परिभाषा प्रवक्ता–

कातन्त्र व्याकरण से सम्बद्ध जो परिभाषा पाठ सम्प्रति उपलब्ध होता है, वह अनेक प्रकार का है परिभाषासंग्रह में पं० काशीनाथ अभ्यङ्कर ने चार प्रकार का पाठ प्रकाशित किया है। दो पाठ वृत्ति सहित हैं और दो मूलमात्र। इनमें अन्तिम पाठ कालाप परिभाषासूत्र के नाम से छपा है। कलाप कातन्त्र का ही नामान्तर है।

इन पाठों में प्रथम दुर्ग सिंह के वृत्तियुक्त पाठ में 67 परिभाषाएँ हैं, द्वितीय भावमिश्रकृत वृत्ति में 62, तृतीय कातन्त्र परिभाषासूत्र में 67 परिभाषासूत्र और 29 बलावल सूत्र–96 सूत्र और चतुर्थ कालाप परिभाषा सूत्र में 118 परिभाषायें हैं। **प्रवक्ता**– कातन्त्र परिभाषापाठ का आदि प्रवक्ता अथवा संग्रहीता कौन व्यक्ति है, यह कहना अत्यन्त कठिन है। दुर्गसिंहकृत वृत्ति के प्रारम्भ में लिखा है– तत्र सूत्रकारयोः शर्ववर्मकात्यायनयोः सूत्राणां चतुःशत्या पञ्चाशदधिकायां परिभाषा नोक्ताः। अथ च वृत्ति टीकयोस्तत्र तत्र प्रयुक्ताः कार्येषु दृश्यन्ते। अतस्तासां युक्तितः संसिद्धिरूच्यते[1]।

इस लेख से इतना स्पष्ट है कि इनका प्रवक्ता शर्व वर्मा अथवा कात्यायन नहीं है। वृत्ति और टीकाकारों ने पूर्व व्याकरण ग्रन्थों के अनुसार इनका जहाँ–तहाँ प्रयोग किया था। उसे देखकर किसी कातन्त्र अनुयायी ने पूर्वतः विद्यमान परिभाषाओं को अपने शब्दानुशासन के अनुकूल रूप देकर ग्रथित कर दिया। यथा हेमशब्दानुशासन से संबद्ध परिभाषाओं को हेमहंसगणि ने ग्रथित किया है[2]। यह ग्रन्थनकार्य मुद्रित वृत्ति के कर्त्ता दुर्गा सिंह से पूर्व ही सम्पन्न हो गया था, ऐसा उसकी वृत्ति

1. परिभाषासंग्रह, पृ. 49.
2. सं. व्या. शा. का इति., पृ=302.

से द्योतित होता है। वह लिखता है-

(क) केचिद् दोऽद्धेर्म (का० 2/3/31) इतिवचनं ज्ञापकं मन्यंते इति[1]। (ख) कश्चिदत्र न वर्णाश्रये प्रत्ययलोपलक्षणम् इति पाठति[2]।

इन दोनों में दुर्गा सिंह अपने से पूर्व वृत्तिकरों को स्मरण करता है। प्रथमपाठ में पूर्ववृत्तिकार द्वारा निर्दिष्ट ज्ञापकसूत्र का उल्लेख है। दूसरे में परिभाषा के पाठभेद का उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट है कि इस वृत्तिकार दुर्ग से पूर्व न केवल कातन्त्र सम्बद्ध परिभाषा पाठ हो व्यवस्थित हो चुका था अपितु उस पर कई व्याख्याएं भी लिखी जा चुकी थीं।

वृत्तिकार-

1. दुर्गसिंह (सं. 673-700 वि०):-

कातन्त्र परिभाषा पर दुर्ग सिंह की वृत्ति पं० काशीनाथ अभ्यङ्कर परिभाषासंग्रह में प्रकाशित हुई है। इस वृत्ति में ही इति दुर्ग सिंहोक्ता परिभाषा वृत्तिः समाप्ताः[3]। पाठ उपलब्ध होता है। दुर्गसिंहोक्ता पाठ से स्पष्ट है कि यह वृत्ति दुर्गसिंह कृत है।

कौन सा दुर्ग सिंह? कातन्त्र सम्प्रदाय में दुर्गसिंह नाम के दो व्याख्याकर प्रसिद्ध हैं-

1. एक वृत्तिकार, दूसरा 2- वृत्तिटीकाकार।

इन दोनों में से किस दुर्ग सिंह ने यह परिभाषा वृत्ति लिखी, यह विचारणीय है।

---

1. परिभाषासंग्रह, पृ. 61.
2. वही, पृ. 64.
3. द्र.- लन्दन इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, सूचीपत्र, भाग-1, खण्ड-2, सं. 772.

दुर्ग सिंह की इस परिभाषा वृत्ति में 12 वीं परिभाषा की वृत्ति में भट्टि काव्य– 14/41 का श्लोक उद्घृत है। अतः स्पष्ट है कि यह दुर्ग भट्टिकार से परवर्ती है। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार भट्टिकाव्य की रचना सम्भवतः 557 में हुई। हमारे विचार में इस वृत्ति का लेखक वृत्तिकार प्रथम दुर्गसिंह है, जिसका काल सं. 673–700 वि० के मध्य है[1]। म०म० काशीनाथ अभ्यङ्कर ने इस वृत्ति का काल 9 शती ई. लिखा है। तदनुसार यह दुर्गसिंह कातन्त्रवृत्ति का टीकाकार होना चाहिए।

(2) भावमित्र–

भावमित्रकृत कातन्त्र–परिभाषावृत्ति परिभाषासंग्रह में प्रकाशित हुई है। भावमित्र ने अपना कोई परिचय इस वृत्ति में नहीं दिया। अतः इसका देश कालादि अज्ञात है। भावमित्र ने वृत्ति के प्रारम्भ में विद्यानन्द नामक किसी कातन्त्रीय वैयाकरण का उल्लेख किया है। इस विद्यानाथ का देशकालादि अज्ञात है। कातन्त्र–परिभाषा के वृत्तिकारों के सम्बन्ध में इससे अधिक हम कुछ नहीं जानते[2]।

(3) चन्द्रगोमी (1000 वि० पूर्व)

चन्द्र गोमी प्रोक्त परिभाषा पाठ पं० काशीनाथ अभ्यंकर ने परिभाषा संग्रह में प्रकाशित किया है। इस पाठ में 83 परिभाषाएँ हैं। प्रवक्ता– इस परिभाषा पाठ का प्रवक्ता चन्द्रगोमी ही है, अन्य कोई चान्द्र सम्प्रदाय का वैयाकरण नहीं है[3]। यह इस परिभाषा पाठ की 86वीं परिभाषा– स्वरविधौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् से स्पष्ट है। क्योंकि चान्द्रव्याकरण के विषय में वैयाकरणों में चिरकाल से यह प्रवाद दृढमूल है कि चान्द्र व्याकरण केवल लौकिक भाषा का व्याकरण है[4]। इसमें स्वरवैदिक

---

1. युधिष्ठिर मीमांसक, व्या. शा. का इति., पृ.=304.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या.शा. का इति., भाग–2, पृ.=304.
3. वही, पृ. 304.
4. वही, पृ. 573 (तृ. सं.)

प्रकरण नहीं था[1]। युधिष्ठिर मीमांसक ने सिद्ध किया है कि चान्द्रव्याकरण में स्वर प्रकरण था। इस परिभाषा पाठ पर कोई वृत्ति उपलब्ध वा ज्ञात नहीं है।

(4) जैनेन्द्र संबद्ध-

देवनन्दीप्रोक्त शब्दानुशासन से संबद्ध जैनेन्द्र-परिभाषा का न कोई स्वतन्त्र पाठ उपलब्ध है और न ही कोई वृत्तिग्रन्थ। हाँ अभयनन्दी विरचित महावृत्ति में अनेक परिभाषाएँ यत्र-तत्र उद्घृत हैं[2]। परिभाषासंग्रह के सम्पादक पं० काशीनाथ अभ्यङ्कर ने लिखा है-

ग्रन्थं नागेशभट्टानां परिभाषेन्दुशेखरम्।
सम्पादयितुकामेन नाना व्याकरण स्थिताः।।1।।

वृत्तयः परिभाषाणां तथा पाठा विलोकिताः।
तासां च संग्रहं कुर्वन् जेनेन्द्रे नोपलब्धवान्।।2।।

पाठं परिभाषाणां वृत्तिं वा संग्रहं तथा।
काश्चित्तत्र मयादृष्टा वृत्तावभयनन्दिनाम्।।3।।

उपयुक्तास्तत्र तत्र सूत्रार्थ प्रतिपादने।
तासां तु संग्रहं कृत्वाऽलेखि पाठः सवृत्तिकः।।4।।

खदिग्दिग्भू (1880) मितेशाके वत्सरे रचितो मया।
माघे कृष्णे पुण्यपुर्या प्रारब्धः प्रतिपत्तिथौ।।5।।

दशम्यां सुसमाप्तोऽयं ग्रन्थः प्रत्यर्पितो मया।
गुरुभ्यः ख्यातनामभ्यः प्रणतिप्रतिपूर्वकम्।।6।।

इससे स्पष्ट है कि पं० काशीनाथ अभ्यङ्कर ने महावृत्ति आदि में उद्घृत जैनेन्द्र तन्त्र-संबद्ध परिभाषाओं को संगृहोत करके उन पर

---

1. वही, पृ.= 305, 562-575.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, सं.व्या.शा. का इति. पृ.=305.

शक–1880 (सं–2015) में वृत्ति लिखी है। इस परिभाषा पाठ का मूल प्रवक्ता कौन था? यह अज्ञात है[1]।

(5) शाकटायन तन्त्र-संबद्ध-

पाल्यकीर्ति विरचित शाकटायन व्याकरण से संबद्ध एक परिभाषा पाठ का प्रकाशन भी पं० काशीनाथ अभ्यंकर ने परिभाषासंग्रह में किया है[2]। प्रवक्ता– इस परिभाषा पाठ का प्रवक्ता पाल्यकर्ति ही है, क्योंकि उसकी अमोघावृत्ति में ये परिभाषाएँ बहुत्र उद्धृत हैं। **व्याख्या**– इस परिभाषा पाठ पर कोई व्याख्या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

6. श्रीभोजदेव (सं.– 1075–1110 वि):-

श्री भोजदेव ने स्वीय व्याकरण से संबद्ध परिभाषा पाठ को गणपाठ तथा उणादि पाठ के समान ही शब्दानुशासन में पढ़ दिया है। यह सरस्वती कण्ठाभरण में 12/2/18 से 135 तक पठित हैं। इस परिभाषा पाठ के वे ही व्याख्याकार हैं, जो सरस्वती कण्ठाभरण के हैं[3]। परिभाषापाठ के सम्पादक पं० काशीनाथ अभ्यङ्कर ने भोजीय परिभाषासूत्रों को परिभाषासंग्रह में प्रकाशित किया है।

7. हेमचन्द्राचार्य (सं. 1145–1229 वि.):-

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन से संबद्ध परिभाषा पाठ का निर्धारण किया था। वह अत्यन्त संक्षिप्त था। इसमें अत्युपयोगी केवल 57 परिभाषाएँ ही पठित हैं। हैम व्याकरण में परिभाषाएँ न्यायसूत्र नाम से व्यवहृत होती हैं[4]। हैम न्यायों के व्याख्याता हेमहंस गणि ने अपने मूल न्यायसंग्रह में 57 न्यायों के निर्देश के पश्चात् लिखा है–

---

1. वही, पृ. 306.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. का इति., 1 म भाग, पृ. 306. (तृ. सं.)
3. वही पृ. 306–307 प्रथम भाग, पृ. 609–613. (तृ. सं.)
4. वही, पृ. 307 (द्वितीय भाग)

एते न्यायाः प्रभूश्रीहेमचन्द्राचार्यैः स्वोपज्ञसंस्कृत शब्दानुशासन बृहद् वृत्ति प्रान्ते समुच्चिताः[2]। न्याय समुच्चय के अर्वाचीन व्याख्याता विजयलावण्य सुरि ने अपनी व्याख्या के प्रारम्भ में लिखा है-

"समर्थः पदविधिः 7/4/122- इति सूत्रस्य बृहद्वृत्तिप्रान्ते हेमचन्द्र भगवद्भिरुक्ताः"[3]। इन अवतरणों से स्पष्ट है कि हेमचन्द्राचार्य प्रोक्त 57 ही परिभाषाएँ (न्याय) हैं।

8. हेमहंसगणि (सं.-1515 वि.)

हैम व्याकरण से सम्बद्ध 57 परिभाषाओं के अतिरिक्त जो परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं, उनका संग्रह हेमहंस गणि ने किया है। वह न्यायसंग्रह में पूर्व निर्दिष्ट-57 हैम परिभाषाओं के अनन्तर लिखता है[4]-

"तेरसमुच्चितास्त्वेते"। इस प्रकार हेमहंसगणि ने 84 अन्य परिभाषाओं का संग्रह किया है। इन 84 परिभाषाओं के भी दो भाग हैं। पहली 65 परिभाषाएँ व्यापक और ज्ञापकादि से युक्त हैं। इनसे आगे जो 19 परिभाषाएँ हैं, उनमें कुछ अव्यापक हैं और प्रायः सभी ज्ञापक रहित हैं। इन 19 परिभाषाओं के भी दो भाग है-पहली-18 परिभाषाएं ऐसी हैं, जिन पर अल्प व्याख्या की ही आवश्यकता है। हेमहंसगणि के शब्द इस प्रकार हैं-

"इत्येते पञ्चषष्टिः, पूर्वैः (57) सह द्वाविंशं शतं न्याया व्यापका ज्ञापकादियुताश्च।[4]" अतः परं तु ये वक्ष्यन्ते ते कचिदव्यापकाः प्रायः सर्वे ज्ञापकादिरहिताश्च।

"एते अष्टादशन्यायाः.... स्तोकस्तोकवक्तव्याः।[5]"

---

1. न्याय संग्रह, पृ=3.
2. सिद्धहेमशब्दानुशासन, भाग-, पृ.=309.
3. न्यायसंग्रह, पृ. 5.
4. वही, पृ. 5.
5. वही, पृ. 6.

परिचय- हेमहंसगणि ने स्वसंकलित न्यायसंग्रह पर स्वयं कई टीकाएँ लिखी हैं। न्यायार्थमञ्जूषा नाम्नी वृहद् वृत्ति में इन्होंने अपना परिचय दिया है[1]। श्री सोमसुन्दर सूरि इनके दीक्षागुरु थे। वैशिष्ट्य-परिभाषा वृत्तियों में सीरदेवीय परिभाषावृत्ति के उपरान्त एकमात्र यही वृत्ति है जो परिभाषाओं के विषय में पाण्डित्यपूर्ण और सविस्तर विवरण उपस्थित करती है।

(क) विजयलावण्य सूरि (सं. 2010):-

हैमबृहद्वृत्ति पर आचार्य हेमचन्द्र सूरि के शब्द महार्णव न्यास अपर नाम बृहन्न्यास के समुद्धारक श्री विजयलावण्य मुनि ने हेमहंसगणि विरचित न्यायसंग्रह पर न्यायार्थ सिन्धु नाम्नी व्याख्या और तरङ्ग नाम्नी टीका लिखी है। ये दोनों ही व्याख्याएँ अति प्रौढ़ हैं। सूरि महोदय को पाणिनीय तन्त्र का अच्छा ज्ञान है, यह इन व्याख्याओं से सुस्पष्ट है[2]।

9. मुग्धबोध-संबद्धः-

वोपदेव-विरचित मुग्धबोध व्याकरण से सम्बद्ध एक परिभाषा वृत्ति उपलब्ध होती है। इसमें व्याख्यायमान परिभाषाओं का संग्राहक कौन व्यक्ति है? यह अज्ञात है[3]।

(क) वृत्तिकार- रामचन्द्र विद्याभूषणः-

मुग्धबोध से सम्बद्ध परिभाषाओं की एक वृत्ति रामचन्द्र विद्याभूषण ने लिखी है। डॉ. वेल्वाल्कर ने व्याख्याकार का नाम रामचन्द्र तर्क वागीश लिखा है[4]। इस वृत्ति का रचनाकाल सं.-1745 वि० है। इस वृत्ति का निर्देश म०म० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा सम्पादित 'गवर्नमेन्ट ऑफ

---

1. सं. व्या. शा. का इति., पृ. 309.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति., पृ.=310.
3. वही, पृ.=310
4. हिस्ट्री आप संस्कृत ग्रामर, सन्दर्भ-95.

बंगाल' द्वारा प्रकाशित हस्तलेख में निर्दिष्ट है[1]। डॉ. वेल्वालकर ने भी यही काल स्वीकार किया है।

(10) पद्मनाभदत्त (सं.-1400 वि०):-

पद्मनाभदत्त ने स्वीय सुपद्मव्याकरण से सम्बद्ध परिभाषा पाठ का ग्रन्थन किया था और उस स्वयं वृत्ति भी लिखी थी। पद्मनाभ दत्त ने इस वृत्ति के अन्त में स्वविरचित प्रायः सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया है[2]।

इस वृत्ति का एक हस्तलेख लण्डन के इण्डिया ऑफिस के संग्रह में विद्यमान है[3]।

टीकाकार- इनकी परिभाषावृत्ति पर नामनाथ सिद्धान्त रचित टीका है[4]। इस टीका अथवा टीकाकार के सम्बन्ध में इससे अधिक अज्ञात है।

(घ) परिभाषार्थमञ्जरी तथा उसके रचयिता भीमः-

भीम नामक वैयाकरण द्वारा लिखित परिभाषावृत्ति का नाम "परिभाषार्थ मञ्जरी" है। इनके पिता का नाम माधवाचार्य था। आचार्य भीम का इतना परिचय ही हमें अन्तःसाक्ष्य के आधार पर उपलब्ध होता है[5]।

---

1. सूचीपत्र भाग, 1, पृ.=216; ग्रन्थाङ्क-222.
2. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग-2 पृ. 310.
3. द्रष्टाव्य-सूचीपत्र, भाग-1, खण्ड-2, ग्रन्थांक-890.
4. सं. व्या. शा का इति., पृ. 311.
5. इति श्री मद्गलगलेकरोपनामकमाधवाचार्य तनय प्रणीता परिभाषार्थमंजरिसमाप्तम्, ज-2, प-1, प-2, अ-1, अ-3, अ-4; द्रष्टव्य- जम्मू सूचीपत्र पृ. 42 पर भी भीम के पिता का नाम माधवाचार्य अंकित है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृ. 29-35।

भीम का जन्म कब और कहाँ हुआ? यह सब भी अज्ञात है[1]। भीम के पिता माधवाचार्य कौन से माधवाचार्य हैं? यह प्रश्न भी एक पहेली बना हुआ है। इतने प्रकाण्ड व्याकरण शास्त्र के पंडित आचार्य भीम का किसी भी इतिहासकार ने नामोल्लेख नहीं किया है। केवलमात्र युधिष्ठिर मीमांसक ने इनके द्वारा लिखित एक हस्तलेख का परिचय इस प्रकार दिया है:-

"भीम नामक वैयाकरण द्वारा लिखित परिभाषावृत्ति का एक हस्तलेख जम्मू के रघुनाथ मन्दिर के पुस्तकालय में विद्यमान है। इस वृत्ति का नाम परिभाषार्थ मंजरी है। द्र.-जम्मू सूचीपत्र, पृ.-42।"

भीम के पिता का नाम माधवाचार्य था। यह उक्त सूचीपत्र में ही निर्दिष्ट है। इससे अधिक हम भीम के विषय में कुछ नहीं जानते।

एक माधवाचार्य सायण का सहोदर है। दूसरा माधवाचार्य 'प्रक्रियासर्वस्व' के व्याख्याता नारायण भट्ट का गुरु है[2]। इनमें से भीम के पिता माधवाचार्य कौन से हैं, यह अज्ञात है। हमारा विचार है कि भीम के पिता माधवाचार्य नारायणभट्ट के गुरु माधवाचार्य हों अथवा यह उक्त दोनों से पृथक् व्यक्ति हों, यह भी सम्भव है[3]।

प-1 मातृका के प्रथम पृष्ठ से ही हमें ज्ञात हो जाता है कि यह "परिभाषार्थ मंजरी" नामक ग्रन्थ "परिभाषेन्दुशेखर" की टीका है और इसके रचयिता आचार्य भीम हैं। इस मातृका की पुष्पिका में प्रतिलिपिकार का नाम उसके पिता का नाम तथा इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि प्रतिलिपिकार ने कब की? यह भी उल्लेख किया गया है[4]। यह प-1 प्रति की

---

1. सं. व्या. शा. का इति., द्वितीय भाग, पृ. 292.
2. द्रष्टव्य- सं. व्या. शा. का इति. भाग, 1, पृ. 542 (तृ. सं.)
3. वही, भाग-2, पृ. 292, 293.
4. कासिरामपदद्वंनवरलिने च मरीयता॥ चिंतामणेन लिखिता परिभाषार्थमञ्जरि॥3॥ श्री शुभं भवतु॥ श्री रामरामरारामायरामार्पणस्तु॥ शके 1773 विरोधिकृत नामसंवत्सर आषाढ़ शुक्ल 8 अष्ट मित्तद्दिने द्वितीय यामे पुस्तकं समाप्तम्॥- द्र. प्र. शो. प्र. पृ. 29-35

प्रतिलिपि शक सम्वत्–1773 में हुई। अर्थात् आज से 139 वर्ष पूर्व सन् ईस्वी 1851 में इस प्रति की प्रतिलिपि की गई।

इसी प्रकार अ–1 मातृका का प्रतिलिपि काल भी प्रतिलिपिकार ने अंकित किया है[1]।

इस अ–1 प्रति की प्रतिलिपि विक्रम सम्वत्–1889 में हुई। अर्थात् आज से 188 वर्ष पूर्व सन् ईस्वी–1832 में इस की प्रति की गई।

इन हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों के आधार पर यह बात सुस्पष्ट हो जाती है कि आचार्य भीम ईस्वी सन् 1832 से पूर्व ही हुए होंगे[2]।

युधिष्ठिर मीमांसक ने बाह्य साक्ष्यों के आधार पर परिभाषेन्दुशेखर के रचयिता नागेशभट्ट का काल विक्रम सम्वत् 1730–1810 के मध्य अर्थात् सन् 1673 से 1753 ई. के मध्य का माना है[3]। आचार्य भीम ने नागेशभट्ट के परिभाषेन्दुशेखर की टीका की है। परिभाषेन्दुशेखर का प्रचार तथा प्रसार होने के लिए लगभग पच्चीस तीस वर्ष अवश्य लगे होंगे। इस साक्ष्य के आधार पर भी कहा जा सकता है कि आचार्य भीम ने परिभाषार्थ मंजरी की रचना लगभग सन् 1780 से 1800 ईस्वी के बीच की होगी। आचार्य भीम द्वारा उद्धृत ग्रन्थ भी लगभग नागेश भट्ट

---

1. परिभाषारसास्वाद माधवाचार्यतनयभीम प्रणीता सम्वत् 1889 मिं० मार्गशीरर्शे (शीर्षे) मासे शुक्ल पक्षे 9॥ मंदवासरे। –वहीं, पृ. –17. ज–1 मातृका के प्रथम पत्र से हमें यह संकेत उपलब्ध होता है कि विद्वान् वीरेश्वर ने बालकों की संतुष्टि के लिए शिवानाथ (काशी) नगरी में भीम की टीका (भैमी) में उत्तमरचना (प्रतिलिपि) को (किसी विद्वान् से) लिखवायाः–
वीरेश्वरेण विदुषा भैम्यां पुस्तकमुत्तमम्।
लेखापितं शिवानाथ नगर्यां शिशुतुष्टये॥ प्र.शो.प्र.पृ. 25–35
2. अ–3 प्रति का लिपिकाल 1913 है तथा अ–2, अ–4 प्रतियाँ 20 वीं शताब्दी की रचनाएं हैं। शेष प्रतियों में लिपिकाल अनुपलब्ध है। द्र. प्र. शो. प्र., पृ. 29 से पृ. 35।
3. सं. व्या. शा. का इति, भाग–1, पृ.=425.

के ही हैं। यथा मंजूषा, शब्देन्दु शेखर, मनोरमा, वैयाकरण सिद्धांत मञ्जूषा आदि। तथा इनके द्वारा स्मृत आचार्य भी नागेश भट्ट की गुरु शिष्य परंपरा से सम्बन्धित हैं। यथा दीक्षित (हरिदीक्षित[1]) वैद्यनाथ पायगुण्ड[2] (सं.-1750-1825 वि०) सन् ईस्वी 1693-1768: नागेशभट्ट का शिष्य आदि।

आचार्य भीम के पिता माधवाचार्य कौन से माधवाचार्य हैं। यह विमर्शार्ह है; क्योंकि 'परिभाषार्थमञ्जरी' में तो ऐसा कोई भी अन्तः साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है, जिससे यह निश्चितरूपेण पता चल सके कि अमुक माधवाचार्य कौन से माधवाचार्य हैं।

यदि भीम के पिता मीमांसक-मूर्धन्य माधवाचार्य सायण का ज्येष्ठ भ्राता हो तो भीम का काल विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी मानना होगा, जो उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि तब तक तो नागेश रचित परिभाषेन्दुशेखर की सत्ता ही न थी।

अगर 'प्रक्रियासर्वस्व' के व्याख्याता नारायण भट्ट के गुरु माधवाचार्य को आचार्य भीम का पिता माना जाए तो यह सम्भावना कुछ उचित प्रतीत होती है। नारायणभट्ट के गुरु माधवाचार्य नारायण भट्ट के ही वरिष्ठ समकालीन होंगे। युधिष्ठिर मीमांसक ने नारायणभट्ट का काल सम्वत्- 1617 1733 वि० (ईस्वी सन् 1560-1676) माना है[3]।

---

1. नागेश ने भट्टोजिदीक्षित के पौत्र हरिदीक्षित से व्याकरणशास्त्र का अध्ययन किया था। सं. व्या. शा. का इति., भाग-1, पृ. 425 तथा दीक्षितानुरोधित्वात् अस्य ग्रन्थस्य सर्वादेश निर्वाहस्तु प्रश्लेषेण बोध्यः। प्र. शो. प्र., पृ. 265, पंक्ति 9.
2. मूल विरोधेन तत्रत्य गदा विरोधेन चात्रत्य सामान्य विवरणस्य प्राचीनानुसारित्वात् वही पृ. 73/6 तथा सं. व्या. शा. का इति, पृ. 425.
3. द्रष्टव्य- संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास: युधिष्ठिर मीमांसक द्वितीय भाग, पृ. 297-298 तथा प्रथम भाग, पृ.=501.

लगभग यही काल माधवाचार्य का भी प्रतीत होता है। भीम को नारायण भट्ट का कनिष्ठ समकालीन माना जा सकता है। पिता माधवाचार्य व्याकरणवेदादि के प्रकाण्ड पंडित थे। आचार्य भीम परिभाषार्थमंजरी नामक व्याकरणशास्त्र के कर्ता हैं तथा व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पंडित हैं। यह सम्भव है कि व्याकरण के क्षेत्र में इनके अपने पिता माधवाचार्य गुरु रहे हों। इस साक्ष्य के आधार पर 'परिभाषार्थमञ्जरी' का रचनाकाल 1676 से 1800 सन् ईस्वी के मध्य हो सकता है।

इस प्रसङ्ग में एक प्रमाण परिभाषार्थमंजरी से भी उपलब्ध होता है–

"उपपद विभक्ति और कारक विभक्ति की परस्पर दुर्बलता बलवत्ता की समीक्षा करते हुए आचार्य" भीम ने उदयङ्कर भट्ट द्वारा रचित "परिभाषाप्रदीपार्चि" का नामोल्लेख किया है तथा उदयङ्कर भट्ट के मत की समीक्षा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि उदयङ्कर भट्ट ने भीम के पिता माधवाचार्य के मत का खण्डन किया है कि उन्होंने कारक विभक्ति बलवान् होने पर भी 'रावणाय नमस्कुर्याः' का समर्थन किया है। भीम उदयङ्करभट्ट पर यह आरोप लगाते हैं कि उसने अपने ग्रन्थ 'परिभाषा प्रदीपार्चि' में भी तो चतुर्थी के प्रयोग को भी स्वीकार किया है।[1] इस प्रकार उनकी उक्ति में पूर्वापर विरोध है[2]। इस परिचर्चा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं– 1. एक तो यह कि माधवाचार्य ने व्याकरण से सम्बद्ध कोई ग्रन्थ लिखा था (माधवग्रन्थं) 2. दूसरी यह कि उदयङ्कर भट्ट ने माधव के ग्रन्थ पर व्याकरण सम्बन्धी आक्षेप किया था। (माधव ग्रन्थं दूषयता) 3. तीसरी बात यह भी प्रतीत होती है कि भीम का माधवाचार्य के साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध गुरु

---

1 द्रष्टव्य=प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पृष्ठ 372-374

2. सं. व्या. शा. का इति., द्वितीय भागः, पृ.– 298; उदयङ्करभट्ट के काल से हम अपरिचित हैं; वही, पृ. 297-98; प्रथमभाग, पृ. 501.

शिष्य का भी हो सकता है और पिता पुत्र का भी। एक उदयङ्कर पाठक ने लगभग सं.-1850 वि. (सन् ईस्वी-1793) में लघुशब्देन्दुशेखर (नागेशभट्ट कृत) की टीका लिखी थी। यदि यही उदयङ्कर पाठक उदयङ्कर भट्ट हो तो इसका काल नागेश से परवर्ती होगा। भीम का समय 1676-1800 मानने पर वह उदयङ्कर के भी समकालीन सिद्ध हो सकते हैं।

पाण्डित्यः-

'परिभाषार्थमंजरी' के रचयिता आचार्य भीम व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। तभी इनकी रचना की प्रतिलिपियाँ करवाने में विद्वान् अपना गौरव समझते थे[1]। परिभाषार्थमंजरी के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इन्होंने आचार्य पाणिनि की अष्टाध्यायी का बहुत ही गहन अध्ययन तथा चिन्तन किया था। अष्टाध्यायी के साथ-साथ महाभाष्य का भी इनको अच्छा ज्ञान था। भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार है। व्याकरण जैसे दुरूह विषय में भी इनकी लेखनी में सरस, सहृदयहृदयाह्लादक वाग्विलास पथ-पथ पर दृष्टिगोचर होता है[2]।

---

1. वीरेवश्वरेण विदुषा भैम्यां पुस्तकमुत्तमम्। लेखापितं शिवानाथ नगर्यां शिशुतुष्टये॥ प्र. शो. प्र० में ज-1 मातृका की पुष्पिका
2. गिरिगह्वर गुहान्धतमः प्रक्षेपः। घटायोन्मीलितं चक्षुरिति। व्याध्रदंष्टापत्तिः। दत्तजलांजलित्वापत्तिः। मात्सर्यमुत्सार्य विचार्य्यमार्यैं। वैरुप्यग्रहदंष्टाग्रस्तत्त्वात्। भाष्यविरोधभिक्षामंगी चक्रुः करतले। गंगाजलावसेकः। कुत्सितकर्दमह्रदोन्मज्जनम्। पर्यालोचनान्धतमः प्रवेशः। प्रदीपनिर्वापकफुत्कारनिसृतदूषणरजः। कुठारपातेन छिन्नमिति। दोषदुर्भिक्षेतन्मतमनालोच्य। मर्कटमुष्टितुल्यत्वपातात्। दृष्टान्त-दार्ष्टान्तिकयोः। शंकापंककलंकलेशः। गर्भस्रावेणैव गतत्वात्। विदुषो विदुषो विदां कुर्वन्तु। सुमनोधि भिरालोच्यम्। कोहलनिर्भरः प्रशमितः। द्र.प्र.शो.प्र., परिशिष्ट, वाग् विलास, पृ. 496-500

इन्होंने हरिदीक्षितकृत मनोरमा विलास[1], प्रक्रिया कौमुदी[2], महाभारत[3], विष्णुसहस्रनाम[4], वेदपुराण[5], वृहत्मञ्जूषा[6], स्मृति[7], कैयट महाभाष्य[8], भट्टोजिदीक्षितकृत शब्दकौस्तुभः[9], वैद्यनाथ पायगुण्डकृत परिभाषेन्दुशेखर की गदा[10] आदि टीकाएँ, महाभाष्यप्रदीपोद्योत[11], काशिका विवरणपंजिका, शब्देन्दुशेखर[12] परिभाषा[13]प्रदीपार्चि (उदयङ्करभट्टकृत) लघुयोगसार[14], भाष्यविवरण[15], ब्रह्माण्ड वामनस्कन्द पुराण[16], भट्टिकाव्य[17], कौस्तुभप्रकाश, कैयटभूषण और शब्दरत्नादि का सुसम्यक् प्रकारेण अध्ययन किया था।

---

1. तत्र जात इति सूत्रे मनोरमायामपि उभयार्थकत्वमुक्तम्।
2. वाऽवसाने इति कौमुदीदर्शितं क्रम विरोधः।
3. सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुरिति महाभारतोक्ते नृंसिंहनामानं विष्णुमित्यर्थः।
4. विष्णुसहस्रनामेति शिष्टसम्प्रदायस्यात्राप्यविशिष्टत्वात्।
5. वेदेषु सपुराणेषु गीयते पुरुषोत्तमः।
6. गोनर्दी आह, भट्टोजिदीक्षित कृतिरित्यादिर्वृहन्मंजूषा संगोपनीयो बोध्यः।
7. वही
8. वही
9. तपरकरणमिति वृद्धिसंज्ञासूत्रशेषे कौस्तुभः संगच्छते, वही।
10. मूलविरोधेन तत्रत्य गदाविरोधेन्न चात्रत्य सामान्य विवरणस्य प्राचीनानुसारित्वात्।
11. इत्यन्यत्र विस्तर इति उद्योते शेखरादौ चेत्यर्थ।
12. शब्देन्दुशेखरे वान्तोयीति सूत्रे निरूपितम्।
13. अपि चात्र माघवग्रन्थं दूषयतात्वयापि परिभाषाप्रदीपार्चिषि।
14. न पुनर्वर्तते लोके योगमार्गानुसारित इति लघुयोग सारस्थ प्रयोग।
15. तदुक्तिः कथंचिदिति विवरणे उक्तम्... स्पष्टं चेदं विवरणेपि भवदुक्तरी-त्योत्सर्गशास्त्रस्य वैकल्पिकतया।
16. विशेष नामानि ददौ स्वकीयान्यपि केशवः इति ब्रह्माण्ड वामन स्कन्द ब्रह्मपुराणै मुख्य शिवादि पदवाच्यताया विष्णावेव प्रतिबन्ध परिकरत्वात्। इति ब्रह्माण्ड पुराणेन नृहरिरूपस्य विष्णोः शाशिशेखरस्यापि बोधनेन परिभाषा इन्दुः।
17. रावणाय नमस्कुर्याः इति भट्टिकाव्ये द्वितीयाप्रसङ्गात्ः।
    द्रष्टव्य प्र.शो.प्र.पृ. 36-409

यह कितने खेद की बात है कि आज से लगभग 225 वर्ष पूर्व उत्पन्न व्याकरण शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य भीम के इतिहास से भी हम लोग पूर्णरूपेण अपरिचित हैं। इससे भी अधिक वेद का विषय यह है कि युशिष्ठिर मीमांसक के अतिरिक्त किसी भी इतिहासकार ने इनका परिचय नहीं दिया है। इनकी एक मात्र रचना 'परिभाषार्थमञ्जरी' के सम्बन्ध में कालिदास की यह उक्ति पूर्णरूपेण चरितार्थ हो रही है कि– "एकश्चन्द्रः तमो हन्ति"।

द्वितीय अध्याय

व्याकरण सम्बन्धि-ग्रन्थों में परिभाषा की आवश्यकता एव महत्त्व-

व्याकरणशास्त्र के ग्रन्थों में परिभाषाएँ त्रिविध प्रयोजन सिद्ध करती हैं[1]-

(क) आचार्य पाणिनीय नियमों की व्याख्या करना;

(ख) नियमों के प्रयोग की प्राथमिकता का निर्धारण करना;

(ग) शब्दों की युक्तिसंगत रचना तक पहुँचना।

(क) ये परिभाषाएँ पाणिनि के नियमों की पूर्णरूपेण व्याख्या करने में सहायता करती हैं। यथा "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणम्" की व्याख्या में "इण् ग्रहणानि परेण णकारेण" अण् ग्रहणानि पूर्वेण अणुदित्सवर्णस्येत्येकं वर्जयित्वा।

---

1. The Paribhāsa in the Vyākaranashāstra served a three fold purpose (I- They helped the interpretation of the rules of pānini.) (II- They decided the priority of application of such rules as came in confliet with other rules in spite of Pānini's general dictum) विप्रतिषेधे परं कार्यम्।
Which had to be set aside at many places in order to arrive at the desired forms of words. This priority is stated in general terms by the paribhāsā "पर नित्यान्तरङ्गापवादानां- उत्तरोत्तरं बलीय:"

III- They modified the sence of Pānini's rules in such a way as made it easy to arrive at correct forms of words by avoiding the incorrect ones Paribhasheindushekhara by M.M.K.V. Abhyankar, Introduction. P. 4.

(ख) ये नियमों के प्रयोग की प्राथमिकता का निर्धारण करती हैं। जो नियम दूसरे नियमों के साथ विरोध रखते हों-चाहे पाणिनि ने इनके विषय में अपना निश्चित मत अभिव्यक्त किया होता है, वहाँ-यथा "विप्रतिषेधे परं कार्यम्"- इस नियम को कईं स्थलों पर एक तरफ रखना पड़ता है ताकि हम वाञ्छित शब्द की रचना के बारे में जान सकें। यही प्राथमिकता परिभाषा में इन शब्दों से स्पष्ट की गई है- "परनित्यान्तरङ्गा- पवादानामुत्तरोत्तरं बलीय:"

(ग) आचार्य पाणिनि के नियमों में परिभाषाएँ सुधार इस प्रकार करती हैं कि शब्दों की अयुक्तिसंगत रचना को छोड़कर युक्तिसंगत रचना तक पहुँचा जा सके।

"परिभाषा का लक्षण"

आचार्य पाणिनीय और उसके उत्तरवर्ती शाब्दानुशासनों से संबद्ध "परिभाषा- पाठ" नामक एक संग्रह उपलब्ध होता है[1]। इन परिभाषा पाठों में परिभाषाओं की संख्या में कुछ न्यूनाधिक्य, स्व-स्वतन्त्रानुकूल कुछ पाठभेद और क्रमभेद दिखाई पड़ता है अन्यथा सभी परिभाषा पाठ लगभग समान हैं। महाभाष्यकार ने परिभाषा को एक विशिष्ट प्रकार का अधिकार माना है। षष्ठी स्थाने योगा (1/1/48) सूत्र की व्याख्या में लिखा है-

"अधिकारो नाम त्रिप्रकार:। कश्चिदेकदेशस्थ: य: सर्वं शास्त्रम-भिज्वलयति[2], यथा प्रदीप: सुप्रज्वलित: सर्वं" वेश्म अभिज्वलयति। अर्थात् अधिकार तीन प्रकार का होता है। उनमें कोई एक देश में स्थित होकर सारे शास्त्र को प्रकाशित करता है। जैसे अच्छी प्रकार से प्रज्वलित

1. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, द्वितीय भाग पृ. 278.
2. वही, पृ. 279.

दीप सारे घर को प्रकाशित करता है[1]।

षष्ठी स्थाने योगा (1/1/49)- ये परिभाषा नियम करती है कि शास्त्र में वह षष्ठी जिसका अर्थ (सम्बन्ध विशेष) निर्दिष्ट नहीं किया गया वह 'स्थान' अर्थ में समझनी चाहिये और किसी अर्थ में नहीं। अवयवाऽवयव विभाग सम्बन्ध, सामीप्य आनन्तर्य आदि षष्ठी के नाना अर्थ माने जाते हैं[2]। कैयट ने भाष्य के उक्त पाठ की व्याख्या करते हुए लिखा है-

"कश्चिचदिति परिभाषारूप इत्यर्थः[3]

दीपो यथा प्रभाद्वारा सर्व गेहे प्रकाशकः।
परिभाषा तथा बोध्या सर्वशास्त्रोपकारिका।।"[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभाष्यकार एकदेश में विद्यमान होकर भी प्रदीप के समान समस्त शास्त्र को प्रकाशित करने वाले "शास्त्रवचन" को परिभाषा करते हैं। परिभाषा द्वारा शास्त्र के प्रकाशन का अर्थ शास्त्र की प्रवृत्ति या निवृत्ति का निर्धारण ही है। इसी से सुस्पष्ट है कि परिभाषा के बिना शास्त्र के प्रवृत्यादि की व्यवस्था हो नहीं पाती।

परिभाषा क्या पदार्थ है[5]? वैयाकरण जयादित्य और वामन परिभाषा

---

1. तुलना करो- "परितो व्यापृता भाषा परिभाषा। सा ह्येकदेशस्था सर्वं शास्त्रमभिज्वलयति यथा वेश्म प्रदीप इति।"
   पुरुषोत्तम परिभाषावृत्ति का पाठ टिप्पणी में द्रष्टव्य है, पृ. 58.
2. श्री चारूदेव व्याकरण चन्द्रोदय पंचम खण्ड, पृ. 26.
3. वही, पृ=279
4. श्री रमाकान्त- व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, पृ.=121 तथा.
5. The word "Paribhāsā" is strictly used as a technical term in Vyākarana Nāgéśa has not defined the term, the word "Paribhāsāa" is derived from the root "bhās" with the prefix "Pari" by all grammarians and commentators. According to strict derivation the work would mean an actual statement which surveys all round. Peribhāsendusekhar.- (P.T.O)

का "अनियमप्रसङ्गे नियमकारिणी परिभाषा"[1]– ऐसा लक्षण करते हैं। इस लक्षण के अनुसार अनियम की प्राप्ति होने पर, नियम करने वाले सूत्र या नियम परिभाषा कहाते हैं।

परिभाषा सूत्र के विषय में वैयाकरण कहते हैं- "साक्षात् विधि शास्त्रत्वात् पर्यग्राहकशास्त्रत्वं परिभाषासूत्रत्वम्"- षष्ठी स्थाने योगा[2]।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने परिभाषिक की भूमिका में "परितो" व्यापृतां भाषां परिभाषां प्रचक्षते[3]"- ऐसा व्युत्पत्त्यर्थक लक्षण किया है। अर्थात् वे वचन जो शास्त्र में बारम्बार व्यापकरूप से विधि वाक्यों के सहायक के रूप में विधायक न होते हुए भी उच्चारित होते हैं, उन्हें परिभाषा कहते हैं। इस लक्षण के अनुसार जो सूत्र अथवा नियम सारे शास्त्र में आगे-पीछे सर्वत्र अपने नियमों का पालन करें, 'वे परिभाषा' कहाते हैं[4]। ये लक्षण परिचायक मात्र हैं, इतर व्यावर्तक नहीं- यह तो स्पष्ट ही है।

M.M.K.V. Abhyakar, Introduction. P.2.
Patanjali has used the work. "Paribhasa" in connection with Paninis directive rules like - Swam roopam shavdasya shavd sajhya "tasminnati nirdishete purvasya" and the like wich mostly occur in the first pada of Paniniesastadhyayi......
Pari. Sekhar, by M.M.K.V. Abhyañkar Intro., P.3.

1. द्रष्टव्य परिभाषेयं स्थानिनियमार्था, अनियमप्रसङ्गे नियमो विधीयते।
2. द्रष्टव्य- श्री रमाकान्त मिश्र, व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 221.
3. द्रष्टव्य- युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, द्वितीय भाग, पृ.=278.
4. The Paribhāsā rule cost a galance at all the rules just as the light of the moon and goes wherever it in needed for a clarification of the sanse, Helpfulness in the formation of correct words was a shade of meaning added to the original sense of the term- Paribhāsā by Later Grammarians Paribhāsa Indu Sekhara by Abhankar, Intoduction, P.4.

परवर्ती वेयकरणों ने इतरव्यावर्तक लक्षण देने का पर्याप्तरूपेण प्रयत्न किया है। इनमें परिभाषेन्दुशेखर के टीकाकार प्रमुख कोटि में हैं। जयदेवमिश्रकृत विजयाटीका में परिभाषा का लक्षण इस प्रकार दिया गया है- "विधिशास्त्र प्रवृत्ति निवृत्युपयोगिसाधुत्वाप्रकारकशक्त्यविषयकबोध जनकत्वे सति अधिकार शास्त्रभिन्नत्वं परिभाषात्वम्[1]"। इस लक्षण का तात्पर्यार्थ यह है जैसे कि 'पूर्वत्रासिद्धम्' यह अधिकारसूत्र है। इससे यही बोध होता है कि सपाद सप्ताध्यायीस्थ सूत्रों (शास्त्रों) अथवा कार्यो की दृष्टि में त्रिपादीस्थ सूत्र (शास्त्र) अथवा कार्य असिद्ध हो जाते हैं। यह बोध सपाद सप्ताध्यायीस्थ विधिशास्त्रों की प्रवृत्ति एवं त्रिपादीस्थ विधि शास्त्रों की निवृत्ति के लिए उपयोगी है। स्वतः शब्द साधुत्व प्रतिपादक न होने से न तो साधुत्व प्रकारक है और न शक्ति विधायक ही, क्योंकि यह विधिसूत्र या संज्ञासूत्र नहीं हैं। शक्तिविषयक बोधजनकता तो संज्ञासूत्र में ही होती है। अत एव शक्त्य विषयक बोधजनकत्व पर्यन्त लक्षण की अधिकारशास्त्र में सम्भावित अतिव्याप्ति के निराकरण के लिए उक्त लक्षण में 'अधिकारशास्त्रभिन्नत्व' निविष्ट है। शक्त्यविषयकत्वांश तो संज्ञाशास्त्र की व्यावृत्ति के लिए है।

विधिशास्त्र के भी दो वर्ग हैं। प्रथम उन विधिशास्त्रों का जिनमें एक एक ही किसी शब्द के साधुत्व के लिए अपेक्षित है। द्वितीय वर्ग उनका है जिनमें एक विधिशास्त्र दूसरे विधिशास्त्र की प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति में उपयोगी होता है। लेकिन सबके सब साधुत्व प्रतिपादक हैं। अतः इनमें 'साधुत्व प्रकारक' विशेषण से ही अतिव्याप्ति रूक जाती है। अतिदेशसूत्रों में भी इसी से अतिव्याप्ति का निवारण हो जाता है, क्योंकि कार्यातिदेश अथवा रूपातिदेश पक्ष के ही अतिदेशशास्त्र के विषय में मुख्यपक्ष होने से ये भी साधुत्व प्रकारक बोध के ही जनक हैं। ठीक इसी प्रकार, नियमशास्त्र भी साधुत्व प्रकारक बोधजनक है। नियमशास्त्र की प्रवृत्ति विधिमुख से होती है- नवीन सम्मत पक्ष में तो स्पष्ट ही इनमें साधुत्व प्रकारक बोधजनकता है। निषेधमुख से प्रवृत्ति मानने वाले

1. श्री नारायण मिश्र, परिभाषेन्दुशेखर, भूमिका, पृ.=12.

प्राचीनमत में भी कहीं निषेध्य अथवा विधेय से रहित और कहीं इनसे विशिष्ट शब्दों का साधुत्व बोधन ही नियमशास्त्रों का प्रयोजन है। निषेध शास्त्रों को भी साधुत्वप्रकारक बोधजनक ही मानना पड़ता है, क्योंकि इनका शाब्दबोध विधिसूत्रों के साथ एकवाक्यता होने पर ही होता है। निषेधशास्त्र का परिभाषात्वेन व्यवहार तो इनमें विधिशास्त्रोपकारकत्व के कारण होता ही है।

इस प्रकार 'शक्त्यविषयकत्व' विशेषण से संज्ञाशास्त्र की 'अधिकार भिन्नत्व' विशेषण से अधिकार शास्त्र की और 'साधुत्वप्रकारकबोधजनकत्व' विशेषण से विधि, नियम, अतिदेश एवं निषेधशास्त्रों की व्यावृत्ति हो जाने से परिभाषा का विधिशास्त्रप्रवृत्ति निवृत्युपयोगि ... लक्षण निर्दुष्ट है।

कुछ व्याख्याकार परिभाषा के उपर्युक्त लक्षण में "पाणिन्युच्चरित-भिन्नत्व" विशेषण भी जोड़ते हैं। इनकी दृष्टि यही है कि परिभाषेन्दुशेखर में अष्टाध्यायी की परिभाषाओं की व्याख्या न होने से उक्त विशेषण आवश्यक हैं। परिभाषा का द्वैविध्य–

व्याकरणशास्त्र में परिभाषाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं–

1. प्रथम तो आचार्य पाणिनि द्वारा उच्चरित सूत्रात्मक परिभाषाएँ– जैसे तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य इत्यादि एवं

2. द्वितीय तरह की परिभाषाएँ वे हैं जो आचार्य पाणिनि द्वारा उक्त नहीं हैं, ये चार प्रकार की हैं–

1. ज्ञापित (बोधित) 2. वाचनिकी 3. लोकन्याय एवं सिद्ध, 4. मिश्रित हैं। परिभाषापाठों में तथा उनकी टीकाओं में पाणिनि द्वारा उच्चरित सूत्रात्मक परिभाषाओं का व्याख्यान नहीं है। व्याख्येय परिभाषा के रूप में यहाँ द्वितीय प्रकार की परिभाषाएँ ही गृहीत हैं।

व्याख्येय परिभाषाओं का स्वरूप प्रस्तुत करते हुए भूतिकार तात्या ने लिखा है– संकेतग्राहकभिन्नत्वे सति शब्दधर्मिकसाधुत्वप्रकारकशास्त्रजन्या

प्रामाण्यज्ञानानास्कन्दित बोधकसहकारित्वेन मुन्यभिप्रेतत्वे सति पाणिन्युच्चरित भिन्नत्वम्[1]।

इसका अभिप्राय यह है कि जो संकेत ग्राहक संज्ञासूत्रों से भिन्न हों। यहाँ यह बात ज्ञातव्य है कि संज्ञासूत्र संकेत (शक्ति) के ग्राहक होते हैं। यथा 'वृद्धिरादैच्' यह शास्त्रवृद्धि पद का संकेत 'आदेच्' अर्थ में करता है। यहाँ व्याख्यान की जाने वाली परिभाषाएँ इस प्रकार के संज्ञासूत्रों से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त 'निर्जरसौ' आदि प्रयोग जिनके लिए अयं प्रयोगः साधुः इस प्रकार का साधुत्व-प्रकार का प्रामाण्यज्ञानाना-स्कन्दित बोध जराया जरसन्यतरस्याम् का किया जाता है। उस बोध में सहकारित्वेन रूपेण मुनित्रय से जो अभिप्रेत हों तथा पाणिनि द्वारा उच्चरित न हों। ऐसी परिभाषाएँ ही व्याख्येय परिभाषा के रूप में स्वीकृत हैं।

'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' इस परिभाषा में उपर्युक्त लक्षण का समन्वय भलीभाँति किया जा सकता है। क्योंकि यह परिभाषा संकेतग्राहक संज्ञासूत्रों से भिन्न है तथा लक्ष्य धर्मिकसाधुत्वप्रकारक बोध में सहकारितया मुनियों से अभिप्रेत हैं। साथ ही पाणिनि के द्वारा इसका उच्चारण भी नहीं किया गया है। इसीलिए यहाँ यह व्याख्येय परिभाषा के रूप में ग्राह्य है। इसी प्रकार व्याख्येय परिभाषाओं का उपर्युक्त स्वरूप यहाँ समस्त परिभाषाओं से समन्वित होता है।

इस उपर्युक्त लक्ष्यलक्षित परिभाषाओं का यहाँ व्याख्यान होने के कारण 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इत्यादि परिभाषाएँ यहाँ व्याख्यात नहीं हुई हैं, क्योंकि वे पाणिनि द्वारा साक्षात् उच्चरित हैं।

परिभाषाओं की प्रामाणिकता-

निष्कर्षरूपेण कहा जा सकता है कि "नियमों को संक्षिप्त रूप में

---

1. विश्वनाथ मिश्र, परिभाषेन्दुशेखर भूमिका, पृ.=10.

प्रस्तुत करने के लिए आचार्य पाणिनि ने परिभाषासूत्रों को अपनाया है[1]। परिभाषा सूत्र व्याकरण के मुख्य अङ्ग हैं।" 'आदेः परस्य' (1.1.45) विप्रतिषेधे परं कार्यम् (1.4.2) आदि परिभाषासूत्र हैं। इनके द्वारा उन नियमों का विधान किया गया है जो आगे-पीछे सभी जगह के लिए व्यवस्था करते हैं। अर्थात् परिभाषासूत्र व्याकरण को संक्षिप्तरूप में प्रस्तुत करते हैं।

दूसरे प्रकार की परिभाषाएँ सूत्र पाठ से बहिर्भूत होती हुई भी सूत्र द्वारा ज्ञापित होने से, दूसरे शब्दों में सूत्रकार द्वारा उन नियमों के स्वीकृत होने से तथा न्याय सिद्ध परिभाषाएँ लोक विदित होने से वे सूत्रवत् प्रमाण मानी जाती हैं और उनमें सूत्रवत् असिद्धादिकार्य होते हैं।

परिभाषाओं का वर्गीकरण-

कुछ परिभाषाएँ ऐसी हैं जो प्राचीन वैयाकरण तन्त्र (शास्त्र) में वचनरूप से पठित हैं एवं कुछ परिभाषाएँ पाणिनीय तन्त्र के अनुसार ज्ञापक सिद्ध और न्याय सिद्ध हैं[2]।

1. ज्ञापक सिद्ध-

ज्ञापक सिद्ध[3] से तात्पर्य उन परिभाषाओं से है जो किसी सूत्र अथवा सूत्र के अंश से ज्ञापित की जाती है[4]। जैसे असिद्धं बहिरङ्गमरङ्गे

1. डॉ. यज्ञवीर संस्कृत व्याकरण की रूपरेखा पृ.=26.
2. प्राचीन वैयाकरणतन्त्रेवाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापकन्यायसिद्धानि भाष्यवार्त्तिकयोरुपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यायन्ते द्रष्टव्य प्र. शो. प्र., पृ. 48-50.
3. ज्ञापक न्याय शब्दाभ्यामर्श आद्य च् सिद्ध शब्दस्य क्रिया निष्पत्यर्थकस्य सिद्धे शब्दार्थेति वार्त्तिक व्याख्या परभाष्यस्थ ननु च भौरिति प्रतीकमादाय कैयटेस्पष्टतया प्रकृतेपि तस्य तदर्थकत्वेन सिद्धानि उच्चारण क्रिया निष्पन्नानि वाचनिकानीत्यर्थः- वही, पृ. 48.
4. ज्ञापक सिद्धा- संज्ञापूर्वको विधिरनित्यः- रमाकान्त, व्याकरणशास्त्र का इतिहास, पृ.121.

यह परिभाषा वाह ऊठ इसके 'ऊठ्' अंश से ज्ञापित है। एवं अन्तरङ्गानपि विधीन् बहिरङ्गो लुग्बाधते यह परिभाषा 'प्रत्ययोत्तर पदयोश्च' इस सम्पूर्ण सूत्र से ज्ञापित है।

व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम् आदि परिभाषाएँ ज्ञापकसिद्ध हैं। ज्ञापक सिद्ध परिभाषा दो प्रकार की होती है[1]।

1. लिङ्गवती और 2. विध्यंगशेषभूता। इन दो प्रकार की परिभाषाओं के विषय में कहा गया है कि–

1.

एकस्थः सविता देवो यथा विश्वप्रकाशकः।
तथा लिङ्गवती शास्त्रमेकस्थापि प्रदीपयेत्।।

एकाऽपि पुंश्चली पुंसां यथैकैकं प्रयाति हि।
विध्यंगशेषभूता सा विधिं प्रत्यनुगच्छति।।[2]

"या एकत्र गृहीत सम्बन्धा सती प्रदीपवत् सर्वशास्त्रमभिज्वलयति स लिङ्गवती। उणादयो व्युत्पन्नानि प्रातिपदिकानि। विध्यंगशेषभूता दो प्रकार की होती है[3]"

(क) किसी विधि का अङ्गभूत (ख) विधिशेषभूत

---

1. श्री रमाकान्त मिश्र, व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इति. पृ.121.
2. श्रीरमाकान्त मिश्र, व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 121.
3. वही, पृ.121.

- ज्ञापकसिद्धा[1]
  - लिङ्गवती
  - विध्यंगशेषभूता
    - किसी विधि का अङ्गभूत
    - विधिशेषभूत

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ज्ञापकसिद्ध परिभाषाओं के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि- जिनकी सत्ता न स्वीकार करने पर सकलसूत्र अथवा सूत्रैकदेश व्यर्थ पड़ता है, जैसे असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे, कृद् ग्रहणे गतिकारक पूर्वस्यापि ग्रहणम् इत्यादि। 2. न्यायसिद्ध-

न्यायसिद्ध परिभाषाओं से तात्पर्य उन परिभाषाओं से है जो लौकिक अथवा शास्त्रीय न्याय से सिद्ध होती हैं। यह न्यायसिद्ध परिभाषाएँ व्याकरण में भी तथा व्याकरणान्तर शास्त्रों में भी प्रयुक्त होती हैं- "जराया जरसन्यतरस्याम्" इसी प्रकार न्यायसिद्ध परिभाषाओं के दो भेद हो जाते हैं:-

- न्यायसिद्ध
  - लोकन्यायसिद्ध
  - शास्त्री न्यायसिद्ध अथवा- युक्तिसिद्ध अथवा सामान्यन्यायसिद्ध

(क) जैसे- 'यदागम' परिभाषा इस लौकिक न्याय से सिद्ध है

1. परि सर्वशास्त्रे उपयुक्ता वाणी भाषा सा परिभाषा। सा च लिङ्गवती विध्यङ्गभूता च। या लिङ्ग द्वारा भावेनोपयुज्यते सा लिङ्गवती या सर्वैव विधि वाक्य उपयुज्यते साऽपरा। साऽपि काचिद् विधेरंगभूता या विना विधिवाक्यं नैव प्रवर्तते- यथा "आदेः परस्य" इति नहि तद् विना 'ईदासः प्रवर्तते'। काचिद् विधिशेषभूता विप्रतिषेधे परम्। इत्यविरोधे वृक्षेष्वित्यादौ झल्येत्वम् अव्याहतमेव। विरोधविषये तु एत्वात् उपकारीयतीति। - वही, पृ. 122.

कि देवदत्त का अङ्गाधिक्य होने पर भी तद्विशिष्ट (अङ्गाधिक्यविशिष्ट) व्यक्ति का देवदत्त शब्द से ग्रहण होता है।

(ख) सामान्यन्याय, युक्ति अथवा शास्त्रीय न्याय से सिद्ध परिभाषा सामान्यन्यायसिद्ध परिभाषा है।

इस प्रकार न्यायसिद्ध परिभाषाओं में 'एकदेशविकृतमन्यवत्' व्यपदेशिवदेकस्मिन् (लोकन्याय) असिद्ध बहिरङ्गमन्तरङ्गे, येनाप्राप्ते यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति। गौण मुख्ययोर्मुख्ये कार्य सम्प्रत्ययः सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य- इत्यादि अनेक परिभाषाएँ आती हैं।

3. वाचनिकी- जो परिभाषायें न तो सूत्र द्वारा ज्ञापित हैं और न ही न्याय सिद्ध हैं, किन्तु आचार्य विशेष के वचन हैं, वे 'वाचनिक' परिभाषाएँ मानी जाती हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो वचन रूप में अष्टाध्यायी (शास्त्र) में पढ़ी हैं, वे परिभाषाएँ वाचनिकी हैं।

वाचनिकी के दो भेद हैं-

वाचनिक परिभाषाएँ दो प्रकार की उपलब्ध हैं[1]-

---

1. वाचनिकी परिभाषा नाना प्रकार की होती हैं- 1. सूत्र निष्पन्न, 2. सूत्रेतर निष्पन्न, 3. सूत्रेतर वचनात्मक, 4. सूत्ररूपे पठित इत्यादि
(I) सूत्र रूप में निष्पन्न- यत्रानेकविधमान्तर्यं तत्रस्थानत आन्तर्यं बलीयः।
(II) सूत्रेतर वचन निष्पन्न- सकृद् गतो विप्रतिषेधे यद् बाधितं तद् बाधितमेव।
(III) सूत्रेतर वचनात्मक- 'उपपद विभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी।'
(क) विप्रतिषेधे परं कार्यम्। (ख) इकोगुण वृद्धी। (ग) आद्यन्तौ टकितौ। (घ) अलोपोऽन्यतरस्याम्। (ङ) आदेः परस्य। (च) ङिच्च। (छ) मिदचोऽन्त्यात् परः। (ज) षष्ठीस्थाने योगा। (झ) स्थानेऽन्तरतमः। (न) अनेकाल् शित् सर्वस्य। (ट) स्वरितेनाधिकारः। श्रीरमाकान्त मिश्र, व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इति. नृ. 122.

1. सूत्रसिद्ध वाचनिकी 2. स्वतन्त्र वाचनिकी

1. सूत्रसिद्ध वाचनिकी परिभाषाओं में 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति' परिभाषा आती है। 'निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति'- यह परिभाषा षष्ठी स्थाने योगा सूत्र की आवृत्ति करके सिद्ध की जाती है। अतः यह स्वतन्त्र वाचनिकी न होने पर भी वचन रूपेण पठितसूत्र से सिद्ध होने के कारण सूत्रसिद्ध वाचनिकी कही जाती है।

2. स्वतन्त्र वाचनिकी परिभाषा 'यस्मिन्विधिस्तादादाबल् ग्रहणे' है क्योंकि 'येन विधिस्तदन्तस्य' सूत्र के भाष्य में यह परिभाषा इसी रूप में पढ़ी गई है। इसी प्रकार की अनेक परिभाषाएँ हैं जो स्वतन्त्र वाचनिकी हैं, जिनका उल्लेख नागेशभट्ट ने अपने शब्दों में किया है[1]। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाचनिक परिभाषाएँ दो प्रकार की हैं। एक तो वे- जो वार्तिककार या सूत्रकार के वचन ही परिभाषारूप से स्वीकृत कर लिए गये हैं और दूसरे वे- जो भाष्यकार के वचन हैं[2]।

कात्यायनवचन- परिभाषावृत्तिकार सीरदेव ने कई स्थलों पर लिखा है- 'अनिनस्मन् ग्रहणान्यर्थ०'। इदं च कात्यायनवचनं परिभाषारूपेण पठ्यते[3]।

'पूर्वत्रासिद्धीयमद्विर्वचने'। सर्वस्य द्वे (8/1/1) इत्यत्र सूत्रे कात्यायन वाक्यमिदं परिभाषारूपेण पठ्यते[4]।

---

1. प्राचीन वैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापकन्याय सिद्धानि भाष्य..........तानि व्याख्यायन्ते। प्र. शो. प्र., पृ. 50
2. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग-2, पृ.278.
3. परिभाषावृत्ति, पृ.=121.
4. वही, पृ.=161.

पुरुषोत्तमदेव ने भी इन दोनों परिभाषाओं के सम्बन्ध में ऐसा ही लिखा है। "कात्यायनवचनमेतत् परिभाषारूपेण पठ्यते[1]। पतञ्जलिवचन- पुरुषोत्तम देव लिखता है-" अन्तरङ्ग बहिरङ्गयोरन्तरङ्गं बलवत्- विप्रतिषेध सूत्रे (1/4/2) इयं परिभाषा भाष्यकारेण पठिता[2]। सीरदेव भी इसी का अनुमोदन करता है कि 'इयं परिभाषा विप्रतिषेधसूत्रे' (1/4/2) भाष्ये न्यासे च पठिता[3]।

मिश्रित परिभाषाएँ-

कतिपय परिभाषाएँ ऐसी भी हैं, जिनका एकदेश सूत्रकार द्वारा ज्ञापित होता है और एकदेश न्यायसिद्ध है। यथा- सति शिष्टस्वरबलीय- स्त्वमन्यत्र विकरणेभ्यः। इस परिभाषा का पूर्वभाग न्यायसिद्ध है और अन्यत्र विकरणेभ्यः, अंश "तास्यानुदात्तेन्ङिद०(6/1/186) सूत्रद्वारा ज्ञापित है[4]। कतिपय मिश्रित परिभाषाएँ ऐसी भी हैं, जिनका एकदेश सूत्रकार द्वारा ज्ञापित होता है और शेष अंश पूर्वाचार्यों द्वारा वचनरूप में पठित होता है। यथा- "गतिकारकोपपदानां कृद्भिः सह समासवचन प्राक् सुबुत्पत्तेः" परिभाषा का 'उपपदांश' तथा सुबुत्पत्ति से पूर्व समासविधान 'भाग' उपपदमतिङ् सूत्र के अतिङ् ग्रहण से ज्ञापित होता है, शेष अंश पूर्वाचार्यों का वाचनिक था, यह स्वीकार कर लिया है[5]।

---

1. क्रमशः परिभाषा वृत्तिः, पृ.=31, 51 राजशाही सं.
2. राजशाही संस्करण, परिभाषा वृत्ति, पृ.=21.
3. परिभाषा वृत्ति, पृ.=45.
4. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, पृ.=280
5. द्रष्टव्य- गतिकारकोपपदानामिति परिभाषा पूर्वाचार्यैः पठिता, सूत्रकारेणाप्यतिङ् ग्रहणेन तद्देश आश्रिता। पद. भाग-1, पृ.=403 तुलना करो- 'कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणं भवति' के विषय में कैयट लिखता है- 'पूर्वाचार्यैस्तावदेषा परिभाषा पठिता, इहत्वनन्तरग्रहणेन सैवाभ्यनु ज्ञायते। प्रदीप, 6/2/49.

   नागेश कहता है कि 'एकदेशानुमिति द्वारा कृत्स्ना परिभाषा ज्ञायते। -संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास, युधिष्ठिर मीमांसक, पृ. 280.''

परिभाषाओं का मूल-

पातञ्जल महाभाष्य व्याकरण शास्त्र का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है। पाणिनि व्याकरणगत ज्ञापक परिभाषाओं तथा इष्टियों आदि का मूल स्रोत महाभाष्य है। महाभाष्यकार ने "तत्राशक्यं वर्णेनाप्यनर्थकेन भवितुं किं पुनरियता सूत्रेण" महर्षि पाणिनि के सूत्रों का एक वर्ण भी निरर्थक नहीं हैं, पूरा सूत्र फिर अनर्थक हो ही कैसे सकता है। यह लिखते हुए पाणिनि के प्रति अगाधश्रद्धा प्रकट की है, वहाँ उन्होंने "आचार्य प्रवृत्ति र्ज्ञापयति" यह लिखते हुए उनकी प्रवृत्ति और व्यवहार को भी महत्त्व प्रदान किया और उसको भी परिभाषाओं (ज्ञापकों) का उद्भव माना है, क्योंकि वैयाकरणों का परिभाषारूप यह सिद्धांत है कि अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः अर्थात् एक-मात्रा की तो बात ही क्या? आधी मात्रा का भी अगर लाघव हो जाता है तो व्याकरण शास्त्र के अध्येताओं तथा मर्मज्ञ दोनों ही पुत्र जन्म के तुल्य खुशी मानते हैं। इससे यह भी सिद्ध है कि "ब्रेविटी इज़ दी सोल आफ विट" अर्थात् संक्षेपप्रियता बुद्धिमानों का लक्षण है। सारभूत अल्पशब्दों में अर्थातिशय का भर देना विद्वत्ता की प्रथम पहचान है। पाणिनि-सूत्रों में यह तत्त्व भरा पड़ता है। इसी तत्त्व के आधार पर भाष्यकार ने परिभाषाओं का उद्गम माना है, किन्तु आचार्य पाणिनि से इतर वैयाकरणों द्वारा आश्रीयमाण परिभाषाओं के मूल के सम्बन्ध में निश्चितरूपेण कुछ कहना कठिन सा है। परिभाषाओं के मूल के सम्बन्ध में सामान्यतया इतना ही कह सकते हैं कि "इन परिभाषाओं का मूल प्राचीन वैयाकरणों के सूत्रपाठों के विशिष्ट सूत्र हैं[1]।"

परिभाषाओं के मूल के सम्बन्ध में आचार्य सीरदेव का मत इस प्रकार है- "परिभाषा हि नाम न साक्षात् पाणिनीयवचनानि। किं तर्हि? नानाचार्याणाम्।[2]"

1. युधिष्ठिर मीमांसक, सं. व्या. शा. का इति. 2य भाग, पृ. =281.
2. परिभाषावृत्ति, पृ. 186.

इसी भाँति[1] कैयट[2], हरदत्त[3] तथा सायण ने भी परिभाषाओं को पूर्वाचार्यों के वचन कहा है। परिभाषाओं का मूल ऐन्द्रादितन्त्र–

नागेशभट्ट के शिष्य वैद्यनाथ पायगुण्ड ने परिभाषाओं का मूल ऐन्द्रादितन्त्रों को माना है[4]। ये परिभाषाएँ प्राचीन वैयाकरणों के शब्दानुशासनों में सूत्र एवं उनके व्याख्यानरूप वचन हैं। सम्भवतः इसी पक्ष को स्वीकार करके श्रीभोजदेव ने परिभाषाओं को अपने 'सरस्वतीकण्ठाभरणरूप शब्दानुशासन में पुनः अन्तर्निहित कर लिया[5]।' **परिभाषाओं की आश्रयण तथा अनाश्रयण के सम्बन्ध में सीमा–**

सभी वैयाकरणों का इन परिभाषाओं के सम्बन्ध में सामान्य मत यह है कि जहाँ इनके आश्रयण के विना शास्त्रीय कार्य–निर्वाह नहीं होता, वहाँ तो इन परिभाषाओं का आश्रयण किया जाता है और जहाँ आश्रयण से दोष प्राप्त होता है, वहाँ इनका आश्रयण नहीं किया जाता[6]।

"तत्र पाणिनीये शब्दानुशासने यत्रैव विशिष्ट विषये मुख्यलक्षणेन सिद्धिस्तत्रैवैता गत्यन्तरमपश्यद्भिराश्रीयन्ते। न तु यत्रैतासां समाश्रयणे दोष एव प्रत्युपपद्यते तत्रैताः समाश्रीयन्ते।"

---

1. वही, पृ. 55.
2. प्रदीप, 6/2/40.
3. पद. भाग–1, पृ. 403.
4. द्रष्टव्य– प्राचीन वैयाकरणतन्त्रे वाचनिकान्यत्र पाणिनीयतन्त्रे ज्ञापक न्याय सिद्धानि भाष्यवार्त्तिकयोरूपनिबद्धानि यानि परिभाषारूपाणि तानि व्याख्यायन्ते।– प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध, पृ. 50
   परिभाषेन्दुशेखर, पृ=2 इाकी व्याख्या में वेदृयनाथ पायगुण्ड ने लिखा है– "प्राचीनेति इन्द्रादीत्यर्थः"।
5. सं. कं. प्रथम अध्याय के 2य पाद में मध्य– मध्य में परिभाषाओं का संग्रह किया है।
6. पुरुषोत्तमदेव, परिभाषावृत्ति, पृ. =55.– अत्यल्प शब्दभेद से यही बात सोरदेव, परिभाषावृत्ति, पृ=186 में भी मिलता है।

नागेशभट्टकृत परिभाषेन्दुशेखर तथा उस पर रचित टीकाएँ- एक सामान्य परिचय

हमारे संस्कृत वाङ्मय में संस्कृत व्याकरण का अत्यधिक गौरवपूर्ण स्थान है। "मुखं व्याकरणं स्मृतम्" इस उक्ति के द्वारा इस कथन की सम्पुष्टि होती है। भले ही व्याकरण शास्त्र का वैविध्य है तथापि पाणिनीय व्याकरण शास्त्र ही सर्वमान्य है। आचार्य पाणिनि की सूक्ष्मेक्षिका जो अष्टाध्यायी के रूप में विश्वविख्यात है, उसकी गम्भीर एवं विस्तृत अभिव्यक्ति पंतजलि के महाभाष्य के रूप में उपलब्ध होती है। पातंजल महाभाष्य के भी व्याख्या सापेक्ष होने के कारण तथा स्वयं प्रौढ़ होने के कारण कैयट और नागेश भट्ट ने उसके सूक्ष्म रहस्यों का जो उद्घाटन किया, उसके लिए वैयाकरण जगत् उनका चिरऋणी रहेगा। यह सत्य है कि अष्टाध्यायी के आधार पर काशिका आदि ग्रन्थों की रचना हुई, तथापि उसके आधार पर नागेशभट्टादि आचार्यों द्वारा चलाई गई परम्परा का संस्कृत जगत् में अपना विशिष्ट स्थान है। इन विद्वन् मूर्धन्य के द्वारा अनेक प्रौढ़ व्याकरणग्रन्थों का निर्माण किया गया जो मानदण्ड के रूप में विद्वत्- समाज में सुप्रसिद्ध है। परिभाषेन्दुशेखर भी इन्हीं नागेशभट्ट की कृतियों में एक विशिष्ट कृति है और 'परिभाषार्थ मञ्जरी' इस व्याकरण शास्त्र परिभाषेन्दुशेखर की टीका है।

नागेशभट्ट की कृतियों में उपयोगिता तथा प्रौढ़ता के कारण "परिभाषेन्दुशेखर" अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न है। यही कारण है कि आज भी अध्ययनाध्यापन में यह ग्रन्थरत्न सर्वत्र प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध है। यद्यपि इस ग्रन्थरत्न से पूर्व भी सीरदेव और पुरुषोत्तम देव की कृतियाँ थीं तथापि परिभाषेन्दुशेखर ग्रन्थ सर्वातिशायी है और एतद्विषयक परवर्त्ती ग्रन्थ भी इसके महत्त्व को क्षीण नहीं कर सके"।

परिभाषेन्दुशेखर में परिभाषाओं का व्याख्यान किया गया है। संस्कृत व्याकरण में परिभाषाएँ दो प्रकार की उपलब्ध होती हैं–

1. आचार्य पाणिनि द्वारा उच्चारित सूत्रात्मक परिभाषाएँ यथा तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1/1/66 इत्यादि।

2. द्वितीय प्रकार की वे परिभाषाएँ हैं जो आचार्य पाणिनि के सूत्रों से ज्ञापित (बोधित) अथवा वाचनिकी अथवा लोकन्यायसिद्ध हैं।

नागेशभट्टकृत परिभाषेन्दुशेखर में प्रथम प्रकार की सूत्रात्मक परिभाषाओं का व्याख्यान नहीं किया गया है।

व्याख्येय परिभाषाओं के रूप में यहाँ पर दूसरे प्रकार की परिभाषाएँ अर्थात् पाणिनि के सूत्रों से ज्ञापित अथवा वाचनिकी या लोकन्यायसिद्ध संगृहीत की गई हैं। भूतिकार ने व्याख्येय परिभाषाओं का स्वरूप करते हुए इस सम्बन्ध में लिखा है कि–

संकेतग्राहकभिन्नत्वे सतिशब्दधर्मिक साधुत्व प्रकारक शास्त्रजन्या-प्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितबोधकसहकारित्वेन मुन्यभिप्रेतत्वे सति पाणिन्युच्चरित-भिन्नत्वम्।

इसका अभिप्राय यह है कि– "जो संकेत ग्राहक संज्ञासूत्रों से भिन्न हों। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि संज्ञासूत्र संकेत (शक्ति) के ग्राहक होते हैं। यहा वृद्धिरादैच्"1/1/1 – यह शास्त्र वृद्धि पदका संकेत आदैच् अर्थ में करता है परिभाषेन्दुशेखर में व्याख्यान की जाने वाली परिभाषाएँ इस प्रकार के संज्ञासूत्रों से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त 'निर्जरसौ' आदि प्रयोग जिनके लिए 'अयं प्रयोगः साधुः' इस तरह का साधुत्वप्रकारकाप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितबोध "जराया जरसन्यतरस्याम्" का किया जाता है। उस बोध में सहकारित्वरूपेण मुनित्रय से जो अभिप्रेत हों तथा आचार्य पाणिनि के द्वारा उच्चारित न हों। ऐसी परिभाषाएँ ही व्याख्येय परिभाषा के रूप में प्रस्तुत ग्रन्थ में स्वीकृत हैं।

'निर्दिश्मानस्यादेशा भवन्ति' इस प्रस्तुत परिभाषा में पूर्वोक्त लक्षण का समन्वय भली भांति से किया जा सकता है। क्योंकि यह परिभाषा लक्ष्य धर्मिकसाधुत्वप्रकारकबोध में सहकारितया मुनियों से अभिप्रेत है और संकेतग्राहक संज्ञासूत्रों से भिन्न हैं। एवमेव आचार्य पाणिनि के द्वारा इस प्रस्तुत परिभाषा का उच्चारण भी नहीं किया गया है। इन्हीं कारणों से यह परिभाषा ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर में व्याख्येय परिभाषा के रूप में ग्राह्य है। इसी तरह इस प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याख्येय परिभाषाओं का पूर्वोक्त स्वरूप ही यहाँ सभी परिभाषाओं से समन्वित होता है।

उपर्युक्त लक्ष्यलक्षित परिभाषाओं का प्रस्तुत ग्रन्थ में व्याख्यान होने के कारण 'तस्मिन्निितिनिर्दिष्टे पूर्वस्य'- 1/1/66 आदि परिभाषाओं का व्याख्यान प्रस्तुत ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर में नहीं हुआ है। क्योंकि वे परिभाषाएँ आचार्य पाणिनि द्वारा साक्षात् उच्चारित हैं। तथा परिभाषेन्दुशेखर की परिभाषाएँ पाणिनि उच्चारित भिन्न हैं। परिभाषा विवेचन सक्षम प्रस्तुत ग्रन्थ शब्दव्युत्पत्ति में नितान्तोपयोगी एवं व्याकरणशास्त्र विषयक विविध न्यायों का संग्रह हैं।

परिभाषेन्दुशेखर में वर्णित परिभाषाएँ मुख्य रूपेण आचार्य कात्यायन एवं पतंजलि आदि प्रमुख व्याकरणशास्त्रीय आचार्यों के ग्रन्थों से ज्ञापित करके संकलित की गई हैं। कुछ परिभाषाएँ माहेश्वर सूत्रों से भी ज्ञापित हैं। यथा- 'लण्' एवं 'अ इ उ ण्' के णकारद्वय से "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणम्" पातंजल महाभाष्य में प्रस्तुत ग्रन्थ की सम्पूर्ण परिभाषाओं का उदाहरण के साथ उल्लेख है। अनुमान किया जा सकता है कि इन परिभाषाओं का संकलन धातु पाठ के संकलन के समय ही हुआ होगा।

परिभाषाओं के सम्बन्ध में नागेशभट्टकृत परिभाषेन्दुशेखर से पूर्व भी व्याडिकृत परिभाषापाठ तथा सीरदेव विरचित परिभाषावृत्ति नामक ग्रन्थ विद्यमान थे किन्तु इसमें तनिकमात्र भी सन्देह नहीं रह जाता कि पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर की तुलना में उतने उपयोगी नहीं रहे

होंगे, जितना कि परिभाषेन्दुशेखर उपयोगी है। क्योंकि नागेशभट्ट ने परिभाषाओं का नव्यन्याय की शैली का अवलम्बन करके जो मौलिक विवेचना की है वह अपने में अभूतपूर्व है।

प्रस्तुत ग्रन्थ नागेशभट्ट कृत परिभाषेन्दुशेखर के तीन प्रकरण हैं-

1. शास्त्रत्वसम्पादनोद्देश, 2. बाधबीज तथा 3. शास्त्रशेष

1. शास्त्रत्वसम्पादनोद्देश- प्रथम प्रकरण में "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्" यहाँ से प्रारम्भ करके "एकदेश विकृतमनन्यवत्" तक लगभग 37 परिभाषाएँ निहित हैं। इसे शास्त्रत्व सम्पादनोद्देश प्रकरण कहा जाता है। इस प्रथम प्रकरण का नाम 'शास्त्रत्वसम्पादनोद्देश' इस कारण रखा गया है कि इस प्रकार की परिभाषाओं के द्वारा "इको यणचि" आदि में शास्त्रत्व का सम्पादन किया जाता है। क्योंकि शास्त्र उस विद्या को कहते हैं जो अप्रामाण्य ज्ञान से अनास्कन्दित लक्ष्य का साधुत्व ज्ञापित करे। अगर "इको यणचि" शास्त्र इक् के स्थान पर यण का विधान करे तो ""सुध्युपास्यः इस प्रयोग में सकारोत्तरवर्ति उकार को भी कदाचित् यण् प्रसक्त हो सकता है, जो कि सर्वथा अप्रामाणिक होगा और उससे शास्त्रत्व का भी विघातक होगा। इसलिए "तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य (1/1/66) की सहायता से" इको यणचि (6/1/77) का अर्थ ऐसा किया जाता है अजव्यवहित पूर्वत्वविशिष्ट इक् के स्थान पर यण् हो। इसके फलस्वरूप 'सुध्युपास्यः' प्रयोग में सकारोत्तरवर्ति उकार को यण् न होकर धकारोत्तरवर्ति इकार को यण् होता है। इसी तरह 'निर्जरसौ' इस प्रयोग में "एकदेश-विकृतन्याय" के सहयोग से "जर" शब्द के स्थान पर तथा "येन विधि स्तदन्तस्य" के द्वारा सम्पूर्ण निर्जर के स्थान पर जरसादेश प्राप्त होता है। अगर सम्पूर्ण निर्जर के स्थान पर जरसादेश हो जाय तो निर्जरसौ यह प्रयोग नहीं बन पायेगा। फलतः "जराया जरसन्यतरस्याम्" शास्त्र में अप्रामाणिकता आ जायेगा। अतः "निर्दिश्यमान स्यादेशा भवन्ति" इस परिभाषा के सहयोग से निर्जरघटक जर के स्थान पर ही जरसादेश किया

जाता है। इस तरह निर्जरसौ की सिद्धि होती है और लक्ष्यधर्मिकसाधुत्व-प्रकारक अप्रामाण्यज्ञानानास्कान्दित बोध का जनक होने के कारण 'जराया जरसन्यतरस्याम्' का शास्त्रत्व भी सम्पन्न हो जाता है। इस तरह प्रथम प्रकरण (तन्त्र) की परिभाषाएँ शास्त्रत्वसम्पादन का कार्य करती हैं।

2. बाधबीज-

इस द्वितीय प्रकरण (तन्त्र) का नाम 'बाधबीज' प्रकरण है। पूर्वोक्त प्रथम प्रकरण (तन्त्र) की परिभाषाओं के द्वारा शास्त्रत्वसम्पादन करने के उपरान्त ही प्रस्तुत तन्त्र बाधबीज वाली परिभाषाएँ सार्थक होती हैं। क्योंकि वहाँ यह कहा गया है कि अमुक शास्त्र के प्रति अमुक शास्त्र असिद्ध हो। परन्तु शास्त्र की सिद्धि के बिना एक शास्त्र के प्रति दूसरे शास्त्र को असिद्ध कैसे किया जा सकता था। प्रथमतन्त्र शास्त्रत्व सम्पादनोद्देश की परिभाषाओं के द्वारा शास्त्रत्व की सिद्धि करने से इस समस्या का सुसम्यक् प्रकार से समाधान हो जाता है। इस तरह प्रथम तन्त्र की परिभाषाएँ द्वितीयतन्त्र बाधबीज की परिभाषाओं की उपजीव्य कही जा सकती हैं। प्रस्तुत प्रकरण बाधबीज में परिभाषाओं के अन्योन्य बाध्यबाधकभाव का विचार किया गया है। इस द्वितीय तन्त्र (प्रकरण) में "पूर्वापरनित्यान्तरङ्गापवादनामुत्तरोत्तरं बलीयः" यहाँ से लेकर "उभय निर्देशे पंचमी निर्देशो बलीयान्" तक की 34 परिभाषाएँ आती हैं।

3. शास्त्रशेष-

इसके अतिरिक्त शास्त्रोपयोगिनी परिभाषाएँ तृतीयतन्त्र (प्रकरण) में संगृहीत हैं। इस तृतीय तन्त्र का नाम शास्त्रशेष प्रकरण है। इस तृतीय प्रकरण में 'प्रातिपदिकग्रहणे लिङ्गविशिष्टस्यापि ग्रहणम्' से प्रारम्भ होकर 'अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते वैयाकरणाः' तक की बासठ परिभाषाएँ गृहीत हैं।

परिभाषेन्दुशेखर में कुल मिलाकर 132 परिभाषाएँ हैं। इन परिभाषाओं में कुछ परिभाषाएँ पाणिनीय तन्त्रानुसार ज्ञापकसिद्ध तथा न्यायसिद्ध हैं

और कुछ एक परिभाषाएँ ऐसी हैं जो प्राचीन वैयाकरण शास्त्र में वचन रूप से पठित (वाचनिक) हैं[1]। इस तरह प्रस्तुत ग्रन्थ परिभाषेन्दुशेखर का प्रतिपाद्य विषय ज्ञापक और न्यायसिद्ध तथा वाचनिक परिभाषाओं का सुसम्यक् प्रकारेण विवेचन करना है।

नागेशभट्ट ने परिभाषेन्दुशेखर की रचना मंजूषा और शब्देन्दुशेखर के पश्चात् की है। परिभाषेन्दुशेखर में व्याख्यात परिभाषाओं का क्रम लक्ष्यसिद्धि के अनुसार है। यह क्रम नागेशभट्ट के द्वारा सम्पन्न किया गया अथवा उससे पूर्ववर्ती किसी वैयाकरण ने तैयार किया- यह अज्ञात है।

परिभाषेन्दुशेखर की टीकाएँ-

परिभाषेन्दुशेखर पर कई टीकाकारों ने टीकाएँ लिखी हैं। उनमें से कतिपय टीकाएँ इस प्रकार हैं-

1. वैद्यनाथ पायगुण्ड	:	गदा
2. शिवराम (1850)	:	लक्ष्मीविलास
3. विश्वनाथभट्ट	:	चन्द्रिका
4. ब्रह्मानन्द सरस्वती	:	चित्प्रभा
5. राघवेन्द्रचार्य	:	त्रिपथगा
6. वेङ्कटेशपुत्र	:	त्रिपथगा
7. भैरवमित्र	:	भैरवी
8. शेष शर्मा	:	सर्वमंगला
9. शंकरभट्ट	:	शंकरी

1. द्रष्टव्य, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, पृ 442-464

10. तात्या शास्त्री	:	भूति
11. श्री जयदेव मिश्र	:	विजया
12. हरिशास्त्री	:	वाक्यार्थचन्द्रिका
13. नारायणशास्त्री	:	नागेशाशय निर्णय
14. यागेश्वर शास्त्री	:	हैमवती
15. वेणीमाधव शास्त्री	:	बृहच्छास्त्रार्थकला
16. वेङ्कटेश्वर शास्त्री	:	नागेशगूढार्थदीपिका
17. वासुदेव शास्त्री	:	तत्त्वादर्श
18. भीमभट्ट	:	परिभाषार्थमंजरी (भैमी)।

इन टीकाओं के अतिरिक्त अन्य भी कुछ प्रकाशित तथा अप्रकाशित टीकाएँ प्राचीन तथा नवीन लेखकों की समुपलब्ध होती हैं। ये टीकाएँ नागेशभट्ट के आशय को समझने में सक्षम हैं। किन्तु नागेश के आन्तरिक आशय को समझने में क्रमशः वैद्यनाथ पायगुण्ड की गदा और भैरवमित्र की भैरवी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं। वेंकटेश्वर शास्त्री की नागेशगूढार्थ दीपिका भी ग्रन्थाशयावगमार्थ अतिशयेन उपयोगी मानी जाती है। नव्य व्याकरण की शैली में निबद्ध तात्याशास्त्री की भूति एवं श्रीजयदेवमिश्र की विजया वर्तमान काल में सर्वाधिक प्रचलित हैं। इनमें परिष्कार की बहुलता है। ये टीकाएँ विद्वत् समाज में सुप्रसिद्ध तथा अध्ययनाध्यापन में विशेष रूप से प्रचलित हैं। इन टीकाओं के आधार पर दृढ़तापूर्वक यह बात कही जा सकती है कि इन टीकाओं के रचयिता संस्कृत जगत् के अपूर्व विद्वान् ही नहीं थे अपितु उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने परिभाषेन्दुशेखर की व्याख्या में जिस वैशिष्ट्य का परिचय दिया है वह अपने में अनुपम है। इन प्राचीन तथा अर्वाचीन कुछ एक टीकाओं के अवलोकनानन्तर मैं आचार्य भीमभट्ट विरचित परिभाषार्थमंजरी के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह कहने में समर्थ हुआ हूँ कि नव्य

व्याकरण की शैली में निबद्ध इस प्रकार का अमूल्य ग्रन्थरत्न अभूतपूर्व है। इस टीका में एक ही दोष है वह यह है कि यह ग्रन्थ किसी विद्वान की सूक्ष्मेक्षिका गोचर ही नहीं हुआ; क्योंकि युधिष्ठिर मीमांसक कृत संस्कृतव्याकरण शास्त्र का इतिहास के अतिरिक्त किसी भी विद्वान् ने इस परिभाषार्थमञ्जरी के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा है। स्वयं युधिष्ठिर मीमांसक ने भी अपने संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास में इतना ही इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है कि इसकी एक प्रति जम्मू में है।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि 'परिभाषार्थमञ्जरी' अत्यन्त उच्चकोटि की कृति है और परिष्कृत शैली वाली रचना है। इस टीका के रचयिता भीमभट्ट संस्कृत जगत् के अपूर्व विद्वान् थे और उनकी सूक्ष्मेक्षिका ने परिभाषेन्दुशेखर की व्याख्या करने में जिस विशेषता का परिचय दिया है वह अपने में अनुपम एवं अनन्य है। इस प्रकार मैं इस भीम वैयाकरण के सम्बन्ध में निश्चितरूपेण यह कहने में समर्थ हूँ कि इनकी 'परिभाषार्थमंजरी' टीका में पूर्णता, रम्यता, सूक्ष्मनिरीक्षण, पूर्व पक्ष एवं उत्तर पक्ष का सम्यक् विवेचन, अनुपम शैली एवं भाव गाम्भीर्यादि सभी गुण विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय

आचार्य भीम की व्याख्या शैली

व्याख्या शब्द का प्रयोग कठिन विषय को सरल बनाने के लिए किया जाता है। विषय सुस्पष्ट करने के लिए ही व्याख्या का प्रयोग किया जाता है।

डॉ. माथुर के मतानुसार- "व्याख्या करने से हमारा तात्पर्य उस क्रिया से है जिसमें किसी शब्द, वाक्यांश अथवा कथन का अर्थ स्पष्ट किया जाता है। उद्घाटन युक्ति द्वारा पाठ्यवस्तु प्रस्तुत की जाती है और व्याख्या द्वारा उस पाठ्यवस्तु को सरल और स्पष्ट बनाया जाता है"।

एस. के अग्रवाल के शब्दों में "व्याख्या का तात्पर्य अर्थ बताने अथवा किसी पूर्वार्जित ज्ञान तथा अनुभव की ओर संकेत करके नये ज्ञान अथवा वस्तु या सूचना समझा देने से है।" दूसरे शब्दों में व्याख्यान का अर्थ पाठ की प्रत्येक गुत्थी को सुलझाने और उनके भावों को अलग-अलग करके सरल भाषा में रखने से है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को समझने में कठिनाई का अनुभव न हो।

महाभाष्यकार पतंजलि ने व्याख्यान ग्रन्थों का स्वरूप निम्न शब्दों में प्रकट किया है- "न केवलं चर्चा पदानि व्याख्यानम्- वृद्धिः आत् ऐज् इति। किं तर्हि? उदाहरणम्, प्रत्युदाहरणम्, वाक्याध्याहार:" इत्येतत् समुदितं व्याख्यानं भवति[1]।

अर्थात्- व्याख्यान में पदच्छेद, वाक्याध्याहार (पूर्व प्रकरणस्थ पदों की अनुवृत्ति वा सूत्र वाह्य पद का योग) उदाहरण और प्रत्युदाहरण होने चाहिए।

---

1. महाभाष्य 1/1/ आ.-1.

पंचधा व्याख्यान-

वैयाकरणों में एक श्लोक सर्वत्र प्रसिद्ध है-

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
पूर्वपक्ष समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम्।।[1]

अर्थात्- पदच्छेद, पदों का अर्थ बताना, समस्त पदों का विग्रह, वाक्ययोजना, पूर्वपक्ष और समाधान- ये पाँच व्याख्यान के अवयव हैं।

षड्विधव्याख्यान-

नागेशकृत 'उद्योत' की छायाटीका के प्रारम्भ में "षड्विधाव्याख्या" का निर्देश मिलता है। इस षड् विधाव्याख्या के तीन प्रकार छायाकार ने 'विष्णुधर्मोत्तर' से उद्घृत किए हैं[2]। इन वचनों से स्पष्ट है कि सूत्रग्रन्थों के प्रारम्भिक व्याख्यानों में पदच्छेद, पदार्थ, समास, विग्रह, अनुवृत्ति, वाक्य योजना= अर्थ, उदाहरण, प्रत्युदाहरण, पूर्वपक्ष और समाधान- ये अंश प्रायः रहा करते थे। इसी प्रकार के लघु व्याख्यान रूप ग्रन्थ 'वृत्ति' शब्द से व्यवहृत होते हैं[3]।

आचार्य भीम ने अपनी टीका के स्पष्टीकरण के लिए तथा उसे अधिकाधिक बोधगम्य बनाने के लिए निम्नलिखित व्याख्या करने की प्रणालियों (विधियों) को अपनाने का प्रयास किया है-

1. शब्दों की व्युत्पत्ति बताकर अर्थ स्पष्ट करना;
2. पर्याय द्वारा;

---

1. भाषावृत्ति की सृष्टि घर- विरचित विवृति में (भाषावृत्ति के आरम्भ में पृ. 16)
2. द्र. नवाह्निक, पृ. 2, 3 निर्णय सागर संस्करण.
3. युधिष्ठिर मीमांसक, संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ. 434- 435.

3. विग्रह द्वारा;

4. शाब्दिक उदाहरण द्वारा;

5. पूर्वपक्ष और समाधान द्वारा।

1. शब्दों की व्युत्पत्ति बता कर अर्थ स्पष्ट करना:-

इस विधि के द्वारा आचार्य भीम ने क्लिष्ट विचारों की व्युत्पत्ति रूप विश्लेषण करके उन्हें सरल बनाने का प्रयास किया है। जैसे शिव और ब्रह्मा शब्दों की दो प्रकार से व्युत्पत्ति बताकर उनका यह अर्थ स्पष्ट किया है कि- "जिसमें सम्पूर्ण जगत् शयन करता है, वह शिव है- शिव शेतेऽस्मिञ्जगदिति अधिकरण व्युत्पत्त्या जगदाधारमित्यर्थः[1]" अथवा जो कल्याणकारी है, वह शिव है।

"यद्वा शिवं मङ्गलमस्यास्तीति शिवः"[2] एवमेव ब्रह्म की व्युत्पत्ति करते हुए आचार्य भीम ने कहा है कि- "ब्रह्मेति बृंहतेऽस्मिन् गुणा आनन्दादयो यत्रेत्यर्थः। यद्वा बृहंते प्रजां वर्धयति।"[3] अर्थात् आनन्दादि गुण इसमें वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अतः ब्रह्म की व्युत्पत्ति सार्थक है अथवा प्रजाओं को जो बढ़ाता है, उसे ब्रह्म कहा जाता है।

2. पर्याय द्वारा-

भीम की व्याख्या में स्पष्टीकरण के लिए पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग प्रायः मिलता है। यथा- सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुरिति महाभारतोक्तेर्नृसिंह नामानं विष्णुमित्यर्थः[4] माता च कमलादेवीत्युक्ते अम्बा लोक माता लक्ष्मीस्तन्सहितं शिवं[5].........।

---

1. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ.38.
2. प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, पृ.=39.
3. वही, पृ.=39.
4. वही, पृ.=39.
5. वही, पृ.=39.

चतुर्मुखः शतानन्दो ब्रह्मणः पद्मभूरिति।
उग्रो भस्मधरोनग्नः कपालीति शिवस्य च॥[1]

अम्बा जगन्माता पार्वती[2]

3. विग्रह द्वारा-

समस्त शब्दों का अर्थ स्पष्ट करने के लिए टीका में उनका विग्रह करके आचार्य भीम ने व्याख्या (टीका) की है। साम्बं शिवमिति शब्द की व्याख्या समास विग्रह द्वारा इस प्रकार की गई है। यहाँ समास का नामोल्लेख किये विना विग्रह से अर्थ स्पष्ट कर दिया है- "अम्बा जगन्माता पार्वती तत्सहितं शिवम्" (अम्बया सहितं साम्बम्)[3]। "परिभाषा इन्दुः सशेखरे यस्येत्यर्थक परिभाषेन्दुशेखरमिति"[4]।

4. शाब्दिक उदाहरण द्वारा-

किसी भाव को स्पष्ट करने के लिए किसी घटना या उपमादि के द्वारा उसकी व्याख्या की गई है। जैसे "यथान्धकारे स्वात्मार्थं नीयमानो दीपः परप्रकाशकश्चेत् कोवारयितेति[5]"

5. पूर्वपक्ष और समाधान-

भीम अपनी टीका में सिद्धान्तपक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व, पूर्वपक्ष को प्रस्तुत करके शंकादि उठाकर तत्पश्चात् समाधान देते हैं। यथा-

---

1. वही, पृ.=41.
2. वही, पृ.=38.
3. वही, पृ.=38.
4. वही, पृ.=43.
5. प्र. शो. प्र. पृ=43. "आत्मनाम गुरोर्नाम नामातिकृपणस्य च। श्रेयस्कामो न गृह्णयाज्ज्येष्ठापत्यकलत्रयोरिति" निषेधाशीर्विषयस्य जागरुकत्वे कथमात्मनामग्रह इति चेत्सत्यम्। औपाधिकभेदपरिकल्पनागरु त्मतत्पक्षपातेन....। भेदपरिकल्पनवदहं करोमीत्यनुक्त्वा नागेशः कुरूते वही, पृ.=43.

अध्येता अधि उपसर्ग पूर्वक 'इङ्' धातु से "तृच्" प्रत्ययान्तर "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" से गुण करने के पश्चात् अध्येता सिद्ध होता है और शयिता "शीङ्" धातु से तृच् प्रत्ययानन्तर "इट्" आगम, गुण, अयादेशादि करके सिद्ध होता है। इस विषय में पूर्वपक्षी को यह शंका है कि "अध्येता" और शयिता प्रयोग में इङ् शीङ् के ङित् होने से "क्ङिति च" सूत्र से गुण का निषेध क्यों नहीं होता है? पूर्वपक्षी की इस शंका के समाधान में आचार्य भीम ने "कार्यमनुभवन् हि कार्यी निमित्ततया नाश्रीयते॥10॥" इस परिभाषा का आश्रय लिया है। अध्येता, शयिता, तृच् प्रत्ययान्त हैं। इनके इ, ई को "क्ङिति च" 1/1/5 सूत्र से गुण निषेध प्राप्त होता है। यह निषेध तभी प्राप्त होता हे, जब "क्ङिति च" के व्याख्यान में यहां निमित्त शब्द का कारणमात्र अर्थ समझा जाए, जिससे "इ" ई को उद्देश्य करके विहित गुण का "ई", "ई" भी कारण है। "क्ङिति परतः" ऐसी व्याख्या मानने पर शङ्का ही उत्पन्न नहीं होती है। अध्येता, शयिता में "इ", "ई" को गुण हो रहा है, जिनका अनुबन्ध "ङ्" है। इ, ई कार्यी है और इन्हें कार्य (गुण) हो रहा है। इस कार्य में इन्हीं को निमित्त नहीं माना जा सकता। अतः ङित् होने पर भी गुण हो जाता है[1]। क्योंकि जिस के स्थान पर कार्य किया जाता है, वह कार्य को अनुभव करने वाला (जिसे कार्य होने को है) कार्यी उस कार्य का निमित्त नहीं माना जाता।

परिभाषार्थमंजरी में भीम ने पूर्व आचार्यों द्वारा निर्मित तथा नागेशभट्ट के परिभाषेन्दुशेखर में उद्घृत 72 परिभाषाओं की व्याख्या की है। उनकी व्याख्या शैली के उदाहरण के रूप में यहां पांच

---

1. अध्येताशयितेति। तृजन्तमेतत्। यत्तु कैयटानुयायिभिः ननु दीधीवेवीटाम् ङित्वातक्ङिति चेति सिद्धेतयोः पृथक् निषेधीव्यर्थीऽत आहेति परिभाषावता-रितात्तत्तुच्छम्-शयितरोत्यत्र प्रशस्त कार्यित्वं सार्वधातुकार्थधातुयोरित्यस्ये-गन्ताङ्गात्यस्य गुण इत्यर्थे नेकारस्य। न च तत्र ङित्वमस्ति तस्य समुदायानुबन्ध त्वात्। यश्चङिन्नासौ कार्यं। न च प्रशस्तकार्यिघटि ततयांगस्य तत्त्वम्। "परिभाषायां कार्यो निमित्तया नाश्रीयत इति..." प्र. शो. प्र., पृ.=98.

परिभाषाओं पर उनकी टीका का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। अनुबन्धों के विषय में उत्पन्न अनेकानेक शंकाओं का समाधान करने हेतु ये परिभाषाएँ उपलब्ध होती हैं। इन परिभाषाओं की व्याख्या में भीम ने एक टीकाकार के रूप में जो योगदान किया है, वह इस प्रकार है-

भाष्यकार का इत्संज्ञा के विषय में कहना है कि 'इत्संज्ञोत्तरं प्रत्याहारः, अर्थात् इत्संज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याहार बनते हैं और प्रत्याहार ही व्याकरणशास्त्र की आधार शिला हैं। इसलिए व्याकरण शास्त्र में इत्संज्ञा का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'जिसकी संज्ञा' इत् होती है अथवा जो 'इत्' संज्ञा के योग्य हो उसे तो अनुबन्ध कहते हैं। जैसे 'अण्' प्रत्याहार का 'ण्' इत् है, अतः अनुबन्ध है। यहाँ सन्देह यह है कि यह अनुबन्ध अनवयव होते हैं अथवा अवयव। इस शंका के समाधान के लिए परिभाषेन्दुशेखर में यह परिभाषा मिलती है अनेकान्ता अनुबन्धा इति॥4॥ (अर्थ- अनुबन्ध अनेकान्त होते हैं। अनेकान्त का अर्थ अनवयव है। अर्थात् अनुबन्ध अवयव नहीं होते।)[1]

इन दोनों पक्षों की संदेहजनक परिस्थिति अनुमान पर अवलम्वित है- "गुप्तिज् किदभ्यः सन्" सूत्र में उच्चरित "सन्" में अनुबन्धभूत् "न्" श्रूयमाण है, लेकिन सन् प्रत्यय युक्त सिद्ध रूप "जुगुप्सति आदि में तो केवलमात्र स" श्रूयमाण है। प्रयोग में श्रूयमाण प्रत्ययादि बोध्य और विधि सूत्रस्थ प्रत्ययादि बोधक की प्रत्यक्षस्थिति दो तरह की होती है-

1. समानानुपूर्वीक तथा 2. असमानानुपूर्वीक।

1. "भ्याम्" आदि शब्द विधिसूत्र और प्रयोग दोनों में समानानुपूर्वीक देखे जाते हैं। अनुबन्ध रहित प्रत्ययों का समानानुपूर्वीक प्रकार प्रसिद्ध है।

2. "टा" आदि शब्द असमानानुपूर्वीक देखे जाते हैं। असमानानुपूर्वीक प्रत्ययों का अनुबन्ध सहित प्रकार प्रसिद्ध है।

---

1. अनुबन्धः अनुबध्यते पश्चात् आसज्यत इत्यनुबन्धः। अनुबन्ध का अर्थ प्राचीन मत में इत्संज्ञक वर्ण है जबकि नव्यमत में इत्संज्ञा योग्य।

प्रश्न यहाँ यह है कि "सन्" का नकार "स" का अवयव है अथवा नहीं; क्योंकि "सन्" में "स+अ+न्" ये तीन वर्ण हैं तथा "स" में "स्" एवं "अ" वर्ण है।

प्रस्तुत प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि सन्देह केवलमात्र नकार के अवयव या अनवयवत्व का नहीं है। प्रश्न तो यहाँ यह है कि बोधकता "सन्" में है या "स" में। ऐसी स्थिति में यदि "सन्" में बोध कता है तो "न्" में बोधक अवयवत्व होगा और अगर "स" में बोध कता है तो "न्" में बोधक अनवयवत्व होगा।

इस तरह बोधकत्व प्रयुक्त अवयवत्व तथा अनवयवत्व का सन्देह श्रवणमात्र से निवृत्त हो सकता है। अतः यहाँ अनुमान की प्रक्रिया ही उचित एवं युक्तिसंगत है।

इस अनुमान की प्रक्रिया का प्रकार क्या है? इस सम्बन्ध में कहा है कि- अनुबन्ध (इत्संज्ञक) न्, ण्, क्, ट् आदि), जिसके साथ लगे हुए हों उसके वे अवयव नहीं होते। कारण यह है कि जो अवयव होते हैं, वे कभी न कभी उसमें दीखते हैं, जिसका वे अवयव होते हैं। वृक्षादि की शाखा कटने के बाद यद्यपि वृक्ष पर नहीं दिखाई देती, पर कटने से पहले तो वृक्ष पर दिखाई देती हैं, लेकिन अनुबन्धों के सम्बन्ध में हम ऐसा नहीं देखते। अच्, इञ् आदि प्रत्ययों के बोध्य अ, इ आदि ही प्रयोग में दृष्टिगत होते हैं किन्तु उनके अनुबन्ध च्ञ् आदि कदापि दृष्टिगत नहीं होते हैं। अगर ऐसा हो तो शित्, कित् आदि बहुब्रीहि समासों की क्या गति होगी? क्योंकि शित्, कित् आदि शब्दों में समीपस्थ श्, क् को अवयव मानकर समास सिद्ध होता है[1]। अगर शित्, कित् वाली प्रक्रिया को अनवयव माना जाए तो एक और आपत्ति यह आ जाती है कि "वुञ्छणकठ (4/2/80)" आदि सूत्र में णकार के अवयव न होने से इसे पूर्ववर्ती "छ" तथा परवर्ती "क" का अर्थात्- इन दोनों

1. शकार इत् समीपस्थो यस्य शित्।
ककार इत् समीपस्थो यस्य कित्॥

का अनुबन्ध माना जायेगा, जिससे अनिष्टरूप प्रसक्ति होगी[1]।

इस शंका के समाधान में कहा गया है कि इसका समाधान पहले ही कहा जा चुका है कि- "व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहिसन्देहाद लक्षणम्" व्याख्यानानुसार पूर्वपठित प्रत्यय अर्थात् प्रकृत में "छ" के साथ ही "ण्" अनुबन्ध का योग समझा जायेगा पश्चात् पठित "क" के साथ नहीं। पूर्वपक्षी को फिर शंका होती है कि अगर अनुबन्ध अवयव नहीं है तो "हलन्त्यम्" सूत्र में "अन्त्य" को इत्संज्ञक (अनुबन्ध) कैसे कहा गया?

इसके समाधान में कहा गया है कि यहाँ "अन्त्य" शब्द परसमीप का बोधक है। अतः उपदेश में परसमीप की इत्संज्ञा होती है। ऐसा करने से दोष का निराकरण हो जाता है। अतः इन युक्तियों से सिद्ध है कि अनुबन्ध अनेकान्त अनवयव है। अवयव नहीं है।

"अनेकान्ता अनुबन्धा इति॥4॥" इस परिभाषा की उपेक्षा करते हुए नागेश ने अन्य परिभाषा दी है- वस्तुतस्तु-

"एकान्ताः॥5॥"

(वास्तव में तो अनुबन्ध- इत्संज्ञक ञ्, ण्, क्, ट् आदि) एकान्त अर्थात् अवयव होते हैं, यही पक्ष ठीक है।)

इस पक्ष का औचित्य सिद्ध करते हुए नागेश का कथन है कि "शास्त्र में विधेय बोधक पद में ही दिखाई देते हैं अर्थात् सन् इत्यादि प्रत्ययों के विधायक शास्त्रों में बोधक के साथ अनुबन्ध की उपलब्धि दृष्टिगोचर होती है अन्यत्र उसकी उपलब्धि नहीं होती। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अनुबन्ध बोधक के अवयव होते हैं[2]।

---

1. ननु चकारेण स्वपूर्ववर्त्तिन्येव कार्यं ज्ञाप्यते, नोत्तरत्रेति वुञ्छण् केन दोष इति चेत्सत्यम्? गौरवं भाष्यविरोधश्च मुख्यं दूषणं तन्मते बोध्यम् प्र. शो. प्र., पृ. =88
2. यथा- शकारः अवयवः इत् यस्यासौ शित्, ककारः अवयवः इत् यस्यासौ

यहाँ व्यतिरेकव्याप्ति के द्वारा लौकिक दृष्टान्त देते हैं कि जैसे कौआ आदि पक्षी संयोगादि सम्बन्ध से कभी गृह में और कभी वृक्ष आदि पर दृष्टिगत होता है। अत: कौआ गृह वृक्षादि का अवयव नहीं है, क्योंकि उसका संयोग उस स्थान से तात्कालिक होता है अर्थात् अनुबन्ध बोधकावयव हैं।

अपने इस विचार को आचार्य भीम इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं कि "सूत्र में सन् के नकार की दशा काक गृहवृक्षादि से भिन्न है। वह सन् के साथ ही समवाय सम्बन्ध के साथ रहता है किसी और के साथ नहीं। अत: जो जिसके साथ एक जातीय सम्बन्ध (औपदेशिक)" से उपलब्ध हो और अन्यत्र उपलब्ध न हो, वह उसका अवयव होता है। क्योंकि स्वघटित समुदायांत्यादि सम्बन्ध से ये बोधक में उपलब्ध और स्वघटित समुदायोपस्थाप्यत्व सम्बन्ध से अन्यत्र बोध्यादि में अनुपलब्ध है। जो जिसका अवयव नहीं होता वह कई स्थानों पर एकजातीय सम्बन्ध से उपलब्ध होता है। यथा गृह के अनवयव कौआ आदि संयोग सम्बन्ध से घर और वृक्षादि में भी उपलब्ध होते हैं।

बोधक का अवयव पक्ष स्वीकार कर लेने का यह परिणाम होता है कि शित् कित् आदि बहुब्रीहि समास विधिवत् उत्पन्न हो जाता है। एवमेव "हलन्त्यम् सूत्र में अन्त्य शब्द का अर्थ करने के लिए पूर्वपक्ष वर्णित क्लिष्ट कल्पना भी नहीं करनी पड़ती"[1]।

इस सम्बन्ध में आचार्य भीम का कथन है कि अगर अनुबन्धों का अनवयव पक्ष स्वीकार किया जाये तो "ण", "श" तथा "क"

कित् अनवयव पक्ष में शित्, कित् णित् आदि शब्दों में समास उपपन्न करने के लिए 'स्वसमीपोच्चारितेऽनुबन्धे स्वनिरूपितावयवत्वमारोप्यते' इस आरोपक वाक्य को स्वीकार करना पड़ता है।

1. अनवयवत्व पक्ष स्वीकार करने पर आदि शब्द की पूर्व समीप में तथा 'हलन्त्यम्' आदि में अन्त्य शब्द की पर समीप में लक्षणा करनी पड़ती है।

प्रत्ययों के णकार, शकार तथा ककार की इत्संज्ञा नहीं होगी। क्योंकि इत्संज्ञा विधायक सूत्र "चुटू" (1/3/7)[1] और "लशक्वतद्धिते" (1/3/8)[2] के द्वारा प्रत्यय के आदि अवयव णकार, शकार, और ककारादिकों की इत्संज्ञा की जाती है। अतः इस अनवयव वाले पक्ष को स्वीकार करने पर यह इत्संज्ञा सम्भव ही नहीं है, क्योंकि तब णकार, शकार और ककारादि प्रत्ययों के आदि अवयव स्वीकार नहीं किये जाएंगे।

आचार्य भीम के मतानुसार णकार और शकारादि में इत्व के अभाव में "श्याद् व्यधास्रुसंस्रवतीणवसावहालहश्लिषश्वसश्च" (3/1/149) सूत्र से आदन्त धातु से ण प्रत्यय विहित है। पुनश्च "ददातिदधात्योर्विभाषा (3/1/1/139)" सूत्र से दाञ् और धाञ् धातुओं से विकल्प से "श" प्रत्यय का विशेष विधान किया गया है। अगर अनुबन्ध प्रयुक्त असारुप्य ही इष्ट होता तो "वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्" (3/1/94) सूत्र से ही ण और श का विकल्प से बाध्यबाधक भाव सिद्ध हो जाने से "ददातिदधात्योर्विभाषा" (3/1/139) सूत्र में विभाषा ग्रहण व्यर्थ हो जाता। अतः असमानानुपूर्वीक प्रत्ययों से ही लाभ हो सकता है।

भीम अपनी टीका में फिर शंका उठाते हैं कि "प्रमाणे द्वयसजदध्नञ्" मात्र चः (5/2/37) सूत्र में अगर चकार से स्वपूर्ववर्ती कार्य को ही ज्ञापित किया जाता है, उत्तरवर्ती कार्य ज्ञापित नहीं होता है तो "वुन्छण्कठ" में भी भाष्य विरोध रूप दोष मानना पडेगा।

इस शंका के समाधान में कहा गया है कि अनवयव पक्ष में जब अनुबन्धों में सामीप्य के आधार पर अवयवत्व भाव का आरोप किया जाता है तो "प्रमाणेः द्वयसज्दध्नञ्मात्र चः" में द्वयसच का चकार ही दध्नच् का भी अवयव हो जाता है। ऐसी स्थिति में दध्नच् का चकार

---

1. चुटू 1/3/7(प्रत्यय के आदि चवर्ण (च्, छ्, ज्, झ्, ञ्) तथा टवर्ण (ट्, ठ, ड, ढ, ण) इत्संज्ञक होते हैं।
2. लशक्वतद्धिते- 1/3/8 तद्धित भिन्न प्रत्यय के आदि लकार, शकार अथवा कवर्ण (क्, ख्, ग्, घ्, ङ) की इत्संज्ञा होती है।

व्यर्थ हो जाता है। अतः एकान्ता अनुबन्धाः (अनुबन्ध अवयव होते हैं) यही पक्ष न्यायसंगत कहा गया है। इस एकान्तत्व (अवयवत्व) पक्ष के उक्त प्रकार से व्यवस्थित हो जाने पर निम्नलिखित तीन परिभाषाएँ भाष्यकार को स्वीकार करनी पड़ी हैं-

नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम्॥6॥

नानुबन्धकृतमनेजन्तत्त्वम्॥7॥

नानुबन्धकृतमसारूप्यम्॥8॥

"एकान्ता अनुबन्धा" इस परिभाषा को स्वीकार करने पर शंका उठाई गई है कि- अगर अनुबन्ध बोधक का अवयव (एकान्त) है तो "अष्टाभ्य औश्" (7/1/21) सूत्र से विधेय औश् का शकार उसका अवयव हो गया। इस प्रकार "औश्" अनेकाल् (अनैक अल्=औ, श्) हो गया। एवमेव औश् की तरह अन्य शकार घटित विधेय भी अनेकाल् हो गये। इस प्रकार की अवस्था में सभी स्थानों पर अनेकाल् मानकर ही सर्वादेश संभव है। दूसरे शब्दों में औश् के अनेकाल् होने से ही जस्, शस् के स्थान में सर्वादेश हो जाता है "अनेकाल् शित् सर्वस्य 1/1/55 सूत्र में शित् क्यों पढ़ा गया?" अर्थात् सम्पूर्ण के स्थान पर आदेश करवाने के लिए शित् ग्रहण व्यर्थ पडता है।

इस शंका के शमन के लिए यह निम्नलिखित परिभाषा बनाई गई है- कि-

नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् ॥6॥[1]

(अनुबन्ध के कारण होने वाला अनेकाल्त्व नहीं माना जाता। अर्थात् अनुबन्ध के आधार पर किसी को अनेकाल्- अनेक अल्- यथा औश् में "औ" और "श्"- नहीं कहा जा सकता।)

---

1. अनुबन्धेन कृतम्=अनुबन्धकृतम्। अनेकेऽलो यस्य तद् अनेकाल्- तस्य भावः-अनेकाल्त्वम्।

इस प्रस्तुत परिभाषा में "अनेकाल् शित्सर्वस्य" (1/1/55) सूत्र में शित् ग्रहण ही ज्ञापक है। परिभाषा के ज्ञापित हो जाने पर "औश्", "इश्" आदि "एकाल्" ही है ऐसा भीम मानते हैं। अनेकाल्ता न होने से ही शित् ग्रहण के बल पर इन सूत्रों में सर्वादेश होते हैं। अनुबन्धों (इत्संज्ञक) के अवयव होने से अनेकाल्ता बन जाने से जब तक यह परिभाषा ज्ञापित नहीं होती शित् ग्रहण व्यर्थ रहता है। अनेकाल्ता के न माने जाने से परिभाषा के ज्ञापित होते ही शित् ग्रहण सार्थक और आवश्यक हो जाता है।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि जब अनुबन्धों को अल् ही नहीं माना जाता तो तत्प्रयुक्त अनेकाल्त्व होने का तो यहां प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है।

इसीलिए, अनुबन्धकृत अनेकाल्ता न होने से "अर्वणस्त्रसावनञः" (6/4/127) सूत्र से विहित "तृ" आदेश अनेकाल् नहीं माना जाता। अन्यथा यह भी सर्वादेश हो जाता। तात्पर्य यह है कि "अर्वणस्त्रसावनञः" सूत्र में "तृ" अर्वन् के स्थान में सर्वादेश नहीं होता, किन्तु अन्त्य अल् "न्" के स्थान में होता है। कारण यह है कि सानुबन्धक "तृ" अनेकाल् नहीं।

पूर्वपक्षी फिर शङ्का उठाते हैं कि अनुबन्धों के कारण अगर अनेकाल्त्व नहीं माना जाता तो फिर "डा" आदि आदेश "लुटः प्रथमस्य डा रौ रसः" 2/4/85 (लुट् प्रथम पुरुष एकवचन तिप् के स्थान में विहित "डा" आदेश "जसः शी 7/1/17" से विहित "शी") आदि एकाल् होने से तिप् आदि सारे के स्थान में कैसे आदेश होते हैं। अर्थात् इन आदेशों का सर्वादेशत्व कैसे होगा?

इस शंका के उत्तर में सिद्धान्त पक्ष का कथन है कि इन 'डा' आदि में किसी में भी औपदेशिक प्रत्ययत्व विद्यमान नहीं है। 'डा' आदि के मूलतः प्रत्ययाधिकार पठित न होने से 'चुटू' आदि सूत्रों से पहले इत्संज्ञा प्राप्त नहीं है। इसलिए, इत्यसंज्ञकत्वनुबन्धत्वम् इस प्राचीन मत

में सर्वादेशत्व के पूर्व उकारादि के अनुबन्ध न होने से इस परिभाषा की प्रवृत्ति नहीं होती। अर्थात् जब तक इनमें स्थानिभाव से अतिदेशिक प्रत्ययत्व नहीं आयेगा। प्रत्ययत्व के अभाव में 'ड्' आदि अनुबन्ध नहीं बनेंगे और इनकी इत्संज्ञा न होने से लोप नहीं होगा। अतः इन्हें पहले सर्वादेश करना पड़ता है। जैसे रमायाम् में होता है–

पूर्वपक्षी को फिर शंका है कि अगर ऐसी बात है तो 'णल्' प्रत्यय तो प्रत्यय अधिकार में आता है, क्योंकि तृतीयाध्याय से पंचमाध्याय की समाप्ति तक प्रत्ययाधिकार चलता है। तो णल् लिडादेश तिप् मिप् के स्थान में सर्वादेश कैसे हो जाता है? अर्थात् अगर अनेकाल्ता नहीं ली जाती तो तिप्, मिप् के 'इ' के स्थान में णल् आदेश होना चाहिए था।

इन प्रश्नों के उत्तर में आचार्य भीम का कथन है कि (सर्वादेश निर्वाहस्तु प्रश्लेषेण बोध्यः) 'णल्' में 'अ' का प्रश्लेष (अ+अ+=आ) मानकर अनेकाल्ता सिद्ध की जाती है तब सर्वादेश निर्बाध हो जाता है। अर्थात् डा आदेश का डा+आ =डा इस प्रकार प्रश्लेष मानकर अनेकाल्त्व सिद्ध किया जाता है, तब सर्वादेश हो जाता है।

इस परिभाषा का भावार्थ भीम के मतानुसार यह है कि सर्वा देशपूर्वक (जो सारे के स्थान में आदेश होने के पीछे) अनुबन्धता बनती है वह सर्वादेशता को नष्ट नहीं करती। कारण यह है कि सर्वादेशता उससे पूर्व ही हो चुकी है। इस प्रकार स्पष्ट है कि परिहार से भाष्यादि विरोध भी नहीं रह जाता है। अतः अनुबन्ध एकान्त (अवयव) हैं॥6॥

'एकान्ताः अनुबन्धा' इस परिभाषा की स्वीकार करने पर द्वितीय दोष का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि यदि अनुबन्ध है तो 'अवदातम्' पद नहीं बन पाएगा, क्योंकि शोधनार्थक दैप् धातु पकारान्त होगा, न कि ऐकारान्त। ऐसी अवस्था में औपदैशिक एजन्तत्व प्रयुक्त आत्व न ही सकेगा। क्योंकि 'अवदातम्' दैप् धातु से निष्पन्न होता है। 'प्' लोपानन्तर क्त प्रत्यय करने पर 'आदेच् उपदेशेऽशिति 6/1/45' से ऐ के स्थान पर 'आ' आदेश किया जाता है, जिस से दान ऐसा रूप

सिद्ध होता है। यहाँ 'दाषाध्वदाप्' – 1/1/30 सूत्रघटक 'अदाप्' इस निषेध के कारण घु संज्ञा नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि 'अच उपसर्गात्तः' 7/4/47 इस सूत्र से यहाँ नकार आदेश नहीं होता है। यहाँ शङ्का यह होती है कि 'अदाप्' यह निषेध यहाँ कैसे लगता है? क्योंकि बोध्य दै में आत्व करने पर दा रहने पर भी पकार के न रहने के कारण 'दाप्' रूप नहीं मिल रहा है। दैप् जो बोधक है, इसमें पकार तो है किन्तु पकार के रहते धातु एजन्त नहीं है, इसलिए आत्व न होने के कारण 'दाप्' यह रूप नहीं मिल रहा है। इस तरह कभी पकार के न रहने से दाप् का अभाव होता है और कभी दा रूप न होने के कारण दाप् का अभाव हो रहा है। ऐसी अवस्था में यहाँ अदाप् यह निषेध कैसे प्रवृत्त होगा? इस प्रकार की शंका के समाधान के लिए प्रस्तुत परिभाषा बनाई गई।

नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम्॥7॥[1] (अनुबन्ध के कारण किसी को अनेजन्त–एजन्त भिन्न– नहीं कहा जाता।)

इसका परिणाम यह हुआ कि 'दैप्' धातु पकार के रहने पर भी एजन्त स्वीकार कर लिया गया। पकार का धातु में रहना उसके एजन्तत्व का विघातक नहीं हुआ। इस तरह 'दैप्' में पकार के रहते हुए धातु (दैप्) को एजन्त मानकर आत्व कर दिया गया, जिससे दाप् रूप मिल गया और 'अदाप्' इस निषेध के कारण घु संज्ञा नहीं हुई।

इस परिभाषा में आचार्य पाणिनि का 'उदीचां माङो व्यतीहारे–2/3/19' सूत्र में मेङ् के स्थान में माङ् आदेश– करण ही ज्ञापक है। 'आदेच उपदेशेऽशिति' यह सूत्र एजन्त को आत्व विधान करता है उपदेश अवस्था में। किन्तु मेङ् उपदेश की अवस्था में एजन्त नहीं है अपितु ङकारान्त है। अगर प्रस्तुत परिभाषा न हो तो पाणिनि का प्रयोग असङ्गत हो जाता है। इस असङ्गति के निराकरण के लिए ही इस परिभाषा की

---

1. अनुबन्धेन कृतम्– अनुबन्धकृतम्। एच् अन्तोऽस्य– एजन्तः। स न भवति अनेजन्तः। तस्य भावः अनेजन्तत्वम्।

आवश्यकता है। इस परिभाषा को स्वीकृत करने का यह प्रतिफल हुआ कि ङकार के रहते मेङ् धातु की एजन्तता में कोई भी बाधा नहीं हुई। ङ्कार के विद्यमान रहते ही मेङ् धातु को एजन्त भी कह दिया गया और आत्व भी हो गया।

अब शंका यह है कि 'न' धातु लोप आर्धधातुके- 1/1/4 इस सूत्र पर भाष्योक्त कैयट मतानुसार ङकारान्त मेङ् जब उपदेशावस्था में धातु ही नहीं तो फिर सानुबन्धक के स्थान पर 'आदेच उपदेशेऽशिति' 6/1/45 सूत्र से आत्व की प्राप्ति कैसे होती है?

इस शंका के उत्तर में भीम का कथन है कि आत्व विधायक 'आदेच उपदेशेऽशिति' सूत्र में धातोः 6/1/8 सूत्र की अनुवृत्ति ही नहीं मानी जाती है।

प्रश्न किया जा सकता है कि 'उदीचां माङ्' 3/4/19 इस सूत्र में 'माङ् माने' का ग्रहण क्यों न माना जाए? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि ऐसा होने पर ज्ञापकता नहीं बनेगी। इस प्रकार सिद्ध है कि अनुबन्ध अवयव होते हैं।

अनुबन्ध के अवयव (एकान्त) स्वीकार करने पर तृतीय दोष का उल्लेख करते हुए, यह शङ्का उठाई गई है कि- 'यदि अनुबन्ध अवयव हैं तो कर्मण्यण्- 3/2/1 सूत्र अण् प्रत्यय विधान करता है तथा' आतोऽनुपसर्गे कः (3/2/3) यह सूत्र क प्रत्यय विधान करता है। अण् और क प्रत्यय असरूप प्रत्यय होंगे। तब इनके बीच में 'वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्' 3/1/14 इस सूत्र के अनुसार इन दोनों में बाध्यबाधकभाव विकल्प से होगा। यहां अण् प्रत्यय बाध्य है तथा 'क' प्रत्यय बाधक है। 'कर्मण्यण्' यह उत्सर्ग शास्त्र है। आतोऽनुपसर्गे कः यह अपवाद है। अपवाद उत्सर्ग का बाधक होता है। इसमें ही उसकी चरितार्थता होती है। पर 'वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्' सूत्र से असरूप अपवाद (जो उत्सर्ग के साथ सरूप- समान रूप वाला न हो) उत्सर्ग को विकल्प से बाधता है। पक्ष में उत्सर्ग की प्रवृत्ति भी होती है। अनुबन्धों के अवयव होने पर 'क'

प्रत्यय एवं 'अण्' प्रत्यय सरूप नहीं है। अतः असरूप हैं। इसलिए 'क' के विषय में भी 'अण्' प्रत्यय की वैकल्पिकी प्रवृत्ति होने लगेगी। गोदः- 'क' प्रत्ययान्त के साथ 'गोदायः- अण् प्रत्ययान्त की भी सिद्धि होगी। इस तरह वैकल्पिक प्रयोग की भी आपत्ति हो जायेगी। इस शंका के शमन के लिए निम्नलिखित परिभाषा स्वीकार करने की आवश्यकता पडी'-

नानुबन्धकृतमसारूप्यम्॥8॥

(अनुबन्ध के कारण उत्पन्न असरूपता नहीं होती।)

जो प्रत्ययादि अनुबन्ध रहित होने पर समान रूपवाले (सरूप) हैं, वे सानुबन्ध होने पर असरूप नहीं हो जाते। अर्थात् जो प्रत्यय अनुबन्ध को हटा देने पर बोध्य स्थिति में समानरूप वाले हो जाते हैं वे अनुबन्ध सहित बोधक स्थिति में अगर विरूप भी हैं तो उनकी यह अनुबन्धकृत विरूपता नहीं मानी जाती और वे सरूप ही कई जाते हैं।

अनुबन्ध के कारण असरूपता नहीं मानी जाती। इस मत के समर्थन में प्रमाणप्रस्तुत करते हुए आचार्य भीम का कहना है कि इसमें 'ददातिदधात्यो र्विभाषा 3/1/39- सूत्र में विभाषाग्रहण ही ज्ञापक है।'

परिभाषार्थमंजरीकार आचार्य भीम के मतानुसार यहाँ यद्यपि शित् ग्रहण आङ् निर्देश तथा विभाषा ग्रहण से अनेकान्तत्व (अनुबन्धों का अनवयवत्व) पक्ष का ज्ञापन भी सम्भव है, फिर भी अनेक स्थानों पर अनेक लक्षण देने से गौरव न हो जाए तथा भाष्यविरोध न हो, इसलिए उक्त ज्ञापकता अर्थात् अनुबन्ध से उत्पन्न असारूप्य को असारूप्य न माना जाना साधु प्रतीत होता है।[1]

---

1. विकल्पविधायकमिति। विकल्पार्थक विभाषाघटितं सूत्रमित्यर्थः। एवं च विभाषा ग्रहणं ज्ञापकमिति भावः। अत्र यद्यपि शितग्रहणमाङ् निर्देश विभाषा ग्रहणैरनेकान्तत्वपक्षोपि ज्ञापयितुं शक्यस्तथापि अनेकत्रानेकलक्षणादि प्रयुक्त गौरवेण भाष्य विरोधेन चोक्तार्थज्ञापकतैव साध्विति ध्येयम्। प्र.शो.प्र., पृ=93.

आचार्य भीम के अनुसार इसका ज्ञापन 'श' प्रत्यय के विकल्प के विधान से भी होता है। क्योंकि 'ददातिदधात्योर्विभाषा' 3/1/139 यह सूत्र 'दा' और 'धा' धातुओं से 'श' प्रत्यय का विधान करता है, जिससे 'ददः' तथा दधः प्रयोग बनते हैं। इन प्रयोगों में 'श्यादव्यधास्तुसंस्रवतीणव-सावह्यालहश्लिषश्वसश्च 3/1/14'। सूत्र से आदन्त धातु से नित्य ही 'ण' प्रत्यय भी प्राप्त होता है। इस 'ण' प्रत्यय को 'ददातिदधात्योर्विभाषा' सूत्र विकल्प से बाधता है, जिससे पक्ष में 'ण' प्रत्यय और युकादि करके दायः, धायः- ये प्रयोग सिद्ध किये जाते हैं। इनमें 'श' प्रत्यय 'ण' प्रत्यय का अपवाद है। ऐसी अवस्था में 'वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्'-3/1/94 से 'श' के द्वारा 'ण' प्रत्यय का विकल्प से बाध सिद्ध है। अतः एक पक्ष में 'ण' प्रत्यय स्वयंसिद्ध है तो उसे बाध कर 'श' प्रत्यय का विकल्प से विधान क्यों किया गया? यही 'श' प्रत्यय का वैकल्पिक विधान व्यर्थ होकर प्रस्तुत परिभाषा का ज्ञापन करता है। परिभाषा के ज्ञापित ही जाने पर 'श' और 'ण' जो यहाँ दो अनुबन्ध हैं, इनके कारण यहाँ असारूप्य (वैरूप्य) नहीं होगा। दोनों ही प्रत्ययों में 'अ' शेष रहने के कारण सारूप्य है। इसलिए यहाँ नित्य ही बाध्यबाधकभाव होगा, जिस कारण यहाँ 'ण' प्रत्यय नहीं हो सकता था। इस तरह 'श' प्रत्यय का वैकल्पिक विधान सार्थक हुआ।

इसका प्रतिफल यह सिद्ध हुआ कि 'क' प्रत्यय और 'अण्' प्रत्यय अपने इस रूप में विरुप होने पर भी अनुबन्ध विनिर्मुक्त होकर लक्ष्य में 'अ' रूप में ही उपस्थित होते हैं। अतः ये सरूप प्रत्यय हैं। इसलिए अपवादभूत 'क' प्रत्यय से 'अण्' प्रत्यय का नित्य बाध होता है, जिससे 'क' प्रत्यय के विषय में 'अण्' प्रत्यय नहीं होता। संक्षिप्तरूपेण इसका परिणाम यह निकला कि 'क' प्रत्यय के द्वारा 'अण्' प्रत्यय का नित्य बाध हो जाने से 'गोदः' आदि प्रयोगों की सिद्धियों में 'अण्' प्रत्यय नहीं हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य भीम ने अपनी व्याख्या शैली में पूर्वपक्ष एवं सिद्धांतपक्ष का स्पष्ट निर्देश किया है।

आचार्य भीम की टीका है। यथा प्रथम परिभाषा को ही लें- अ इ उ ण् तथा 'लण्'- इन दो प्रत्याहार सूत्रों में आचार्य लोग दो बार 'ण्' पढ़ते हैं। अण् प्रत्याहार किस 'ण्' तक लिया जाए और 'इण्' प्रत्याहार किस 'ण्' तक बनाया जाये। इस सन्देह स्थिति के शमन के लिए कि 'शास्त्र में सर्वत्र' इण् पर के नकार तक लिया जाता है।

तथा 'अण्' पूर्व णकार तक हो। केवलमात्र 'अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः- 1/1/69' सूत्र में पठित अण् परे के णकार तक लिया जाता है। इस प्रकार-

"व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्।।1।।[1]"

(अनेक में से किस एक का या दो में से किस एक का ग्रहण किया जाए, ऐसी विशेष की प्रतिपत्ति अर्थात् निश्चय शिष्टों के व्याख्यान से करना चाहिए। सन्देह की स्थिति उत्पन्न हो जाने पर शास्त्र को अलक्षण (अननुष्ठापक) नहीं मानना चाहिए। अर्थात् शास्त्र शब्द साधुत्व का साधन नहीं है- ऐसा कदापि नहीं समझना चाहिए।)

इसका अभिप्राय यही है कि सन्देह की निवृत्ति व्याख्यान की अपेक्षा रखती है। इस वक्रोक्ति के प्रयोग का क्या रहस्य है? इस शंका के उत्तर में भीम का कथन है कि यहाँ व्याख्यान के द्वारा की गई सन्देह की निवृत्ति ही व्याकरण शास्त्रोपयोगिनी है, अन्य प्रमाणों से की गई सन्देह की 'निवृत्ति व्याकरणशास्त्रोपयोगिनी नहीं है।'

इस प्रथम परिभाषा की ग्रन्थि के खोलने में आचार्य भीम ने परिभाषार्थ मंजरी में अपनी अद्भुत विद्वत्ता का परिचय ही नहीं दिया अपितु इस विषय से सम्बन्धित जितनी भी जिज्ञासाएँ हो सकती हैं, उनका भी इन्होंने सुचारू रूप से साङ्गोपाङ्ग विवेचन करके शमन किया है[2]।

---

1. परिभाषेन्दुशेखर, प्रथम परिभाषा एवं प्र. शो. प्र., पृ.=52.
2. द्रष्टव्य, प्र. शो. प्र., पृ.=52 से 60 तक. (इण् ग्रहणानि परेण णकारेण अण् ग्रहणानि पूर्वेण अणुदित्सवर्णस्येत्येकं वर्जयित्वा)

आचार्य भीम ने अपनी परिभाषार्थमंजरी में तुलना प्रणाली को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हुए अपनी टीका में यथोद्देश और कार्यकाल पक्ष की भी तुलना की है, यथा– व्याकरण शास्त्र में संज्ञा एवं परिभाषा के विषय में विद्यमान दो पक्ष–

"यथोद्देशं संज्ञापरिभाषम्॥2॥"

(अर्थात् संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र यथोद्देश होते हैं।)

'कार्यकालं संज्ञा परिभाषम्॥3॥[1]"

(अर्थात् संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र कार्यकाल होते है।)

अभिप्राय यह है कि संज्ञासूत्रों (वृद्धिरादैच्– 1/1/1 आदि) और परिभाषासूत्रों (तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य - 1/1/66) आदि द्वारा विधि सूत्रों (इको यणचि 7/1/77 आदि) के उपकार के विषय में शब्द शास्त्र में दो पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। वे पक्ष हैं– 1. यथोद्देश पक्ष एवं 2. कार्यकाल पक्ष।

1. उपदेश की व्याख्या करते हुए भीम ने इसका अर्थ उच्चारण काल कहा है। (तस्मिन्निति सूत्रे निर्दिष्ट ग्रहणेनोपशब्दपूर्वकस्यैव दिशेरुच्चारणार्थकत्वमित्यस्य व्यभिचारादिति भावः)

अष्टाध्यायी के जिस अध्याय, पाद या क्रम में सूत्रोपदेश किया गया हो, वहीं पर संज्ञासूत्रों तथा परिभाषाओं का वाक्यार्थ बोध हो जाता है। संज्ञा शब्द का शक्तिग्रह किस अर्थ में है और परिभाषासूत्र का क्या अर्थ है? इस बात का पता उपदेश देश में ही हो जाता है और उसी के द्वारा व्याकरण में व्यवहार किया जाता है। अर्थात् पाणिनि द्वारा जिस सूत्र का जहाँ उच्चारण किया गया है, वह देश ही उच्चारण काल है।

---

1. प्र. शो. प्र., पृ.=64

कैयटादि प्राचीनाचार्यों के मतानुसार संज्ञा और परिभाषासूत्रों का वाक्यार्थबोध यथोद्देश पक्ष में स्वदेश में होता है। अतः "मृजेर्वृद्धिः" "इको यणचि" इत्यादि सूत्रों के लिए संज्ञा और परिभाषा के वाक्यार्थबोध की पुनः आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि छात्र रूपदेश के समय ही संज्ञा और परिभाषा के अर्थों का सुसम्यग् प्रकारेण अभ्यास कर लेता है[1]।

तरह संज्ञासूत्र और परिभाषासूत्र का विधि सूत्र के साथ सम्मिलित रूपेण लक्ष्यसंस्कारक बोध होता है। संज्ञासूत्रार्थ तथा परिभाषासूत्रार्थ के साथ-साथ हुआ विधिसूत्रार्थ बोध वाक्यैक वाक्यता है।

कार्यकाल का कार्यस्य कालः (देशः) एव कालो यस्य तत् कार्यकालम्। ऐसा पराभिमत अर्थ नहीं अपितु नागेश के अनुसार- कार्येण काल्यते स्वसन्निधिं प्राप्यत इति कार्यकालः अर्थात् कार्यशास्त्र द्वारा अपने (कार्यशास्त्र) के अन्वित निश्चित अर्थ के बोध के लिए अपने में रहने वाले चिह्न से चिह्नित परिभाषाओं का आक्षेप होता है- ऐसा अर्थ है। इसे दूंसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि कार्य के द्वारा संज्ञा एवं परिभाषासूत्रों का विधिदेश में ले जाना ही कार्य काल है। इसी कारण कहा जाता है कि कार्यकाल पक्ष में संज्ञा एवं परिभाषा सूत्रों का वाक्यार्थ बोध विधिदेश में होता है[2]।

इस तरह यथोद्देश पक्ष में परिभाषा देश में और कार्यकाल पक्ष में विधिदेश में- पदैक वाक्यतामूलक लक्ष्यसंस्कारक वाक्यार्थ बोध होने से दोनों ही पक्षों में अन्तर स्पष्ट है। इस प्रकार भीम प्राचीनाचार्यों के मतों के उपस्थापनानन्तर इन देनों परिभाषाओं के सम्बन्ध में अपने विचार उपसंहार रूपेण इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं[3] कि-

1. अत्रायं प्राचीनं मते निष्कर्षः। यथोद्देशे संज्ञा परिभाषयोः स्वदेशे वाक्यार्थबोधोत्तरं विधिप्रदेश उपस्थित्या वाक्यैकवाक्यतायां तत्रैव लक्ष्य संस्कारः॥ प्र.शो.प्र., पृ. =64.
2. कार्यकालपक्षे तु स्वदेशे वाक्यार्थं विनैव तत्रोपस्थितौ पदैकवाक्यतयाऽन्वये लक्ष्यसंस्कारः - वही, पृ.=64.
3. इत्युक्तं वृद्धैस्तत्र दिगर्थस्तु मदुक्त एवेति न तद्विरोध इति प्र.शो.प्र. 64

बोधःस्वदेशे लक्ष्याणामपरत्र च संस्कृतिः।
वाक्यैकवाक्यता ह्याद्ये स च मंदोपकारकः॥[1]

अर्थात् यथोद्देश काल में तो स्वदेश में ही लक्ष्यों का बोध हो जाता है किन्तु दूसरे पक्ष में अर्थात् कार्यकाल में संस्कार बना रहता है और वहाँ वाक्यैकवाक्यता अर्थात् शास्त्र और संज्ञा के वाक्यों का एकत्र उपस्थित होना मंदबुद्धि वालों का उपकारक होता है। यथा- 'वृद्धिरादैच्-1/1/1' को वृद्धिरेचि- 6/1/88 के 'वृद्धि' पद के साथ जोड़कर 'वृद्धिपदाभिन्ना आदैचः स्युः'- यह अर्थबोध प्राप्त होता है। इसी प्रकार 'एचि' के साथ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य 1/1/66 सूत्र को जोड़कर अव्यवहितोच्चारिते 'एचि' यह बोधप्राप्त होता है। यह स्थिति सारे के सारे विधिसूत्रों में होती है- बस यही कार्यकाल पक्ष कहलाता है।

यथोद्देश पक्ष में संज्ञा तथा परिभाषाएँ स्वदेश में ही अर्थात् अपने उच्चारण स्थान को न छोड़ती हुई अपने अपने अर्थ (वाक्यार्थ) को जो विधि शास्त्र द्वारा अपेक्षित है स्वलिङ् लिङ्गित विधिशास्त्र में अर्पित कर देती हैं। संज्ञा शास्त्र एवं परिभाषा शास्त्र विधिशास्त्र में उपस्थित नहीं होते हैं। ऐसी एकवाक्यता को ही वाक्यैकवाक्यता कहते हैं।

कार्यकालपक्ष में तो संज्ञाएँ और परिभाषाएँ स्वलिङ्गलिङ्गित विधि शास्त्र में साक्षात् रूपेण उपस्थित हो जाती हैं (वाक्यार्थ के विना ही।) उनकी उपस्थिति के उपरांत ही विधिवाक्यों का पूर्णरूपेण निश्चयात्मक बोध होता है[2]। यहाँ भी एकवाक्यता होती है, जिसे पदैक वाक्यता कहते हैं। परिभाषा के सूत्रों के विषय में उक्त पक्षों की व्याख्या नागेश प्रभृति प्राचीन वैयाकरण भिन्न-भिन्न प्रकारों से करते हैं। ये विद्वान् परिभाषासूत्रों को दोनों ही पक्षों में पदैक वाक्यता ही स्वीकार करते हैं। इनके मत के

---

1. संज्ञानां परिभाषाणामेषा प्राचीन पद्धतिः।
यथोद्देशे नवीनानां स्वदेशे ह्यर्थ निर्णयः 11 वही, पृ.=83.
2. विधि प्रदेशे वाक्यार्थः कार्यकाले पदैः सह।
भाष्यान्तरस्य दुष्टत्वाद्विशेषज्ञोपकारका॥- प्र. शो. प्र., पृ.=84.

अनुसार 'शाब्दीह्याकांक्षा शब्देनैव प्रपूर्यते' इस नियम के रहते परिभाषा सूत्र के अर्थ का स्मरण कर विधिदेश में लक्ष्यसंस्कारक शाब्दबोध मानना सर्वतोभावेन असंगत है। क्योंकि परिभाषा सूत्र के अर्थ बोध के समय छात्र यह जिज्ञासा अवश्यमेव करेगा कि गुरु जी सप्तमी निर्देश कहा है।? परिभाषा देश में ही गुरुजी द्वारा 'अचि' आदि सप्तम्यन्त पदों से घटित सूत्रों का उपस्थापन कर दिया जाता है और छात्र वहीं दोनों को मिलाकर अर्थबोध प्राप्त कर लेता है। यथा–

'अव्यवहितोच्चारिते अचि।' इससे सिद्ध है कि यथोद्देश पक्ष में भी पदैकवाक्यता ही हुई। कार्यकालपक्ष में तो उभयमत सिद्ध पदैक वाक्यता है ही। कार्यकालपक्ष में अपने विधेय का स्मरण कराकर पदैकवाक्यता होती है। इससे उस उस विधिशास्त्र में उस- उस परिभाषा की सन्निधि का बोध होने पर भी वह-वह परिभाषा विधिशास्त्र के समान देश वाली नहीं हो जाती। 'षष्ठी स्थाने योगः' (1/1/49) इस सूत्र के भाष्य में प्रदीप दृष्टान्त दिया गया है कि अधिकारी (परिभाषा) नाम त्रिविधः, कश्चिदेकदेशस्थः एव सर्वशास्त्रमभिज्वलयति यथा प्रदीपः सुप्रज्वलितः सर्वं वेश्मभिज्वलयति से उसका अपना ही देश (उच्चारण देश रहता है। जैसे दीपक की लौ सारे गृह में व्याप्त होने पर भी दीप का अपना ही स्थान रहता है। अथवा व्यापारी लोग व्यवहारार्थ अनेक देशों में जाते रहते हैं किन्तु उन व्यापारियों को अभिजनदेश जहाँ वे पहले रहते थे) से ही व्यपदिष्ट किया जाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि 'सकृदुच्चरितः शब्दः सकृदर्थं गमयति' यह सिद्धान्त होने से परिभाषा (सूत्र के अपेक्षित अंग की प्रत्येक विधिसूत्र के साथ अर्थबोध के लिए आवृत्ति करनी पड़ती है)।

इन दोनों ही पक्षों का लक्ष्य अनुरोध से भाष्यकार ने आश्रयण किया है। अतः दोनों प्रमाण हैं। यद्यपि कार्यकाल पक्ष मुख्य है और यथोद्देश्य अमुख्य (गौण) इसका आश्रयण होने से 'आगच्छतम् अग्नी' यहाँ प्लुत को बाधकर 'ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्-1/1/11' (ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन की प्रगृह्य संज्ञा हो।) इससे प्रगृह्य संज्ञा

होने पर उसके स्थान पर प्लुत होने पर भी प्लुत दूराद्धूते च-8/2/84 (दूर से संबोधन में प्रयुक्तवाक्य की टि को प्लुत हो विकल्प से) के असिद्ध होने से 'ई' द्विमात्र ही है। इस बुद्धि से पुनः प्रगृह्य संज्ञा हो जाती है और 'अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिक:- 8/4/57' से अनुनासिक नहीं होता। यदि यहाँ कार्यकालपक्ष का आश्रयण किया जाए तो 'ईदूदेद् द्विवचन प्रगृह्यम्' 1/1/11 इस संज्ञाशास्त्र की 'अणोऽप्रगृह्यास्यानुनासिक:' (8/4/57) के साथ एक वाक्यता हो जाने से प्लुत की अपेक्षा इसमें पर बुद्धि होने से प्लुत असिद्ध नहीं होगा, द्विमात्रत्वाभाव में प्रगृह्य संज्ञा न होने से अनुनासिकत्व की प्राप्ति होगी।

इस मत में कार्यकालपक्ष में विधिदेश में और यथोद्देश पक्ष में परिभाषोदेश में पदैकवाक्यता मूलक लक्ष्य संस्कारवाक्यार्थ बोध होने से दोनों ही पक्षों में एक अन्तर स्पष्टरूपेण दृष्टिगत होता है। इन दोनों में महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि यथोद्देश पक्ष में त्रिपादीस्थ शास्त्रों का परिभाषा देश में आकर्षण नहीं हो पाता, क्योंकि सपादसप्ताध्यायी की दृष्टि में त्रिपादी असिद्ध हो जाती है।

कार्यकाल पक्ष में विधिदेश में एक वाक्यता के साधक त्रिपादीदेश में भी परिभाषा सूत्र का आकर्षण हो जाता है। यह अदृष्टपिशाचन्याय से अर्थात्- अन्य लोगों के द्वारा पिशाच के दृष्ट न होने पर भी जैसे पिशाच के द्वारा अन्य लोग दृष्ट हो जाते हैं ठीक उसी भांति त्रिपादी-प्रदेशों में भी परिभाषासूत्रों का आकर्षण हो जाता है।

संज्ञाशास्त्र का लक्ष्यसंस्कारक अर्थबोध तो दोनों ही पक्षों में स्वदेश में ही होता है। लेकिन परिभाषा के समान यह स्वदेश में विधिसूत्र को आकृष्ट नहीं कर पाता। अत एव संज्ञासूत्रों का लक्ष्य संस्कारक अर्थबोध विधिदेश में ही होता है, चाहे कार्यकाल पक्ष हो चाहे यथोद्देश पक्ष। केवलमात्र शक्तिग्रह में उपेक्षा और अपेक्षा बुद्धि के आधार पर कार्यकाल और यथोद्देश पक्ष स्वीकृत किये जाते हैं।

प्रस्तुत शास्त्र में संज्ञाओं और परिभाषाओं के सम्बन्ध में यथोद्देश

और कार्यकाल- ये दो पक्ष सर्वमान्य हैं किन्तु प्रत्येक संज्ञा अथवा परिभाषा के विषय में ये दो पक्ष नहीं माने जा सकते हैं।

जिन आवडाराधिकारीय संज्ञाशास्त्रों में केवल यथोद्देश पक्ष ही की मान्यता है, उनका भी लक्ष्य संस्कारक बोध विधि देश में ही होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि परिभाषा शास्त्रों तथा आकडाराधिकारीय संज्ञाशास्त्रों की पूर्वत्व परत्व व्यवस्था स्वदेशकृत है तथा अन्य संज्ञाशास्त्रों की, लक्ष्य संस्कारक देशकृत होती है[1]।

संक्षिप्त रूप से प्राचीनों के मतानुसार यथोद्देश पक्ष में पाठ देश और कार्यकाल पक्ष में विधिदेश मुख्य होता है।

संज्ञासूत्रों के विषय में नवीन मत के अनुसार यथोद्देशपक्ष उसी तरह प्रतीत होता है जैसा कि प्राचीनों को अभिमत है[1]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अपनी व्याख्या शैली में आचार्य भीम ने प्राचीन तथा अर्वाचीन विषय सामग्री के प्रस्तुतीकरण के साथ ही साथ बहुमुखी विधि को भी अपनाया है अर्थात् एक ही समय में अनेकों पक्षों को लेकर किसी एक निश्चित उद्देश्य की और प्रस्थान करते हुए अपेक्षा और उपेक्षा बुद्धि के द्वारा यथोद्देश और कार्यकाल पक्ष को सुस्पष्ट किया है[2]।

इनकी व्याख्याशैली में समीक्षा प्रणाली का उपयोग भी पर्याप्त मात्रा में दृष्टिगोचर होता है। अपनी समीक्षा में इन्होंने 'अमरकोषविधि[3]', आगमन निगमन विधि, प्रयोग विधि, तुलना विधि[4] तथा प्रसंग

---

1. यथोद्देशे तु संज्ञानां प्राचीनोक्तेरभिन्नता।
   विशेषज्ञोपकारस्तु विशेषोभाष्यकृन्मता॥- प्र. शो. प्र., पृ.84.
2. प्र. शो. प्र., परि. 2-3.
3. शिवो मोक्षे महादेवे कीलके ग्रहयोगयोरिति कोशबलेन शिवशब्दस्य मोक्षपरत्वे तु मोक्षदातृत्वमपि तस्य बोध्यम्- वही, पृ.=39.
4. एवं सति सूत्र वार्त्तिक भाष्याणामेकवाक्यता संपन्ना भवति..प्र.शो.प्र., पृ.60.

विधि[1] का भी आवश्यकतानुसार समावेश किया है।

आचार्य भीम ने अपनी 'परिभाषार्थमंजरी' में व्यास प्रणाली का प्रयोग इस प्रकार किया है कि अपनी बात को प्रमाणित करने के लिए इन्होंने वैदिक पौराणिक, ऐतिहासिक तथा अन्य प्रत्येक सम्बन्धित प्रसंगों का उल्लेख किया है[2]।

आचार्य भीम ने अपनी व्याख्या शैली में व्याकरण की परम्परागत विधि को भी अपनाते हुए अधिकतर उदाहरण सिद्धान्तकौमुदी से ही देने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य भीम ने अपनी व्याख्या शैली में सरल से जटिल की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर, विशिष्ट से सामान्य की ओर, विश्लेषण से संश्लेषण की ओर, अनुभवजन्य से विवेकयुक्त की ओर इन शिक्षण सूत्रों का उपयोग करते हुए परिभाषेन्दुशेखर की व्याख्या की है।

आचार्य भीम ने 'परिभाषार्थमंजरी' में अर्थ को बोधगम्य बनाने के लिए विभिन्न न्यायों का समाश्रयण भी किया है। वस्तुतः ये न्याय व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों में समुपलब्ध तो होते ही हैं किन्तु आचार्य भीम का यह वैशिष्ट्य है कि इन्होंने परिभाषाओं की टीका में परिभाषाओं को हृदयङ्गम करवाने के लिए ही यत्र तत्र अपने ग्रन्थ में कुछ लौकिक न्याय और कुछ शास्त्रीय न्यायों का प्रयोग किया है। यथा-

---

1. कर्पूर धामधवलं कनकाङ्ग.... त्रिनेत्रशशिशेखर मण्डितास्यम्.. इति ब्रह्माण्डपुराणेन नृहरिरूपस्य विष्णीः शशिशेखरत्वस्यापि बोधनेन परिभाषा इन्दुः सशेखरे यस्येत्यर्थक परिभाषेन्दुशेखरमिति- वही, पृ. 40-42.
2. सर्वः, शर्वः शिवः स्थाणुरिति महाभारतोक्ते नृंसिंह नामानं विष्णुमित्यर्थः- वही, पृ.=40.
   वेदेषु स पुराणेषु गीयते पुरषोत्तमः- वही, पृ.=41.
   विशेष नामानि ददौ स्वकीयान्यपि केशवः इति ब्रह्माण्ड वामन स्कन्द ब्रह्मपुराणैर्मुख्य शिवादिपदवाच्यताया विष्णावेव प्रतिबन्ध परिकरत्वात्. वही, पृ. 42.

1. एकदेश विकृतमनन्यवदिति
2. लक्ष्येलक्षणस्येति न्यायेन
3. गौणमुख्यन्यायेन
4. सभास्थिति न्यायेन
5. व्याघ्र दंष्ट्रापत्तिः न्याय
6. सकृद् गति न्याय
7. गुरुवत् गुरुपुत्र इति न्याय
8. सर्वे सर्व पदादेशा
9. मण्डूकप्लुतिन्याय
10. देहलीदीपकन्याय
11. सिंहावलोकनन्याय
12. पदार्थः पदार्थेऽन्वेति इत्यादि[1]

आचार्य भीम की व्याख्या शैली का सर्वोत्तम गुण इनकी विवेचनात्मक पद्धति है। इनका प्रतिपादन सुष्ठु, सम्यक् तथा तथ्यों (शास्त्रीय ग्रन्थों) पर आधारित है[2]। किसी भी परिभाषा का विवेचन प्रस्तुत करते समय आचार्य भीम प्रायः सर्वप्रथम उसके अर्थ का निर्देश करते हैं[3]– तदुपरान्त

---

1. विस्तृत विवेचन के लिए द्रष्टव्य– प्र. शो. प्र. में समुद्धृत लौकिक न्याय और कुछ शास्त्रीय न्याय।
2. मूलविरोधेन तत्रत्य गदाविरोधेन चात्रत्य सामान्य विवरणस्य प्राचीनानुसारित्वात् प्र. शो. प्र., पृ.=80.
3. सर्वः शर्वः शिवः स्थाणु... वही, पृ.=38.
   विशेष नामानि ददौ स्वकीयान्यपि केशवः... विष्णावेव प्रतिबन्ध परिकरत्वात्, वही, पृ.=42.

उस परिभाषा सम्बन्धी जितने भी प्रकार के विवाद व्याकरण के ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं, उनकी विवेचनात्मक समीक्षा करने के उपरान्त उसके पूर्वपक्ष का सम्यक् विवेचन करते हुए निष्कर्ष में सिद्धांत पक्ष का उपस्थापन भी करते हैं[1]।

इस प्रकार इनका विवेचन युक्तिसंगत है। इनकी भाषा में अनुप्रासालङ्कार प्रधान है[2]। प्रसादगुण विशेष रूपेण पल्लवित एवं पुष्पित हुआ है। एवमेव ओज गुण का भी बाहुल्य है। यह व्याकरण शास्त्र की पारिभाषिक एवं लाक्षणिक शब्दावली से भी सुपरिचित थे तभी उन्होंने अपनी टीका में सर्वत्र पारिभाषिक एवं लाक्षणिक शब्दावली का प्रयोग किया है। यथा-

1. अनेकान्त- एकान्त का अर्थ अवयव है तथा अनेकान्त का अर्थ अनवयव है।

2. यथोद्देश- सूत्रों के उपदेश देश का अतिक्रमण न करना।

3. कार्यकाल- कार्य द्वारा संज्ञा सूत्रों एवं परिभाषा सूत्रों का।

4. भाव्यमान- जो किसी के स्थान पर हो (विधीयमान)

5. अनुबन्ध- जिनकी 'इत्' संज्ञा होती है अथवा जो इत् संज्ञा के योग्य होते हैं वे अनुबन्ध कहे जाते हैं। यथा- अण्, अञ् आदि में

---

1. कैयटानुयायिनः यत्त्वणुदित्सवर्णस्येति परेणाण् ग्रहणे ज्ञापकमुर्ऋदिति तपरकरणं....। तत्र शंकैव तावन्न संगच्छते, सूत्रकारमते ऋकार लृकारयोः सावर्ण्याभावेन....। वार्तिक कृन्मते तत्संभवेपि..... द्र. प्र. शो. प्र., पृ=52-58.
2. (क) मात्सर्यमुत्सार्यविचार्य्यमार्यैरिति।
   (ख) गिरिगह्वर गुहान्धतमः प्रक्षेपः।
   (ग) कुत्सितकर्दमह्रदोन्मज्जन प्रसङ्गादिति।
   (घ) शङ्कापङ्ककलङ्कलेश।
   (ङ) विदुषो विदुषो विदां कुर्वन्तु।

क्रमशः ण्, ञ् की इत्संज्ञा 'हलन्त्यम्' सूत्र से होती है। अतः ये अनुबन्ध कहे जाते हैं।

6. कार्यी- यथा इकार के स्थान पर यण् होता है। अतः इकार यण् का कार्यी है। अर्थात् जिसके स्थान पर कोई कार्य किया जाए उसे कार्यी करते हैं।

7. व्यपदेशिवद्भाव अमुख्य में मुख्यवत् व्यवहार। यथा अत इञ् सूत्र से अदन्त प्रातिपदिक से इञ् प्रत्यय होता है। 'दक्ष' प्रातिपदिक तो मुख्य अदन्त है लेकिन जहाँ अकार में ही 'इञ्' किया जाता है। अतः अकार में अदन्तत्व व्यपदेशिवद्भाव से लाया जाता है।

8. ग्रहणे- बोध, गह्यते बोध्यते येन तद् ग्रहणम् अथवा ग्रहणं बोधनम्।

9. निर्दिश्यमान- षष्ठी की प्रकृति से जिसकी प्राथमिक उपस्थिति हो। यथा जरायाजरसन्यतरस्याम् में 'जरा' शब्द से पूर्व 'जरा' इस आनुपूर्वी की उपस्थिति होती है तदुपरान्त तदन्तविधि के द्वारा 'जरा' शब्दान्त 'निर्जर' की प्राप्ति, किन्तु निर्दिश्यमान होने से 'जर' शब्द के स्थान पर ही 'जरस्' आदेश होता है।

10. आदेश- किसी शब्द को हटाकर कोई दूसरा शब्द उसके स्थान पर आ जाए। यथा 'इ' को यकारादि आदेश।

11. आगम- जो किसी के स्थान पर उसको हटा कर नहीं बल्कि उसका अवयव (अङ्ग) बनकर (मित्रवत्) आते हैं।

इस प्रकार इन्होंने अन्यतरस्याम्, उदात्त, प्रकृतिभाव, प्रयत्न, प्रातिपदिक आदि व्याकरण की पारिभाषिक एवं लाक्षणिक शब्दावली का प्रयोग किया है।

इस नीरस, गहन शब्द प्रक्रिया शुष्क चर्चा परिपूर्ण व्याकरण में भी आचार्य भीम ने अपनी परिभाषार्थमंजरी टीका में सरस, व्याकरणशास्त्र

के ग्रन्थों में अदृष्टपूर्व, वाग्विलास संजोये हुए हैं। यथा-

(क) व्याघ्र दंष्ट्रापत्तिः-

(ख) गिरिगह्वरगुहान्धतमः प्रक्षेपः।

(ग) घटायोन्मीलितं चक्षुः

(घ) मर्कट मुष्टि तुल्यत्वपातात्।

(ङ) मात्सर्यमुत्सार्यविचार्य्यमार्य्यैरिति।

(च) कुत्सित कर्दमह्रदोन्मज्जन प्रसङ्गादिति।

(छ) दत्तजलांजलित्वादित्यवधेयं सुधिभिरितिः।

(ज) प्रदीपनिर्वापकफूत्कारनिसृतदूषणरजः कणपूरित नयना आन्ध्यं प्रापिताः।

(झ) प्रथमद्वितीयदूषणयोर्गर्भस्राबेणैव गतत्वात्।

(न) कोहलनिर्भर प्रशमितः इत्यादि[1]।

इन्होंने अपनी टीका 'परिभाषार्थमंजरी' में प्राचीन वैयाकरणों के मन्तव्यों का उल्लेख करते हुए पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्त पक्ष का विवेचन अपनी तरह की जिस व्याख्या पद्धति से किया है। वह भी अवलोकनीय है[2]।

---

1. विस्तृत विवेचन के लिए द्र, प्र. शो. प्र. के परिशिष्ट में समुद्धृत सहृदय-हृदयाह्लादक वाक्- विलास।
2. तस्मिन्नति सूत्रे निर्दिष्ट ग्रहणेनीपशब्दपूर्वकस्यैव प्राचीनमते निष्कर्षः नियमकल्पनाया अन्याय्यत्वात्... तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् तपरस्य तत्कालस्य नाज्झलौ प्रत्येतिन्यासे सूत्रकारवार्त्तिककारयोस्तात्पर्यकल्पनेनादोषात्। - द्र., प्र.शो.प्र., पृ.=52-61

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आचार्य भीम की परिभाषार्थमंजरी रम्यता, पूर्णता, सूक्ष्मनिरीक्षण, भावगाम्भीर्यादि गुणों से युक्त, सशक्त एवं परिमार्जित व्याख्या शैली वाला ग्रन्थरत्न है। इसमें आचार्य भीम ने विषय का प्रस्तुतीकरण बड़ी कुशलता, संकल्प की दृढता, संलग्नता, यथोचित पूर्वज्ञान, ज्ञान के प्रति उत्सुकता तथा अनुभव और विचार चक्र से अभिप्रेरित होकर किया है।, जिस कारण भारतीय संस्कृति की भाषा संस्कृत ने उनके शृंखलावद्ध लेखन को गति और शक्ति प्रदान की है। इनके शृंखलाबद्ध लेखन में एक त्रुटि अवश्येव दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि इन्होंने अति सरल लगभग साठ परिभाषाओं को अत्यन्त सरल समझकर उनकी व्याख्या नहीं की है। किसी किसी परिभाषा को तो आचार्य भीम इतनी लम्बी व्याख्या कर देते हैं कि उसे हृदयङ्गम करना अत्यन्त कठिन हो जाता है[1]।

यह सब होने के उपरान्त भी आचार्य भीम अपनी 'परिभाषार्थमंजरी' में परिभाषाओं का सर्वाङ्गीण विवेचन प्रस्तुत करने में सर्वतोभावेन समर्थ सिद्ध हुए हैं।

1. द्र. परिभाषा-50, 103.

परिशिष्ट-1

भीमबिरचित परिभाषार्थमञ्जरी में समुद्धृत कुछ सरस सहृदय-हृदयाह्लादक वाग् विलासों का दिग्दर्शन-

(इस नीरस गहनशब्दप्रक्रिया शुष्कचर्चापरिपूर्ण भीमविरचित परिभाषार्थमञ्जरी में कुछ सरस व्याकरणशास्त्र ग्रन्थों में अदृष्टपूर्व वाग्विलास नितान्तसहृदयहृदयाह्लादक पद्धति से इस परिभाषार्थमञ्जरी में समुद्धृत किए गए हैं। उनमें से कुछ को संक्षिप्त रूप से प्रदर्शित किया जा रहा है। विस्तार से अवलोकन के लिए तो परिभाषार्थमञ्जरी ही द्रष्टव्य है।)

1. व्याघ्रदंष्ट्रापत्तिः-

(क्रमप्राप्तमातुलकन्या परिणयना परिणयनविचार पर भट्टपाद-ग्रन्थव्याघ्रदंष्ट्रापत्तिः।)

2. गिरिगह्वर गुहान्धतमः प्रक्षेपः

ननु न शिष्टाचारः साक्षादनुमापकः किन्तु (मध्ये स्मृति कल्पनया श्रुत्यनुमापकः। अन्यथा पूर्वोक्त भट्टपाद- व्याकोपगिरिगह्वरगुहान्धतमः प्रक्षेपः)।

3. घटायोन्मीलितं चक्षुः-

(अनेन ग्रन्थकरणे स्वेष्टदेवताऽनुग्रहात्स्वस्य सामर्थ्यमस्तीति सूचितम्। घटायोन्मीलितं चक्षुरिति न्यायेन परार्थोऽपि भवत्वित्याह)

4. दत्तजलाञ्जलित्वापत्तिः-

(बोधानुपयोगित्वे जगत्सकलकृत्स्नादिभ्योपि बोधो न स्यादिति दूषणं दत्तजलाञ्जलित्वमापादितम्।)

(त्वदुक्त कल्पनाया दत्तजलांजलित्वादित्यवधेयं सुधिभिरिति दिक्।

(शब्दरत्नादि भट्टग्रन्थापर्यालोचनमूलकं दत्तजलांजलित्वमापादितमिति दिक्।

5. मात्सर्यमुत्सार्यविचार्य्यमार्यैः

(क) एवमेव सर्वत्रार्थ संज्ञाकृतवहिरंग ग्रन्थायोजयितुं शक्या

इति मात्सर्यमुत्सार्यसुधिभिरु ह्यम्।

(ख) एवमेव च मूलदूषणं तु दूषकत्वस्वभावेनैव न युक्तेति मदुक्तिसंक्षेपमात्रांशे मान्यामात्सर्यविचारयत्विति दिक्।

6. सभास्थितिः

(तत्सूत्रस्य सभास्थितिन्यायेन प्रत्याख्यानेनादोषात्।)

7. शेखरोप्युज्जीवितेत्यलम्

(अत एवोपसर्गादृतीनेति शेखरोप्युज्जीवितेत्यलं ग्रन्थाशयमजानतो दूषणवृकगणंभीषणेनेति दिक्।)

8. वैरुप्यग्रहदंष्ट्राग्रस्तत्त्वात्

(तत्रत्य वार्त्तिकेन तु साजात्यातिदेशेति वैरुप्यग्रह दंष्ट्राग्रस्तत्वात्।)

9. कुत्सितयष्टिमवलम्व्य

(यत्तु कैयटानुयायिभिर्यथोद्देशपक्षकुत्सितयष्टिमवलम्व्येदं भाष्यं व्याख्यातम्।)

10. भाष्यविरोधभिक्षमंगी चक्रुः करतले

(भावघञन्तोपदेशपदोल्लेखनभाष्यविरोधभिक्षमंगी चक्रुः करतले।)

11. गङ्गाजलावसेकः

(न च सर्वे सर्वपदादेशा इति न्यायेन शी इत्यस्य शे इत्यादेशे दोषस्य गंगाजलावसेक इति वाच्यम्।)

12. कुत्सितकर्दमह्रदोन्मज्जनम्

(द्वितीयप्रदूषणोक्तदिशादोषस्य जागरुकत्वेन तस्य कुत्सितकर्द मह्रदोन्मज्जन प्रसङ्गादिति चेन्न।)

13. पर्यालोचनान्धतमः प्रवेशः

(एवञ्च स्वस्य विवरणापर्यालोचनांधतमः प्रवेशो बोधितः।) 96/10

14. मेरुशिखरारुढत्वात्

15. प्रदीपनिर्वापकफूत्कारनिसृतदूषणरजः

प्रदीपनिर्वापकफूत्कारप्रशमितो वेदितव्य इति वदन्तः कैयटानुचराः प्रदीप निर्वापकफुत्कार निसृतदूषणरजः कणपूरितनयना आन्ध्यं प्रापिता इति ध्येयम्।

16. स्वस्थरूप प्रकाशकत्वात्

पाठे दोषलेशादित्याहुस्तन्नं, तस्य स्वज्ञानप्रकाशद्वारास्वस्वरूप प्रकाशकत्वात्।

17. कुठारपातेन छिन्नमिति

(विशेषविषयकत्वरूपकुठारपातेन छिन्नमिति नादरणीयं भाष्यानु-यायिभिः।)

18. दोषदुर्भिक्षेतन्मतमनालोच्य

(तदुक्तदोषदुर्भिक्षेतन्मतमनालोच्य वृथैव दूषयन्तः कथं महत्पदवीं प्रापिताः पंडितैरिति महदाश्चर्य्यम्।)

19 मर्कट मुष्टितुल्यत्वपातात्-

(युक्तिशतैरपि परिभाषाप्रयोजनप्रतिपादकभाष्यविरोधस्त्वया परिहर्त्तुमशक्यत्वेन लघुभांडस्थचणकबद्धमर्कटमुष्टितुल्यत्वपातात्।)

गुणाभावे रूपासिद्धौ ऊठ् ग्रहणमिति विवरणग्रन्थेन लघुभांडस्थितलघु मर्कटबद्धमुष्टिस्थ चणकतुल्यत्वं प्रपितमिति न मत्कृत यत्नमपेक्षते।

20. दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोः

तस्य दृष्टान्तत्वेनोल्लेखोऽनुचित इति चेन्न। दृष्टान्त दार्ष्टान्तिकयोर्वैपरीत्येनादेषात्।

21. कल्पना दुर्भिक्षाः

(उत्तरपदेति निषेधो ना पूर्व इति दूषयन्तः प्रकारान्तरेणसमाधानं कुर्वन्तः कल्पना दुर्भिक्षाः कैय्यटपृष्ठचराः अज्ञानां धपदवीं प्रापिता।)

22. शंकापंककलङ्कलेशः

(तोषसहेति सूत्रस्थ शेखरस्तु प्रौढयेति न क्वचिच्छंकापंक कलङ्कलेशोपीति इति संक्षेपः।)

23. कुकल्पनात्वमिति

(विना जातिग्रहणसार्थक्यस्योपपादयितुमशक्यत्वेन त्वदुक्तकल्पनायाः कुकल्पनात्वमिति दिक्।)

24. गर्भस्त्रावेणैव गतत्वात्

(परिभाषाणामनित्यत्वेन क्वचित्सिद्धाया अप्रवृत्तेरनुवादिका परिभाषेयमिति त्वदुक्त प्रथमद्वितीयदूषणयोर्गर्भस्त्रावेणैव गतत्वात्।)

25. दुराग्रहमूलक

(इति परिभाषास्वीकारो दुराग्रहमूलक इति प्राप्ते ब्रूमः।)

26. विदुषो विदुषो विदां कुर्वन्तु

(अन्यथा तदाश्रयणमसंगतमिति वदेदिति विदुषो विदुषो विदां कुर्वन्तु इति दिक्।)

27. सुमनीषिभिरालोच्यम्

(सूत्रे शेखरे स्पष्टमिति सुमनीषिभिरालोच्यम्।)

28. कोहलनिर्भरः प्रशमितः

(न दोष इति वदताङ् कैय्यटानुयायिनां कोहलनिर्भरः प्रशमितः।)

29. भाष्यानारुढ़मार्गमवलम्ब्य

(भाष्यानारूढमार्गमवलम्ब्य ग्रन्थार्थं चाविज्ञाय दूषणगणावभासं प्रयुञ्जाना आधुनिकतराः प्रत्युक्ता।) द्रष्टव्य प्र.शो.प्र.पृ. 36-409

परिशिष्ट-2

श्री भीमविरचित परिभाषार्थमञ्जरी में समुद्धृत अद्यावधि अनुपलब्ध तथा उपलब्ध ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का निर्देश-

1. गोनर्दी।
2. वृहत्मञ्जूषा।
3. स्मृति।
4. परिभाषेन्दुशेखरम्।
5. कौमुदी (प्रक्रिया कौमुदी)
   (प्रक्रिया कौमुदी व्याख्याता रामचन्द्र का पौत्र विट्ठल।)
6. मनोरमा- (मनोरमाविलासः, हरिदीक्षितगुरुरामाश्रमकृत प्रौढमनोरमा व्याख्यानरूप ग्रन्थ। अद्यावधि अनुपलब्ध अप्रसिद्ध।)
7. भाष्यविवरणम्।
   (अद्यावधि अनुपलब्ध, अज्ञात हरिदीक्षितकृत पातंजल महाभाष्य-व्याख्यान।)
8. महाभारत।
9. विष्णुसहस्रनाम।
10. वेद- (ऋक्, यजु, साम, अथर्व)।
11. पुराण।
12. शब्दरत्न (हरिदीक्षित कृत)।
13. वार्त्तिककार (कात्यायन)।

14. सूत्रकार (आचार्य पाणिनि)।

15. कैय्यट।

16. कौस्तुभः (शब्दकौस्तुभ भट्टोजिदीक्षितकृत)।

17. गदा (वैद्यनाथ पायगुण्डकृत परिभाषेन्दुशेखर की गदा टीका)।

18. दीक्षित (हरिदीक्षित)।

19. उपाध्यायः (कैयट)।

20. प्रदीप (महाभाष्यप्रदीप)।

21. विवरणम् (काशिका विवरणपञ्चिका)।

22. शब्देन्दुशेखरम्- (बृहच्छब्देन्दुशेखर 2. लघुशब्देन्दुशेखरम्- नागेशभट्ट कृत)।

23. माधवः, माधवग्रन्थः (माधवीया धातुवृत्ति)।

24. बृहद् विवरणकार।

25. भास्कर।

26. पश्पशाह्निकभाष्य।

27. नागनाथ।

28. मिश्र।

29. भट्टि।

30. जयमंगला।

31. भाष्यम्।

32. कोश।

33. माधवाचार्य।

34. परिभाषाप्रदीपार्चि (उदयङ्करभट्ट)।
35. लघुयोगसार।
36. मंजूषा।
37. कौस्तुभप्रकाशः।
38. कैयटविवरणम् (कैयटलघुविवरणम्)।
39. कैयटभूषणम्।
40. भट्टोजिदीक्षित।
41. आचार्यः (पाणिनि)।
42. मुनिः (पातंजलि)।
43. भट्ट (नागेशभट्ट)।

परिशिष्ट–3

परिभाषार्थमञ्जरी में पौनः पुन्येन समुद्धृत लौकिकन्याय और कुछ शास्त्रीय न्याय के प्रसङ्ग–

1. एकदेशविकृतमनन्यवदिति।
2. अपवादत्वाभावे अपवादेन मुक्ते।
3. अनवकाशत्वादंतरंगानपि इति न्यायात्।
4. अन्तेरंडाविवाह इति न्यायेन।
5. उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसी।
6. लक्ष्ये लक्षणस्येतिन्यायेन।
7. वृत्धकुमारीन्यायेन।
8. गौणमुख्यन्यायेन।
9. नह्येकमितिन्यायात्।
10. येन नेति न्यायेन।
11. भवत्येवेतिन्यायं।
12. सभास्थितिः न्यायेन।
13. सर्वंवाक्यमिति न्यायेन।
14. व्याघ्र दंष्ट्रापत्तिः न्यायः।
15. घटायोन्मीलितं चक्षुरिति न्यायेन।

16. नाव्यवधानमिति न्यायः।

17. सकृद्गति न्यायः।

18. गुरुवत् गुरुपुत्र इति न्यायः।

19. निषेधाश्च बलीयांस इति न्यायः।

20. मण्डूकप्लुतिन्यायः।

21. देहलोदीपकन्यायः।

22. सिंहावलोकनन्यायः।

23. प्रतिविधानं च गुण आवर्तनीय इति न्यायेन।

24. रथकाराधिकरणन्यायेन।

25. अनन्तरस्येति न्यायेन।

26. शब्दान्तरस्येति न्यायेन।

27. विकारकृतलक्ष्यभेदो नाश्रीयते।

28. उभयत्रान्वयो न्यायः।

29. सर्वेसर्वपदादेशा इति न्यायेन।

30. यदागम इति न्यायेन।

31. पाठक्रमादर्थक्रमोबलीयानिति न्यायः।

32. पदार्थः पदार्थेऽन्वेति न तदेकदेशे।

33. असंशयं दाशरथेर्नमोक्षयसे इति न्यायेन।

34. शब्दान्तरस्य शब्दान्तराच्छब्दान्तरे चेति प्रपंचः।

द्रष्टव्य प्र.शो. प्रबन्ध पृ. संख्या 36–409।

परिशिष्ट-4

1. भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी में प्रयुक्त कुछ पाणिनिसूत्रों की अकारादि क्रम से अनुक्रमणिका:-

क्र.	सूत्र	पा.सू.सं.
1.	अकः सवर्णे दीर्घः	6/1/101
2.	अङ्गस्य	6/4/1
3.	अचः परस्मिन्पूर्वविधो	1/1/57
4.	अचिश्नुधातुभ्रुवांय्वोरियङुवङौ	6/4/77
5.	अचोञ्णिति	7/2/115
6.	अचो रहाभ्यां द्वे	8/4/46
7.	अजादे द्वितीयस्य	6/1/2
8.	अजाद्यतष्टाप्	4/1/4
9.	अणिनुणः	5/4/15
10.	अनुदित्सवर्णस्यचाप्रत्ययः	1/1/69
11.	अणोऽप्रगृह्यस्यानुनासिकः	8/4/57
12.	अतश्च	4/1/177
13.	अतो गुणे	6/1/197
14.	अतोऽम्	7/1/24
15.	अदसोमात्	1/1/12

16.	अदसोऽसेर्दादुदोमः	8/2/80
17.	अदेङ्गुणः	1/1/2
18.	अनचि च	8/4/47
19.	अनेकाल् शित्सर्वस्य	1/1/55
20.	अन्तादिवच्च	6/1/85
21.	अन्तोऽवत्या	6/1/220
22.	अन्यपदार्थे च संज्ञायाम्	2/1/21
23.	अप्रत्ययात्	3/3/102
24.	अभिविधौभाव इनुण्	3/3/44
25.	अमिपूर्वः	6/1/107
26.	अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्	1/2/45
27.	अलोन्त्यस्य	1/1/52
28.	अल्लोपोऽनः	6/4/134
29.	अवङ्स्फोटायनस्य	6/1/123
30.	अष्टभ्य औश्	7/1/21
31.	अस्यच्वौ	7/4/32
32.	आकडारादेकासंज्ञा	1/4/1
33.	आतो ङितः	7/2/81
34.	आदेः परस्य	1/1/54
35.	आदे च उपदेशेऽशिति	6/1/45
36.	आदेश प्रत्यययोः	8/3/59

37.	आद् गुणः	6/1/87
38.	आने मुक्	7/2/82
39.	आन्महतः समा.	6/3/46
40.	आपप्युषामीत्	7/4/55
41.	आयादय आर्धधातुके	3/1/31
42.	आर्धधातुकस्येड् वलादेः	7/2/35
43.	आर्धधातुके	2/4/35
44.	इकोगुणवृद्धौ	1/1/3
45.	इको यणचि	6/1/77
46.	इग्यणः सम्प्रसारणम्	1/1/45
47.	इदुदुपधस्य चाप्रत्ययस्य	8/3/41
48.	इद्दरिद्रस्य	6/4/114
49.	इदूतौ च सप्तम्यर्थे	1/1/19
50.	ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्	1/1/11
51.	उगवादिभ्यो यत्	5/1/2
52.	उगितश्च	4/1/6
53.	उगितश्च	6/3/45
54.	उगिदचांसर्वनामस्थानेऽधातो	7/1/70
55.	उञः	1/1/17
56.	उञि च पदे	8/3/21
57.	उत्करादिभ्यश्छः	4/2/90

58.	उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य	8/4/61
59.	उदात्तयणो हलपूर्वात्	6/1/174
60.	उपपद मतिङ	2/2/19
61.	उपसर्गस्यायतौ	8/2/19
62.	उपसार्गादृति धातौ	6/1/91
63.	उरण् रपरः	1/1/51
64.	उरत्	7/4/66
65.	ऊँ	1/1/18
66.	ऋदृशोऽङि् गुणः	7/4/16
67.	ऋन्नेभ्यो ङीप्	4/1/5
68.	एकहलादा पूरयि.	6/3/59
69.	एङ्ह्रस्वात्संबुद्धेः	6/1/69
70.	एचोऽयवायावः	6/1/78
71.	एत्येधत्युठ्सु	6/1/89
72.	ओजः सहोऽम्भसा.	4/4/27
73.	ओत्	1/1/15
74.	ओत्	7/3/118
75.	ओतोऽम्शसोः	6/1/93
76.	कर्तृकर्मणोः कृति	2/3/65
77.	कर्मण्यण्	3/2/1
78.	किमः कः	7/2/103

79.	कुगतिप्रादय:	2/2/18
80.	कुतिहो:	7/2/104
81.	क्ङिति च	1/1/5
82.	क्तक्तवतू निष्ठा	1/1/26
83.	क्ते च	6/2/42
84.	क्ते नाहो रात्राव य.	2/1/45
85.	क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानि	2/3/14
86.	क्तेन नित्यार्थे	6/2/61
87.	क्षेपे	2/1/47
88.	खरवसानयोर्विसर्जनीय:	8/3/15
89.	गतिकारकोप	6/2/139
90.	गतिरनन्तर:	6/2/49
91.	गर्गादिभ्यो यञ्	4/1/105
92.	गुरोरनृतो.	8/2/86
93.	गोत:	7/1/90
94.	गोश्च पुरीधे	4/3/145
95.	ग्रामाद्यखऽनौ	4/2/94
96.	ङमोह्रस्वादचि ङमुण् नित्यम्	8/3/32
97.	ङयाप्प्रातिपदिकात्.	4/1/1
98.	चङि	6/1/11
99.	चजो: कुघिण्यतो	7/3/52

100.	चर्मणोऽन्	5/5/15
101.	चुटू	1/3/7
102.	चो कुः	8/2/30
103.	छत्रादिभ्यो णः	4/4/62
104.	छदिरूपधिवलेठञ्	5/1/13
105.	जश्शसोः शिः	7/1/20
106.	जसः शो	7/1/17
107.	ज्ञाजनोर्जा	7/3/79
108.	झरोझरि सवर्णे	8/4/65
109.	झषस्तथार्धोऽधः	8/4/20
110.	टाबृचि	4/1/9
111.	ङः सि धुट्	8/3/29
112.	णौ चङ्युपधा.	7/4/1
113.	तत्रजातः	4/3/25
114.	तत्रोपपदं सप्तमीस्थम्	3/1/92
115.	तद्वहति रथयुगप्रा.	4/4/76
116.	तपरस्तत्कालस्य	1/1/70
117.	तस्थस्थमिपांतान्तन्तामः	3/4/85
118.	तस्मादित्युत्तरस्य	1/1/67
119.	तस्मान्नुडचि	6/3/74
120.	तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य	1/1/66

121.	तस्य पाकमूलेपील्वादि कर्णादिभ्यः	5/2/24
122.	तस्य लोपः	1/3/9
123.	तस्येदम्	4/3/120
124.	तास्यनुदात्तेन्डि.	6/1/186
125.	तोषसहलुभरूषरिषः	7/2/48
126.	तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्	1/1/9
127.	तृतीया कर्मणि	6/2/48
128.	त्यदादिनामः	7/2/48
129.	थट् च च्छन्दसि	5/2/50
130.	थाऽथव्य ञवित्रकाणाम्	6/2/144
131.	ददातिदधात्योर्विभाषा	3/1/139
132.	दधस्तथोश्च	8/2/38
133.	दशान्ताड ड्	5/2/45
134.	दादेर्घातोर्घः	8/2/32
135.	दिव औत्	7/1/84
136.	दीर्घोऽकितः	7/4/83
137.	द्विगुश्च	2/1/23
138.	दिव्गो	4/1/21
139.	द्वितीयतृतीयचतुर्थतुयण्यिन्यतरस्याम्	2/2/3
140.	द्विर्वचनेऽचि	1/1/59
141.	द्विपत्परयोस्तापेः	3/2/39

142.	द्वेस्तीय:	5/2/54
143.	दव्यन्तरुपसर्गेभ्योऽपर्हत्	6/3/97
144.	धातो:	3/1/91
145.	धातो:	6/1/162
146.	धिन्विकृध्योश्च	3/1/80
147.	नतिसृचतसृ	6/4/4
148.	नधातुलोपआर्धधातुके	1/1/4
149.	नन्दि ग्रहिपचादिभ्योल्युणिन्यच:	3/1/134
150.	नपदान्तदिव्र्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णाऽनु.	1/1/58
151.	नभूसुधियो:	6/4/85
152.	नमुने	8/2/3
153.	नम:स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च	2/3/16
154.	नलुमताऽङ्स्य	1/1/62
155.	नलोप: प्रातिपदिकान्तस्य	8/2/7
156.	नसंप्रसारणेसंप्रसारणम्	6/1/37
157.	नस्तदिधृते	6/4/144
158.	नाज्झलौ	1/1/10
159.	नान्तादसंख्यादेर्मट	5/2/49
160.	नामि	6/4/3
161.	निपातएकाजनाङ्	1/1/14
162.	निष्ठा	2/2/36

163.	नॄन्पे	8/3/10
164.	पक्षात्ति	5/2/25
165.	पदान्तस्य	8/4/37
166.	परिक्रयणेसंप्र.	1/4/44
167.	पाद:पत्	6/4/130
168.	पादस्यपदाज्यातिगोपहतेषु	6/3/52
169.	पादोऽन्यतरस्याम्	4/1/8
170.	पारेमध्येषष्ठयावा	2/1/18
171.	पुंयोगादाख्यायाम्	4/1/48
172.	पूर्वत्रासिद्धम्	8/2/1
173.	पूर्वादिनि:	5/2/86
174.	पूर्वाह्णापराह्णार्द्रामूलप्रदोषावस्करादवुन्	4/3/28
175.	पूर्वोभ्यास:	6/1/4
176.	प्रकृत्यैकाच्	6/4/163
177.	प्रत्यय:	3/1/1
178.	प्रत्ययलोपेप्रत्ययलक्षणम्	1/1/62
179.	प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यातइदाप्यसुप:	7/3/44
180.	प्राग्दीव्यतोऽण्	4/1/83
181.	प्रावृषएण्य:	4/3/17
182.	प्रावृषष्ठप्	4/3/26
183.	प्लुतप्रगृह्या अचिनित्यम्	6/1/125

184.	बहुगणवतुडतिसंख्या	1/1/23
185.	बहुव्रीहैरूधसो.	4/1/25
186.	बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः	5/4/113
187.	बहोर्नज्वदुत्तरपदभूमिन	6/2/175
188.	बिल्वादिभ्योऽण्	4/3/136
189.	भृजामित्	7/4/76
190.	भो भगो अघो अपूर्वस्ययोऽशि	7/3/17
191.	मिदचोऽन्त्यात्परः	1/1/47
192.	मृजेर्वृदिध्ः	7/2/114
193.	मोऽनुस्वारः	8/3/23
194.	यचिभम्	1/4/18
195.	यथासंख्यमनुदेशः समानाम्	1/3/10
196.	यस्मात्प्रत्ययविधितदादि प्रत्ययेऽङ्गम्	1/4/13
197.	यस्येति च	6/4/148
198.	युवोरनाकौ	7/1/1
199.	यासुट्परस्मैपदै	3/4/103
200.	येन विधिस्तदन्तस्य	1/1/72
201.	रदाभ्यां निष्ठातो	8/2/42
202.	राजा सखिभ्यष्टच्	5/4/91
203.	राज्ञः क च	4/2/140
204.	राष्ट्रावारपाराद्धखौ	4/2/93

205.	रोः सुपि	8/3/16
206.	रोरि	823/14
207.	लस्य	3/4/77
208.	लिटि धातोरनभ्यासस्य	6/1/8
209.	लुटः प्रथमस्य डारौरसः	2/4/85
210.	लुटि च क्लृपः	1/3/93
211.	ल्युट् च	3/3/115
212.	वनो र च	4/1/7
213.	वर्णो वर्णेन	2/1/69
214.	वसोः सम्प्रसारणम्	6/4/131
215.	वान्तो यि प्रत्यये	6/1/79
216.	वाऽवसाने	8/4/56
217.	वाऽसरूपोऽस्त्रियाम्	3/1/94
218.	वाह् ऊठ्	6/4/132
219.	विप्रतिषेधे परं कार्यम्	1/4/2
220.	विभाषा ङिश्योः	6/4/136
221.	विभाषेटः	8/3/79
222.	विसर्जनीयस्य सः	8/3/34
223.	वुञ्छण्कठजिलसे.	4/2/80
224.	वृद्धाच्छः	4/2/114
225.	वृद्धिरादैच्	1/1/1

226.	वृद्धिर्यस्या चामादि.	1/1/73
227.	व्यथो लिटि	7/4/68
228.	व्यश्च	6/1/43
229.	व्रश्चभ्रस्जसृज.	8/2/36
230.	शदेः शितः	1/3/60
231.	शाच्छोरन्यत.	7/4/41
232.	शिवादिभ्योऽण्	4/1/112
233.	शेषाद्विभाषा	5/4/154
234.	शेषे	4/2/92
235.	श्याद्व्य धास्त्रुसंस्रवतोणवसावहलिहश्लिषश्वसश्च	3/1/141
236.	श्वयुवमघोनाम.	6/4/133
237.	षट्कतिकतिपयचतुरांथुक्	5/2/51
238.	षट्चतुर्भ्यश्च	7/2/55
239.	षत्वतुकोर सिद्धः	6/1/86
240.	षष्टाष्टमाभ्याञ्च	5/3/50
241.	षष्टीस्थाने योगा	1/1/49
242.	ष्णान्ता षट्	1/1/24
243.	ष्यङः सम्प्रसारणम्	6/1/13
244.	संयोगान्तस्य लोपः	8/2/23
245.	संस्कृतं भाक्षाः	4/2/16
246.	संख्याया अति.	5/1/22

247.	सम्प्रसारणाच्च	6/1/108
248.	सर्वनाम्ना स्याड.	7/3/108
249.	सर्व निधृष्वरिष्वलष्व शिवपट्वप्रह्वेष्वा.	43/53
250.	स सजुषो रुः	8/2/66
251.	सह सुपा	2/1/4
252.	सहिवहोरोदवर्णस्य	6/3/112
253.	सार्वधातुकार्धधातुकयोः	7/3/84
254.	सिचिवृद्धिः परस्मै.	7/2/1
255.	सूत्रान्ताठ्ठक्	4/2/60
256.	सुपि च	7/3/102
257.	सेर्ह्यपिच्च	3/4/87
258.	सेऽसिचिकृत.	7/2/57
259.	स्कोः संयोगाद्यो.	8/2/29
260.	स्त्रोभ्यो ढक्	4/1/120
261.	स्थण्डि लाच्छयितरिव्रते	4/2/15
262.	स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ	1/1/56
263.	स्थानेऽन्तरतमः	1/1/50
264.	स्वाङ्गाच्चेतः	6/3/40
265.	हलः	6/4/2
266.	हलः श्नः शानज्झौ	3/1/83
267.	हलन्त्यम्	1/1/3

268.	हलादिः शेषः	7/4/60
269.	हुझलभ्योहेर्धिः	6/4/87
270.	हृक्रोरन्यतरस्याम्	1/4/53
271.	हृदयस्य हृल्लेखयद.	6/3/50
272.	होढः	8/2/31
273.	ह्रस्वः	7/4/50
274.	ह्रस्वस्य पिति कृतितुक्	6/1/71
275.	ह्रस्वे	5/3/86

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
अस्तोभमनवद्यं च सूत्रं शास्त्रविदो विदुः।।

परिशिष्ट-6

भीम विरचित परिभाषार्थमञ्जरी में प्रयुक्त वार्त्तिकों की अकारादिक्रम से सूची:-

क्र.	वार्त्तिक	वार्त्तिकाङ्कः
1.	ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्	31
2.	ऋति सवर्णे ऋवा	139
3.	ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्	396
4.	कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु	1206
5.	नुमचिरतृज्वद्भावेभ्यो नुट्पूर्व विप्रतिषेधेन	392
6.	प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु	112
7.	यणो मयो द्वे वाच्ये	83
8.	लृति सवर्णे लृ वा	140
9.	वुग्युटावुवङ्यणोः सिद्धौ वक्तव्यौ	9938
10.	साधुकारिभ्युपसंख्यानम्	3993
11.	शूद्राचामहत्पूर्वाजाति	617

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते।
तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्तिकज्ञा मनीषिणः।।

1. वार्तिक अंक के लिए द्रष्टव्य-सिद्धान्त कौमुदी, सम्पादक-वासुदेव शर्मा, मेहरचन्द-लक्ष्मणदास, प्रकाशक, दिल्ली।

परिशिष्ट-7

परिभाषानुक्रमणो

परिभाषाः

15. अर्थमात्रालाघवेन (132)

16. अवयवप्रसिद्धेः (106)

17. असिद्धं बहिरङ्गम् (50)

18. आगमशास्त्रम् (94)

19. आतिदेशिकमनित्यम् (98)

20. उणादयोऽव्युत्पन्नानि (22)

21. उत्तरपदाधिकारे (25)

22. उपपदविभक्तेः (102)

23. उपसंजनिष्यमाण (64)

24. उभयनिर्देशे (70)

25. उभयगतिरिह भवति (9)

26. एकदेशविकृतम् (37)

27. एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा (17)

28. एकस्या आकृतेश्चरितः (126)

29. एकान्ताः (अनुबन्धाः) (5)

30. औपदेशिकप्रायोगिकयोः (129)

31. कार्यकालम् संज्ञा (3)

32. कार्यमनुभवन् हि कार्यो (10)

33. कृताकृतप्रसङ्गि (42)

34. कृदग्रहणे गति (28)

35. क्तल्युट्तुमुन् (68)

36. क्वचित् कृताकृत (46)

37. क्वचित् समुदायेऽपि (116)

38. क्वचित् स्वार्थिका: (83)

39. क्वचिदपवादविषये (58)

40. क्वचिद् विकृति: (128)

41. क्वचिदेकदेशोऽप्यनुवर्त्तते (18)

42. गणकार्यमनित्यम् (..5)

43. गतिकारकोपपदानाम् (75)

44. गामादाग्रहणेष्वविशेष: (114)

45. गौणमुख्ययो: मुख्ये (15)

46. ग्रहणवता प्रातिपदिकेन (31)

47. चानुकृष्टम् (78)

48. ज्ञापकसिद्धं न (124)

49. तदनुबन्धकग्रहणे (82)

50. तन्मध्यपतित: (89)

51. ताच्छीलिके णेऽण् (87)

52. ताच्छीलिकेषु वासरूप (67)

53. धातो: कार्यमुच्यमानम् (88)

54. नञ्वियुक्तमन्य (74)

55. नञ्घटितमनित्यम् (97)

56. नाजानन्तर्ये बहिष्ट्प (51)

57. नानर्थकेऽलोन्त्यविधिः (104)

58. नानुबन्धकृतमनेकाल्त्वम् (6)

59. नानुबन्धकृतमनेजन्तत्वम् (7)

60. नानुबन्धकृतमसारूप्यम् (8)

(नित्यादप्यन्तरङ्गं बलीयः)

61. निरनुबन्धकग्रहणे (81)

62. निर्दिश्यमानस्यादेशा भवन्ति (12)

63. निषेधाश्च वलीयांसः (120)

64. पदगौरवाद् योग (131)

65. पदाङ्गाधिकारे (29)

(परान्नित्यं व्लवत्)

66. पर्जन्यवल्लक्षण (119)

67. पर्यायशब्दानाम् (123)

68. पुनः प्रसङ्गविज्ञानात् (39)

69. पुरस्तादपवादाः (59)

70. पूर्व ह्यपवादः (162)

71. पूवत्रासिद्धधीयम् (125)

72. पूर्वपरनित्यान्तरङ्गापवादानाम् (38)

73. पूर्वोत्तरपदनिमित्त (53)

74. प्रकल्प्य चापवाद (63)

75. प्रकृतिग्रहणे ण्यधिकस्यापि (91)

97. लक्षणप्रतिपदोक्तयोः (113)

98. लक्षणान्तरेण प्राप्नुवन् (45)

99. लादेशेषु वासरूप (69)

100. लुग्विकरणालुगविकरणयोः (90)

101. वर्णाश्रये नास्ति (21)

102. वार्णादाङ्गं बलीयः (55)

103. विकरणेभ्यो नियमः (41)

104. विधिनियमसम्भवे (108)

105. विधौ परिभाषोपतिष्ठते (101)

106. विभक्तौ लिङ्गविशिष्टाग्रहणम् (72)

107. व्यपदेशिवदेकस्मिन् (30)

108. व्यपदेशिवद्भावः (32)

109. व्यवस्थितविभाषयापि (107)

110. व्याख्यानतो विशेष (1)

111. शब्दान्तरस्य प्राप्नुवन् (43)

112. शब्दान्तरात् प्राप्नुवतः (44)

113. श्तपा शपाऽनुबन्धेन (130)

114. श्रुतानुमितयोः (112)

115. संज्ञापूर्वकविधेः (93)

116. संज्ञाविधौ प्रत्ययग्रहणे (27)

117. सकृदगतौ विप्रतिषेधे (40)

118. सन्निपातलक्षणो विधिः (85)

119. सन्नियोगशिष्टानाम् (86)

120. सम्प्रसारणं तदाश्रयञ्च (127)

121. समासान्तविधिरनित्यः (84)

122. सर्वविधिभ्यो लोपविधिः (99)

123. सर्वे विधयश्छन्दसि (35)

124. सर्वो द्वन्द्वो विभाषा (34)

125. सहचरितासहचरितयोः (111)

126. सामान्यातिदेशे (109)

127. साम्प्रतिकाभावे (76)

128. सूत्रे लिंगवचनमतन्त्रम् (73)

129. स्त्रीप्रत्यये चानुपसर्जने न (26)

130. स्वरभिन्नस्य प्राप्नुवन् (49)

131. स्वरविधौ व्यञ्जनम् (79)

132. हल्स्वरप्राप्तौ व्यञ्जनमविद्यमानवत् (80)

सहायक ग्रन्थ सूची

1. **अष्टाध्यायी (पाणिनि)**, भाग 1,2 सम्पा. चन्द्रावासु मोतीलाल वनारसीदास दिल्ली 1962
2. **आदर्श हिन्दी संस्कृत कोश**, रामस्वरूपशास्त्री चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 1979
3. **एम.ए. संस्कृत व्याकरण**, समा- श्रीनिवास साहित्य भण्डार, मेरठ 1983
4. **काशिकावृत्ति न्यास पदमंजरी** सहिताप्रथमो भाग समा. स्वामी द्वारिकादास एवं कालिकाप्रसादशुक्ल प्राच्य भारतीय प्रका., वाराणसी 1965
5. **परिभाषा संग्रह**, श्री के. बी. अभ्यंकर- सम्पा. भण्डारकर ओ. रि. पूना 1967
6. **परिभाषेन्दुशेखर**, व्या.- श्री विश्वनाथ मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 1985
7. **परिभाषेन्दुशेखर**, श्रीहर्षनाथ मिश्र दुर्गा सं. व्याख्या
8. **परिभाषेन्दुशेखर**, श्रीराजनारायणमिश्र चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी-1981
9. **परिभाषेन्दुखेर**, श्री जयदेव विजय व्याख्या- तीर भुक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद-1968
10. **परिभाषेन्दुशेखर**, श्रीवासुदेव शास्त्री अभ्यंकरकृत ओ. रि., पूना 1962
11. **परिभाषेन्दुशेखर**, एफ. किलहार्न एवं श्री के. वी अभ्यंकर ओ. रि इ. पूना 1960

12. **परिभाषेन्दुशेखर**, सम्पा. श्री उमेश मिश्र भ. ओ. रि. इ., पूना 1960

13. **परिभाषेन्दुप्रश्नपंचिका**, राजनारायण शास्त्री चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी- 1960

14. **प्रौढ़ मनोरमा शब्दरत्नम्**, डा. वेङ्कटेशलक्ष्मण जोशी- ढैक्कन कालेज, पूना- 1967

15. **पाणिनीय व्याकरण महाभाष्यम्**, श्री भार्गव शास्त्री संशो. भाग-1-6 चौ. सं. प्रतिष्ठान, दिल्ली 1987

16. **बाल सिद्धांतकौमुदी**, ज्योति-स्वरूप मिश्र सार्वदेशिक प्रेस, पटौदी हाउस दिरयांगज, दिल्ली 1969

17. **भारतीय पाठालोचन की भूमिका**, डॉ. एस. एम कात्रे- मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल 1971

18. **लघुसिद्धांतकौमुदी**, व्याख्या महेशसिहं कुशबाहा- चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी- 1979

19. **लघुसिद्धांतकौमुदी**, समा. श्रीधरानन्द मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1972

20. **लघुसिद्धांत कौमुदी**, उपेन्द्रविवृतिसहिता मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1995

21. **वृहदनुवादचन्द्रिका**, चक्रधरनौटियाल मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1991

22. **व्याकरणचन्द्रोदय**, श्रीचारूदेव शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1973

23. **व्याकरणशास्त्र का संक्षिप्त इतिहास**, श्रीरमाकांत मिश्र चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी- 1966

24. **संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास**, भाग- 1,2,3 श्री युधिष्ठिर मीमांसक- रामलाल कपूर ट्रष्ट प्रैस 1982

25. **साहित्यदर्पण**, मूललेखक- विश्वनाथमिश्र- मोतीलाल बनारसीदास 1977

26. **सिद्धांत कौमुदी**, समा. वासुदेवशर्मा मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स दिल्ली 1985

27. **सिद्धांत कौमुदी**, श्रीशिवदत्त शास्त्री-क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेंकटेश्वर मुद्रणालय मुम्बई 2015

28. **संस्कृत शिक्षण विधि**, डॉ. रघुनाथ सफाया पंजाब किताबघर, जालन्धर- 1986

29. **संस्कृत व्याकरण की रूपरेखा**, डॉ. यज्ञवीर बहालगढ सोनीपत सबत् 2030

30. **परमलधुमंजूषा**, नागेश भट्ट।

❖ ❖ ❖



नाम- प्रोफेसर (डॉ.) पुरुषोत्तम शर्म्मा सुपुत्र दैवज्ञभूषण दिवङ्गत पं. देवदत्त शर्म्मा (राजज्योतिषी) ममतामयी माता स्वर्गीया श्रीमती उमादेवी जी।

जन्मतिथि तथा जन्मस्थान- 14.04.1953, डावा (पुराना दरुड़) नजदीक चरणपादुका, कटड़ा (वैष्णो देवी) जम्मू कश्मीर राज्य।

वर्तमान पता- हाउस नं. 54 गली नं. 12 स्वर्णविहार, पो. आ. मुट्ठी, जम्मू-181205।

शिक्षा- पी.एच-डी., एम्.फिल्, ज्योतिषाचार्य (एम.ए. ज्योतिष, गोल्ड मेडलिस्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली); एम.ए. (संस्कृत कला संकाय में प्रथम संस्थान) एम.ए. (हिन्दी); शिक्षा शास्त्री; शास्त्री; एम.एड. (शिमला) ज्योतिष शिरोमणि, शास्त्र चूडामणि (रा.सं. संस्थान, नई दिल्ली)।

रचनाएँ- 1. ईशावस्योपनिषद् 2. भारतीयज्योतिष प्रवेश 3. लघु सिद्धान्त कौमुदी (कारक- विभक्त्यर्थ प्रकरणम्) 4. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी (कारक-विभक्त्यर्थ- प्रकरणम्) 5. ज्योतिष रहस्य 6. ज्योतिष सार 7. ऋक् सूक्तगौरवम् 8. अलङ्कार मुक्तावली में सादृश्यमूलक अलङ्कारों का विवेचन 9. परिभाषार्थमञ्जरी का सम्पादन 10. वैदिक अध्ययन।

विशेष सम्मान एवं पुरस्कार- 1. शास्त्रचूडामणि (केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय नई दिल्ली)। 2. प्रोफेसर एमरिट्स् (यू.जी.सी. नई दिल्ली)। 3. ज्योतिष शिरोमणि उपाधि एवं Gold Medal पञ्चम अन्तर्राष्ट्रिय सम्मेलन, ज्योतिषाध्यात्मिक विज्ञान संगठन भारत, श्रीलङ्का से ज्योतिष विषय पर। 4. स्वर्णपदक (ज्योतिष) राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली। Gold Medal जम्मू विश्वविद्यालय। हिन्दी लेखक पुरस्कार, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

प्रतियोगिता पुरस्कार- विशेष पुरस्कार 72

कार्यक्षेत्र-

1. छात्रावासीय उपाध्यक्ष 1997 से 2000 तक, छात्रावास, जम्मू विश्वविद्यालय।
2. प्रवक्ता हिन्दी कार्यकाल 1981 से 1988 तक (राजपत्रित लैक्चरर् के रूप में)।
3. प्रोफेसर एमरिट्स् एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू। पठन-पाठन, लेखन तथा समाज सेवादि कार्यों में संलग्न।
4. UGC Expert Committee Member to review the status of Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi as Deemed University and its constituent Units.
5. Grant-in-Aid Committee Member of Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, March 2018 to 2020.
6. विभिन्न विषयों में मार्गदर्शन के फलस्वरूप एम्.फिल्. तथा पी.एच-डी. में शोधच्छात्रों ने अब तक 75 उपाधियां प्राप्त की।
7. सम्मेलनों में भागग्रहण:-150 से अधिक राष्ट्रिय एवं अन्तर्राष्ट्रिय शोध सम्मेलनों में भाग लिया। 80 से अधिक शोध-पत्र प्रकाशित।